



MAGO-113

पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई 1 : पर्यावरण, जीवमण्डल एवं पारिस्थितिकी तन्त्र	3—17
इकाई 2 : जैव-भूरसायन चक्र : कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, जल चक्र, ऑक्सीजन चक्र	18—30
इकाई 3 : पारिस्थितिकी तन्त्र की स्थिरता	31—40
इकाई 4 : पारिस्थितिकी तन्त्र में अस्थिरता एवं पर्यावरण संकट के कारक	41—54
इकाई 5 : आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संकट	55—67
इकाई 6 : जनसंख्या एवं पर्यावरण ह्रास, निर्धनता एवं पर्यावरण ह्रास	68—79
इकाई 7 : कृषि क्षेत्र में विस्तार, हरित क्रान्ति एवं पर्यावरण ह्रास	80—95
इकाई 8 : वनस्पति अनुक्रम वनस्पति समुदाय	96—108
इकाई 9 : विश्व के प्रमुख पारिस्थितिकी तन्त्र, निर्वनीकरण की प्रक्रिया, उसके कारण एवं परिणाम	109—124
इकाई 10 : मिट्टी के तत्व मिट्टी का प्रादेशिक वर्गीकरण	125—150
इकाई 11 : मिट्टी का उत्पादन क्षमता एवं उसमें ह्रास, मिट्टी का कटाव एवं मरुस्थलीकरण	151—159
इकाई 12 : जलप्रदूषण: संकल्पना, जल प्रदूषण की समस्याएँ एवं उपाय, गंगा शुद्धिकरण परियोजना	160—176
इकाई 13 : भूमिगत जल अवक्रमण, प्रदूषण के कारक एवं परिणाम, भारत में जल संकट	177—193
इकाई 14 : वायु प्रदूषण की संकल्पना, वायु प्रदूषण के कारक, ध्वनि प्रदूषण	194—210
इकाई 15 : भारत में ऊर्जा संकट: सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा एवं बायोगैस	211—227
इकाई 16 : पर्यावरण प्रबन्ध एवं संविकास: संकल्पना, सिद्धान्त पर्यावरण प्रबन्धन के उपागम	228—240

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज
MAGO-113 पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो० सीमा सिंह

विनय कुमार

कुलपति

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कुलसचिव

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो० संतोषा कुमार

प्रो. संजय कुमार सिंह

डॉ. अभिषेक सिंह

प्रो. एन.के. राना

प्रो. ए.आर. सिद्धीकी

प्रो. अरुण कुमार सिंह

आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाजविज्ञान, विद्याशाखा,

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सहा० आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आचार्य, भूगोल विभाग बी.एच.यू., वाराणसी

आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आचार्य, भूगोल विभाग बी.एच.यू. वाराणसी

लेखक

डॉ. उमाकान्त सिंह

डॉ. पवन कुमार

डॉ. बीरेन्द्र दूबे

डॉ. राजेश कुमार पाल

डॉ. देवेन्द्र नारायण पाण्डेय

सहा० आचार्य भूगोल श्री बलदेव पी०जी० कॉलेज बडागाव, वाराणसी

सहा० आचार्य भूगोल राज० कॉलेज कौशाम्बी

सहा० आचार्य भूगोल श्री दुर्गा जी कॉलेज चण्डेश्वर आजमगढ़

सहा० आचार्य भूगोल माँ भवानी पी०जी० कॉलेज सोगाई, चन्दौली

सहा० आचार्य भूगोल ना० पी०जी० कॉलेज जंधई जौनपुर

सम्पादन

प्रो. संजय कुमार सिंह

आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

समन्वयक

प्रो. संजय कुमार सिंह

आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सह-समन्वयक

डॉ. अभिषेक सिंह

सहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक

2024 (मुद्रित)

© २०२० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2024

ISBN-978-81-19530-54-0

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, विनय कुमार २०२० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज — 2024

मुद्रक :—चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज— 211006

इकाई-1 : पर्यावरण जीव मंडल एवं पारिस्थितिकी तंत्र

इकाई की रूपरेखा

- 1.1. परिचय
- 1.2. अध्ययन के मुख्य उद्देश्य
- 1.3. पर्यावरण
- 1.4. जीवमंडल
- 1.5. पारिस्थितिकी तंत्र
- 1.6. महत्वपूर्ण शब्द
- 1.7. परीक्षापयोगी प्रश्न
- 1.8. अभ्यास प्रश्न
- 1.9. संदर्भित पुस्तक

1.1 परिचय

हमारे ग्रह के स्वास्थ्य और स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए पर्यावरण को समझना और उसका संरक्षण करना महत्वपूर्ण है। इस व्यापक चर्चा में पारिस्थितिकी तंत्र, पर्यावरणीय मुद्दों, संधारणीय प्रथाओं, पर्यावरण नीतियों और शिक्षा और जागरूकता की भूमिका के विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है। स्थलीय और जलीय दोनों तरह के पारिस्थितिकी तंत्र, जीवित और निर्जीव घटकों के जटिल नेटवर्क हैं जो पृथ्वी पर जीवन का समर्थन करने के लिए परस्पर क्रिया करते हैं। इनमें जंगल, घास के मैदान, रेगिस्तान, टुंड्रा, मीठे पानी के निकाय, समुद्री वातावरण और आर्द्रभूमि जैसे विविध आवास शामिल हैं। प्रत्येक प्रकार का पारिस्थितिकी तंत्र पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और आवश्यक सेवाएँ प्रदान करने में एक अनूठी भूमिका निभाता है।

प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता हानि और संसाधनों की कमी जैसे पर्यावरणीय मुद्दे इन पारिस्थितिकी तंत्रों और सभी जीवन रूपों की भलाई के लिए महत्वपूर्ण खतरे पैदा करते हैं। वायु, जल और मिट्टी का प्रदूषण प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करता है, जबकि जलवायु परिवर्तन ग्लोबल वार्मिंग और चरम मौसम की घटनाओं की ओर ले जाता है। आवास विनाश और प्रजातियों के विलुप्त होने से जैव विविधता बाधित होती है, और संसाधनों का अत्यधिक दोहन आवश्यक प्राकृतिक संपत्तियों को नष्ट कर देता है।

इन पर्यावरणीय चुनौतियों को कम करने के लिए अक्षय ऊर्जा, संरक्षण प्रयासों और हरित रसायन को अपनाने सहित संधारणीय अभ्यास महत्वपूर्ण हैं। सौर, पवन और जलविद्युत जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करते हैं, जबकि संरक्षण प्रयास पारिस्थितिकी तंत्र और प्रजातियों की रक्षा करते हैं। हरित रसायन विज्ञान औद्योगिक गतिविधियों में पर्यावरण के अनुकूल पदार्थों और प्रक्रियाओं का उपयोग करने पर ध्यान केंद्रित करता है।

पर्यावरण संबंधी चुनौतियों का समाधान करने के लिए पेरिस समझौते जैसे अंतराष्ट्रीय समझौतों से लेकर राष्ट्रीय विनियमों और स्थानीय पहलों तक प्रभावी पर्यावरण नीतियाँ और शासन आवश्यक हैं। शिक्षा और जागरूकता एक ऐसे समाज को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो पर्यावरण संरक्षण को महत्व देता है और इसमें सक्रिय रूप से भाग लेता है। पर्यावरण विज्ञान और संधारणीयता को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल करना, जन जागरूकता अभियान चलाना और अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देना एक जानकार और संलग्न समाज के निर्माण की कुंजी है।

1.2 अध्ययन के मुख्य उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण के विभिन्न घटकों और गतिशीलता की व्यापक समझ प्रदान

करना, प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान करना, और पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक सतत प्रथाओं और नीतियों का अन्वेषण करना है। इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **पारिस्थितिक तंत्र का वर्णन करना** : विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों की संरचना और कार्य का अध्ययन करना, जिसमें स्थलीय और जलीय तंत्र शामिल हैं, और जैविक और अजैविक घटकों की पारस्परिक निर्भरता को उजागर करना।
2. **पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान करना** : प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि और संसाधनों की कमी जैसी प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों का विश्लेषण करना और इनका पारिस्थितिक तंत्र और मानव कल्याण पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3. **सतत प्रथाओं को बढ़ावा देना** : अक्षय ऊर्जा अपनाने, संरक्षण प्रयासों और हरित रसायन विज्ञान जैसी सतत प्रथाओं का अन्वेषण करना, और उनके पर्यावरणीय क्षरण को कम करने और स्थिरता को बढ़ावा देने में उनके महत्व को रेखांकित करना।
4. **पर्यावरणीय नीतियों का मूल्यांकन करना** : पर्यावरणीय समस्याओं को संबोधित करने और सतत विकास को बढ़ावा देने में अंतरराष्ट्रीय समझौतों, राष्ट्रीय विनियमों और स्थानीय पहलों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।
5. **शिक्षा और जागरूकता की भूमिका को उजागर करना** : स्कूल पाठ्यक्रम में पर्यावरणीय शिक्षा को एकीकृत करने, सार्वजनिक जागरूकता अभियानों का संचालन करने और अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देने के महत्व को रेखांकित करना, ताकि एक जागरूक और सक्रिय समाज का निर्माण हो सके।
6. **संरक्षण और पुनःस्थापन को प्रोत्साहित करना** : पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा, जैव विविधता के संरक्षण और पर्यावरण के दीर्घकालिक स्वास्थ्य और लचीलापन सुनिश्चित करने के लिए संरक्षण और पुनःस्थापन प्रयासों की वकालत करना।

1.3 पर्यावरण

पर्यावरण प्राकृतिक और मानव निर्मित तत्वों का जटिल नेटवर्क है जो पृथ्वी पर जीवन के लिए परिस्थितियाँ बनाने के लिए एक दूसरे के साथ परस्पर क्रिया करते हैं। इसमें हम जिस हवा में सांस लेते हैं, जिस पानी को पीते हैं, और जिस मिट्टी पर हम खेती करते हैं, से लेकर हमारे द्वारा बनाई गई इमारतों और हमारे द्वारा बनाए गए समुदायों तक सब कुछ शामिल है। पर्यावरण जैविक (जीवित) और अजैविक (निर्जीव) दोनों घटकों से बना है, जो मिलकर पारिस्थितिकी तंत्र बनाते हैं। ये पारिस्थितिकी तंत्र गतिशील और लगातार बदलते रहते हैं, जो प्राकृतिक प्रक्रियाओं और मानवीय गतिविधियों दोनों से प्रभावित होते हैं।

पर्यावरण के प्राकृतिक घटकों में वायुमंडल शामिल है, जो जलवायु और मौसम के पैटर्न को नियंत्रित करता है। जलमंडल, जिसमें महासागर, नदियाँ और झीलें जैसे सभी जल निकाय शामिल हैं। स्थलमंडल, जो चट्टानों और मिट्टी से बनी पृथ्वी की ठोस बाहरी परत है। और जीवमंडल, जिसमें सभी जीवित जीव शामिल हैं। ये तत्व एक नाजुक संतुलन में परस्पर क्रिया करते हैं, जो जीवन के जटिल जाल का समर्थन करते हैं। शहरी क्षेत्र, बुनियादी ढांचा और कृषि भूमि जैसे मानव निर्मित घटक तेजी से पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए हैं, जो प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा आकार लेते और आकार देते हैं।

पर्यावरण की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

- 1- "The environment is everything that isn't me- "Albert Einstein
"पर्यावरण वह सब कुछ है जो मैं नहीं हूँ" अल्बर्ट आइंस्टीन
- 2- "The environment is the sum of all external conditions affecting the life, development, and survival of an organism-" Ernst Haeckel
"पर्यावरण उन सभी बाह्य परिस्थितियों का योग है जो किसी जीव के जीवन, विकास और अस्तित्व को प्रभावित करती हैं।" – अर्नस्ट हेकेल

- 3- "The environment refers to the sum total of conditions which surround man at a given point in space and time-" & A-G- Tansley

"पर्यावरण उन परिस्थितियों के योग को कहते हैं जो अंतरिक्ष और समय में किसी निश्चित बिंदु पर मनुष्य को घेरे रहती हैं।" – ए. जी. टैन्सले

1. पर्यावरण के घटक

क. प्राकृतिक घटक:

- **वायुमंडल:** "पृथ्वी के चारों ओर गैसों की परत, जो मौसम और जलवायु विनियमन के लिए महत्वपूर्ण है। यह पराबैंगनी सौर विकिरण को अवशोषित करके जीवन की रक्षा करता है, दिन और रात के बीच तापमान चरम को कम करता है, और मुख्य रूप से नाइट्रोजन और ऑक्सीजन से बना होता है, जिसमें अन्य गैसों की मात्रा बहुत कम होती है।" – NASA
- **जलमंडल:** "महासागरों, नदियों, झीलों और भूजल सहित सभी जल निकाय। यह पृथ्वी की सतह के लगभग 71: हिस्से को कवर करता है और जीवन का समर्थन करने, जलवायु को विनियमित करने और कटाव और अवसादन जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से ग्रह की भूवैज्ञानिक विशेषताओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।" – राष्ट्रीय महासागरीय और वायुमंडलीय प्रशासन (NOAA) ।
- **स्थलमंडल:** "पृथ्वी की ठोस बाहरी परत, जिसमें चट्टानें, खनिज और मिट्टी शामिल हैं। यह लगभग 100 किलोमीटर (62 मील) गहराई तक फैली हुई है और इसमें क्रस्ट और मेंटल का ऊपरी हिस्सा शामिल है। स्थलमंडल टेक्टोनिक प्लेटों में टूटा हुआ है जो चलते हैं और परस्पर क्रिया करते हैं, जिससे भूकंप, ज्वालामुखी गतिविधि और पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण होता है।" – यू. एस. भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (USGS)
- **जीवमंडल:** "पृथ्वी के वे क्षेत्र जहाँ जीवन विद्यमान है, जिसमें सभी जीवित जीव शामिल हैं। यह पेड़ों की सबसे गहरी जड़ों से लेकर, समुद्र की खाइयों के अंधेरे वातावरण, हरे-भरे वर्षा वनों और ऊँचे पर्वत शिखरों तक फैला हुआ है। जीवमंडल एक वैश्विक पारिस्थितिकी तंत्र है जो जीवित जीवों (बायोटा) और अजैविक (निर्जीव) कारकों से बना है जिनके साथ वे परस्पर क्रिया करते हैं।" – व्लादिमीर वर्नाडस्की, जीवमंडल अध्ययन में अग्रणी वैज्ञानिक।

ख. मानव निर्मित घटक:

- **शहरी क्षेत्र:** "मानव द्वारा विकसित शहर और कस्बे। शहरी क्षेत्रों की विशेषता उच्च जनसंख्या घनत्व, महत्वपूर्ण बुनियादी ढाँचा और विभिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ हैं। वे अक्सर वाणिज्य, उद्योग और सेवाओं के लिए केंद्र के रूप में काम करते हैं, जो सतत विकास के लिए कई अवसर और चुनौतियाँ प्रदान करते हैं।" – संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग (यूएन डीईएसए)
- **बुनियादी ढाँचा:** "सड़कें, पुल, इमारतें और अन्य निर्माण बुनियादी ढाँचा उन मूलभूत सुविधाओं और प्रणालियों को संदर्भित करता है जो घरों और फर्मों की स्थायी कार्यक्षमता का समर्थन करते हैं। इसमें परिवहन प्रणाली, संचार नेटवर्क, सीवेज, पानी और बिजली प्रणाली, साथ ही स्कूल, अस्पताल और कानून प्रवर्तन सुविधाएँ जैसे सार्वजनिक संस्थान शामिल हैं।" – अमेरिकन सोसाइटी ऑफ सिविल इंजीनियर्स (ASCE)
- **कृषि भूमि:** "खेती और पशुधन के लिए संशोधित क्षेत्र। कृषि भूमि में फसल उगाने के लिए उपयोग की जाने वाली कृषि योग्य भूमि, पशुओं के चरने के लिए चारागाह और बागों और अंगूर के बागों जैसी स्थायी फसलों के अंतर्गत आने वाली भूमि शामिल है। यह खाद्य उत्पादन और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन मिट्टी के क्षरण, पानी की कमी और जैव विविधता के नुकसान को रोकने के लिए टिकाऊ प्रथाओं की आवश्यकता होती है।" – खाद्य और कृषि संगठन (FAO)

2. **पर्यावरण के भीतर अंतः क्रियाएँ** पर्यावरण के भीतर अंतः क्रियाएँ जटिल और बहुआयामी हैं, जिनमें सजीव (जैविक) और निर्जीव (अजैविक) दोनों घटक शामिल हैं। ये अंतः क्रियाएँ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और पृथ्वी पर जीवन को सहारा देने के लिए महत्वपूर्ण हैं। आइए इन पर विस्तार से चर्चा करें:

a. जैविक अंतः क्रियाएँ:

शिकार : शिकार एक जैविक अंतःक्रिया है जहाँ एक जीव, शिकारी, दूसरे जीव, का शिकार करता है और उसका उपभोग करता है। यह अंतःक्रिया जनसंख्या के आकार को विनियमित करने, प्रजातियों की विविधता को बनाए रखने और विकासवादी अनुकूलन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए, शेर और भेड़िये जैसे शिकारी जेबरा और हिरण जैसे शाकाहारी जानवरों की आबादी को नियंत्रित करते हैं, अतिचारण को रोकते हैं और स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देते हैं। शिकार प्रजातियों के बीच विभिन्न उत्तरजीविता रणनीतियों के विकास की ओर भी ले जाता है, जैसे छलावरण, गति और रक्षात्मक तंत्र।

सहजीवन : सहजीवन विभिन्न प्रजातियों के बीच घनिष्ठ और दीर्घकालिक अंतःक्रियाओं को संदर्भित करता है जिसके परिणामस्वरूप पारस्परिक लाभ, सहभोजिता या परजीवीवाद होता है। पारस्परिकता में, दोनों प्रजातियाँ रिश्ते से लाभान्वित होती हैं। इसका एक उदाहरण मधुमक्खियों और फूल वाले पौधों के बीच का रिश्ता है। मधुमक्खियों को भोजन के लिए अमृत मिलता है, जबकि पौधों को परागकण सेवाएँ मिलती हैं। सहभोजिता में एक प्रजाति को दूसरे को प्रभावित किए बिना लाभ होता है, जैसे कि व्हेल से चिपकी हुई चिड़ियाँ। परजीवीवाद में, एक जीव दूसरे की कीमत पर लाभ उठाता है, जैसे कि टिक्स एक मेजबान जानवर पर भोजन करते हैं। ये अंतः क्रियाएँ सहयोग और संसाधन साझाकरण को बढ़ावा देकर जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यक्षमता को बढ़ाती हैं।

प्रतिस्पर्धा : प्रतिस्पर्धा तब होती है जब जीव समान सीमित संसाधनों, जैसे कि भोजन, पानी, आश्रय और साथी के लिए होड़ करते हैं। यह अंतर-विशिष्ट (एक ही प्रजाति के भीतर) या अंतर-विशिष्ट (विभिन्न प्रजातियों के बीच) हो सकता है। प्रतिस्पर्धा जनसंख्या की गतिशीलता, प्रजातियों के वितरण और सामुदायिक संरचना को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, पौधे सूर्य के प्रकाश, पानी और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जो उनके विकास पैटर्न और अस्तित्व को प्रभावित करते हैं। जानवरों की आबादी में, साथी के लिए प्रतिस्पर्धा विस्तृत प्रणय व्यवहार और शारीरिक अनुकूलन के विकास को जन्म दे सकती है। यह अंतःक्रिया प्राकृतिक चयन और विकासवादी प्रक्रियाओं में एक प्रेरक शक्ति है।

b. अजैविक अंतःक्रियाएँ:

जलवायु: जलवायु किसी दिए गए क्षेत्र में तापमान, आर्द्रता, हवा और वर्षा के दीर्घकालिक पैटर्न को शामिल करती है। यह जीवों के वितरण और व्यवहार के साथ-साथ पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और कार्य को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, उष्णकटिबंधीय जलवायु में विविध प्रजातियों के साथ हरे-भरे वर्षावन होते हैं, जबकि शुष्क जलवायु में रेगिस्तान होते हैं, जिनमें विशेष वनस्पतियाँ और जीव होते हैं जो चरम स्थितियों के अनुकूल होते हैं। मानवीय गतिविधियों से प्रेरित जलवायु परिवर्तन, मौसम के पैटर्न को बदल रहा है, प्रजातियों के प्रवास, प्रजनन चक्र और आवास उपलब्धता को प्रभावित कर रहा है। जलवायु अंतःक्रियाओं को समझना पारिस्थितिक प्रतिक्रियाओं की भविष्यवाणी करने और संरक्षण रणनीतियों की योजना बनाने में मदद करता है।

भूवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ: भूवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ, जैसे कि कटाव, प्लेट टेक्टोनिक्स और ज्वालामुखी गतिविधि, पृथ्वी की सतह को आकार देती हैं और विविध आवास बनाती हैं। कटाव पहाड़ों को घिसता है और तलछट को स्थानांतरित करता है, जिससे घाटियाँ और डेल्टा बनते हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र के लिए उपजाऊ जमीन प्रदान करते हैं। प्लेट टेक्टोनिक्स पृथ्वी की पपड़ी की गति को संचालित करते हैं, जिससे भूकंप और ज्वालामुखी विस्फोट होते हैं, जो नए भू-आकृतियों का निर्माण कर सकते हैं। गैसों और राख के निकलने के माध्यम से जलवायु को प्रभावित कर सकते हैं। ज्वालामुखीय गतिविधि खनिजों और पोषक तत्वों को जमा करके मिट्टी की

उर्वरता में योगदान देती है। ये प्रक्रियाएँ भौतिक वातावरण को बनाने और बनाए रखने में मौलिक हैं जिसमें जीव रहते हैं और परस्पर क्रिया करते हैं।

जल विज्ञान चक्र: जल विज्ञान चक्र पृथ्वी की सतह पर, ऊपर और नीचे पानी की निरंतर गति का वर्णन करता है। इसमें वाष्पीकरण, संघनन, वर्षा और अपवाह जैसी प्रक्रियाएँ शामिल हैं। यह चक्र जल संसाधनों को वितरित करने, जलवायु को विनियमित करने और जीवन को सहारा देने के लिए आवश्यक है। महासागरों और अन्य जल निकायों से वाष्पीकरण बादलों का निर्माण करता है, जो अंततः वर्षा या बर्फ के रूप में वर्षा छोड़ते हैं। यह पानी नदियों और नालों से बहता है, भूजल को फिर से भरता है और जलीय जीवों के लिए आवास प्रदान करता है। जल विज्ञान चक्र मौसम के पैटर्न और कृषि उत्पादकता को भी प्रभावित करता है, जिससे यह पर्यावरणीय अंतः क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण घटक बन जाता है।

3. पर्यावरण संबंधी मुद्दे

पर्यावरण संबंधी मुद्दे महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं जो हमारे ग्रह के स्वास्थ्य और स्थिरता को प्रभावित करती हैं। वे प्राकृतिक प्रक्रियाओं और मानवीय गतिविधियों दोनों से उत्पन्न होते हैं और पारिस्थितिकी तंत्र, मानव स्वास्थ्य और वैश्विक स्थिरता पर दूरगामी परिणाम डालते हैं। आइए इन मुद्दों पर विस्तार से चर्चा करें:

a. प्रदूषण:

- **वायु प्रदूषण:** वायु प्रदूषण में वायुमंडल में हानिकारक पदार्थों का उत्सर्जन शामिल है, जो वायु की गुणवत्ता को खराब कर सकता है और गंभीर स्वास्थ्य जोखिम पैदा कर सकता है। प्रमुख वायु प्रदूषकों में पार्टिकुलेट मैटर (PM), नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO₂), सल्फर डाइऑक्साइड (SO₂), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO), वाष्पशील कार्बनिक यौगिक (VOCs) और ग्राउंड लेवल ओजोन (O₃) शामिल हैं। वायु प्रदूषण के स्रोतों में औद्योगिक उत्सर्जन, वाहनों का निकास, जीवाश्म ईंधन का जलना और कृषि गतिविधियाँ शामिल हैं।
- **जल प्रदूषण:** जल प्रदूषण तब होता है जब रसायन, अपशिष्ट और प्रदूषक जैसे हानिकारक पदार्थ नदियों, झीलों, महासागरों और भूजल सहित जल निकायों को दूषित करते हैं। आम प्रदूषकों में औद्योगिक निर्वहन, कीटनाशकों और उर्वरकों वाले कृषि अपवाह, सीवेज, प्लास्टिक अपशिष्ट और तेल रिसाव शामिल हैं। जल प्रदूषण जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुंचा सकता है, जैव विविधता को कम कर सकता है और पीने के पानी के स्रोतों को दूषित कर सकता है, जिससे जठरांत्र संबंधी रोग, तंत्रिका संबंधी विकार और प्रजनन संबंधी समस्याएं जैसी स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं।
- **मृदा प्रदूषण:** मृदा प्रदूषण हानिकारक रसायनों, अपशिष्ट और उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग की उपस्थिति के कारण मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट है। स्रोतों में औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि रसायन, खनन गतिविधियाँ और खतरनाक अपशिष्ट का अनुचित निपटान शामिल हैं।

b. जलवायु परिवर्तन:

ग्लोबल वार्मिंग: ग्लोबल वार्मिंग का तात्पर्य वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂), मीथेन (CH₄) और नाइट्रस ऑक्साइड (N₂O) जैसी ग्रीनहाउस गैसों (GHG) के संचय के कारण पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि से है। जीवाश्म ईंधन जलाना, वनों की कटाई और औद्योगिक प्रक्रियाएँ जैसी मानवीय गतिविधियाँ इसके लिए मुख्य योगदानकर्ता हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण ध्रुवीय बर्फ की टोपियाँ पिघल रही हैं, समुद्र का स्तर बढ़ रहा है और मौसम के पैटर्न में बदलाव आ रहा है। इसका असर पारिस्थितिकी तंत्र, कृषि, जल आपूर्ति और मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। ग्लोबल वार्मिंग को कम करने के लिए स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों, संरक्षण प्रयासों और तकनीकी नवाचारों के माध्यम से GHG उत्सर्जन को कम करना आवश्यक है।

चरम मौसम: जलवायु परिवर्तन अधिक लगातार और गंभीर मौसम की घटनाओं से जुड़ा हुआ है, जिसमें

तूफान, सूखा, बाढ़, हीटवेव और भारी वर्षा शामिल है। ये चरम मौसम की घटनाएँ बुनियादी ढाँचे को व्यापक नुकसान पहुंचा सकती हैं, पारिस्थितिकी तंत्र को बाधित कर सकती हैं, आबादी को विस्थापित कर सकती हैं और महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान पहुंचा सकती हैं। उदाहरण के लिए, तूफान तटीय समुदायों को तबाह कर

सकते हैं, जबकि लंबे समय तक सूखे के कारण पानी की कमी और फसलें बर्बाद हो सकती हैं।

c. जैव विविधता का नुकसान:

- **आवास विनाश:** आवास विनाश वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राकृतिक आवासों को बदल दिया जाता है या समाप्त कर दिया जाता है, आमतौर पर वनों की कटाई, शहरीकरण और कृषि जैसी मानवीय गतिविधियों के कारण। इससे पारिस्थितिकी तंत्र का विखंडन और नुकसान होता है, जिससे प्रजातियों के लिए जीवित रहना और प्रजनन करना मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिए, वनों की कटाई से अनगिनत पौधों और जानवरों की प्रजातियों के आवास नष्ट हो जाते हैं, जिससे जैव विविधता का नुकसान होता है और पारिस्थितिक संतुलन में व्यवधान होता है। जैव विविधता के संरक्षण और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को बनाए रखने के लिए आवासों की रक्षा और उन्हें बहाल करना जरूरी है।
- **प्रजाति विलुप्ति:** प्रजाति विलुप्ति तब होती है जब कोई प्रजाति पृथ्वी पर कहीं भी मौजूद नहीं रहती है। विलुप्ति पर्यावरणीय परिवर्तनों, आवास की हानि, अत्यधिक दोहन, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन के कारण हो सकती है। प्रजातियों के विलुप्त होने की वर्तमान दर प्राकृतिक पृष्ठभूमि दर से काफी अधिक है, जिसका मुख्य कारण मानवीय गतिविधियाँ हैं। प्रजातियों के नष्ट होने से जैव विविधता कम हो जाती है और पारिस्थितिकी तंत्र पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ सकता है, जिससे अन्य प्रजातियाँ और पारिस्थितिक प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। संरक्षण प्रयास, जैसे संरक्षित क्षेत्र बनाना और अवैध शिकार से निपटना, आगे विलुप्त होने को रोकने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

d. संसाधन हास:

ओवरफिशिंग: ओवरफिशिंग का मतलब है मछलियों के स्टॉक को इतनी तेजी से काटना कि वे फिर से भर न सकें। इससे मछलियों की आबादी कम हो जाती है, समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र बाधित होता है और मछली पकड़ने पर निर्भर समुदायों की आजीविका को खतरा होता है। ओवरफिशिंग से मत्स्य पालन का पतन हो सकता है और समुद्री जैव विविधता का नुकसान हो सकता है। मछली पकड़ने की स्थायी प्रथाएँ, जैसे कि पकड़ की सीमाएँ और संरक्षित समुद्री क्षेत्र, मछलियों की आबादी को बहाल करने और स्वस्थ समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।

वनों की कटाई: वनों की कटाई में लकड़ी, कृषि, शहरी विकास और अन्य उद्देश्यों के लिए जंगलों को साफ करना शामिल है। इससे जैव विविधता का नुकसान होता है, जल चक्र बाधित होता है और वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ता है, जो जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। वन CO₂ को अवशोषित करने, जलवायु को विनियमित करने और वन्यजीवों के लिए आवास प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वनों की कटाई से निपटने के प्रयासों में पुनर्वनीकरण, वनीकरण और स्थायी वन प्रबंधन प्रथाएँ शामिल हैं।

जीवाश्म ईंधन: कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस जैसे गैर-नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अत्यधिक उपयोग संसाधनों की कमी और पर्यावरण क्षरण में योगदान देता है। जीवाश्म ईंधन को जलाने से CO₂ और अन्य प्रदूषक काफी मात्रा में निकलते हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण होता है। जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम करने और उनके पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए ऊर्जा दक्षता उपायों के साथ-साथ सौर, पवन और जलविद्युत जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों पर स्विच करना आवश्यक है।

4. संधारणीय अभ्यास

पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने और भविष्य की पीढ़ियों के लिए पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य और संतुलन को सुनिश्चित करने के लिए संधारणीय अभ्यास आवश्यक हैं। इन अभ्यासों में संसाधनों का अधिक कुशलता से उपयोग करना, प्राकृतिक आवासों की रक्षा करना और प्रदूषण को कम करना शामिल है। यहाँ कुछ प्रमुख संधारणीय अभ्यासों की विस्तृत चर्चा की गई है:

a. नवीकरणीय ऊर्जा:

- **सौर ऊर्जा:** सौर ऊर्जा फोटोवोल्टिक (PV) सेल या सौर तापीय प्रणालियों का उपयोग करके सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करती है। PV सेल सूर्य के प्रकाश को सीधे बिजली में परिवर्तित करते हैं, जबकि सौर

तापीय प्रणालियाँ तरल पदार्थों को गर्म करने के लिए सूर्य के प्रकाश का उपयोग करती हैं जो टर्बाइनों को चलाने के लिए भाप उत्पन्न करती हैं। सौर ऊर्जा ऊर्जा का एक स्वच्छ, नवीकरणीय स्रोत है जो जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करता है और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करता है। इसका उपयोग छोटे पैमाने के आवासीय प्रतिष्ठानों से लेकर ग्रिड को बिजली की आपूर्ति करने वाले बड़े सौर फार्म तक विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए किया जा सकता है

- **पवन ऊर्जा:** पवन ऊर्जा पवन टर्बाइनों का उपयोग करके बिजली उत्पन्न करती है, जो हवा की गतिज ऊर्जा को यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित करती हैं। यह शक्ति बिजली का उत्पादन करने के लिए एक जनरेटर चलाती है। पवन ऊर्जा एक और स्वच्छ, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है जो ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करने में मदद करता है। इसे तटवर्ती या अपतटीय दोनों जगह लगाया जा सकता है, अपतटीय पवन फार्म आमतौर पर अधिक ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, क्योंकि हवाएँ अधिक तेज और अधिक स्थिर होती हैं।
- **जलविद्युत:** जलविद्युत पानी की गति से ऊर्जा उत्पन्न करता है, आमतौर पर बड़ी नदियों पर बांधों का उपयोग करके पानी का प्रवाह जनरेटर से जुड़े टर्बाइनों को घुमाता है, जिससे बिजली पैदा होती है। जलविद्युत एक विश्वसनीय और कुशल नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत है जो बड़ी मात्रा में बिजली प्रदान कर सकता है। हालाँकि, इसका पर्यावरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव भी हो सकता है, जैसे नदी के पारिस्थितिकी तंत्र को बाधित करना और समुदायों को विस्थापित करना। इसलिए, स्थायी जलविद्युत प्रथाओं का उद्देश्य ऊर्जा उत्पादन को पर्यावरणीय और सामाजिक विचारों के साथ संतुलित करना है।

b. संरक्षण प्रयास:

- **संरक्षित क्षेत्र :** राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभ्यारण्य और समुद्री अभ्यारण्य जैसे संरक्षित क्षेत्रों को पारिस्थितिकी तंत्र और प्रजातियों के संरक्षण के लिए नामित किया गया है। ये क्षेत्र जैव विविधता को संरक्षित करने, लुप्तप्राय प्रजातियों की रक्षा करने और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को बनाए रखने में मदद करते हैं। संरक्षित क्षेत्र अनुसंधान, शिक्षा और पारिस्थितिकी पर्यटन के अवसर भी प्रदान करते हैं, पर्यावरण जागरूकता को बढ़ावा देते हैं और स्थानीय समुदायों के लिए आर्थिक लाभ उत्पन्न करते हैं।
- **संधारणीय कृषि:** संधारणीय कृषि में ऐसी कृषि पद्धतियाँ शामिल हैं जो पर्यावरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पशु कल्याण की रक्षा करती हैं। मुख्य पद्धतियों में फसल चक्रण, जैविक खेती, कृषि वानिकी, संरक्षण जुताई और एकीकृत कीट प्रबंधन शामिल हैं। ये विधियाँ मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाती हैं, रासायनिक इनपुट की आवश्यकता को कम करती हैं, पानी का संरक्षण करती हैं और जैव विविधता को बढ़ावा देती हैं। संधारणीय कृषि स्थानीय खाद्य प्रणालियों का भी समर्थन करती है और खाद्य उत्पादन के कार्बन पदचिह्न को कम करती है। पुनर्चक्रण और अपशिष्ट में कमी : पुनर्चक्रण और अपशिष्ट में कमी अपशिष्ट के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। पुनर्चक्रण में नए उत्पाद बनाने के लिए कागज, प्लास्टिक, कांच और धातु जैसी सामग्रियों को संसाधित करना शामिल है, जिससे कुंवारी संसाधनों की आवश्यकता कम हो जाती है। जैविक कचरे से खाद बनाने से खाद्य स्क्रैप और यार्ड अपशिष्ट मूल्यवान मिट्टी संशोधन में बदल जाते हैं। अपशिष्ट में कमी की रणनीतियों में खपत को कम करना, उत्पादों का पुनः उपयोग करना और लंबे जीवन चक्र के लिए उत्पादों को डिजाइन करना शामिल है। ये प्रथाएँ संसाधनों को संरक्षित करने, प्रदूषण को कम करने और लैंडफिल के उपयोग को कम करने में मदद करती हैं।

c. हरित रसायन:

वैकल्पिक दृष्टिकोण: हरित रसायन उन रासायनिक प्रक्रियाओं और उत्पादों को डिजाइन करने पर ध्यान केंद्रित करता है जो खतरनाक पदार्थों के उपयोग और उत्पादन को कम या खत्म कर देते हैं। वैकल्पिक दृष्टिकोणों में कम विषैले सॉल्वेंट्स का उपयोग करना, सुरक्षित रसायनों को डिजाइन करना, ऊर्जा दक्षता बढ़ाना और नवीकरणीय फीडस्टॉक्स का उपयोग करना शामिल है। हरित रसायन का उद्देश्य पर्यावरणीय प्रभाव को कम करना, सुरक्षा को बढ़ाना और कच्चे माल के निष्कर्षण से लेकर निपटान तक पूरे रासायनिक जीवनचक्र में स्थिरता में सुधार करना है।

बायोकैटेलिस्ट: बायोकैटेलिस्ट एंजाइम और सूक्ष्मजीव हैं जिनका उपयोग पर्यावरण के अनुकूल तरीके से रासायनिक प्रतिक्रियाओं को तेज करने के लिए किया जाता है। वे पारंपरिक रासायनिक उत्प्रेरकों की तुलना में कई लाभ प्रदान करते हैं, जिसमें उच्च विशिष्टता, हल्की प्रतिक्रिया की स्थिति और कम अपशिष्ट उत्पादन शामिल हैं। बायोकैटेलिस्ट का व्यापक रूप से फार्मास्यूटिकल्स, खाद्य और पेय पदार्थ, जैव ईंधन और कृषि जैसे उद्योगों में उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, एंजाइम का उपयोग एंटीबायोटिक्स, बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक और बायोएथेनॉल के उत्पादन में किया जाता है। बायोकैटेलिस्ट का उपयोग अधिक टिकाऊ औद्योगिक प्रक्रियाओं और उत्पादों में योगदान देता है।

5. पर्यावरण नीतियाँ और शासन

पर्यावरण नीतियाँ और शासन पर्यावरण चुनौतियों का समाधान करने और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये ढाँचे अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तरों पर संचालित होते हैं, जिनमें पर्यावरण की रक्षा, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सार्वजनिक स्वास्थ्य सुनिश्चित करने के लिए समझौते, विनियम और पहल शामिल हैं। इन पहलुओं पर यहाँ विस्तृत चर्चा की गई है:

ए. अंतर्राष्ट्रीय समझौते :

- **पेरिस समझौता :** पेरिस समझौता जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) के तहत 2015 में अपनाया गया एक ऐतिहासिक वैश्विक समझौता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य जलवायु परिवर्तन से निपटना और वैश्विक तापमान को पूर्व-औद्योगिक स्तरों से 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे सीमित करना है, जबकि तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के प्रयासों को आगे बढ़ाना है।
- **जैविक विविधता पर कन्वेंशन (CBD) :** जैविक विविधता पर कन्वेंशन 1992 में रियो डी जेनेरियो में पृथ्वी शिखर सम्मेलन में अपनाई गई एक अंतरराष्ट्रीय संधि है। इसके उद्देश्य जैविक विविधता का संरक्षण, इसके घटकों का सतत उपयोग और आनुवंशिक संसाधनों से उत्पन्न होने वाले लाभों का उचित और न्यायसंगत बंटवारा हैं।

बी. राष्ट्रीय विनियम :

स्वच्छ वायु अधिनियम: स्वच्छ वायु अधिनियम संयुक्त राज्य अमेरिका में एक व्यापक संघीय कानून है जो स्थिर और मोबाइल स्रोतों से वायु उत्सर्जन को नियंत्रित करता है। शुरू में 1963 में अधिनियमित और 1970, 1977 और 1990 में महत्वपूर्ण रूप से संशोधित, इस अधिनियम का उद्देश्य वायु प्रदूषण को नियंत्रित करके सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा करना है।

सी. जल गुणवत्ता मानक :

जल गुणवत्ता मानक विभिन्न उपयोगों, जैसे कि पीने का जल, मनोरंजन और पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ और सुरक्षित जल बनाए रखने के लिए बनाए गए नियम हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, स्वच्छ जल अधिनियम (CWA) जल निकायों में प्रदूषकों के निर्वहन को विनियमित करने और जल गुणवत्ता मानकों को निर्धारित करने के लिए रूपरेखा स्थापित करता है।

डी. स्थानीय पहल:

- **शहरी हरित स्थान:**

शहरी हरित स्थान, जैसे कि पार्क, उद्यान और ग्रीनवे, सतत शहरी विकास के आवश्यक घटक हैं। वे कई पर्यावरणीय, सामाजिक और स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं

6. शिक्षा और जागरूकता की भूमिका

शिक्षा और जागरूकता ऐसे समाज को बढ़ावा देने में मौलिक हैं जो पर्यावरण संरक्षण और स्थिरता को महत्व देता है और इसमें सक्रिय रूप से भाग लेता है। वे पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और प्रेरणा प्रदान करते हैं।

1.4 जीवमंडल

जीवमंडल सभी पारिस्थितिकी तंत्रों का वैश्विक योग है, जो पृथ्वी पर जीवन के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें पौधे, जानवर, बैक्टीरिया, कवक और मनुष्य सहित सभी जीवित जीव शामिल हैं, साथ ही आसपास के वातावरण के साथ उनकी अंतः क्रियाएँ भी शामिल हैं। जीवमंडल पेड़ों और महासागर की खाइयों की सबसे गहरी जड़ों से लेकर वायुमंडल की ऊपरी पहुँच तक फैला हुआ है जहाँ जीवन पाया जा सकता है।

जीवमंडल की मुख्य विशेषताएँ:

- **जैविक और अजैविक घटकों का एकीकरण:** जीवमंडल में जैविक (जीवित) और अजैविक (निर्जीव) दोनों घटक शामिल हैं। जैविक घटकों में सभी जीव शामिल हैं, जबकि अजैविक घटकों में हवा, पानी, मिट्टी और खनिज जैसे तत्व शामिल हैं। इन घटकों के बीच की अंतः क्रियाएँ जीवन को बनाए रखती हैं और विभिन्न पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को सुविधाजनक बनाती हैं।
- **पारिस्थितिकी तंत्र:** जीवमंडल कई पारिस्थितिक तंत्रों से बना है, जो अपने भौतिक पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करने वाले जीवित जीवों के समुदाय हैं। पारिस्थितिकी तंत्र के उदाहरणों में जंगल, रेगिस्तान, घास के मैदान, महासागर और मीठे पानी की प्रणालियाँ शामिल हैं। प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र की अपनी अनूठी संरचना और कार्य होता है, जो जीवमंडल के समग्र संतुलन में योगदान देता है।

- **ऊर्जा प्रवाह और पोषक चक्रण:** जीवमंडल की विशेषता ऊर्जा के प्रवाह और पोषक तत्वों के चक्रण से होती है। सूर्य से मिलने वाली ऊर्जा पौधों में प्रकाश संश्लेषण को प्रेरित करती है, जो खाद्य जाल का आधार बनती है। कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्व जीवमंडल में चक्रित होते हैं, जीवन प्रक्रियाओं का समर्थन करते हैं और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखते हैं।



- **जैव विविधता:** जीवमंडल अविश्वसनीय रूप से विविधतापूर्ण है, जिसमें विभिन्न रूपों, कार्यों और व्यवहारों वाली लाखों प्रजातियाँ हैं। पारिस्थितिकी तंत्रों के लचीलेपन और स्थिरता के लिए जैव विविधता आवश्यक है, जिससे उन्हें परिवर्तनों और गड़बड़ियों के अनुकूल होने में मदद मिलती है।
- **जीवन समर्थन प्रणाली:** जीवमंडल वायु शोधन, जल निस्पंदन, मिट्टी निर्माण और जलवायु विनियमन सहित आवश्यक जीवन समर्थन प्रणाली प्रदान करता है। ये पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ मनुष्यों सहित सभी जीवन रूपों के अस्तित्व और कल्याण के लिए महत्वपूर्ण हैं।
- **मानव प्रभाव:** मानव गतिविधियाँ जीवमंडल को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं। वनों की कटाई, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और आवास विनाश पारिस्थितिकी तंत्र को बदल देते हैं और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को बाधित करते हैं। जैवमंडल की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए सतत पद्धतियाँ एवं संरक्षण प्रयास आवश्यक हैं।

1.5 पारिस्थितिकी तंत्र

पारिस्थितिकी तंत्र जीवित जीवों (पौधे, जानवर, सूक्ष्मजीव) और उनके भौतिक पर्यावरण (वायु, जल, मिट्टी) के बीच परस्पर क्रियाओं का एक जटिल जाल है, जो एक सुसंगत इकाई के रूप में कार्य करता है। ये परस्पर क्रियाएँ एक गतिशील प्रणाली बनाती हैं जहाँ प्रत्येक घटक, चाहे जैविक हो या अजैविक, पारिस्थितिक

संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार, पारिस्थितिकी तंत्र मानव अस्तित्व के लिए मौलिक हैं, जो भोजन, स्वच्छ जल, रोग विनियमन और जलवायु स्थिरता जैसी आवश्यक सेवाएँ प्रदान करते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र द्वारा दी जाने वाली सेवाओं को प्रावधान (जैसे, भोजन, पानी), विनियमन (जैसे, जलवायु विनियमन, जल शोधन), समर्थन (जैसे, पोषक चक्रण, मिट्टी निर्माण) और सांस्कृतिक सेवाओं (जैसे, मनोरंजन, आध्यात्मिक लाभ) में वर्गीकृत किया गया है।

पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना:

पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना जैविक और अजैविक दोनों घटकों के संगठन द्वारा चिह्नित होती है। इसमें हमारे पर्यावरण में ऊर्जा का वितरण शामिल है। इसमें उस विशेष वातावरण में प्रचलित जलवायु परिस्थितियाँ भी शामिल हैं। पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना को दो मुख्य घटकों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात्

1. जैविक घटक
2. अजैविक घटक

पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक और अजैविक घटक आपस में जुड़े होते हैं। यह एक खुली प्रणाली है जहाँ ऊर्जा और घटक सीमाओं के पार प्रवाहित हो सकते हैं।

1. जैविक घटक:

जैविक घटक किसी पारिस्थितिकी तंत्र में सभी जीवित घटकों को संदर्भित करते हैं। पोषण के आधार पर, जैविक घटकों को स्वपोषी, विषमपोषी और मृतपोषी (या अपघटक) में वर्गीकृत किया जा सकता है।

उत्पादकों में पौधे जैसे सभी स्वपोषी शामिल हैं। उन्हें स्वपोषी कहा जाता है क्योंकि वे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से भोजन का उत्पादन कर सकते हैं। नतीजतन, खाद्य श्रृंखला में उच्चतर सभी अन्य जीव भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर करते हैं।

उपभोक्ता या विषमपोषी वे जीव हैं जो भोजन के लिए अन्य जीवों पर निर्भर करते हैं। उपभोक्ताओं को आगे प्राथमिक उपभोक्ता, द्वितीयक उपभोक्ता और तृतीयक उपभोक्ता में वर्गीकृत किया जाता है।

1. **प्राथमिक उपभोक्ता** हमेशा शाकाहारी होते हैं क्योंकि वे भोजन के लिए उत्पादकों पर निर्भर होते हैं।
2. **द्वितीयक उपभोक्ता** ऊर्जा के लिए प्राथमिक उपभोक्ताओं पर निर्भर होते हैं। वे या तो मांसाहारी या सर्वाहारी हो सकते हैं।
3. **तृतीयक उपभोक्ता** वे जीव हैं जो भोजन के लिए द्वितीयक उपभोक्ताओं पर निर्भर होते हैं। तृतीयक उपभोक्ता मांसाहारी या सर्वाहारी भी हो सकते हैं।

अपघटक: कुछ खाद्य श्रृंखलाओं में चतुर्थक उपभोक्ता मौजूद होते हैं। ये जीव ऊर्जा के लिए तृतीयक उपभोक्ताओं का शिकार करते हैं। इसके अलावा, वे आम तौर पर खाद्य श्रृंखला के शीर्ष पर होते हैं क्योंकि उनके पास कोई प्राकृतिक शिकारी नहीं होता है। अपघटकों में कवक और बैक्टीरिया जैसे सैप्रोफाइट्स शामिल हैं। वे सीधे मृत और सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थों पर पनपते हैं। अपघटक पारिस्थितिकी तंत्र के लिए आवश्यक हैं क्योंकि वे पौधों द्वारा पुनः उपयोग किए जाने वाले पोषक तत्वों को पुनर्चक्रित करने में मदद करते हैं।

2. अजैविक घटक

अजैविक घटक किसी पारिस्थितिकी तंत्र के निर्जीव घटक होते हैं। इसमें हवा, पानी, मिट्टी, खनिज, सूरज की रोशनी, तापमान, पोषक तत्व, हवा, ऊँचाई, मैलापन आदि शामिल हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र के कार्य

पारिस्थितिकी तंत्र के कार्य इस प्रकार हैं:

- यह आवश्यक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है, जीवन प्रणालियों का समर्थन करता है और

स्थिरता प्रदान करता है।

- यह जैविक और अजैविक घटकों के बीच पोषक तत्वों के चक्रण के लिए भी जिम्मेदार है।
- यह पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न ट्रॉफिक स्तरों के बीच संतुलन बनाए रखता है।
- यह जीवमंडल के माध्यम से खनिजों का चक्रण करता है।
- अजैविक घटक कार्बनिक घटकों के संश्लेषण में मदद करते हैं जिसमें ऊर्जा का आदान-प्रदान शामिल होता है।

अतः एक पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यात्मक इकाइयाँ या कार्यात्मक घटक जो एक पारिस्थितिकी तंत्र में एक साथ काम करते हैं, वे

- **उत्पादकता** यह बायोमास उत्पादन की दर को संदर्भित करता है।
- **ऊर्जा प्रवाह**— यह अनुक्रमिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ऊर्जा एक ट्रॉफिक स्तर से दूसरे ट्रॉफिक स्तर तक प्रवाहित होती है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक और फिर अपघटकों तक और अंत में पर्यावरण में वापस प्रवाहित होती है।
- **अपघटन** —यह मृत कार्बनिक पदार्थों के विघटन की प्रक्रिया है। ऊपरी मिट्टी अपघटन के लिए प्रमुख स्थल है।
- **पोषक चक्रण** — एक पारिस्थितिकी तंत्र में पोषक तत्वों का उपभोग किया जाता है और विभिन्न जीवों द्वारा उपयोग के लिए विभिन्न रूपों में उन्हें पुनः चक्रित किया जाता है।

पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार:

पारिस्थितिकी तंत्र रेगिस्तान में नखलिस्तान जितना छोटा हो सकता है, या हजारों मील तक फैले महासागर जितना बड़ा हो सकता है। पारिस्थितिकी तंत्र दो प्रकार के होते हैं:

- स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र
- जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

1. स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र

स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र विशेष रूप से भूमि-आधारित पारिस्थितिकी तंत्र हैं। विभिन्न भूवैज्ञानिक क्षेत्रों में वितरित स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न प्रकार हैं। वे इस प्रकार हैं:

- वन पारिस्थितिकी तंत्र
- घास के मैदान पारिस्थितिकी तंत्र
- टुंड्रा पारिस्थितिकी तंत्र
- रेगिस्तान पारिस्थितिकी तंत्र

वन पारिस्थितिकी तंत्र: वन पारिस्थितिकी तंत्र में कई पौधे, विशेष रूप से पेड़, जानवर और सूक्ष्मजीव शामिल होते हैं जो पर्यावरण के अजैविक कारकों के साथ समन्वय में रहते हैं। वन पृथ्वी के तापमान को बनाए रखने में मदद करते हैं और प्रमुख कार्बन सिंक हैं।

घास के मैदान का पारिस्थितिकी तंत्र: घास के मैदान के पारिस्थितिकी तंत्र में, वनस्पति में घास और जड़ी-बूटियाँ प्रमुख होती हैं। समशीतोष्ण घास के मैदान और उष्णकटिबंधीय या सवाना घास के मैदान घास के मैदान के पारिस्थितिकी तंत्र के उदाहरण हैं।

टुंड्रा पारिस्थितिकी तंत्र: टुंड्रा पारिस्थितिकी तंत्र पेड़ों से रहित होते हैं और ठंडे मौसम में या जहाँ वर्षा कम होती है, वहाँ पाए जाते हैं। ये साल के अधिकांश समय बर्फ से ढके रहते हैं। टुंड्रा प्रकार का पारिस्थितिकी तंत्र आर्कटिक या पहाड़ की चोटियों में पाया जाता है।

रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र: रेगिस्तान पूरी दुनिया में पाए जाते हैं। ये कम वर्षा और दुर्लभ वनस्पति वाले क्षेत्र हैं। दिन गर्म होते हैं, और रातें ठंडी होती हैं।

2. जलीय पारिस्थितिकी तंत्र:

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र जल निकाय में मौजूद पारिस्थितिकी तंत्र हैं। इन्हें आगे दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात्

- मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र
- समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र

मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र: मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र एक जलीय पारिस्थितिकी तंत्र है जिसमें झीलें, तालाब, नदियाँ और आर्द्रभूमि शामिल हैं। समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के विपरीत इनमें नमक की मात्रा नहीं होती है।

समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र: समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में समुद्र और महासागर शामिल हैं। मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्र की तुलना में इनमें नमक की मात्रा अधिक होती है और जैव विविधता अधिक होती है।

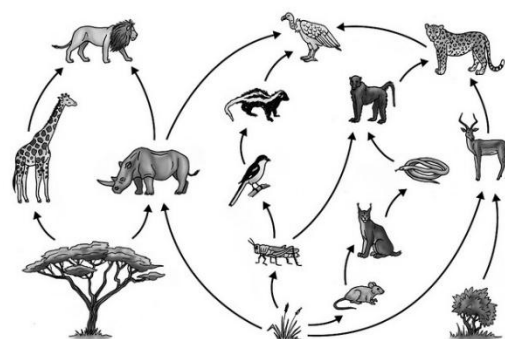
महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय अवधारणाएँ

1. खाद्य श्रृंखला

सूर्य पृथ्वी पर ऊर्जा का अंतिम स्रोत है। यह सभी पौधों के जीवन के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है। पौधे इस ऊर्जा का उपयोग प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए करते हैं, जिसका उपयोग उनके भोजन को संश्लेषित करने के लिए किया जाता है।

इस जैविक प्रक्रिया के दौरान, प्रकाश ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है और क्रमिक ट्रॉफिक स्तरों के माध्यम से पारित किया जाता है। एक उत्पादक से उपभोक्ता और अंततः एक शीर्ष शिकारी या एक अपरदमक्षी तक ऊर्जा के प्रवाह को खाद्य श्रृंखला कहा जाता है।

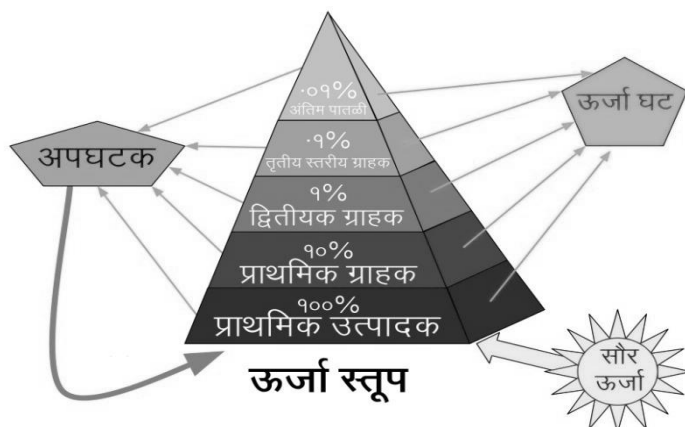
मृत और सड़ने वाले पदार्थ, कार्बनिक मलबे के साथ, मैला ढोने वालों द्वारा अपने घटकों में टूट जाते हैं। फिर रिड्यूसर इन घटकों को अवशोषित करते हैं। ऊर्जा प्राप्त करने के बाद, रिड्यूसर अणुओं को पर्यावरण में मुक्त करते हैं, जिनका उपयोग उत्पादकों द्वारा फिर से किया जा सकता है।



2. पारिस्थितिक पिरामिड

पारिस्थितिक पिरामिड एक पारिस्थितिकी तंत्र के क्रमिक ट्रॉफिक स्तरों की संख्या, ऊर्जा और बायोमास का ग्राफिकल प्रतिनिधित्व है। चार्ल्स एल्टन 1927 में पारिस्थितिक पिरामिड और इसके सिद्धांतों का वर्णन करने वाले पहले पारिस्थितिकीविद् थे।

उत्पादक स्तर से लेकर उपभोक्ता स्तर तक के जीवों के बायोमास, संख्या और ऊर्जा को पिरामिड के रूप में दर्शाया जाता है इसलिए,



इसे पारिस्थितिक पिरामिड के रूप में जाना जाता है।

पारिस्थितिक पिरामिड के आधार में उत्पादक शामिल हैं, उसके बाद प्राथमिक और द्वितीयक उपभोक्ता हैं। तृतीयक उपभोक्ता शीर्ष पर हैं। कुछ खाद्य श्रृंखलाओं में, चतुर्थक उपभोक्ता खाद्य श्रृंखला के शीर्ष पर होते हैं।

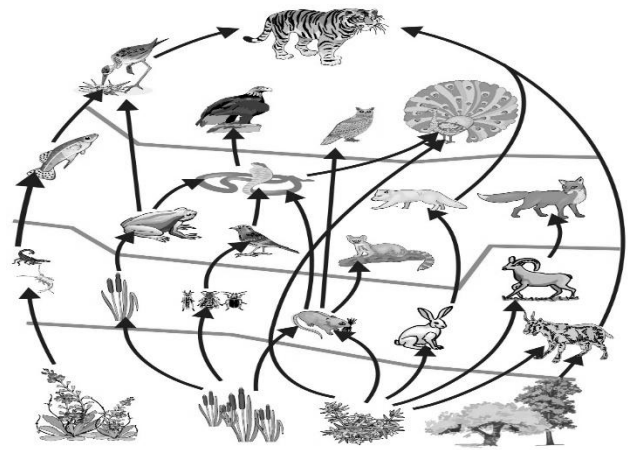
उत्पादकों की संख्या आम तौर पर प्राथमिक उपभोक्ताओं से अधिक होती है और इसी तरह, प्राथमिक उपभोक्ताओं की संख्या द्वितीयक उपभोक्ताओं से अधिक होती है। और अंत में, शीर्ष शिकारी भी अन्य उपभोक्ताओं के समान प्रवृत्ति का पालन करते हैं, जिसमें, उनकी संख्या द्वितीयक उपभोक्ताओं की तुलना में काफी कम होती है।

उदाहरण के लिए, टिड्डे कपास और गेहूं जैसी फसलों पर भोजन करते हैं, जो प्रचुर मात्रा में हैं। इन टिड्डों का शिकार आम चूहे करते हैं, जिनकी संख्या तुलनात्मक रूप से कम होती है। चूहों का शिकार कोबरा जैसे सांप करते हैं। सांपों का शिकार अंततः भूरे रंग के सांप ईगल जैसे शीर्ष शिकारी करते हैं।

3. खाद्य जाल

खाद्य जाल परस्पर जुड़ी हुई खाद्य श्रृंखलाओं का एक नेटवर्क है। इसमें एक ही पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर सभी खाद्य श्रृंखलाएँ शामिल होती हैं। यह समझने में मदद करता है कि पौधे सभी खाद्य श्रृंखलाओं की नींव रखते हैं। समुद्री वातावरण में, फाइटोप्लैंकटन प्राथमिक उत्पादक होता है।

सारांश: निष्कर्ष में, हमारे ग्रह की जैव विविधता और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए स्थलीय और जलीय दोनों पारिस्थितिकी तंत्रों को समझना और उनका संरक्षण करना महत्वपूर्ण है। ये पारिस्थितिकी तंत्र जलवायु विनियमन, कार्बन पृथक्करण, पोषक चक्रण और आवास प्रावधान जैसी आवश्यक सेवाएँ प्रदान करते हैं, जो मानव कल्याण और पर्यावरण के समग्र संतुलन के लिए महत्वपूर्ण हैं। मानवीय गतिविधियाँ, जैसे कि आवास विनाश, प्रदूषण और अत्यधिक दोहन, इन पारिस्थितिकी प्रणालियों के लिए महत्वपूर्ण खतरे पैदा करते हैं। इसलिए, इन पारिस्थितिकी प्रणालियों की रक्षा और उन्हें बहाल करने के लिए संधारणीय प्रथाएँ और मजबूत संरक्षण प्रयास अनिवार्य हैं। शिक्षा को बढ़ावा देकर, जागरूकता बढ़ाकर, शोध करके और प्रौद्योगिकियों का नवाचार करके, हम भविष्य की पीढ़ियों के लिए इन महत्वपूर्ण प्राकृतिक प्रणालियों के संरक्षण और लचीलेपन को सुनिश्चित कर सकते हैं।



चित्र अनेक आहार श्रृंखलाओं से बना आहार जाल

1.6 महत्वपूर्ण शब्द:

जैव विविधता (Biodiversity), प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis), पोषी स्तर (Trophic Levels), पोषक चक्रण (Nutrient Cycling), जलवायु विनियमन (Climate Regulation), कार्बन पृथक्करण (Carbon Sequestration), आवास विनाश (Habitat Destruction), प्रदूषण (Pollution), स्थायी अभ्यास (Sustainable Practices), संरक्षण प्रयास (Conservation Efforts)

1.7. परीक्षापयोगी प्रश्न:

- पारिस्थितिकी तंत्र के किस घटक में पौधे और जानवर शामिल हैं?
 - अजैविक
 - जैविक
 - भूवैज्ञानिक
 - वायुमंडलीय
- अधिकांश पारिस्थितिकी तंत्रों के लिए ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत क्या है?
 - हवा
 - पानी

- C) सूर्य D) मिट्टी
3. किस प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र में प्रवाल भित्तियाँ शामिल हैं?
- A) मीठे पानी B) समुद्री
C) स्थलीय D) रेगिस्तान
4. पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों की भूमिका के लिए क्या शब्द है?
- A) उपभोक्ता B) अपघटक
C) उत्पादक D) सर्वाहारी
5. किस अंतर्राष्ट्रीय समझौते का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन से निपटना है?
- A) क्योटो प्रोटोकॉल B) पेरिस समझौता ,
C) जैविक विविधता पर कन्वेंशन D) मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल
6. पेड़ों और झाड़ियों जैसे लकड़ी के पौधों वाली आर्द्रभूमि को क्या कहा जाता है?
- A) जंगल B) दलदल
C) टुंड्रा D) घास के मैदान
7. कौन सी मानवीय गतिविधि आवास विनाश का एक प्रमुख कारण है?
- A) पुनर्चक्रण B) वनों की कटाई
C) खाद बनाना D) अपघटन
8. वह प्रक्रिया क्या है जिसके द्वारा पौधे सूर्य के प्रकाश को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं?
- A) श्वसन B) अपघटन
C) प्रकाश संश्लेषण D) वाष्पोत्सर्जन
9. किस प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषता कम वर्षा और विरल वनस्पति है?
- A) जंगल B) घास के मैदान
C) रेगिस्तान D) टुंड्रा
10. शहरी हरित स्थानों का एक प्रमुख लाभ क्या है?
- A) वायु प्रदूषण में वृद्धि B) जैव विविधता में कमी
C) मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार D) वनों की कटाई को बढ़ावा देना
- उत्तर कुंजी : 1. (B), 2. (C), 3. (B), 4. (C), 5. (B), 6. (B), 7. (B), 8. (C), 9. (C), 10. (C)

1.8 अभ्यास प्रश्न:

- पारिस्थितिकी तंत्र के प्राथमिक घटक क्या हैं?
- “जीवमंडल” शब्द को परिभाषित करें।
- पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादकों की क्या भूमिका है?
- स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के तीन प्रकारों के नाम बताएँ।
- गर्म और ठंडे रेगिस्तानों के बीच मुख्य अंतर क्या है?
- आर्द्रभूमि पर्यावरणीय स्वास्थ्य में कैसे योगदान देती है?

7. पेरिस समझौते का क्या महत्व है?
8. कौन सी मानवीय गतिविधियाँ आवास विनाश में योगदान देती हैं?
9. प्रकाश संश्लेषण पारिस्थितिकी तंत्र को कैसे लाभ पहुँचाता है?
10. शहरों के लिए शहरी हरित स्थान क्यों महत्वपूर्ण हैं?

1.9 संदर्भित पुस्तक

English Books:

1- "The Diversity of Life" by Edward O- Wilson

- A comprehensive exploration of biodiversity and the importance of conserving the variety of life on Earth-

2- "Silent Spring" by Rachel Carson

- A groundbreaking book that highlights the dangers of pesticide use and its impact on the environment-

3- "A Sand County Almanac" by Aldo Leopold

- A classic work on conservation and ecology, promoting a land ethic for environmental stewardship-

4- "The Sixth Extinction: An Unnatural History" by Elizabeth Kolbert

- An exploration of the current biodiversity crisis and the impact of human activities on species extinction-

5- "This Changes Everything: Capitalism vs- The Climate" by Naomi Klein

- A critical look at how economic systems affect climate change and the urgent need for sustainable solutions-

6- "Earth in the Balance: Ecology and the Human Spirit" by Al Gore

- An in-depth analysis of environmental issues and a call to action for global sustainability-

Hindi Books:

1. "पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण" by बी. के. शर्मा (B. K. Sharm)

- A comprehensive guide on environmental conservation and pollution control in Hindi-

2. "जलवायु परिवर्तन: कारण और परिणाम" by अरुण कुमार सिंह (Arun Kumar Singh)

- A detailed discussion on the causes and consequences of climate change in Hindi-

3. "पृथ्वी के साथी: जैव विविधता और संरक्षण" by वसुंधरा मिश्रा (Vasundhara Mishra)

- A book on biodiversity and conservation efforts in Hindi-

4. "पर्यावरण शिक्षा और जागरूकता" by एम.के. भारद्वाज (M.K. Bhardwaj)

- A book focused on environmental education and awareness in Hindi-

5. "जैव मंडल और पारिस्थितिकी" by डॉ. पी. एन. अग्रवाल (Dr. P. N. Agrawal)

- A comprehensive book on the biosphere and ecology in Hindi.

इकाई-02 : भू-जैव रासायनिक चक्र: कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, जल चक्र, ऑक्सीजन चक्र

इकाई की रूपरेखा—

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 अध्ययन के मुख्य उद्देश्य
- 2.3 भू-जैव रासायनिक चक्र
- 2.4 कार्बन चक्र
- 2.5 नाइट्रोजन चक्र
- 2.6 जल चक्र
- 2.7 ऑक्सीजन चक्र
- 2.8 सारांश
- 2.9 महत्वपूर्ण शब्द
- 2.10 परीक्षोपयोगी प्रश्न
- 2.11 अभ्यास प्रश्न
- 2.12 संदर्भित पुस्तक

2.1 प्रस्तावना

कार्बन, नाइट्रोजन, जल और ऑक्सीजन चक्रों सहित जैव-भू-रासायनिक चक्र, मूलभूत प्रक्रियाएँ हैं जो पृथ्वी के वायुमंडल, जीवमंडल, स्थलमंडल और जलमंडल के माध्यम से आवश्यक तत्वों के प्रवाह और परिवर्तन को नियंत्रित करती हैं। कार्बन चक्र में वायुमंडल, जीवों और पृथ्वी के बीच कार्बन डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान शामिल है, जो जलवायु को विनियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नाइट्रोजन चक्र में नाइट्रोजन फिक्सेशन, नाइट्रीकरण और विनाइट्रीकरण जैसी प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को जीवित जीवों द्वारा उपयोग किए जाने योग्य रूपों में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक हैं। जल चक्र वाष्पीकरण, संघनन, वर्षा और अपवाह के माध्यम से पानी की निरंतर गति का वर्णन करता है, जो जीवन और जलवायु संतुलन को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। ऑक्सीजन चक्र में प्रकाश संश्लेषण और श्वसन के माध्यम से ऑक्सीजन का उत्पादन और खपत शामिल है, साथ ही ओजोन का निर्माण भी होता है, जो जीवन को हानिकारक पराबैंगनी विकिरण से बचाता है। वनों की कटाई, जीवाश्म ईंधन दहन और प्रदूषण जैसी मानवीय गतिविधियाँ इन चक्रों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं, जो पारिस्थितिक संतुलन और पर्यावरणीय स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए संधारणीय प्रथाओं के महत्व को रेखांकित करती हैं।

2.2 अध्ययन के मुख्य उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य कार्बन, नाइट्रोजन, जल और ऑक्सीजन के जैव-रासायनिक चक्रों को व्यापक रूप से समझना, उनकी मौलिक प्रक्रियाओं, अंतः क्रियाओं और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने तथा पृथ्वी पर जीवन का समर्थन करने में उनके महत्व को स्पष्ट करना है। इस अध्ययन का उद्देश्य है:

- प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, अपघटन और दहन सहित कार्बन चक्र के तंत्रों का पता लगाना, तथा जीवाश्म ईंधन के जलने और वनों की कटाई जैसी मानवीय गतिविधियों के वायुमंडलीय CO₂ स्तरों और जलवायु परिवर्तन पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करना।

- नाइट्रोजन चक्र प्रक्रियाओं की जांच करना, जिसमें नाइट्रोजन निर्धारण, नाइट्रीकरण, अवशोषण , अमोनियाकरण और विनाइट्रीकरण शामिल हैं तथा नाइट्रोजन की उपलब्धता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य पर सिंथेटिक उर्वरकों, जीवाश्म ईंधन के दहन और प्रदूषण के प्रभावों का विश्लेषण करना।
- जल चक्र की जांच करना, वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन, वर्षा, घुसपैठ और अपवाह का विवरण देना, तथा जल वितरण, गुणवत्ता और उपलब्धता पर शहरीकरण, वनों की कटाई और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- ऑक्सीजन चक्र के अन्तर्गत समझें, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन और अपघटन के माध्यम से ऑक्सीजन के उत्पादन और खपत तथा ओजोन परत के निर्माण और रखरखाव पर ध्यान केंद्रित करना साथ ही प्रदूषण और वनों की कटाई जैसे मानवीय प्रभावों पर विचार करना। इन चक्रों की परस्पर संबद्धता और प्रतिकूल मानवीय प्रभावों को कम करने, पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने और ग्रह और उसके निवासियों के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए स्थायी प्रथाओं की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

2.3 भू- जैव रासायनिक चक्र:

भू-जैव रासायनिक चक्र या जैव-भू-रासायनिक चक्र में जीवित जीवों और भौतिक पर्यावरण के बीच रासायनिक तत्वों की प्रवाह और परिवर्तन शामिल हैं, जिसमें जीवमंडल, स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल शामिल हैं। आवश्यक चक्रों में कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, सल्फर और जल चक्र शामिल हैं। कार्बन चक्र प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, अपघटन और दहन के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसमें जीवाश्म ईंधन जलाने जैसी मानवीय गतिविधियाँ जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। नाइट्रोजन चक्र में नाइट्रोजन स्थिरीकरण, नाइट्रीकरण, आत्मसात, अमोनियाकरण और विनाइट्रीकरण शामिल हैं, जिसमें सिंथेटिक उर्वरक यूट्रोफिकेशन का कारण बनते हैं। फास्फोरस चक्र में अपक्षय, अवशोषण, अपघटन और अवसादन शामिल हैं, जिसमें फॉस्फेट उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से जल निकाय यूट्रोफिकेशन होता है। सल्फर चक्र में अपक्षय, आत्मसात, अपघटन, ज्वालामुखी गतिविधि और जीवाणु परिवर्तन शामिल हैं, जिसमें जीवाश्म ईंधन के दहन से अम्लीय वर्षा होती है। जल चक्र में वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन, वर्षा, और अपवाह शामिल हैं, जिसमें मानवीय गतिविधियाँ प्राकृतिक प्रवाह को बाधित करती हैं। ये परस्पर चक्र पारिस्थितिकी तंत्र के क्रियाशीलता के लिए महत्वपूर्ण हैं, और एक चक्र पर मानव प्रभाव अक्सर अन्य चक्रों को भी प्रभावित करता है, जिससे पारिस्थितिकी संतुलन और पृथ्वी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए विकास प्रथाओं की आवश्यकता होती है।

2.4 कार्बन चक्र:

कार्बन चक्र एक महत्वपूर्ण जैव-रासायनिक चक्र है जिसमें पृथ्वी के जीवमंडल, स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल के बीच कार्बन की प्रवाह और परिवर्तन शामिल हैं। यह पृथ्वी की जलवायु को विनियमित करने, जीवन का समर्थन करने और पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहाँ कार्बन चक्र का विस्तृत विवरण दिया गया है:

मुख्य घटक और प्रक्रियाएँ:-

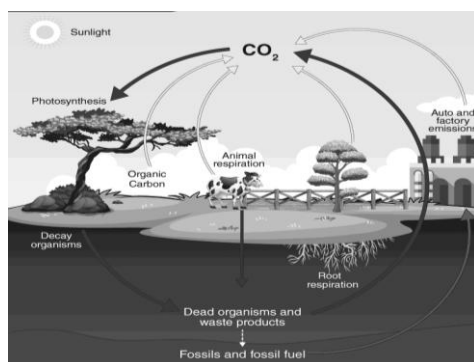
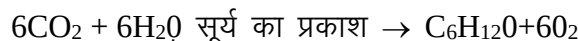


Figure 1

1. **वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂):** कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में कार्बन का प्राथमिक रूप है। यह एक हरितगृह गैस है जो गर्मी को फँसाकर पृथ्वी के गर्म होने में योगदान देती है।
2. **प्रकाश संश्लेषण:** पौधे, शैवाल और साइनोबैक्टीरिया वायुमंडल से CO₂ को अवशोषित करते हैं और प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से इसे कार्बनिक यौगिकों में बदलने के लिए सूर्य के प्रकाश का उपयोग करते हैं। यह प्रक्रिया एक उपोत्पाद के रूप में ऑक्सीजन का उत्पादन करती है।

प्रकाश संश्लेषण के लिए समीकरण है:



उत्पादित कार्बनिक यौगिक पौधों और अप्रत्यक्ष रूप से अन्य जीवों के लिए भोजन के रूप में काम करते हैं।

3. **श्वसन:** पौधे और पशु दोनों कार्बनिक यौगिकों का उपभोग करते हैं और श्वसन के माध्यम से CO₂ को वापस वायुमंडल में छोड़ते हैं।

श्वसन के लिए समीकरण है:



4. **अपघटन:** जब जीव मरते हैं, तो बैक्टीरिया और कवक जैसे अपघटक उनके कार्बनिक पदार्थों को तोड़ते हैं, CO₂ और मीथेन (CH₄) को वायुमंडल में छोड़ते हैं और पोषक तत्वों को मिट्टी में वापस कर देते हैं।

5. **दहन:** जीवाश्म ईंधन (कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस) और बायोमास के जलने से वायुमंडल में CO₂ के रूप में संग्रहित कार्बन निकलता है। यह प्रक्रिया वायुमंडलीय CO₂ के स्तर को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाती है, जो ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन में योगदान देती है।

6. **समुद्री अवशोषण:** महासागर वायुमंडल से CO₂ की एक बड़ी मात्रा को अवशोषित करते हैं। इस CO₂ का उपयोग समुद्री जीवों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के लिए किया जा सकता है या पानी में घुलकर कार्बोनिन एसिड (H₂CO₃), बाइकार्बोनेट (HCO₃⁻), और कार्बोनेट (CO₃²⁻) आयन बना सकता है।

मूंगा और शंख जैसे समुद्री जीव अपने कैल्शियम कार्बोनेट (CaCO₃) के खोल और कंकाल बनाने के लिए कार्बोनेट आयनों का उपयोग करते हैं।

7. **अवसादन और चट्टान निर्माण:** लंबी अवधि में, समुद्री जीवों के अवशेष समुद्र तल पर जमा हो जाते हैं और तलछटी चट्टान बनाते हैं, जैसे चूना पत्थर, जो लाखों वर्षों तक कार्बन संग्रहीत करता है।

भूवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ अंततः ज्वालामुखी गतिविधि या चट्टानों के अपक्षय के माध्यम से इस कार्बन को वायुमंडल में वापस भेज सकती हैं।

8. **कार्बन पृथक्करण:** कार्बन पृथक्करण वायुमंडलीय CO₂ को पौधों, मिट्टी, महासागरों या भूवैज्ञानिक संरचनाओं में पकड़ने और संग्रहीत करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है।

यह प्राकृतिक रूप से वनीकरण और मृदा प्रबंधन प्रथाओं के माध्यम से या कृत्रिम रूप से कार्बन कैप्चर और स्टोरेज (CCS) जैसी तकनीकों के माध्यम से हो सकता है।

कार्बन चक्र पर मानव प्रभाव

1. **जीवाश्म ईंधन दहन:** मानव गतिविधियों, विशेष रूप से ऊर्जा और परिवहन के लिए जीवाश्म ईंधन के जलने से वायुमंडल में CO₂ का स्तर काफी बढ़ गया है। यह वृद्धि ग्रीनहाउस प्रभाव में योगदान करती है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन होता है।
2. **वनों की कटाई:** कृषि, शहरी विकास या कटाई के लिए जंगलों को साफ करने से उन पेड़ों की संख्या कम हो जाती है जो प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से CO₂ को अवशोषित कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप वायुमंडलीय CO₂ का स्तर बढ़ जाता है और बायोमास में कार्बन भंडारण कम हो जाता है।

है ।

3. भूमि उपयोग परिवर्तन: कृषि पद्धतियाँ, शहरीकरण और औद्योगिक गतिविधियाँ मिट्टी की संरचना को बदल देती हैं और कार्बन को अलग करने की इसकी क्षमता को कम कर देती हैं।
4. महासागरीय अम्लीकरण: महासागरों द्वारा CO_2 के बढ़ते अवशोषण से अम्लता का स्तर बढ़ जाता है, जो समुद्री जीवन को नुकसान पहुंचा सकता है, विशेष रूप से उन जीवों को जो अपने खोल और कंकाल के लिए कैल्शियम कार्बोनेट पर निर्भर हैं।

2.5 नाइट्रोजन चक्र:

नाइट्रोजन चक्र एक मौलिक जैव-भू-रासायनिक चक्र है जो वायुमंडल, स्थलमंडल, जलमंडल और जीवमंडल के माध्यम से नाइट्रोजन की प्रवाह और परिवर्तन का वर्णन करता है। नाइट्रोजन सभी जीवित जीवों के लिए एक आवश्यक तत्व है, क्योंकि यह अमीनो एसिड, प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड का एक महत्वपूर्ण घटक है। हालाँकि, अधिकांश जीव वायुमंडलीय नाइट्रोजन (N_2) का सीधे उपयोग नहीं कर सकते हैं। नाइट्रोजन चक्र नाइट्रोजन को विभिन्न रासायनिक रूपों में परिवर्तित करता है जिनका उपयोग जीवित जीवों द्वारा किया जा सकता है। यहाँ नाइट्रोजन चक्र का विस्तृत विवरण दिया गया है:

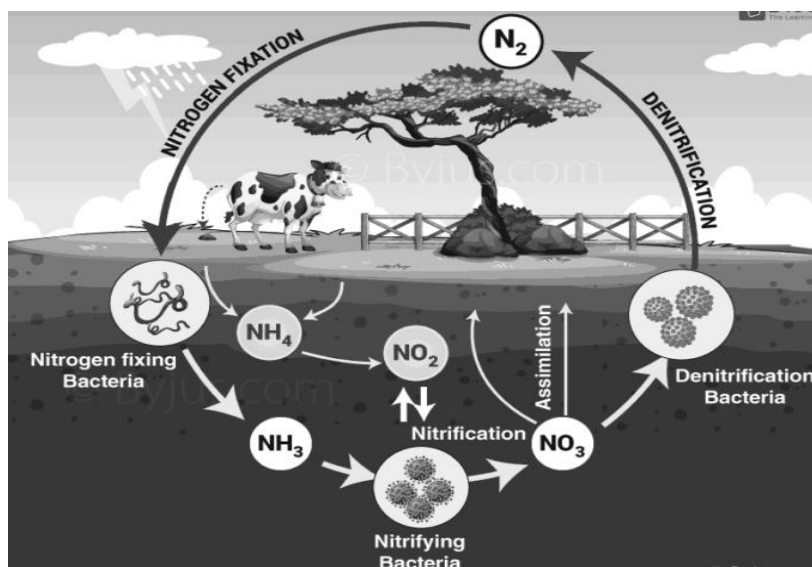


Figure 2

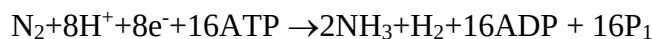
प्रमुख प्रक्रियाएँ और घटक

1. वायुमंडलीय नाइट्रोजन (N_2):

पृथ्वी का वायुमंडल लगभग 78% नाइट्रोजन गैस (N_2) से बना है, जो अपेक्षाकृत निष्क्रिय है और अधिकांश जीवित जीवों द्वारा सीधे उपयोग योग्य नहीं है।

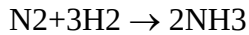
2. नाइट्रोजन स्थिरीकरण :

- a. **जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण :** कुछ बैक्टीरिया और आर्किया, जिन्हें डायजोट्रोफ्स के रूप में जाना जाता है, में एंजाइम नाइट्रोजनेज के माध्यम से वायुमंडलीय N_2 को अमोनिया (NH_3) में बदलने की क्षमता होती है। यह प्रक्रिया पौधों (जैसे, फलियों में राइजोबिया) और मुक्त रहने वाले बैक्टीरिया (जैसे, एजोटोबैक्टर) के साथ सहजीवी संबंधों में होती है।



- b. **औद्योगिक नाइट्रोजन फिक्सेशन:** हैबर-बॉश प्रक्रिया उत्प्रेरक का उपयोग करके उच्च दबाव और तापमान पर वायुमंडलीय N_2 और हाइड्रोजन गैस (H_2) से औद्योगिक रूप से अमोनिया का उत्पादन

करती है। इस अमोनिया का उपयोग उर्वरक बनाने के लिए किया जाता है।



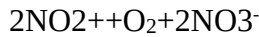
- c. **तड़ित/बिजली फिक्सेशन (Lightning Fixation):** बिजली गिरने से वायुमंडलीय नाइट्रोजन ऑक्सीजन के साथ प्रतिक्रिया कर सकता है, जिससे नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO और NO_2) बनते हैं, जो बारिश के पानी में घुलकर नाइट्रेट (NO_3) बनाते हैं जो मिट्टी में जमा हो जाते हैं।

3. नाइट्रीकरण:

- a. **अमोनिया ऑक्सीकरण:** अमोनिया-ऑक्सीकरण करने वाले बैक्टीरिया (जैसे, नाइट्रोसोमोनस) अमोनिया (NH_3) या अमोनियम (NH_4^+) को नाइट्राइट (NO_2) में परिवर्तित करते हैं।



- b. **नाइट्राइट ऑक्सीकरण :** नाइट्राइट-ऑक्सीकरण करने वाले बैक्टीरिया (जैसे, नाइट्रोबैक्टर) नाइट्राइट (NO_2) को नाइट्रेट (NO_3) में बदल देते हैं, जिसे पौधे आसानी से अवशोषित कर सकते हैं।



4. अवशोषण/आत्मसात (Assimilation) :

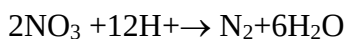
पौधे मिट्टी से नाइट्रेट (NO_3) और अमोनियम (NH_4) को अवशोषित करते हैं और उन्हें अमीनो एसिड और प्रोटीन जैसे कार्बनिक अणुओं में शामिल करते हैं। जानवर पौधों या अन्य जानवरों का सेवन करके नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं।

5. अमोनियाकरण (अपघटन):

जब पौधे और जानवर मर जाते हैं या अपशिष्ट उत्सर्जित करते हैं, तो अपघटक (बैक्टीरिया और कवक) कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों को अमोनिया (NH_3) या अमोनियम (NH_4) में तोड़ देते हैं, जिससे नाइट्रोजन मिट्टी में वापस चला जाता है।

6. विनाइट्रीफिकेशन:

एनारोबिक स्थितियों में, विनाइट्रीफिकेशन बैक्टीरिया (जैसे, स्फ्यूडोमोनास, क्लोस्ट्रीडियम) नाइट्रेट्स (NO_3) को वापस नाइट्रोजन गैस (N_2) या नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) में बदल देते हैं, और इसे वायुमंडल में छोड़ देते हैं।



नाइट्रोजन चक्र पर मानवीय प्रभाव

- **उर्वरक का उपयोग:** कृषि में नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों के व्यापक उपयोग से मिट्टी में जैविक रूप से उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। इससे पोषक तत्वों का रिसाव, जल प्रदूषण और जलीय प्रणालियों का यूट्रोफिकेशन हो सकता है, जिससे हानिकारक शैवाल खिलते हैं और हाइपोक्सिक जोन (मृत क्षेत्र) बनते हैं।
- **जीवाश्म ईंधन दहन:** जीवाश्म ईंधन को जलाने से वायुमंडल में नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_x) निकलता है, जो वायु प्रदूषण, अम्लीय वर्षा और निचले स्तर में ओजोन के निर्माण में योगदान देता है।
- **पशुधन उत्पादन:** गहन पशुधन खेती से बड़ी मात्रा में खाद बनती है, जो वायुमंडल में अमोनिया (NH_3) छोड़ती है। यह वायु और जल प्रदूषण में योगदान दे सकता है।
- **वनों की कटाई और भूमि उपयोग में परिवर्तन:** वनों को साफ करना और कृषि या शहरी विकास के लिए भूमि को बदलना प्राकृतिक नाइट्रोजन चक्रों को बाधित करता है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र की नाइट्रोजन को कुशलतापूर्वक संग्रहीत और चक्रित करने की क्षमता कम हो जाती है।

नाइट्रोजन चक्र का महत्व

नाइट्रोजन चक्र निम्न के लिए महत्वपूर्ण है:

- **मिट्टी की उर्वरता:** यह सुनिश्चित करना कि पौधों की वृद्धि के लिए मिट्टी में पर्याप्त नाइट्रोजन स्तर हो, जो कृषि और खाद्य उत्पादन के लिए आवश्यक है।
- **पारिस्थितिकी तंत्र का स्वास्थ्य:** पौधों की वृद्धि का समर्थन करना और पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बनाए रखना।
- **जलवायु विनियमन:** नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) जैसे नाइट्रोजन यौगिक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस हैं, और जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए उनका प्रबंधन महत्वपूर्ण है।

2.6 जल चक्र

जल चक्र, जिसे हाइड्रोलॉजिकल चक्र के रूप में भी जाना जाता है, पृथ्वी और उसके वायुमंडल के भीतर पानी की निरंतर गति है। इस चक्र में विभिन्न प्रक्रियाएँ शामिल हैं जो पानी को विभिन्न अवस्थाओं (तरल, वाष्प और बर्फ) और स्थानों (महासागर, वायुमंडल, भूमि और जीवित जीव) के माध्यम से ले जाती हैं। यहाँ जल चक्र का विस्तृत विवरण दिया गया है:

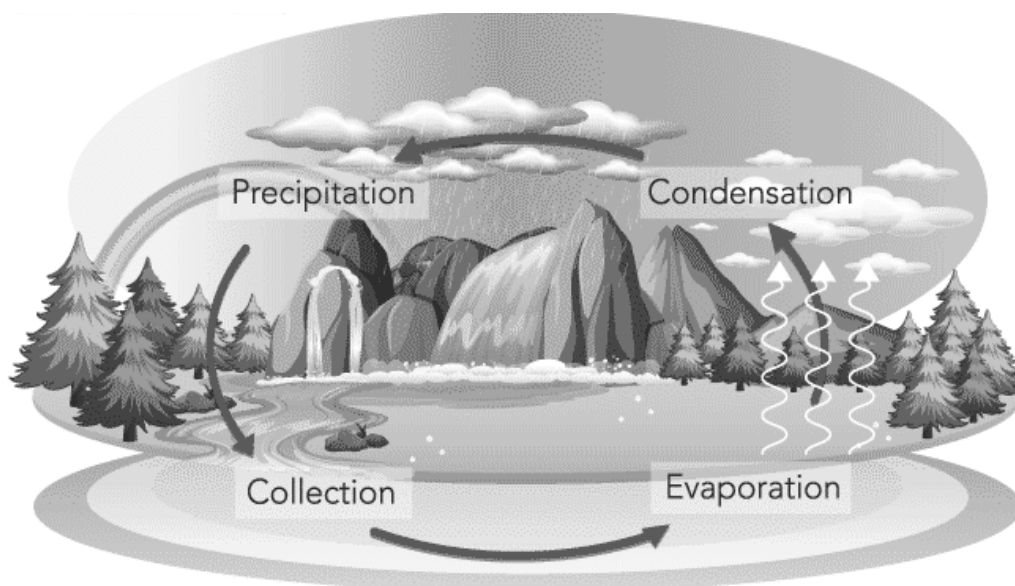


Figure 3

मुख्य प्रक्रियाएँ और घटक

1. **वाष्पीकरण:** वाष्पीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें महासागरों, नदियों, झीलों और अन्य जल निकायों से पानी सूर्य की गर्मी से जल वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। यह प्रक्रिया सतह के जल को वायुमंडल में पहुंचाती है।
 - पौधे भी वाष्पोत्सर्जन नामक प्रक्रिया के माध्यम से वाष्पीकरण में योगदान करते हैं, जहाँ जड़ों द्वारा अवशोषित पानी पत्तियों में छिद्रों के माध्यम से वाष्प के रूप में छोड़ा जाता है।
2. **वाष्पोत्सर्जन:** वाष्पोत्सर्जन पौधों से वायुमंडल में जल वाष्प का निकलना है। यह जल चक्र में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि यह पौधे को ठंडा रखने और मिट्टी से पोषक तत्वों के प्रवाह को बनाए रखने में मदद करता है।

3. **ऊर्ध्वपातन:** ऊर्ध्वपातन बर्फ और बर्फ का तरल अवस्था से गुजरे बिना सीधे जल वाष्प में रूपांतरण है। यह प्रक्रिया मुख्य रूप से ध्रुवीय क्षेत्रों और उच्च ऊँचाई पर होती है।
4. **संघनन:** संघनन वह प्रक्रिया है जिसमें वायुमंडल में जल वाष्प ठंडा होकर वापस तरल पानी की बूंदों में बदल जाता है, जिससे बादल बनते हैं। यह तब होता है जब जल वाष्प युक्त वायु ऊपर उठती है और अपने ओस बिंदु तक ठंडी हो जाती है।
5. **वर्षा :** वर्षा तब होती है जब बादलों में पानी की बूंदें आपस में मिलकर बड़ी बूंदें बनाती हैं जो गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी की सतह पर गिरती हैं। यह तापमान और वायुमंडलीय स्थितियों के आधार पर बारिश, बर्फ, ओले या ओलों का रूप ले सकता है।
वर्षा नदियों, झीलों और महासागरों में पानी की भरपाई करती है और स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्रों के लिए आवश्यक नमी प्रदान करती है।
6. **अन्तःस्पंदन/घुसपैठ (Infiltration) :** वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जमीन की सतह पर पानी मिट्टी में प्रवेश करता है। यह पानी भूजल जलभृतों की भरपाई कर सकता है और पौधों के लिए नमी प्रदान कर सकता है।
 - अन्तःस्पंदन की दर मिट्टी के प्रकार, वनस्पति आवरण और भूमि उपयोग जैसे कारकों पर निर्भर करती है।
7. **रिसाव :** रिसाव मिट्टी और चट्टान की परतों के माध्यम से पानी की नीचे की ओर गति है, जिससे भूजल की पुनः पूर्ति होती है। यह प्रक्रिया जलभृतों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है जो पीने के पानी और सिंचाई की आपूर्ति करते हैं।
8. **अपवाह:** अपवाह तब होता है जब वर्षा से पानी भूमि की सतह पर नदियों, झीलों और महासागरों की ओर बहता है। यह तब होता है जब मिट्टी संतृप्त, अभेद्य होती है, या जब वर्षा मिट्टी की घुसपैठ क्षमता से अधिक होती है।
 - अपवाह पोषक तत्वों, तलछट और प्रदूषकों को जल निकायों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
9. **भंडारण:** पानी विभिन्न जलाशयों में संग्रहीत होता है, जिसमें महासागर, ग्लेशियर, बर्फ की टोपियाँ, झीलें, नदियाँ, मिट्टी और वायुमंडल शामिल हैं। पानी का सबसे बड़ा भंडारण महासागरों में है, जिनमें पृथ्वी का लगभग 97% पानी है।
 - ग्लेशियर और बर्फ की टोपियाँ पृथ्वी के लगभग 2% पानी को संग्रहित करती हैं, मुख्य रूप से ध्रुवीय क्षेत्रों में।
 - जलभृतों में भूजल भंडारण पीने, सिंचाई और औद्योगिक उपयोग के लिए ताजे पानी का एक महत्वपूर्ण स्रोत प्रदान करता है।
10. **ऊर्ध्वपातन और अवतलन:** ऊर्ध्वपातन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ठोस जल (बर्फ या हिम) तरल अवस्था से गुजरे बिना सीधे वाष्प में बदल जाता है।
 - अवतलन (या निक्षेपण) विपरीत प्रक्रिया है, जहाँ जल वाष्प सीधे ठोस बर्फ या हिम में बदल जाता है।

जल चक्र पर मानवीय प्रभाव

- **नगरीकरण :** शहरी विकास अभेद्य सतहों (जैसे, सड़कें, इमारतें) को बढ़ाता है, घुसपैठ को कम करता है और अपवाह को बढ़ाता है। इससे बाढ़ आ सकती है और भूजल पुनर्भरण में कमी आ सकती है।
- **वनों की कटाई:** पेड़ों को हटाने से वाष्पोत्सर्जन कम होता है और अपवाह बढ़ता है, जिससे मिट्टी

का कटाव होता है और स्थानीय जलवायु परिस्थितियाँ बदल जाती हैं।

- कृषि सिंचाई और जल निकासी पानी के प्राकृतिक प्रवाह को बदल देती है, जिससे स्थानीय जल उपलब्धता और गुणवत्ता प्रभावित होती है। अत्यधिक जल निकासी जलभृत और सतही जल निकायों को समाप्त कर सकती है।
- जलवायु परिवर्तन: ग्लोबल वार्मिंग वाष्पीकरण दर को बढ़ाकर, वर्षा पैटर्न को बदलकर और ग्लेशियरों और बर्फ की टोपियों के पिघलने में तेजी लाकर जल चक्र को प्रभावित करती है। इससे लगातार गंभीर सूखे और बाढ़ की बारम्बारता वृद्धि हो सकती है।
- प्रदूषण: औद्योगिक, कृषि और शहरी स्रोतों से प्रदूषकों के साथ जल निकायों का संदूषण जल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है और पारिस्थितिकी तंत्र और मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है।

जल चक्र का महत्व

जल चक्र निम्नलिखित के लिए महत्वपूर्ण है:

- जलवायु विनियमन: यह पृथ्वी के चारों ओर तापमान और आर्द्रता वितरित करके पृथ्वी के तापमान और जलवायु पैटर्न को विनियमित करने में मदद करता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र का समर्थन: यह पौधों और जानवरों के लिए आवश्यक पानी प्रदान करके पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखता है।
- जल आपूर्ति यह पीने, कृषि, उद्योग और स्वच्छता के लिए ताजे पानी की निरंतर उपलब्धता सुनिश्चित करता है।
- पोषक चक्रण: यह पारिस्थितिकी तंत्र के माध्यम से पोषक तत्वों की आवाजाही को सुगम बनाता है, पौधों की वृद्धि और मिट्टी की उर्वरता का समर्थन करता है।

2.7 ऑक्सीजन चक्र

ऑक्सीजन चक्र एक जैव-भू-रासायनिक चक्र है जो वायुमंडल, जीवमंडल और स्थलमंडल के भीतर और बीच ऑक्सीजन की गति का वर्णन करता है। ऑक्सीजन जीवन के लिए आवश्यक है क्योंकि यह कोशिकीय श्वसन और प्रकाश संश्लेषण का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो प्रक्रियाएँ अधिकांश जीवों के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण हैं। यहाँ ऑक्सीजन चक्र का विस्तृत विवरण दिया गया है:

मुख्य प्रक्रियाएँ और घटक

1. प्रकाश संश्लेषण:

- प्रकाश संश्लेषण वायुमंडल में ऑक्सीजन का प्राथमिक स्रोत है। इस प्रक्रिया के दौरान, हरे पौधे, शैवाल और साइनोबैक्टीरिया सूर्य के प्रकाश का उपयोग करके कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) और पानी (H_2O) को ग्लूकोज ($\text{C}_6\text{H}_{12}\text{O}_6$) और ऑक्सीजन (O_2) में परिवर्तित करते हैं।
- प्रकाश संश्लेषण के लिए रासायनिक समीकरण है:
$$6\text{CO}_2 + 6\text{H}_2\text{O} + \text{sunlight} \rightarrow \text{C}_6\text{H}_{12}\text{O}_6 + 6\text{O}_2$$
- यह प्रक्रिया पौधों की कोशिकाओं के क्लोरोप्लास्ट में होती है और वायुमंडल में ऑक्सीजन छोड़ने के लिए जिम्मेदार होती है।

2. श्वसन:

- कोशिकीय श्वसन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव ग्लूकोज और ऑक्सीजन को ऊर्जा, कार्बन डाइऑक्साइड और पानी में परिवर्तित करते हैं।

- कोशिकीय श्वसन के लिए रासायनिक समीकरण है:

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \rightarrow 6CO_2 + 6H_2O + \text{energy}$$
- यह प्रक्रिया वायुमंडल में ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड के चक्रण में योगदान देती है।

3. अपघटन:

- जब पौधे और जानवर मर जाते हैं, तो बैक्टीरिया और कवक जैसे अपघटक उनके कार्बनिक पदार्थों को तोड़ देते हैं, जिससे पर्यावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और पानी निकलता है और इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन की खपत होती है।
- अपघटन पोषक तत्वों को पुनर्चक्रित करने और सूक्ष्मजीवों की क्रिया के माध्यम से वातावरण में ऑक्सीजन वापस लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. दहन:

- लकड़ी, जीवाश्म ईंधन और बायोमास जैसे कार्बनिक पदार्थों के दहन या जलने से ऑक्सीजन की खपत होती है और कार्बन डाइऑक्साइड और जल वाष्प निकलता है।
- हाइड्रोकार्बन (जैसे, मीथेन) के दहन के लिए रासायनिक समीकरण है:

$$CH_4 + 2O_2 \rightarrow CO_2 + 2H_2O + \text{energy}$$
- यह प्रक्रिया वायुमंडल में ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड के चक्रण में योगदान देती है।

5. ओजोन निर्माण और अपघटन:

- समताप मंडल में, ऑक्सीजन अणु (O_2) सूर्य से आने वाली पराबैंगनी (UV) विकिरण द्वारा अलग-अलग ऑक्सीजन परमाणुओं (O) में विभाजित हो जाते हैं। ये ऑक्सीजन परमाणु फिर O_2 के साथ मिलकर ओजोन (O_3) बनाते हैं।
- ओजोन निर्माण और अपघटन के रासायनिक समीकरण हैं:

$$O_2 + \text{UV light} \rightarrow 2O$$

$$O_2 + O \rightarrow O_3$$

$$O_3 + \text{UV light} \rightarrow O_2 + O$$
- ओजोन हानिकारक UV विकिरण को अवशोषित करके पृथ्वी पर जीवन की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

6. चट्टानों का अपक्षय:

- चट्टानों का अपक्षय, विशेष रूप से लोहे से युक्त चट्टानों का अपक्षय, ऑक्सीजन का उपभोग कर सकता है। जब चट्टानें वायुमंडल के संपर्क में आती हैं, तो ऑक्सीजन खनिजों के साथ प्रतिक्रिया करती है, जिससे जंग लगने जैसी ऑक्सीकरण प्रक्रियाएँ होती हैं।
- यह प्रक्रिया वायुमंडल से ऑक्सीजन को अलग करती है और लिथोस्फीयर के भीतर ऑक्सीजन के चक्रण में योगदान देती है।

ऑक्सीजन चक्र पर मानवीय प्रभाव

- वनों की कटाई** वनों को हटाने से प्रकाश संश्लेषण करने के लिए उपलब्ध पेड़ों की संख्या कम हो जाती है, जिससे उत्पादित ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है और वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ जाता है।
- जीवाश्म ईंधन जलाना:** ऊर्जा और परिवहन के लिए जीवाश्म ईंधन के दहन से बड़ी मात्रा में

ऑक्सीजन की खपत होती है और कार्बन डाइऑक्साइड की महत्वपूर्ण मात्रा निकलती है, जिससे ऑक्सीजन और कार्बन चक्रों का संतुलन प्रभावित होता है।

- **प्रदूषण:** वायु प्रदूषण, विशेष रूप से औद्योगिक प्रक्रियाओं और वाहन उत्सर्जन से, वायुमंडलीय ओजोन के स्तर को प्रभावित कर सकता है और ऑक्सीजन चक्र को प्रभावित कर सकता है।
- **महासागर स्वास्थ्य:** महासागर ऑक्सीजन चक्र का एक प्रमुख घटक है, जिसमें समुद्री फाइटोप्लांकटन प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से वैश्विक ऑक्सीजन उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देता है। प्रदूषण, अत्यधिक मछली पकड़ना और जलवायु परिवर्तन समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को बाधित कर सकते हैं और ऑक्सीजन के स्तर को प्रभावित कर सकते हैं।

ऑक्सीजन चक्र का महत्व

ऑक्सीजन चक्र निम्न के लिए आवश्यक है:

- **जीवन का समर्थन:** ऑक्सीजन एरोबिक जीवों में कोशिकीय श्वसन के लिए महत्वपूर्ण है, जो जीवित रहने के लिए आवश्यक ऊर्जा के उत्पादन को सक्षम बनाता है।
- **जलवायु विनियमन:** ऑक्सीजन चक्र कार्बन चक्र से जुड़ा हुआ है, जो वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर को विनियमित करने में भूमिका निभाता है और परिणामस्वरूप, पृथ्वी की जलवायु को नियंत्रित करता है।
- **पराबैंगनी विकिरण से जीवन की रक्षा करना:** ओजोन परत का निर्माण और रखरखाव पृथ्वी पर जीवन को हानिकारक पराबैंगनी विकिरण से बचाने के लिए महत्वपूर्ण है।

2.8 सारांश

कार्बन, नाइट्रोजन, पानी और ऑक्सीजन के जैव-रासायनिक चक्र पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने, जलवायु को विनियमित करने और पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन बनाए रखने के लिए मौलिक हैं। कार्बन चक्र में प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, अपघटन और दहन के माध्यम से कार्बन की गति शामिल है, जिसमें जीवाश्म ईंधन के जलने जैसी मानवीय गतिविधियाँ वायुमंडलीय CO₂ स्तरों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं और जलवायु परिवर्तन में योगदान देती हैं। नाइट्रोजन चक्र में नाइट्रोजन फिक्सेशन, नाइट्रीकरण, आत्मसात, अमोनिफिकेशन और डेनिट्रीकरण जैसी प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जिसमें सिंथेटिक उर्वरक और जीवाश्म ईंधन के दहन से नाइट्रोजन की उपलब्धता में बदलाव होता है और यूट्रोफिकेशन और वायु प्रदूषण जैसे पर्यावरणीय मुद्दे पैदा होते हैं। जल चक्र में वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन, वर्षा, घुसपैठ और अपवाह शामिल हैं, जिसमें शहरीकरण, वनों की कटाई और जलवायु परिवर्तन जैसी मानवीय गतिविधियाँ प्राकृतिक जल प्रवाह को बाधित करती हैं और पानी की उपलब्धता और गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। ऑक्सीजन चक्र में प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, अपघटन और दहन के माध्यम से ऑक्सीजन का उत्पादन और उपभोग शामिल है, जिसमें वनों की कटाई, जीवाश्म ईंधन के जलने और प्रदूषण पर मानवीय प्रभाव वायुमंडलीय ऑक्सीजन के स्तर और ओजोन परत के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने, संसाधनों के सतत उपयोग को सुनिश्चित करने और ग्रह और उसके निवासियों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इन परस्पर जुड़े चक्रों को समझना और उनका प्रबंधन करना महत्वपूर्ण है।

2.9 महत्वपूर्ण शब्द

प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis), श्वसन (Respiration), अपघटन (Decomposition), नाइट्रीकरण (Nitrification), विनाइट्रीकरण (Denitrification), वाष्पीकरण (Evaporation), वाष्पोत्सर्जन (Transpiration), दहन (Combustion), यूट्रोफिकेशन (Eutrophication), जलवायु परिवर्तन (Climate Change).

2.10 परीक्षापयोगी प्रश्न

1. वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का प्राथमिक स्रोत क्या है?

- A) प्रकाश संश्लेषण B) श्वसन
C) दहन D) अपघटन

2. कार्बन चक्र में कौन सी प्रक्रिया कार्बनिक पदार्थ को वापस कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित करती है?

- A) प्रकाश संश्लेषण B) श्वसन
C) नाइट्रोजन स्थिरीकरण D) संघनन

3. वह प्रक्रिया क्या है जिसके द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों द्वारा उपयोग किए जाने योग्य रूप में परिवर्तित किया जाता है?

- A) नाइट्रीकरण B) विनाइट्रीकरण
C) नाइट्रोजन स्थिरीकरण D) अमोनीकरण

4. नाइट्रीकरण की प्रक्रिया के लिए मुख्य रूप से कौन से जीव जिम्मेदार हैं?

- A) कवक B) नाइट्रोजन- फिक्सिंग बैक्टीरिया
C) अमोनिया-ऑक्सीकरण बैक्टीरिया D) डीनाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया

5. जब जल वाष्प ठंडा होकर वापस तरल पानी में बदल जाता है, तो उसे क्या कहते हैं?

- A) वाष्पीकरण B) संघनन
C) उर्ध्वपातन D) वाष्पोत्सर्जन

6. जल चक्र में कौन सी प्रक्रिया भूजल को फिर से भरने के लिए सीधे जिम्मेदार है?

- A) वर्षा B) घुसपैठ
C) अपवाह D) वाष्पीकरण

7. ऑक्सीजन चक्र में कौन सी प्रक्रिया उपोत्पाद के रूप में ऑक्सीजन का उत्पादन करती है?

- A) श्वसन B) दहन
C) प्रकाश संश्लेषण D) अपघटन

8. ऑक्सीजन चक्र में ओजोन परत क्या भूमिका निभाती है?

- A) यह ऑक्सीजन का उत्पादन करती है।
B) यह UV विकिरण को अवशोषित करके जीवित जीवों की रक्षा करता है।
C) यह ऑक्सीजन को नाइट्रोजन में परिवर्तित करता है।
D) यह अतिरिक्त ऑक्सीजन को संग्रहीत करता है।

9. प्राथमिक मानवीय गतिविधि क्या है जो वायुमंडल में CO₂ के बढ़े हुए स्तर में योगदान करती है?

- A) पेड़ लगाना B) जीवाश्म ईंधन जलाना
C) नाइट्रोजन निर्धारण D) जल निस्पंदन

10. यूट्रोफिकेशन मुख्य रूप से जल निकायों में किस तत्व की अधिकता के कारण होता है?

- A) कार्बन B) नाइट्रोजन
C) ऑक्सीजन D) हाइड्रोजन

उत्तर कुंजी : – 1. (C), 2. (B), 3. (C), 4. (C), 5. (B), 6. (B), 7. (C), 8. (B), 9. (B), 10. (B)

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. कार्बन चक्र में प्रकाश संश्लेषण की क्या भूमिका है?
2. मानव गतिविधि नाइट्रोजन चक्र को कैसे प्रभावित करती है?
3. जल चक्र में वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया की व्याख्या करें।
4. ऑक्सीजन चक्र में ऑक्सीजन का उत्पादन और उपभोग किस प्राथमिक तरीके से होता है?
5. नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया और पौधों के लिए इसके महत्व का वर्णन करें।
6. वनों की कटाई का कार्बन और जल चक्रों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
7. जीवाश्म ईंधनों का दहन जलवायु परिवर्तन में किस प्रकार योगदान देता है?
8. नाइट्रोजन चक्र में नाइट्रीकरण का क्या महत्व है?
9. महासागर कार्बन चक्र में किस प्रकार योगदान देते हैं?
10. यूट्रोफिकेशन क्या है, और जलीय प्रणालियों में इसका क्या कारण है?

2.12 संदर्भित पुस्तक

English Books

- 1- **"Biogeochemistry: An Analysis of Global Change" by William H- Schlesinger and Emily S- Bernhardt**
 - Focuses on the interactions of biological, geological, and chemical processes in the environment.
- 2- **"Principles of Terrestrial Ecosystem Ecology" by F- Stuart Chapin III, Pamela A Matson, and Peter M- Vitousek**
 - Provides an integrated view of how terrestrial ecosystems function-
- 3- **"Introduction to Environmental Soil Physics" by Daniel Hillel**
 - Covers the physical principles affecting soil processes and their impacts on the environment-
- 4- **"Environmental Chemistry" by Stanley E- Manahan**
 - Offers a comprehensive overview of environmental chemistry] including biogeochemical cycles-
- 5- **"The Water Cycle: A Scholastic True Book" by Rebecca Olien**
 - A simple yet informative book for understanding the water cycle, suitable for younger readers-
- 6- **"The Carbon Cycle: Crossing the Great Divide" by David Archer**
 - Explores the science behind the carbon cycle and its role in climate change-
- 7- **"Nitrogen in the Environment: Sources, Problems, and Management" edited by R.F. Follett and J.L. Hatfield**
 - Discusses various aspects of the nitrogen cycle and its environmental implications.

Hindi Books s

1. "पर्यावरण रसायन विज्ञान" (Environmental Chemistry) by B.K. Sharma.

- Covers topics related to environmental chemistry, including biogeochemical cycles.
2. "पारिस्थितिकी और पर्यावरण" (Ecology and Environment) by P.D. Sharma.
 - Provides comprehensive coverage of ecological and environmental concepts, including the various cycles.
 3. "जल चक्र: एक समग्र दृष्टिकोण" (The Water Cycle: A Comprehensive Approach) by R.C. Sinha
 - Discusses the water cycle in detail with a focus on its importance and impact.
 4. "मिट्टी का विज्ञान" (Soil Science) by S.K. Gupta
 - Explores soil science and includes discussions on nutrient cycles like the nitrogen and carbon cycles.
 5. "ग्रह की परवाह: पर्यावरणीय जागरूकता और संरक्षण" (Caring for the Planet: Environmental Awareness and Conservation) by R.P. Singh.
 - Addresses various environmental issues, including the role of biogeochemical cycles in ecosystem health.

General Environmental Science Books (Available in Both Languages)

1. "Environmental Science: Earth as a Living Planet" by Daniel B. Botkin and Edward A. Keller
 - Hindi Version: "पर्यावरण विज्ञान: पृथ्वी एक जीवित ग्रह" translated by various authors.
2. "The Earth System" by Lee R. Kump, James F. Kasting, and Robert G. Crane
 - Hindi Version: "पृथ्वी प्रणाली" translated by various authors.
3. "Fundamentals of Ecology" by Eugene P. Odum and Gary W. Barrett
 - Hindi Version: "पारिस्थितिकी के मूल सिद्धांत" translated by various authors.

इकाई-3 : पारिस्थितिक तंत्र: अवधारणा, संघटक, कार्यशीलता एवं स्थिरता

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 प्रस्तावना
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 पारिस्थितिक तंत्र— परिभाषा
- 3.3 पारिस्थितिक तंत्र की संरचना में महत्वपूर्ण घटक
 - 3.3.1 जैविक घटक
 - (a) उत्पादक
 - (b) उपभोक्ता
 - (c) विघटक
 - 3.3.2 अजैविक घटक
 - (a) अकार्बनिक पदार्थ
 - (b) कार्बनिक पदार्थ
 - (c) भौतिक वातावरण या जल
- 3.4 पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा
- 3.5 पारिस्थितिक तंत्र के संघटक
 - 3.5.1 अजैविक संघटक
 - 3.5.2 जैविक संघटक
- 3.6 पारिस्थितिक तंत्र की कार्यशीलता
 - 3.6.1 पारिस्थितिक संचालन में कार्यशीलता के मुख्य तत्व
- 3.7 पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता एवं नियम
 - 3.7.1 परिवर्तन सहित स्थिरता
 - 3.7.2 परिवर्तन रहित स्थिरता
 - 3.7.3 सहनशीलता स्थिरता
 - 3.7.4 प्रत्यास्थ स्थिरता
 - 3.7.5 चक्रीय स्थिरता
- 3.8 सारांश
- 3.9 महत्वपूर्ण परिभाषाएँ
- 3.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)
- 3.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें

3.0 प्रस्तावना

धरातल पर प्रत्येक जैविक या अजैविक घटक अपने आस-पास के तत्वों से जुड़ा होता है। यह जुड़ाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रत्येक तत्व दूसरे तत्व से या तो प्रभावित होता है या प्रभाव डाल रहा होता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में एक जटिल संगठनात्मक जाल निर्मित होता है। यही जाल

पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है। यदि हम इस जाल के आपसी जुड़ाव को समझ लें तो पारिस्थितिक तंत्र को सरलता से समझा जा सकता है। जो वर्तमान पर्यावरणीय दशाओं के लिए अति आवश्यक है।

3.1 उद्देश्य

इस पाठ से आप निम्न की व्याख्या कर सकेंगे—

1. पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा एवं उसका अर्थ।
2. पारिस्थितिक तंत्र की संरचना एवं अवधारणा।
3. पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न घटक एवं उनकी प्रभावशीलता।
4. पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न स्तर।
5. पारिस्थितिक तंत्र के निर्माण संघटकों के बारे में।
6. पारिस्थितिक तंत्र की कार्यशीलता एवं स्थिरता के बारे में।

3.2 पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा

पारिस्थितिकी तंत्र या ecosystem, ecological system शब्द का लघुस्वरूप है। ecosystem शब्द का सबसे पहला प्रयोग सन् 1935 में जर्मनी के विद्वान ए.जी. टान्सेले ने किया था।

टान्सले ने ecosystem को परिभाषित करते हुये कहा कि “पारिस्थितिकी तंत्र भौतिक तंत्रों का एक विशेष प्रकार होता है। इसकी रचना जीवित जीवों तथा अजैविक संघटकों से होती है। यह अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है। यह विवृत तंत्र (open system) होता है।”

एक अन्य स्थान पर टान्सले लिखते हैं— “किसी एकल क्षेत्र में मिलने वाले सभी जैविक तथा अजैविक तत्व मिल कर पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण करते हैं।”

टान्सल ने पारिस्थितिक तंत्र के दो भागों का उल्लेख किया है—

- (i) किसी क्षेत्रीय इकाई में निवास करने वाले जीव धारियों का समूह
- (ii) उस क्षेत्रीय इकाई का भौतिक पर्यावरण एवं निवास क्षेत्र।

इस प्रकार से टान्सले महोदय ने स्पष्ट किया कि— “जैविक एवं अजैविक, बायोम तथा निवास क्षेत्रों की पारस्परिक क्रियाशीलता के कारक को समझना चाहिए जो, एक प्रौढ़ पारिस्थितिकीय तंत्र में, लगभग सन्तुलित दशा में होता है और इन कारकों की पारस्परिक क्रियाओं द्वारा ही समस्त तंत्र कायम रहता है।”

पारिस्थितिक तंत्र के बारे में ओडम कहते हैं कि — जीवित जीव तथा उनके अजीवित पर्यावरण एक दूसरे से अविभाज्य रूप से सम्बन्धित हैं तथा ये एक दूसरे के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। कोई भी इकाई जो किसी निश्चित क्षेत्र के समस्त जीवों के समुदाय को सम्मिलित करती है तथा भौतिक पर्यावरण के साथ इस तरह पारस्परिक क्रिया करती है, कि तंत्र के अन्दर ऊर्जा—प्रवाह द्वारा सुनिश्चित पोषण संरचना जैवविविधता तथा खनिज चक्र का अविर्भाव होता है, पारिस्थितिकी या पारिस्थितिकी तंत्र कहलाता है।”

प्रो० सविन्द्र सिंह ने पारिस्थितिकी को परिभाषित करते हुये कहा कि — “पारिस्थितिकी तंत्र भूतल के निश्चित क्षेत्र को धारण करने वाली एक आधारभूत कार्यशील इकाई होता है। जिसके अन्तर्गत जैविक समुदाय तथा अजैविक (भौतिक) संघटकों के सकल समुच्चय तथा किसी निश्चित समय इकाई के अन्तर्गत उसके आपसी अन्तर्क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।”

सी० सी० पार्क के अनुसार — “एक क्षेत्र के अन्तर्गत मिलने वाले समस्त प्राकृतिक जीवधारियों तथा पदार्थों का योग पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।”

उपरोक्त समस्त पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषाओं को यदि सूक्ष्मता पूर्वक विश्लेषित किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि पारिस्थितिक तंत्र वास्तव में पारिस्थितिकी की क्रियाशील इकाई हैं जिसमें पर्यावरण के

विभिन्न तत्व आपस में संयोजित होकर क्रियाशील रहते हैं। यह सभी तत्व, जैविक, अजैविक किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और यही आपसी सम्बन्ध ही एक जटिल जाल का निर्माण करता है। जिसे हम पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं।

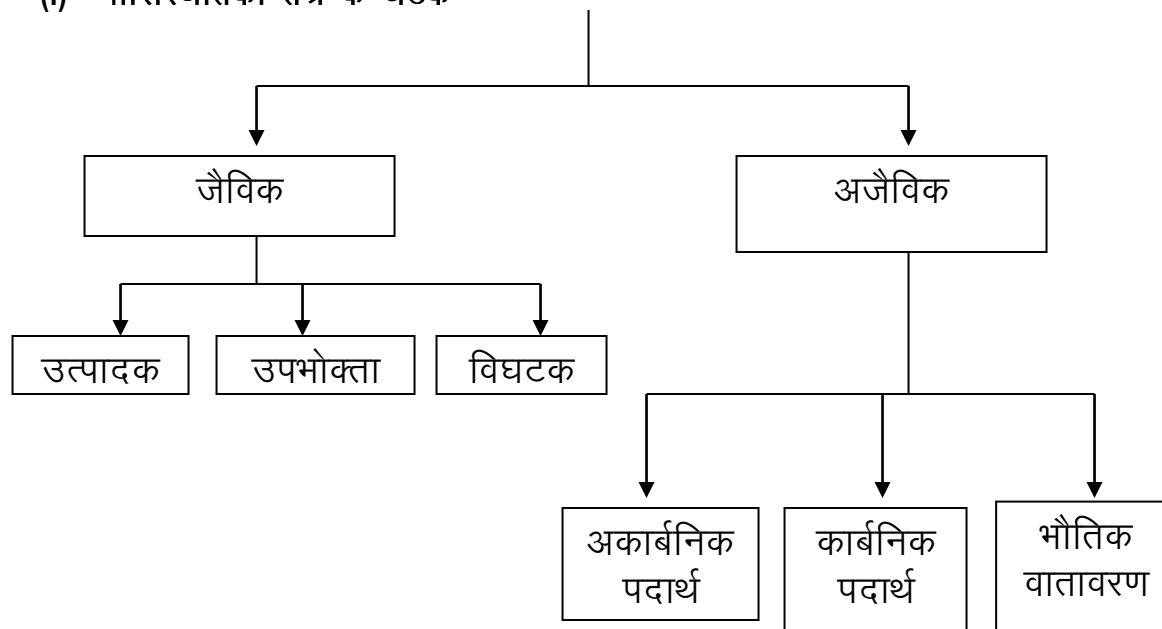
3.3 पारिस्थितिक तंत्र की संरचना में महत्वपूर्ण घटक

पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण दो प्रकार के घटकों से होता है—जैविक घटक व अजैविक घटक

3.3.1 जैविक घटक—

जैविक घटकों में विभिन्न प्रकार तथा आकार की वनस्पति व जीव जन्तु सम्मिलित होते हैं। इसमें कुल वनस्पति में पेड़—पौधे स्वयं अपना भोजन निर्मित करते हैं तथा इस प्रकार के जीव पारिस्थितिक तंत्र में प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं। इनमें पेड़—पौधे, शैवाल व कवक हैं। यह सब सूर्य से अपनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं

(i) पारिस्थितिकी तंत्र के घटक



इसी प्रकार जीवजगत में कुछ जीव—पौधे ऐसे भी हैं जिन्हें स्वयं भोजन न बनाकर दूसरों पर भोजन के लिये निर्भर रहना पड़ता है। इन्हें ही क्रमशः द्वितीयक, तृतीयक एवं सर्वभक्षी नृपभोक्ता कहा जाता है।

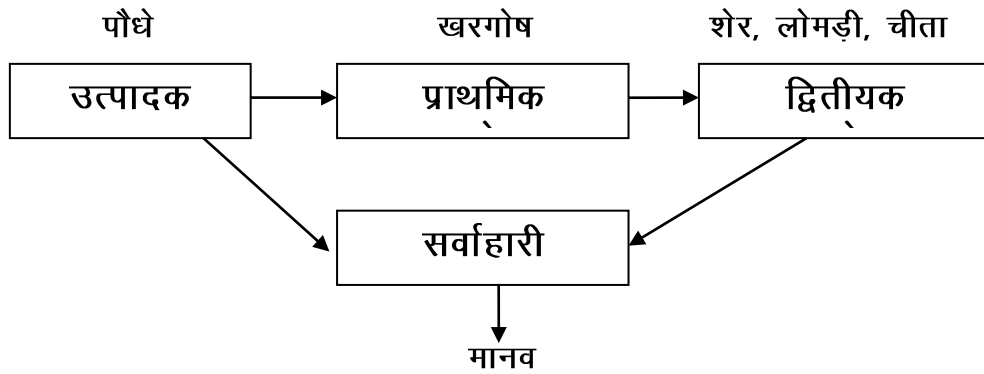
पारिस्थितिकी की सीढ़ी में सबसे निचले पायदान पर सूक्ष्म जीव एवं शैवाल प्रमुख हैं, जो कि क्रमशः जीवों एवं वनस्पतियों को शीघ्र ही विघटित करके उसे पुनः उसके प्रारम्भिक अवस्था में पहुँचा देते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ कार्बन यह स्वयं ही ग्रहण करते हैं।

(a) उत्पादक—

उत्पादक वह जीव या हरे पौधे होते हैं जो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इन्हें स्वापोषी भी कहा जाता है। क्योंकि यह सूर्य प्रकाश एवं भूमि से प्राप्त खनिज व जल की सहायता से अपना भोजन निर्मित करते हैं जो कि प्राथमिक उपभोक्ताओं के लिये भोजन के रूप में उपलब्ध होता है। पौधों में मौजूद क्लोरोफिल नामक हरे वर्णक के द्वारा प्रकाश संश्लेषण संभव होता है। महासागरीय जल में पादप प्लवक प्राथमिक उत्पादक होते हैं।

(b) उपभोक्ता—

उत्पादकों के अतिरिक्त अन्य सभी जीव उपभोक्ता होते हैं। क्योंकि वे अपना भोजन दूसरे जीवों या पौधों से प्राप्त करते हैं। इनमें से केवल पौधों से भोजन प्राप्त करने वाले जीव प्राथमिक उपभोक्ता या शाकाहारी कहलाते हैं। शाकाहारी जीवों को भोजन के रूप में ग्रहण करने वाले जीव द्वितीयक उपभोक्ता कहलाते हैं। तीसरे क्रम में वह जीव होते हैं जो सभी को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, इन्हें सर्वाहारी कहा जाता है।



(c) विघटक—

विघटक या अपघटक वह सूक्ष्म जीव होते हैं। जो सभी मृत जीवों (वनस्पतियों व जन्तुओं) को उनके पार्थिव अवयवों में तोड़ देते हैं। अपघटन की यह प्रक्रिया मृत्यु के बाद शुरू हो जाती है जिसे सामान्य तौर पर सड़न की क्रिया कहते हैं। इसमें सूक्ष्म जीव पदार्थों को अलग-अलग रासायनो तथा खनिजों में तोड़ देते हैं जिससे वह पुनः भोजन चक्र का हिस्सा बन सके।

3.3.2 अजैविक घटक—

अजैविक घटकों को जीवनिर्माणकारी पदार्थ कहा जाता है चूंकि जीव धारियों का शरीर वास्तव में जल, कैल्शियम, लोहा विभिन्न रसायनों से मिलकर बना है और यह सब वास्तविक रूप से अजैविक है। इस प्रकार से इस जगत में कुछ भी जैविक नहीं है बल्कि सब अजैविक ही है।

इन्हें भी निम्नलिखित भागों में बाँटा जाता है—

(a) अकार्बनिक पदार्थ—

अकार्बनिक पदार्थों में— कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस आदि तत्व हैं। यह जलीय या स्थलीय वातावरण में उपस्थित रहते हैं। इसके अतिरिक्त लोहा, मैंगनीज, मैग्नीशियम, जस्ता तथा कोबाल्ट भी सूक्ष्म मात्रा में प्राणि जगत् के लिये आवश्यक होता है।

(b) कार्बनिक पदार्थ—

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, वसा आदि कार्बनिक पदार्थ वातावरण में मुक्त अवस्था में रहते हैं। जबकि क्लोरोफिल, डी0एन0ए0 तथा ए0टी0पी0 कोशिकाओं के अन्दर एवं बाहर दोनों स्थानों में मिलता है। यही पदार्थ जैविक तथा अजैविक पदार्थों को आपस में जोड़ने का कार्य करते हैं।

(c) भौतिक वातावरण या जल—

यह पारिस्थितिकी का ऐसा तत्व है जिससे कि पारिस्थितिक तंत्रों को ऊर्जा प्राप्त होती है। फिर यह ऊर्जा ही विभिन्न भाग में अलग-अलग मार्गों से होकर वितरित होती है। यह ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त तापमान, आर्द्रता आदि भी सम्मिलित हैं। इसी ऊर्जा के सहारे ही पादप जगत् अपना भोजन तैयार करते हैं।

3.4 पारिस्थितिकी की अवधारणा

पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा का मुख्य आधार यह है कि पारिस्थितिकी की क्रियाशील भाग में जैविक जगत् एवं भौतिक जगत् के बीच परस्पर क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं। वास्तव में पारिस्थितिकी की एक इकाई जैव एवं अजैव तत्वों के लिये प्रयोगशाला होती है। इस इकाई में प्राथमिक, द्वितीयक उपभोक्ता कार्बनिक पदार्थों का भक्षण करते हैं एवं इसी के माध्यम से अपने शरीर का निर्माण करते हैं। तत्पश्चात् इन उपभोक्ताओं का शरीर जब नष्ट होता है तो पारिस्थितिकी के अन्तिम क्रम के विघटक इन्हें तोड़ कर तत्वों को वापस उनके वास्तविक स्वरूप तक पहुँचा देते हैं।

उपरोक्त समस्त प्रक्रिया सौर ऊर्जा की सहायता से कार्बनिक तत्वों का उत्पादन तथा अकार्बनिक तत्वों में इनका रूपान्तरण चक्रीय ढंग से पूरा होता है तथा उपभोग के मध्य सन्तुलन बना रहता है। साथ ही जैविक तथा अजैविक तत्वों के मध्य पदार्थ तथा ऊर्जा का आदान-प्रदान क्रमबद्ध रूप में चलता रहता है।

1. पादप जगत् + अकार्बनिक तत्व + सौर ऊर्जा = कार्बनिक पदार्थ।
2. जीवधारियों द्वारा अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थों का भक्षण।
3. जीवधारियों के शरीर में वृद्धि।
4. जीवधारियों की मृत्यु कार्बनिक पदार्थों का विखण्डन।
5. सूक्ष्म जीवों एवं शैवालों, कवक के माध्यम से पुनः कार्बनिक अकार्बनिक पदार्थों का निर्माण।

उपरोक्त पाँच क्रियाएँ ही पारिस्थितिकी की आधारशिला है जो इसे निरन्तर चलायमान रखती है। यदि इनमें से किसी एक में थोड़ा सा भी परिवर्तन होता है तो दूसरा तथ्य का घटना अपने आप परिवर्तन कर लेती है। किन्तु इस समस्त प्रक्रिया में यदि मानवीय हस्ताक्षेप होता है तो इसकी क्षतिपूर्ति करना पारिस्थितिकी तंत्र के लिये बेहद मुश्किल होता है। यही वह स्थिति है जो पर्यावरण प्रदूषण या अवनयन का कारण बनती है।

पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा हेतु निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय है—

- पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना तीन मूलभूत संघटकों द्वारा होती है। (i) ऊर्जा (अजैविक) संघटक (ii) जैविक संघटक (iii) निवास्थ क्षेत्र संघटक
- पारिस्थितिकी तंत्र के क्षेत्र एवं समय के सन्दर्भ में इसे दो आयामों क्षेत्रीय आयाम एवं समय के आयामों में बाँटा जा सकता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक विस्तृत तंत्र है जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का सतत निवेश तथा बहिर्गमन होता है।
- पारिस्थितिक तंत्र में निवास करने वाले जीवधारी एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि सभी जीवधारियों में परस्पर एवं भौतिक वातावरण के मध्य ऊर्जा का आदान-प्रदान चलता रहता है। इसी आदान-प्रदान के कारण ही पारिस्थितिक तंत्र सदैव क्रियाशील रहता है।
- पारिस्थितिक तंत्र में कोई भी पदार्थ/तत्व नष्ट नहीं होता वरन् उसका पूर्व निश्चित प्रक्रमों के माध्यम से विघटन एवं परिवर्तन हो जाता है। जैसे— जल-चक्र, कार्बन चक्र, नाइट्रोजन चक्र, ऑक्सीजन चक्र आदि।
- पारिस्थितिक तंत्र के विकास एवं सम्वर्द्धन के विभिन्न अनुक्रमों में विभाजन होता है। पारिस्थितिक तंत्र के विकास के अनुक्रमों के संक्रमणकाल को **सेरे** कहते हैं। यह पारिस्थितिक तंत्र के क्रमिक विकास को प्रकट करता है। यह विकासक्रम प्राथमिक अनुक्रम से प्रारम्भ होकर अन्तिम पायदान पर पहुँचता है जिसे चरम या चरम जलवायु (Climatic climax) कहते हैं। चरम के बाद ही पारिस्थितिकी तंत्र सर्वाधिक स्थिर होता है।
- किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में चार पोषण स्तर होते हैं। प्रथम स्तर में जीवों की संख्या सर्वाधिक होती है। जबकि उसके पश्चात् धीरे-धीरे पोषण स्तर में जीवों की संख्या कम होती जाती है।

प्रथम स्तर — उत्पादक — पादप जगत् (स्वपोषी)

द्वितीयक स्तर — प्राथमिक उपभोक्ता — शाकाहारी जन्तु

तृतीयक स्तर — द्वितीयक उपभोक्ता — मांसाहारी जन्तु

चतुर्थ पोषण स्तर — सर्वाहारी जन्तु — मांसाहारी तथा जन्तु तथा मानव समुदाय

- पारिस्थितिक तंत्र में निम्न पोषण स्तर से उच्च पोषण स्तर की ओर ऊर्जा का एक अंश ही स्थानान्तरित

होता है तथा निम्न पोषण स्तर के जीवों को अपना भोजन प्राप्त करने हेतु अधिक श्रम करना पड़ता है। इस प्रकार से पोषण स्तर के बढ़ने से जीवों की गतिशीलता भी बढ़ती है।

- पोषण स्तर एक के स्वपोषित पौधों द्वारा सौर ऊर्जा की सहायता से प्रति समय इकाई में ऊर्जा या पदार्थों की उत्पादन वृद्धि दर को पारिस्थितिकी उत्पादक कहा जाता है। पारिस्थितिकी उत्पादकता तथा सौर विकिरण में परस्पर धनात्मक सम्बन्ध होता है। सौर विकिरण की मात्रा कम होने पर पारिस्थितिक उत्पादकता कम होती है। यही कारण है कि भूमध्य रेखा से ध्रुव की ओर पारिस्थितिकी उत्पादक में क्रमशः कमी आती जाती है।

3.5 पारिस्थितिक तंत्र के संघटक

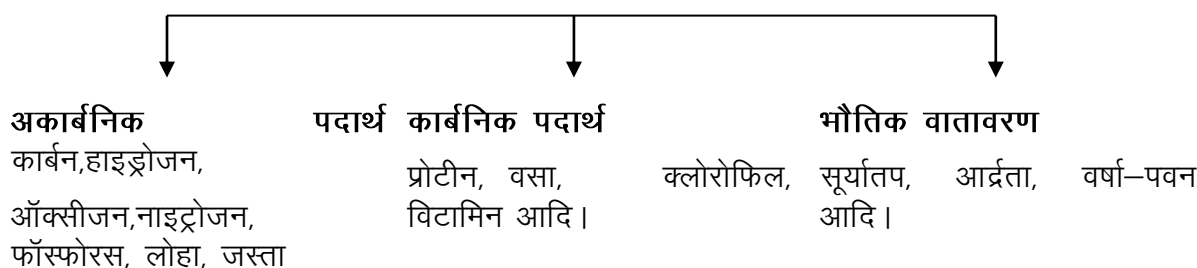
पूर्व के विभिन्न बिन्दुओं पर संक्षिप्त रूप से पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न तथ्यों तथा इनका निर्माण करने वाले तत्वों के बारे में भी जानकारी दी जा चुकी है। यहाँ पर हम पारिस्थितिकीय तंत्र के विभिन्न संघटकों की विस्तृत विवेचना करेंगे – जैसा कि विदित है कि पारिस्थितिक तंत्र की संरचना दो संघटकों जैविक संघटक तथा अजैविक संघटक/भौतिक संघटक से हुई है।

इन दोनों संघटकों में यदि और भी सूक्ष्मता से दृष्टि डाली जाये तो ज्ञात होता है कि भौतिक या अजैविक संघटक में ऊर्जा एक ऐसा तत्व है, जो पारिस्थितिक तंत्र को संचालित रखता है और इस तरह ऊर्जा भौतिक एवं जैविक संघटक के बीच एक पुल का कार्य करता है। अतः पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के महत्व को देखते हुए इसे एक स्वतंत्र संघटक के रूप में स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। ऊर्जा संघटक में सौर्यिक प्रकाश, सौर्यिक विकिरण तथा उसके विभिन्न पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

3.5.1 भौतिक संघटक

पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक संघटकों का विवरण निम्न रेखाचित्र में प्रदर्शित है।

भौतिक या अजैविक संघटक



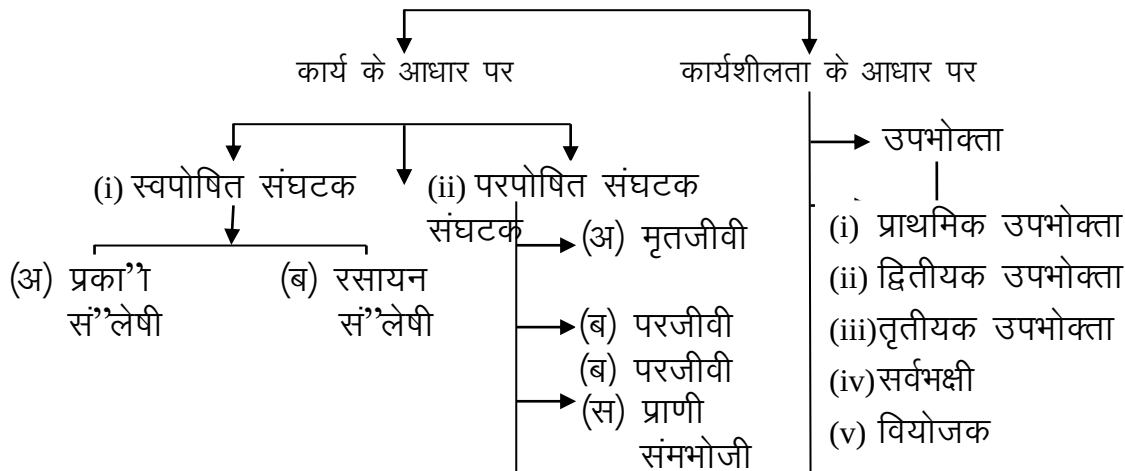
अजैविक या भौतिक संघटकों को जीवन निर्माणकारी तत्व भी कहा जाता है। यह पदार्थ प्रत्येक जीव के लिये सन्तुलित रूप से अतिआवश्यक होते हैं। ज्ञात रहे कि यह सभी तत्व एक निश्चित मात्रा में ही जीवधारियों में उपस्थित रहते हैं। इनको ज्यादा या कम मात्रा जीवधारियों को नष्ट कर देती है।

पारिस्थितिक तंत्र के कार्बनिक पदार्थ अकार्बनिक पदार्थों को जैविक संघटकों से जोड़ने का कार्य करते हैं। जिससे जैविक संघटक पारिस्थितिक तंत्र की दृष्टिगोचर होने वाली इकाई भौतिक वातावरण के प्रभाव के अनुरूप विकास होता है। पारिस्थितिक तंत्र में भौतिक वातावरण भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करता है। जैसे कि एक उष्णकटिबन्धीय वर्षा वन का पारिस्थितिकीय तंत्र महाद्वीपों के पश्चिम तटीय मरुस्थलों से एकदम अलग होता है। इसका कारण स्पष्ट रूप से भौतिक वातावरण ही होता है।

3.5.2 जैविक संघटक

पारिस्थितिक तंत्र के जैविक संघटकों का विवरण निम्न रेखाचित्र में प्रदर्शित है—

जैविक संघटक



जैविक संघटकों में विभिन्न प्रकार तथा आकार की वनस्पतियों व जीवों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें से अधिकांश वनस्पतियाँ अपना भोजन स्वनिर्मित करती हैं, इन्हें ही प्राथमिक उत्पादक या स्वपोषी कहा जाता है। यह सब अपना भोजन सूर्य के प्रकाश से निर्मित करती है जबकि कुछ स्थान ऐसे भी होते हैं जहाँ सूर्य नहीं होता अतः ऐसे स्थानों पर शैवाल एवं प्लावक रसायनिक प्रक्रिया द्वारा अपना भोजन बनाते हैं।

जबकि जैविक संघटकों में कुछ जीवधारियों में यह गुण नहीं होता और यह जन्तुओं की श्रेणी में आते हैं। यह अपना भोजन प्राथमिक उत्पादकों से प्राप्त करते हैं। जबकि कुछ जन्तु प्राथमिक उपभोक्ताओं को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। जैसे— शेर, चीता, साँप, मगरमच्छ, ढेल आदि। इस श्रेणी में अन्तिम पायदान पर कुछ ऐसे भी जन्तु होते हैं जो उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों से ही भोजन प्राप्त करते हैं। इसमें मानव, कुत्ता, बिल्ली, छोटी चिड़िया आदि आते हैं।

जैविक संघटक की तीसरी श्रेणी विघटनकारी जीव या सूक्ष्म उपभोक्ता होते हैं। इन विघटकों में बैक्टीरिया तथा शैवाल प्रमुख हैं। जो उत्पादक एवं उपभोक्ताओं से प्राप्त कार्बनिक पदार्थों को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। इसीलिये इन्हें सूक्ष्म उपभोक्ता या विघटनकारी जीव कहते हैं। वास्तव में पारिस्थितिक तंत्र की अन्तिम सीढ़ी पर यह वियोजक सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा सभी जैविक एवं रासायनिक— अकार्बनिक तत्व पुनः अपनी प्रारम्भिक अवस्था में पहुँचते हैं।

3.6 पारिस्थितिक तंत्र की कार्यशीलता

पारिस्थितिक तंत्र की कार्यशीलता (Functioning) ऊर्जा की प्रवाह दिशा का अनुसरण करता है या यह कहा जा सकता है कि ऊर्जा का प्रवाह ही पारिस्थितिक तंत्र की कार्यशीलता है।

“ऊर्जा का प्रवाह एक दिशी मार्ग का अनुसरण करता है जबकि पदार्थों का गमन तथा संचरण चक्रीय मार्गों से सम्पन्न होता है।”

यह ऊर्जा का प्रवाह भोजन के माध्यम से तय होता है। दूसरे शब्दों में ऊर्जा चक्र वास्तव में भोजन चक्र है। भोजन चक्र जीवधारियों के उस समूह में सम्पन्न होने वाली प्रक्रिया है। जिसके अन्तर्गत विभिन्न जीवधारी भोज्य एवं भोजक के रूप में एक—दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में खाद्य ऊर्जा एक भोजक से दूसरे भोजक को उपलब्ध हो जाती है। भोजन की इस श्रृंखला में कुछ ऊर्जा प्रत्येक चरण में नष्ट हो जाती है। यह ऊर्जा प्राणियों के श्वसन द्वारा तथा उनके द्वारा किये गये कार्यों में नष्ट होती है।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का मुख्य श्रोत सौर्य विकिरण से प्राप्त ऊर्जा है। पौधे सौर्य ऊर्जा से अपना भोजन बनाते हैं। किन्तु पादप समुदाय के द्वारा श्वसन की प्रक्रिया से अधिकांश भाग वायुमण्डल में क्षय हो जाता है। अल्प मात्रा में ही पादप इस ऊर्जा का उपयोग आहार निर्माण में करते हैं। इस प्रकार हरे पौधे सौर्य ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। यही ऊर्जा पोषण स्तर दो के शाकाहारी जन्तुओं को प्राप्त होती है। इनके द्वारा भी ऊर्जा का अधिकांश भाग श्वसन द्वारा वायु मण्डल में पहुँच जाता है। शेष

अल्पमात्रा तृतीय स्तर के पोषण समूह को प्राप्त होती है।

पोषण स्तर चार के जन्तुओं, खासकर मनुष्य पोषण स्तर दो तथा तीन से भी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। सर्वाहारी जन्तु भी कुछ ऊर्जा को श्वसन के माध्यम से निर्मुक्त कर देते हैं। उपर्युक्त प्रक्रियाओं से निर्मुक्त एवं खर्च होने के बाद भी ऊर्जा पौधों एवं जन्तुओं में संचित रहती है यह ऊर्जा पौधों एवं जन्तुओं के नष्ट होने के बाद वियोजकों में स्थानान्तरित हो जाती है। वियोजक भी ऊर्जा का बड़ा भाग श्वसन द्वारा ऊर्जा को वायुमण्डल में मुक्त कर देते हैं।

यहाँ पर यह तथ्य स्मरणीय रहे कि प्रत्येक स्तर की स्थितिज ऊर्जा अगले पोषण स्तर में कम होती जाती है तथा वायुमण्डल में निर्वासित ऊर्जा की मात्रा बढ़ती जाती है।

3.6.1 पारिस्थितिकी संचालन में क्रियाशील मुख्य तत्व

- **प्रमुख तत्व** — इसमें ऑक्सीजन, कार्बन तथा हाइड्रोजन जैसे तत्व सम्मिलित होते हैं। यह वायुमण्डल में गैसीय अवस्था में मौजूद रहते हैं। अधिकांश प्राणी ऑक्सीजन को वायुमण्डल से सीधे ग्रहण करते हैं तथा अन्य गैसों को अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करते हैं।
- **गौण या सूक्ष्म तत्व** — नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्सियम, मैगनीशियम तथा गन्धक यह अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में सम्मिलित होते हैं।
- **सूक्ष्म मात्रिक या विरल तत्व** — इस श्रेणी में वह तत्व सम्मिलित हैं जिनकी पौधों की सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है। इनमें प्रमुख तत्व हैं — लोहा, जस्ता, मैगनीज तथा कोबाल्ट आदि।
उपर्युक्त सभी तत्वों को पौधे, श्वसन या जड़ परासरण विधि द्वारा ग्रहण करते हैं।

3.7 पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता

भौतिक जगत की प्रत्येक घटक या तत्व/तंत्र में स्थिरता का अर्थ होता है। उसके सभी अवयवों का सन्तुलन इसी प्रकार पारिस्थितिक तंत्र का भी सन्तुलन है, जिसमें पारिस्थितिक को प्राप्त होने वाली ऊर्जा एवं निवेश (ऊर्जा निवेश) के बीच का सन्तुलन सम्मिलित होता है। प्रकृति प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा का एक निश्चित मात्रा का निर्धारण करती है, चाहे वह निवेशित ऊर्जा हो या निर्वासित ऊर्जा। यदि इनमें तनिक भी परिवर्तन होता है तो इसका प्रभाव तुरन्त पारिस्थितिकी में दिखाई देता है।

पारिस्थितिकी स्थिरता के भी कई नियम होते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है —

- 3.7.1 परिवर्तन सहित स्थिरता** — स्थिरता के इस सिद्धान्त से आशय है कि पारिस्थितिक तंत्र बाहरी भागों से होने वाले परिवर्तनों का सह सके अर्थात् बाहरी हस्तक्षेप के बाद भी वह अपनी मौलिक दशा में वापस आ सकें। **ई०बी० कोलेस**— स्थिरता लोचकता या सहनशीलता का नाम दिया है।
- 3.7.2 परिवर्तन रहित स्थिरता** — पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता के इस सिद्धान्त में किसी पारिस्थितिकी के अन्दर प्रजातियों की संख्या की स्थिरता अथवा किसी प्रजाति के जीवों की स्थिरता से है। अर्थात् जीवों की संख्या में न तो वृद्धि होती है और न ही क्षय होता है। बल्कि वह एक निश्चित मात्रा या संख्या में बने रहते हैं। एम० जे० डनबार (1973) ने इसे दोलन रहित स्थिरता नाम दिया है। उदाहरण— किसी घास मैदान में यदि प्राथमिक उपभोक्ता के रूप में शाकाहारी जीवों की संख्या सामान्य है और मांसाहारी जीवों की संख्या सामान्य से कम है तो यह एक सन्तुलन की स्थिति होगी। किन्तु यदि दोनों की संख्या में अत्यधिक बढ़ोतरी या कमी होगी तो वह स्थिति असंतुलन की होगी।
- 3.7.3 सहनशीलता स्थिरता** — इस सिद्धान्त से आशय है कि पारिस्थितिक तंत्र में मानव के द्वारा जनित बंधाव के बाद भी या मानव के साथ पारिस्थितिक तंत्र की समायोजन की क्षमता।
- 3.7.4 प्रत्यास्थ स्थिरता** — प्रत्यास्थ स्थिरता से आशय है कि जब पारिस्थितिक तंत्र में बहुत बड़े स्तर में परिवर्तन के बाद भी स्थिरता उत्पन्न हो जाये। जैसे कि किसी ज्वालामुखी विस्फोट या मानव जनित रासायनिक परिवर्तनों के बाद भी पारिस्थितिकी पुनः अपनी पूर्व अवस्था में पहुँच जाती है।

3.7.5 चक्रीय अवस्था — पारिस्थितिक तंत्र की चक्रीय अवस्था से आशय है कि पारिस्थितिक तंत्र में परिवर्तन एवं सुधार होते रहते हैं। इस प्रक्रिया में जब प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में नियमित बाह्य परिवर्तनों के साथ समायोजन हो जाने पर स्थिरता स्थापित होती है तो उसे चक्रीय स्थिरता कहते हैं।

उपर्युक्त सभी नियमों का एक ही अर्थ निकलकर आता है कि पारिस्थितिक तंत्र में अपने को सन्तुलित रखने की अदभुत क्षमता होती है। यदि कोई बाहरी कारण किसी पारिस्थितिक तंत्र को न प्रभावित करें तो वह स्वयं को समान अवस्था में बनाये रखती है और यही पारिस्थितिक विकासक्रम का भी मुख्य ध्येय है।

3.8 सारांश

इस पाठ से आपने समझा— पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये विवरण एवं परिभाषायें प्राचीन समय से वर्तमान तक पारिस्थितिकी तंत्र की अवधारणा के विकास का क्रम, पारिस्थितिक तंत्र की विभिन्न भागों एवं अवधारणाओं के बारे में, पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न प्रकारों के बारे में, पारिस्थितिक तंत्र की क्रियाशीलता एवं मुख्य तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता एवं अस्थिरता के बारे में अध्ययन।

3.9 महत्वपूर्ण परिभाषायें

Ecocline (इकोक्लाइन) वनस्पतियों की पर्यावरणीय दशाओं के कारण परिवर्तन दर (ढाल) को इकोक्लाइन कहते हैं।

Biome (बायोम/जीवोम) वृहद स्तर पर समान जलवायु वाले क्षेत्रों एवं समान रूप एवं रचना तथा समान जीवन-रूप वाले पौधों एवं जन्तुओं के समुदायों को बायोम कहते हैं।

3.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं उत्तर

- पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा किसने विकसित की—
(A) ए0जी0 टान्सली (B) ओडम (C) हैकल (D) इनमें से कोई नहीं
- पारिस्थितिक तंत्र में सम्मिलित नहीं हैं—
(A) जैविक तत्व (B) अजैविक तत्व
(C) जैविक एवं अजैविक दोनों (D) भौतिक तत्व
- पारिस्थितिक तंत्र के भौतिक संगठन में संघटको में सम्मिलित नहीं है—
(A) अकार्बनिक पदार्थ (B) कार्बनिक पदार्थ
(C) भौतिक पदार्थ (D) जनसंख्या
- पारिस्थितिक तंत्र की 'दोलन रहित स्थिरता' सिद्धान्त किसने दिया—
(A) ओडम (B) हैकल (C) रैटजले (D) एम0जे0 इनबार
- सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का अधिकांश भाग नष्ट होता है—
(A) श्वसन द्वारा (B) कार्यशीलता द्वारा
(C) प्रजनन द्वारा (D) ऊष्मा संचलन द्वारा
- पारिस्थितिक तंत्र में कितने पोषण स्तर होते हैं—
(A) 3 (B) 4 (C) 6 (D) 5

उत्तरमाला—

- | | | |
|-------|-------|-------|
| (1) A | (2) D | (3) B |
| (4) C | (5) A | (6) A |

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पारिस्थितिक तंत्र को परिभाषित करते हुये उसके विषय क्षेत्र को स्पष्ट करें।
2. पोषण स्तर के सभी अवयवों का विस्तृत परिचय दें।
3. पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक घटकों का विश्लेषण करें।
4. पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा पर एक निबन्ध लिखें।
5. कार्य के आधार पर स्वपोषित संघटकों का विश्लेषण करें।
6. पारिस्थितिक तंत्र की कार्यशीलता का विश्लेषण करें।

3.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें

- डॉ० आषा गुप्ता – भूगोल परिभाषा कोष— हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
- प्रो० माजिद हुसैन – भूगोल पारिभाषिक शब्द संग्रह— टाटा मैग्राहिल 7 वेस्ट
पटेल नगर, नई दिल्ली—110008
- प्रो० सविन्द्र सिंह – पर्यावरण भूगोल का स्वरूप— प्रवालिका पब्लिकेशन्स,
प्रयागराज

इकाई-4 : पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता एवं पर्यावरण संकट के कारण

इकाई की रूप रेखा—

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 पारिस्थितिकी
- 4.4 पारिस्थितिकी उपागम
- 4.5 पारिस्थितिकी तंत्र
- 4.6 पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार
- 4.7 पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता
- 4.8 पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता
- 4.9 अस्थिरता के कारण
- 4.10 पर्यावरण
- 4.11 पर्यावरण को प्रभावित करने वाले कारक
- 4.12 पर्यावरण संकट
- 4.13 पर्यावरण संकट के कारण
- 4.14 पर्यावरण संकट के निदान
- 4.15 सारांश
- 4.16 शब्द सूची
- 4.17 स्व मूल्यांकन प्रश्न
- 4.18 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें
- 4.19 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह पर्यावरण की चतुर्थ इकाई है जिसमें पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी उपागम एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर चर्चा की गई है। इस इकाई में पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता किन कारणों से उत्पन्न होती है बताया गया है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण में उत्पन्न होने वाले संकट के कारणों एवं इसके निदान के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है।

4.2 उद्देश्य

- पारिस्थितिकीय तंत्र एवं पारिस्थितिकी तंत्र में आने वाली अस्थिरता के बारे में जान सकेंगे।
- पारिस्थितिकीय तंत्र की स्थिरता में व्यवधान किन कारणों से आता है, जान सकेंगे।
- पर्यावरण के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे।
- पर्यावरण को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जान सकेंगे।
- पर्यावरण संकट क्या है? इसके विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- पर्यावरण संकट किन-किन कारणों से उत्पन्न होता है के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे।

4.3 पारिस्थितिकी

पारिस्थितिकी (ecology), सामान्य रूप में वह विज्ञान है जो एक तरफ सभी जीवों तथा उनके भौतिक पर्यावरण में तथा दूसरी तरफ सभी जीवों में परस्परश्रित, परस्पर अभिक्रियाशील तथा परस्पर सम्बद्ध अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

अर्थात् पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत समस्त जीवों तथा भौतिक पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों एवं विभिन्न जीवों के मध्य पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।

संकल्पनात्मक पक्ष के अनुसार पारिस्थितिकी में जीवों तथा उनके पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इकोलाजी ecology आइकोस (Oikos) तथा लोगो से (logos) शब्दों से बना है।

आइकोस शब्द का अर्थ होता है निवास-स्थान (Living place) या आवास्य (Habitat) तथा लागोस का अर्थ होता है वर्णन करना। इस शब्दावली का प्रयोग उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जीव विज्ञान के उन पक्षों को समझने के लिए किया गया था जो विज्ञानी वनस्पति एवं पर्यावरण तथा पशु एवं पर्यावरण के नैसर्गिक सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते थे। उसके पश्चात् शब्दावली का प्रयोग व्यापक रूप में किया गया और यह तथ्य प्रतिपादित किया गया कि यदि एक किस्म की वनस्पति के पर्यावरण में सम्मिलित की जाती है अर्थात् वनस्पतियाँ पर्यावरण अनुसार होती हैं।

पारिस्थितिकी की अवधारणा को आधुनिक संदर्भ देने का श्रेय जर्मन जीव विज्ञानी अर्नस्ट हैकेल (1869) को है, जिन्होंने आइकोस के आधार पर Oecologie (ओइकोलॉजी) शब्द का प्रयोग किया। इसके पूर्व कुछ विद्वानों द्वारा पर्यावरण – जीव-सम्बन्धों को विश्लेषित करने के लिए फ्रांसिसी जन्तुविज्ञानी आइसोडोर ज्योरफ्राय सेण्ट हिलेयर ने 1859 में जीवों के आपसी सम्बन्धों के अध्ययन के लिये : ethology (जैववासिकी) नामावली का प्रयोग किया था। ब्रिटिश प्रकृतिविज्ञानी सेण्ट जार्ज जैक्सन मिवार्ट ने जीवों तथा उनके पर्यावरण के बीच सम्बन्धों के अध्ययन के लिए hexicology नामावली के प्रयोग का प्रस्ताव किया था।

जीवों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के बीच अन्तर्सम्बन्धों की अभिव्यक्ति तथा अध्ययन विभिन्न नामावलियों एवं संकल्पनाओं के नियमन एवं निरूपण या रचना में

डार्विन की प्रजातियों के उद्भव की संकल्पना की अहम भूमिका रही है। हैकेल के इकोलाजी (पारिस्थितिकी) के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बतलाया कि यह जीवों के आवास्य का विज्ञान है। इसके अन्तर्गत समस्त जीवों और पर्यावरण के सम्पूर्ण अन्तर्प्रक्रिया का अध्ययन होता है, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रहते हैं।

1975 में ई०पी० ओडम ने पारिस्थितिकी को परिभाषित करते हुए प्रतिपादित किया कि जैविक तथा अजैविक संघटक एक दूसरे से न केवल अन्तर्सम्बन्धित होते हैं अपितु ये दोनों संघटक एक निश्चित जीव की भाँति क्रमबद्ध रूप में कार्यशील होते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिकी भौतिक तंत्र की संरचना तथा कार्य का अध्ययन है या पारिस्थितिकी प्रकृति की संरचना तथा कार्य का अध्ययन है।

प्रेशर डार्लिंग ने प्रतिपादित किया कि पारिस्थितिकी समस्त पर्यावरण के सन्दर्भ में जीवों का तथा उनके अन्तर्जातीय एवं आपसी अन्तर्सम्बन्ध का विज्ञान है। (1963)

संक्षेप में पारिस्थितिकी की निम्न परिभाषा प्रस्तुत की जा सकती

पारिस्थितिकी वह विज्ञान जिसके अन्तर्गत एक तरफ प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के जैविक एवं अजैविक संघटकों के मध्य तथा दूसरी तरफ विभिन्न जीवों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

पारिस्थितिकी के आधारभूत सिद्धांत एवं परिकल्पनाएँ – पारिस्थितिकी के अध्ययन के लिए कुछ आधारभूत मान्यताएँ और सिद्धान्त प्रकृति एवं जीवों के अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या में सहायक होते हैं जैसे—

1. पारिस्थितिकी तंत्र की रचना प्रकृति की अनूठी व्यवस्था है, जिसमें अजैव तत्व, जैव समुदाय के लिए प्राकृतिक आवास्य स्वनियमन और स्वसंवर्धन व्यवस्था के तहत निर्मित करते हैं, फलतः पारिस्थितिकी

तंत्र एक कार्यशील इकाई के रूप में स्वपोषित संघटक (पेड़-पौधे) और परपोषित संघटक (जीव-जन्तु) आपसी सम्बंधों में आबद्ध होते हैं।

2. जीवमण्डल एक बृहत्तम पारिस्थितिक तंत्र है, जिसके जीवमण्डल जैविक एवं अजैविक संघटक जैव-भू पारिस्थितिकी के तहत वृद्ध चकीय प्रक्रियाओं द्वारा एक-दूसरे से आबद्ध है। इनमें जल-चक्र जैव – भूरसायन चक्र और ऊर्जाप्रवाह विशेष उल्लेखनीय हैं।
3. भौतिक और जैविक प्रक्रम एकरूपताबाद के नियम पर आधारित होते हैं। आज जो भौतिक प्रक्रम कार्यरत हैं वे पृथ्वी की उत्पत्ति से ही कम या अधिक सघनता से कार्यरत हैं। प्रकृति के नियमों में उतार-चढ़ाव होता रहा है लेकिन संसोधन नहीं हुआ है।
4. प्रकृति की व्यवस्था परिवर्तनशीलता का अनुसरण करती है लेकिन परिवर्तन की कड़ियाँ सास्वत नियमों पर आधारित होती हैं। पेड़ों की आकृति छोटी-बड़ी हो सकती है, लेकिन उनका प्राथमिक कार्य सास्वत बना रहता है।
5. प्रकृति का नियामक सूर्य जो अपनी ऊर्जा और प्रकाश से प्रकृति को जीवन्तता प्रदान करता है। सूर्य की ऊर्जा पारिस्थितिकी तंत्र की संचालक हैं, और सौर ऊर्जा को नियमन वायुमण्डल द्वारा होता है। वायुमण्डल सौर ऊर्जा को नियमन कर जीवधारियों के लिए वांछित मात्रा में ऊर्जा का प्रवाह एक वर्ग से दूसरे वर्ग में करता है।

अतः पारिस्थितिक तंत्र की कार्यप्रणाली स्वनियमन और स्वसंवर्धन पर आधारित होती है। इसमें परिवर्तन तभी होता है, जब इसमें किसी वाह्य हस्तक्षेप के कारण अवरोध उत्पन्न होता है। जल का स्वनियमन गुण वाह्य प्रदूषकों के कारण बाधित होता है।

4.4 पारिस्थितिकी उपागम

पारिस्थितिकी उपागम एक परम्परागत अध्ययन उपागम है जिसका प्रयोग भूगोल में वर्षों से होता आ रहा है। इसके अन्तर्गत भूतल के किसी प्रदेश या भूखण्ड में रहने वाले मानव समूह तथा वहाँ के पर्यावरण के मध्य स्थापित अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार के भौगोलिक अध्ययन को मानव पारिस्थितिकी कहते हैं। विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय तत्वों का प्रभाव मानव समाज तथा उसके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं तथा प्रतिरूपों पर पड़ता है। मानव पर्यावरणीय दशाओं उच्चावच, जलवायु, मिट्टी एवं खनीज, जलाशय, प्राकृतिक वनस्पति एवं जीव-जन्तु आदि से प्रभावित होकर उसके साथ अनुकूलन नहीं करता बल्कि अपनी शक्ति एवं कौशल से आवश्यकतानुसार परिवर्तन तथा परिमार्जन भी करता है। जिससे सांस्कृतिक तथ्यों और सांस्कृतिक भूदृश्यों का निर्माण होता है। इस प्रकार मानव और पर्यावरण के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है और इसके अनुसार ही किसी देश-काल में संस्कृति के विकास की दिशा तथा सीमा निर्धारित होती है। इस प्रकार मानव और पर्यावरण की पारस्परिक अन्तःक्रिया के अनुसार विकसित भौगोलिक प्रतिरूपों को विश्लेषण की विधि को पारिस्थितिकीय उपागम कहते हैं।

पारिस्थितिकी उपागम के अन्तर्गत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना होता है कि किसी प्रदेश में रहने वाले मानव समाज को वहाँ के प्राकृतिक पर्यावरण ने किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित किया है? और साथ ही यह विश्लेषण करना भी होता है कि मानव ने अपने ज्ञान, शक्ति तथा कौशल के उपयोग अपने पर्यावरण को किस प्रकार और किस सीमा तक परिवर्तित करके उनका उपयोग किया है। इस उपागम के अन्तर्गत मानव द्वारा अपने पर्यावरण से अनुकूलन करने की विधि एवं मात्रा के साथ ही पर्यावरणीय समायोजन की व्याख्या भी सम्मिलित होती है। मानव भूगोल के तत्वों के अध्ययन में पारिस्थितिकीय उपागम एक महत्वपूर्ण विधा है। इसके अन्तर्गत इस बात पर विचार किया जाता है कि किसी तत्व या तथ्य के स्थानिक वितरण प्रतिरूप को पर्यावरणीय कारक किस प्रकार प्रभावित करते हैं। किसी प्रदेश में रहने वाले लोग या मानव समूह वहाँ के प्राकृतिक पर्यावरण से किस प्रकार प्रभावित होते हैं। किसी प्रदेश में रहने वाले लोग या मानव समूह वहाँ के प्राकृतिक पर्यावरण से किस प्रकार प्रभावित होते हैं। और मानव के भोजन, वाहन, आश्रय, व्यवसाय तथा उच्चतर आवश्यकताओं पर पड़ने वाले पर्यावरणीय प्रभावों की व्याख्या के लिए पारिस्थितिकीय उपागम का ही प्राश्रय किया जाता है। इस प्रकार यह उपागम विविध प्रकार के भौगोलिक तत्वों की स्थिति, वितरण,

स्थानीयकरण आदि के प्रभावी तत्वों के वैज्ञानिक विवेचन से सम्बन्धित है।

4.5 पारिस्थितिक तंत्र

पारिस्थितिक तंत्र (Ecological system या Eco & system) की संरचना भौगोलिक जैवभार (Geographical Biomass) पर आधारित है। इस संकल्पना के अनुसार किसी भौगोलिक इकाई या क्षेत्रीय इकाई (छोटी – बड़ी) में समयानुसार समस्त जीवों और उनके भौतिक पर्यावरण के मध्य तथा ये आपस में अन्तर्क्रिया होती रहती है। तथा वे सूत्रबद्ध होकर इसे संतुलित बनाये रखने के लिए अपनी सीमा में निस्तर क्रियाशील रहते हैं। इस प्रक्रिया में जैव – अजैव संघटक (वनस्पति जीव जन्तु और भौतिक पर्यावरण) क्षेत्रीय इकाई को एक जटिल प्रयोगशाला के रूप में प्रयोग करते हुए सौर ऊर्जा, खनिज एवं जल की मदद से जैव तत्व (organic matter) का उत्पादन और अजैव तत्व में इनका रूपान्तरण करते रहते हैं। यह कार्य चकीय ढंग से सम्पादित होता है, जिससे तंत्र में उत्पादन और उपयोग के बीच संतुलन बना रहता है।

पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) नामावली का सर्वप्रथम प्रयोग ए० जी० टॉन्सले द्वारा 1935 में किया गया था।

एजी० टॉन्सल के अनुसार – पारिस्थितिक तो इस भौतिक तत्वों का एक विशेष प्रकार होता है, इसकी रचना जीवों तथा अजैविक संघटकों से होती है, यह अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है, यह विवृत तंत्र (Open system) होता है तथा विभिन्न आकारों एवं प्रकारों का होता है

ओडम के अनुसार – जीवित जीव तथा अजीवित पर्यावरण एक दूसरे से अविभाज्य रूप में जुड़े हुए हैं तथा ये एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं। कोई भी इकाई जो किसी निश्चित क्षेत्र के समस्त जीवों को सम्मिलित करती है, तथा भौतिक पर्यावरण के साथ इस तरह पारस्परिक क्रिया करती है जिससे तत्व के अन्दर ऊर्जा प्रवाह द्वारा सुनिश्चित पोषण संरचना, जैविक विविधता तथा खनिज चक्र जीवित जीवों एवं अजैविक संघटकों में पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहे पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।

सी० सी० पार्क के अनुसार— पारिस्थितिक तंत्र एक क्षेत्र के अन्दर समस्त प्राकृतिक जीवों तथा तत्वों का सकल योग होता है और इसे भौतिक भूगोल में एक वितृत तंत्र के आधारभूत उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई पारिस्थितिक तंत्र की उपर्युक्त परिभाषाओं तथा विषय – वस्तुओं के आधार पर निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है

पारिस्थितिक तंत्र भूतल के निश्चित क्षेत्र को धारण करने वाली एक आधारभूत कार्यशील इकाई होता है जिसके अन्तर्गत जैविक समुदाय तथा अजैविक (भौतिक) संघटकों के सकल समुच्चय तथा किसी निश्चित

समय इकाई के अंतर्गत उनके आपसी अन्तर्क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

4.6 पारिस्थितिकी तंत्र के प्रकार

पारिस्थितिकी तंत्रों का वर्गीकरण विभिन्न उद्देश्यों की दृष्टि से विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है। पारिस्थितिक तंत्र को निम्नवत् वर्गीकृत किया जाता है –

1— आवास्य क्षेत्र के आधार पर वर्गीकरण—

पारिस्थितिक तंत्र विविध प्रकार के जीवों का प्राकृतिक आवास्य होता है, भौतिक दशाओं में क्षेत्रीय विभिन्नताये होती हैं। अतः जैविक समुदायों में भी स्थानीय विभिन्नताये होती हैं। इसके आधार पर पारिस्थितिक तंत्रों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है,

(अ) प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र –

जब किसी भौगोलिक इकाई में प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के प्रकृति और जीवों के मध्य अन्तर्क्रिया अबाध गति से चलती रहती है तो उसे प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं।

पर्यावरणीय विशिष्टता के आधार पर इसे दो उपविभाग में बाँटा जा सकता है।

(क) स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र – स्थलीय पारिस्थितिक को पुनः कई उपभागों में विभाजित किया जाता है जैसे (i) उच्चस्थलीय या पर्वत या पर्वत पारिस्थितिक तंत्र (ii) निम्न स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र (iii) उष्ण रेगिस्तानी पारिस्थितिकी तंत्र (iv) शीत रेगिस्तानी पारिस्थितिक तंत्र। विशिष्ट अध्ययन एवं निश्चित उद्देश्यों के आधार पर इन पारिस्थितिक तंत्रों को पुनः कई लघु भागों में विभाजित किया जाता है।

(ख) जलीय पारिस्थितिक तंत्र – जलीय पारिस्थितिक तंत्र को दो प्रमुख उपभागों में विभाजित किया जाता है: (i) ताजे जल वाले पारिस्थितिक तंत्र (ii) सागरीय पारिस्थितिक तंत्र।

ताजे जल वाले पारिस्थितिक तंत्रों को पुनः कई भागों में विभाजित किया जाता है— जैसे. सरिता पारिस्थितिक तंत्र, झील पारिस्थितिक तंत्र, जलाशय पारिस्थितिक तंत्र, दलदल पारिस्थितिक तंत्र आदि

(ii) सागरीय पारिस्थितिक तंत्रों को खुले सागरीय पारिस्थितिक तंत्र, तटीय ज्वारनदमुखी पारिस्थितिक तंत्र, कोरलरीफ पारिस्थितिक तंत्र आदि उपप्रकारों में विभाजित किया जाता है।

कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र – जब कृत्रिम साधनों से जैव जगत् को उर्जा एवं अन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति की जाती है तो उसे कृत्रिम या अप्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। कृषि, बागवानी, पशुपालन आदि में मानव अपनी सूझबूझ और आवश्यकता के अनुसार खेत, बाग और चारागाह का प्रबन्धन कृत्रिम साधनों से करता है। विज्ञान और तकनीकी विकास से कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र का महत्व इतना बढ़ गया है, कि मानव प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के प्रति अनुदार होता जा रहा है

2. क्षेत्रीय विस्तार के आधार पर वर्गीकरण

पारिस्थितिक तंत्र एक भौगोलिक इकाई है **क्षेत्रीय** विस्तार के आधार पर इसे – (i) महाद्वीपीय पारिस्थितिक तंत्र और (ii) महासागरीय पारिस्थितिक तंत्र दो बड़े और अनेक छोटे उपतंत्रों में बाँटा जा सकता है जैसे

पर्वत तंत्र, पठारी क्षेत्र, मैदानी तंत्र, सरिता तंत्र, झील तंत्र और खाड़ी पारिस्थितिक तंत्र आदि।

3. उपयोग के आधार पर वर्गीकरण— पारिस्थितिक तंत्र में जैव जगत् के सदस्य (पेड़-पौधे और जीव-जन्तु) ऊर्जा का प्रयोग कर पदार्थ का उत्पादन करते हैं। मनुष्य समुदाय के बढ़ते प्रभाव के कारण उपयोग प्रतिरूप में भारी परिवर्तन आया है। ओडम ने इस तथ्य को ध्यान में रखकर इसको दो वर्गों में बाँटा (i) कृषित पारिस्थितिक तंत्र (ii) अकृषित प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र।

कृषित पारिस्थितिक तंत्र की फसलो बागवानी के और पोषित वन के आधार पर अनेक उपवर्गों में बाँटा जा सकता है।

4. विकास अवस्था के आधार पर वर्गीकरण – पारिस्थितिक तंत्र काल और स्थान के परिप्रेक्ष्य में जैव विकास का समुच्चय होता है। विकास के लिये जैव अनुकूलन में समय और स्थान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रतिकूल स्थिति में विकास अवरुद्ध होता है। अतः लम्बी अवधि तक अनुकूल परिवेश में पारिस्थितिक तंत्र प्रौढ़ हो जाता है जबकि ऐसा न होने पर विकास अनेक रूप ले लेता है।

(i) प्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र— लम्बी अवधि एवं अनुकूल परिवेश में विकसित होने के कारण प्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र अति जटिल रूप ग्रहण कर लेता है, जहाँ का जैव भार अधिक होता है तथा आहार प्रक्रिया आहार जाल में बदल जाती है। वन पारिस्थितिकी इसका उदा० है

(ii) अप्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र – जहाँ जैव विकास की प्रारम्भिक अवस्थाएँ पायी जाती हैं वहाँ अप्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र क्रियाशील होता है। फलतः यहाँ सकल जैव-भार कम होता है। तथा भोजन श्रृंखला जैसे छोटी घास या दलदली भूमि का पारिस्थितिक तंत्र।

(iii) मिश्रित पारिस्थितिक तंत्र – जहाँ उपर्युक्त दोनों स्थितियों का मिश्रित रूप पाया जाता है, अर्थात्- विकास की यह मध्यम स्थिति है। यहाँ जैवभार सामान्य होता है तथा भोजन श्रृंखला व्यवस्थित होती है, लेकिन जटिल नहीं।

(iv) **निष्क्रिय पारिस्थितिक तंत्र**— जहाँ परिवेश की प्रतिकूलता के कारण जैव समाज विनष्ट हो जाता है वहाँ ऐसी स्थिति प्रकट होती है। प्राकृतिक प्रकोप एवं प्रदूषण इसके लिए अधिक जिम्मेदार होते हैं। हिम आवरण ज्वालामुखी, भूकम्प, अवर्षण, बाढ़ आदि से जैव जगत का सर्वनाश हो जाता है और पुनः अनुकूल परिस्थिति होने पर जीवन प्रारम्भ होता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि रूप पारिस्थितिक तंत्र की सत्ता उसकी गुणवत्ता में निहित हैं और गुणवत्ता के लिए प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत संरचनात्मक क्रियाशीलता आवश्यक है अतः पारिस्थितिक तंत्र का स्वभाविक या प्राकृतिक दीर्घकालिक, स्थिर और बहुआयामी होता है। पृथ्वी सबसे बड़ी पारिस्थितिकी तंत्र हैं, जहाँ लम्बी अवधि तेल से असंख्य जीव जैवमण्डलीय व्यवस्था में चल रहे हैं। पारिस्थितिक तंत्र की अस्थिरता पर्यावरणीय अवनयन से सम्बंधित है, जिसके लिये प्रकृति और मनुष्य दोनों जिम्मेदार हैं।

4.7 पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता **STABILITY OF ECOSYSTEM**

पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता का अर्थ होता है पारिस्थितिक तंत्र में प्रत्येक तत्व के उत्पादन तथा उपभोग में सन्तुलन। अर्थात् पारिस्थितिक तंत्र में उर्जा तथा पदार्थों के निवेश तथा निर्गम में सन्तुलन, विभिन्न जैव रासायनिक चक्रों की सुचारु रूप से कार्यशीलता तथा समस्त तत्वों के संरक्षण की स्थिर दशा को पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता या पारिस्थितिकीय स्थिरता कहते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र की या पारिस्थितिकीय स्थिरता को कई रूपों में व्यक्त किया गया है।

(1) **दोलनरहित स्थिरता (non & oscillation Stability)**

कतिपय विद्वानों ने पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को किसी प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के अन्दर प्रजातियों की संख्याओं की स्थिरता या किसी प्रजाति के एकाकी जीवों की संख्या की स्थिरता के सन्दर्भ में व्यक्त किया है। इस तरह पारिस्थितिक तंत्र में जीव संख्या की स्थिरता के आधार पर पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को एम0 जे० दोलन (1973 ने दोलन – रहित स्थिरता नाम दिया है। अर्थात् पारिस्थिक तंत्र की प्रजातियों की संख्या में उतार-चढ़ाव नहीं होता है।

(2) **स्थिरता लोचकता या सहनशीलता – (Stability resilience)** पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को लक्ष्य कारकों द्वारा होने वाले परिवर्तनों को सहन करने की पारिस्थितिक तंत्र की क्षमता परिवर्तनों के बाद पारिस्थितिक तंत्र के अपनी मौलिक देशों में वापसी के सन्दर्भ में भी व्यक्त किया जाता है। इस तरह बाह्य परिवर्तनों के बावजूद पारिस्थितिक तंत्र में स्थापित स्थिरता को राचल ए० रेजियर तथा ई०बी० कोबेल (1972) ने स्थिरता लोचकता या सहनशीलता नाम की दिया है। अर्थात् पारिस्थितिक तंत्र में उतनी क्षमता होती है। कि वह बाध्य परिवर्तनों को सहन कर सके

(3) **लोचलता या सहनशीलता (resilience Stability)** कतिपय लोगों ने पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता की पारिस्थितिक तेल में प्राकृतिक कारणों या मनुष्य लाय जनित बाधाओं तथा परिवर्तनों के साथ पारिस्थितिक तंत्र की समायोजन करने की क्षमता के सन्दर्भ में व्याख्या की है। अर्थात् जब पारिस्थितिक तंत्र में इतनी क्षमता होती है। कि वह उसमें, किन्हीं कारणों से उत्पन्न व्यवधानों को सहन करके अपने को बदली दशाओं के साथ समायोजित कर लेता है। इस तरह स्थापित स्थिरता को लोचकता या सहनशीलता स्थिरता कहते हैं।

(म) **प्रत्यास्थ स्थिरता (Elastic studantity)** जब पारिस्थितिक तंत्र में बृहदस्तरीय व्यवधानों या अव्यवस्थाओं के बाद प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में स्थिरता स्थापित हो जाती है। तो इस तरह की स्थिरता को **प्रत्यास्थ स्थिरता** कहते हैं।

5) **चक्रीय स्थिरता – (Optical Srulality)** जब प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में नियमित बाह्य परिवर्तनों के साथ समायोजन होने पर स्थिरता स्थापित होती है। तो उसे **चक्रीय स्थिरता** कहते हैं। कोई अप्रत्याशित व्यवधान या अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती है।

4.8 पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता

पारिस्थितिकी तंत्र की अस्थिरता (Instability) उस दशा की द्योतक होती है जब कोई पारिस्थितिकी तंत्र

उसमें होने वाले पर्यावरणीय परिवर्तनों के साथ समायोजन करने में असमर्थ हो जाता है। इसमें अस्थिरता की दशा उस समय उत्पन्न होती है जबकि पारिस्थितिकी तंत्र में सतत परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन वृहदस्तरीय एवं भीषण होते हैं। जिससे पारिस्थितिकी तंत्र की लोचकता या उसकी सहन करने की क्षमता से अधिक हो जाते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता या अस्थिरता के लिए उत्तर दायी कारकों का सदा पारिस्थितिकी तंत्र की लोचकता या वाह्य परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है। यदि पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन पारिस्थितिक तंत्र की लोचकता से अधिक हो जाते हैं तो अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। परन्तु जब पारिस्थितिकी तंत्र पर्यावरणीय परिवर्तनों का सहन कर लेता है तथा उनके साथ समायोजन तथा अनुकूलन कर लेने में समर्थ हो जाता है तो स्थिरता कायम रहती है।

पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता उत्पन्न करने वाले पर्यावरणीय परिवर्तन दोनों प्रकृति जन्य (यथा जलवायु में परिवर्तन) तथा मानव जन्य होते हैं। मनुष्य निम्न रूपों में पारिस्थितिकी तंत्र में अस्थिरता उत्पन्न करता है—

- प्राकृतिक वनस्पति का पूर्णरूप से या अंशिक रूप से विनाश करके।
- जन्तुओं की मौलिक प्रजातियों का विनाश करके।
- मौलिक जन्तुओं या वनस्पतियों का अन्य जन्तुओं या वनस्पतियों द्वारा प्रतिस्थापन (Replacement) करके।
- पारिस्थितिक तंत्र के एक या अधिक मौलिक संघटकों में परिवर्तन करके (जैसे— भूमि उपयोग में परिवर्तन) वनों के स्थान पर कृषि का विकास प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को विनष्ट करके नगरों या उद्योगों का विकास आदि।
- रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी, शाकनाशी रसायनों तथा कई प्रकार के सिन्थेटिक यौगिकों के प्रयोग के द्वारा प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों में नये तत्वों का प्रवेश कराके।
- वायुमण्डलीय गैसों के मौलिक अनुपात में परिवर्तन करके।
- पर्यावरणीय प्रक्रमों में हस्तक्षेप कर के।

मनुष्य ने अपने कार्यों द्वारा अधिकांश प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों में बड़े पैमाने पर परिवर्तन किया है। इस प्रकार मनुष्य ने भूमि उपयोग में परिवर्तन, वन विनाश, औद्योगीकरण, नगरीकरण, कृषि का यंत्रीकरण आदि द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में अव्यवस्था उत्पन्न की है। वनों की अंधाधुन्ध कटाई से विश्व के लगभग सभी जलवायु प्रदेशों में वनों में अवमय हुआ है।

4.9 पारिस्थितिकी अस्थिरता के कारण

पर्यावरणीय अस्थिरता के विभिन्न कारण प्राकृतिक और मानव-जनित गतिविधियों से उत्पन्न होते हैं। इनका व्यापक प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र, मानव जीवन प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र, मानव जीवन और वैश्विक जलवायु पर पड़ता है। जो निम्न है:—

1. वायुमंडलीय प्रदूषण — वायुमंडलीय प्रदूषण हमारे पर्यावरण पर गहरा प्रभाव डालता है और इसका मुख्य कारण उद्योगों वाहनों और घरेलू उपकरणों से निकलने वाला धुंआ आदि जैसे हैं। इस उत्सर्जनों में कई हानिकारक रसायन होते हैं, जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड (CO_2), सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (NO), और मीथेन (CH_4)। यह गैसों वायुमण्डल में जाकर कई प्रकार के प्रदूषण का कारण बनती हैं

ग्रीन हाउस प्रभाव — कार्बन डाई ऑक्साइड और मीथेन जैसी ग्रीन हाउस गैसों वायुमण्डल में उष्मा फँसाकर ग्रीनहाउस प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जिससे वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही। इस तापमान वृद्धि के परिणाम स्वरूप ग्लेशियर पिघल रहे हैं जल का स्तर बढ़ रहा है और मौसम के पैटर्न बदल रहे हैं।

अम्लीय वर्षा —सल्फर डाई ऑक्साइड और नाइट्रस ऑक्साइड को उच्च सांद्रता से अम्लीय वर्षा होती है, जो मृदा और जल स्रोतों की PH स्तर को कम करती है। इससे फसलों, वनस्पतियों, और जलीय जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

2. जलप्रदूषण— जल प्रदूषण मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के लिए हानिकारक है। उद्योगों से निकलने वाले रासायनिक अपशिष्ट, घरेलू सीवेज, और कृषि में उपयोग किये जाने वाले कीटनाशक और उर्वरक जलाशयों में मिलकर जल को प्रदूषित करते हैं।

रासायनिक प्रदूषण— कारखानों से निकलने वाले रसायन, जैसे भारी धातुएं (लेड, मरकरी) और कार्बनिक यौगिक, जलस्रोतों में मिलकर उन्हें विषैला बना देते हैं। ये रसायन जलीय जीवों को नुकसान पहुंचाते हैं, और खाद्य श्रृंखला के माध्यम से मानव स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण— प्लास्टिक कचरे का समुद्र और सदियों में जमा होना जल प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है प्लास्टिक के छोटे -2 कण जलीय जीवों द्वारा निगले जाते हैं। जिससे उनकी मृत्यु हो सकती है और यह मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

3. वनों की कटाई — वनों की कटाई जैव विविधता के लिए गंभीर खतरा है और इसका पर्यावरण पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। वनों की अंधाधुंध कटाई के कई कारण हैं, जैसे— कृषि विस्तार, शहरीकरण और लकड़ी की मांग।

जैव विविधता की गति — वन अनेक प्रजातियों के आवास, होते हैं। वनों की कटाई से इन प्रजातियों के आवास नष्ट हैं। हो जाते हैं जिससे वे विलुप्ति के कगार पर पहुंच जाती है। जैव विविधता में कमी पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ देती है।

कार्बन अवशोषण में कमी — पेड़ कार्बन डाई ऑक्साइड को अवशोषित करते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं। वनों की कटाई से कार्बन अवशोषण की क्षमता कम हो जाती है, जिससे वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि होती है।

4. मृदा अपरदन और भूमि क्षरण — मृदा अपरदन और भूमि क्षरण अति — चराई, अंधाधुंध खेती और वृक्षों की कटाई के कारण होते हैं। इससे मृदा की ऊपरी परत का नुकसान होता है और भूमि की उर्वरता कम हो जाती है।

फसल उत्पादन में कमी — मृदा अपरदन से मृदा की उपजाऊ परत क्षीण हो जाती है, जिससे फसल उत्पादन कम हो जाता है यह खाद्य असुरक्षा का कारण बन सकता है और कृषि पर निर्भर जनसंख्या के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर सकता है।

जल संरक्षण में कमी— स्वस्थ मृदा जल को अवशोषित और संरक्षित करती है। मृदा अपरदन से जल संरक्षण की क्षमता कम हो जाती है, जिससे सूखे की संभावना बढ़ जाती है।

5. जलवायु परिवर्तन — जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक समस्या है और इसके कारणों में ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन वनों की कटाई, और भूमि उपयोग में परिवर्तन शामिल हैं।

वैश्विक तापमान वृद्धि— ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है। इससे ग्लेशियरों का पिघलना समुद्र स्तर का बढ़ना, और मौसम के पैटर्न में बदलाव जैसे प्रभाव देखने को मिलते हैं।

चरम मौसमी घटनाएं— जलवायु परिवर्तन के कारण अत्यधिक गर्मी, सूखा, बाढ़ और तूफानों जैसी चरम मौसमी घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि हो रही है। ये घटनाएँ मानव जीवन, कृषि और बुनियादी ढांचे पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

6. जैव विविधता की हानि— जैवविविधता हानि का कारण प्राकृतिक आवासों का विनाश, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन है। यह पर्यावरणीय अस्थिरता का महत्वपूर्ण कारण है।

प्रजातियों की विलुप्ति— जैव विविधता की हानि से कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। यह पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता और कार्यक्षमता को प्रभावित करता है, जिससे पारिस्थितिक सेवाओं में कमी आती है।

पारिस्थितिक सेवाओं की हानि— जैव विविधता में कमी से पारिस्थितिक तंत्र की सेवाओं, जैसे— परागण, जल शोधन और होदा उर्वरता में कमी आती है। यह मानव जीवन की गुणवत्ता और आर्थिक स्थिरता को प्रभावित करता है।

7. मानव जनसंख्या में वृद्धि — बढ़ती जनसंख्या पर्यावरणीय अस्थिरता का एक प्रमुख कारण है। इससे प्राकृतिक संसाधनों की मांग बढ़ती है और प्रदूषण में वृद्धि होती है।

संसाधनों का अत्यधिक दोहन — बढ़ती जनसंख्या के कारण वन, जल और खनिज जैसे संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। इससे संसाधनों की कमी और पर्यावरणीय अस्थिरता बढ़ रही है।

कचरे की समस्या — जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न कचरे का प्रबंधन एक बड़ी चुनौती है। कचरे के सही तरीके से निपटान होने के कारण भूमि, जल और वायुमण्डल में प्रदूषण बढ़ रहा है।

औद्योगिकीकरण और शहरीकरण — औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण वनों की कटाई, जल और वायु प्रदूषण, और कचरे की समस्या बढ़ रही है। यह एक पर्यावरणीय अस्थिरता का एक महत्वपूर्ण कारण है।

निर्माण कार्य और अवसंरचनात्मक विकास— बड़े पैमाने पर निर्माण कार्यों और अवसंरचनात्मक विकास से प्राकृतिक आवासों का विनाश हो रहा है। इससे जैव विविधता में कमी आती है और पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ता है।

ऊर्जा खपत — औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण ऊर्जा की योग बढ़ रही है। अधिकांश ऊर्जा स्रोत गैर-नवीकरणीय हैं, जैसे — कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस, जिनके उपयोग से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन होता है और पर्यावरणीय अस्थिरता बढ़ती है !

9. प्राकृतिक आपदाएं— प्राकृतिक आपदाएं भी पर्यावरणीय अस्थिरता का कारण बन सकती हैं। इसमें भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट, बाढ़ और सूखा शामिल हैं।

भूकंप और ज्वालामुखी विस्फोट — भूकंप और ज्वालामुखी विस्फोट से भूमि और जल संसाधनों का विनाश होता है। ये घटनाएँ पारिस्थितिकी तंत्र को अचानक और गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती हैं।

बाढ़ और सूखा— बाढ़ और सूखा जैसी चरम मौसमी घटनाओं से फसल उत्पादन, जल स्रोत और मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यावरणीय अस्थिरता को बढ़ावा देता है।

निष्कर्ष — पर्यावरणीय अस्थिरता के कारणों का प्रभाव व्यापक और गहन है। इन कारणों के समाधान के लिए हमें सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के जिम्मेदार उपयोग की दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे।

4.10 पर्यावरण

पर्यावरण शब्द व्यापक अर्थों वाला है। इसका प्रायः समस्त पारिस्थितिकी अथवा परिवृत्ति परिवेश, आस-पास अथवा पास-पड़ोस, जीवन यापन एवं कार्यप्रणाली की दशायें वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं के विकास की दशायें आदि अर्थों में प्रयोग किया जाता है।

वास्तव में Environment शब्द फ्रेंच भाषा के Environer शब्द से बना है जिसका तात्पर्य समस्त पारिस्थितिकी होता है जिसमें सभी परिस्थितियाँ दशायें आदि जो वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को प्रभावित करती है। भूगोल में पर्यावरण का एक विशेष महत्व है। इसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव से संबंध है।

वर्तमान समय में अनेक पारिस्थितिकविद Environment शब्द के स्थान पर Habitat अथवा Milieu शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। जिसका तात्पर्य समस्त प्रकृति है।

पार्क—(Park, C.C.) ने स्पष्ट किया है कि पर्यावरण उन सभी दशाओं का योग है जो मानव जाति को निश्चित समयावधि में नियत स्थान पर आवृत्त करती है।

फिटिंग (Fitting H. 1992) के अनुसार “जीवों के पारिस्थितिक का योग पर्यावरण है।”

टांसले— (Tansley, 1926) ने स्पष्ट किया है कि “प्रभावकारी दशाओं का सम्पूर्ण योग पर्यावरण है। जिसमें जीव

निवास करता है।”

वास्तव में पर्यावरण प्राकृतिक दशाओं एवं शक्तियों से निर्मित एक साकार प्राकृतिक स्वरूप है जिसका प्रभाव मानव एवं उसकी क्रियाओं पर पड़ता है।

डब्लू० पी० कन्निघम तथा एम० ए० कन्निघम (2004) ने पर्यावरण को निम्न रूप में परिभाषित किया है।

“पर्यावरण उन परिस्थितियों तथा दशाओं (भौतिक दशाओं) को प्रदर्शित करता है जो किसी एकाकी जीव या जीव समूह को चारों ओर से आवृत्त करती है तथा उसे प्रभावित करती है अथवा उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं को प्रदर्शित करता है जो एकल मानव या मानव समुदाय को प्रभावित करती है। चूंकी मनुष्य प्राकृतिक क्षेत्र से लेकर निर्मित या प्रौद्योगिकीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में रहते हैं अतः ये सभी पर्यावरण की रचना करते हैं।”

4.11 पर्यावरण को प्रभावित करने वाले कारक

पर्यावरण की आधारभूत संरचना के आधार पर पर्यावरण को दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है— यथा— अजैविक या भौतिक पर्यावरण तथा जैविक पर्यावरण।

भौतिक पर्यावरण तीन प्रकार के होते हैं—

(I) स्थलीयमण्डलीय पर्यावरण (II) वायुमण्डलीय पर्यावरण (III) जल मण्डलीय पर्यावरण

जैविक पर्यावरण की संरचना पौधों (वनस्पति) तथा मानव सहित जन्तुओं द्वारा होती है। इनमें मनुष्य एक महत्वपूर्ण कारक होता है। इस आधार पर जैविक पर्यावरण को दो प्रकारों में विभक्त किया जाता है।

सभी जीवधारी अपने विभिन्न स्तरीय सामाजिक समूह तथा संगठन की रचना हेतु कार्य करते हैं। इस प्रकार सामाजिक पर्यावरण का अविर्भाव होता है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न जीवधारी अपने जीवन निर्वाह, अस्तित्व तथा सम्बर्द्धन के लिए भौतिक पर्यावरण से पदार्थों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं। इस प्रकार जीवधारियों मुख्य रूप से मानव द्वारा अपने निर्वाह तथा विकास के लिए भौतिक पर्यावरण से पदार्थों के प्राप्त करने की प्रक्रिया द्वारा **आर्थिक पर्यावरण** का निर्माण होता है।

4.12 पर्यावरण संकट

पर्यावरण के संघटकों को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है—

(I) भौतिक या अजैविक संघटक (II) जैविक संघटक (III) ऊर्जा संघटक

अजैविक संघटक— स्थल, जल, वायु, मृदा आदि।

जैविक संघटक— पौधे एवं जीव जन्तु।

ऊर्जा संघटक— सौर्यिक एवं भूतापीय ऊर्जा।

पारिस्थितिक संकट—

पारिस्थितिक या पर्यावरण संकट तब होता है जब किसी प्रजाति या आबादी के पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन उसके निरंतर अस्तित्व को अस्थिर कर देते हैं।

हाल के भू वैज्ञानिक काल में प्राकृतिक पर्यावरण पर मनुष्यों के प्रभाव के कारण पारिस्थितिक संकट शब्द अक्सर मानव सम्यताओं के कारण उत्पन्न पर्यावरणीय मुद्दों पर लागू होता है।

जैसे— जलवायु संकट, जैवविविधता हानि और प्लास्टिक प्रदूषण जो 21वीं सदी के पहले कुछ दशकों के दौरान प्रमुख वैश्विक चुनौतियों के रूप में उभरे हैं।

4.13 पर्यावरण संकट के कारण

पर्यावरण संकट के प्रमुख निम्न कारण हैं—

I. अजैविक कारकों से उत्पन्न संकट—

जलवायु परिवर्तन का पारिस्थितिकी तंत्र पर बहुत बड़ा असर पड़ने लगा है। वैश्विक तापमान बढ़ने के साथ ही बर्फबारी में कमी आ रही है और समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है। ध्रुवीय भालुओं पर खतरा मंडरा रहा है। मिठे पानी और आर्द्र भूमि पारिस्थितिकी तंत्र तापमान वृद्धि के चरम प्रभावों से जूझ रहे हैं। ठण्डे पानी की मझलियां अन्ततः अपने प्राकृतिक भौगोलिक क्षेत्र को छोड़कर उच्च अक्षांशों पर जा कर ठण्डे पानी में रहने लगी हैं।

II जनसंख्या विस्फोट एवं औद्योगिक क्रान्ति का आगमन—

औद्योगिक क्रान्ति एवं जनसंख्या विस्फोट में पर्यावरण से संसाधनों की माँग को बढ़ा दिया है, लेकिन अतिप्रयोग और दुरुपयोग के कारण उनकी आपूर्ति सीमित है। पर्यावरण क्षरण/संकट के मुख्य कारणों में से एक जनसंख्या उच्चदर है (जिसे जनसंख्या विस्फोट भी कहा जाता है।) बढ़ती जनसंख्या के कारण वन भूमि का औद्योगिक और घरेलू उपयोग दोनों के लिए भूमि में काफी रूपांतरण हुआ है। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों पर महत्वपूर्ण दबाव भी पड़ा है जो सीमित या समाप्त होने वाले हैं। इसके अलावा बढ़ती जनसंख्या पारिस्थितिकी तंत्र में पर्यावरण द्वारा अवशोषित किये जाने की तुलना में अधिक अपशिष्ट उत्पन्न करती है।

III नवीनीकरण और गैर-नवीनीकरणीय संसाधनों का व्यापक दोहन—

नवीनीकरणीय और गैर नवीनीकरणीय संसाधनों के गहन एवं व्यापक दोहन के परिणाम स्वरूप कुछ आवश्यक संसाधन समाप्त हो गये हैं। परिणाम स्वरूप, नए संसाधनों की खोज के लिए प्रौद्योगिकी और अनुसंधान पर भारी मात्रा में धन खर्च किया जाता है। पर्यावरण संकट का एक अन्य कारण व्यापक गरीबी है। कुल भारतीय आबादी का लगभग 30% गरीबी में रहता है। वे जीवित रहने और अपनी ईंधन या बिजली की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरी तरह से जंगलों पर निर्भर हैं। एक ओर इससे विनाश और प्राकृतिक संसाधनों का नुकसान होता है, वहीं दूसरी ओर इससे प्रदूषण भी होता है।

IV कई संसाधनों का विलुप्त होना—

कई संसाधनों का तेजी से विलुप्त होना, जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के साथ मिलकर वैश्विक पर्यावरण संकट का कारण बना है। इसने पारिस्थितिकी तंत्र के बिगाड़ने में भी मदद की है। अप्रत्याशित और अनियमित औद्योगिक विकास के कारण वायु-जल और ध्वनि प्रदूषण के साथ-साथ उद्योगों की स्थापना के लिए पेड़ों की अनियोजित कटाई के कारण वनों की कटाई भी हुई है।

V विकास के प्रक्रिया के कारण वायु और जल प्रदूषण—

वायु में पदार्थों की ऐसी सांद्रता में उपस्थिति जो मनुष्य और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक हो, वायु प्रदूषण कहलाती है। पारिस्थितिकी तंत्र का सामना करने वाली एक और समस्या अनुचित जल संसाधन प्रबंधन या जल प्रदूषण है। विकास प्रक्रिया ने वातावरण और नदियों और झीलों को दूषित कर दिया है। जिसके कारण वायु और जल की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है (भारत में 70% पानी प्रदूषित है) परिणाम स्वरूप श्वसन और जल से संबंधित बीमारियों की घटनाएँ बढ़ रही हैं।

VI समृद्ध उपभोग और उत्पादन मानक—

विकसित दुनिया के समृद्ध उपभोग और उत्पादन मानकों से उत्पन्न अपशिष्ट पर्यावरण की अवशोषण क्षमता को पार कर जाते हैं। समृद्ध उपभोग मानकों ने संसाधन उपलब्धता और कचरा आत्मसात के मामले में पारिस्थितिकी तंत्र पर महत्वपूर्ण दबाव डाला है। संसाधन विलुप्त हो गये हैं। और उत्पादित अपशिष्ट उत्पाद पर्यावरण की अवशोषण क्षमता को पार कर गये हैं। जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय संकट पैदा हो रहे हैं।

VII वैश्विक उष्मन और ओजोन परत का क्षरण—

वैश्विक उष्मन प्रदूषण और वनों की कटाई के कारण वैश्विक तापमान में लगातार वृद्धि हुई। यह ग्रीन

हाउस गैसों विशेष रूप से कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन के कारण होता है। CO_2 के स्तर में वृद्धि से पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ जाता है। ओजोन पृथ्वी की सतह के लिए एक सुरक्षात्मक परत के रूप में कार्य करता है, जो जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। यह खतरनाक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी की सतह तक पहुँचने से रोकता है। जैसे-जैसे ओजोन परत का क्षरण होता है, पृथ्वी की सतह में पराबैंगनी विकरणों के प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है, जिससे पृथ्वी पर जीवन के लिए खतरा पैदा होता है।

VIII जलवायु परिवर्तन—

जलवायु परिवर्तन पहले से ही बायोम को बदल रहा है जिससे भूमि और महासागर में परिस्थितिकी तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरण के लिए आई0 पी0 सी0 सी0 को छठी आकलन रिपोर्ट द्वारा विश्लेषित 4000 प्रजातियों में से आधे जलवायु परिवर्तन के जवाब में अपने वितरण को उच्च अक्षांशों या ऊँचाई पर स्थानांतरित कर चुके हैं।

4.14 पर्यावरण संकट के निदान

विश्व में पर्यावरण दिवस संयुक्त राष्ट्र में पर्यावरण के लिए मनाया जाने वाला सबसे बड़ा उत्सव है, पर्यावरण और जीवन का अनोखा सम्बन्ध है। इन्हीं मायनों में पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जरा सी इच्छा और थोड़े से प्रयास से पर्यावरण को सुरक्षा और संरक्षण दे सकता है। पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया हुआ है इस समस्या से उबरने के लिए पूरी दुनिया का एक होने की जरूरत है। दुर्भाग्य से गरीब देशों को जो मुख्य रूप से अपने अस्तित्व के लिए प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर करते हैं, उन्हें गरीबी से निपटने के लिए पर्यावरण संबंधी चिन्ताओं से निपटने में सक्षम होने के लिए मदद की जरूरत है।

तीन आवश्यक बातें जो ध्यान में रखना चाहिए—

कम उपयोग करना —पुनरावृत्ति करना—पुनः उपयोग करना लगभग सभी चीजों की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

पर्यावरण संकट के निवारण के लिए कई प्रकार के कदम उठाए जा रहे हैं इनमें शामिल हैं—

1. **जलवायु परिवर्तन का सामना करना—** पारिस्थितिकी ऊर्जा का उपयोग करना, वन्य जीवन की संरक्षण और ऊर्जा संचय के लिए प्रोत्साहन देना।
2. **वन्य जीवन का संरक्षण—**
वन्य जीवन के संरक्षण के लिए संरक्षित क्षेत्रों का विस्तार और अनुसंधान और प्रबंधन में नवाचार प्रोत्साहन।
3. **जल संकट का समाधान—**
स्थानीय स्तर पर जल संसाधनों का प्रबंधन जल संरक्षण तंत्रों के विकास और जल संसाधनों के उपयोग में सावधानी बरतना।
4. **प्रदूषण कम करना—**
उदाहरण के लिए वायु प्रदूषण कम करने के लिए साफ—शुद्ध ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करना और औद्योगिक प्रदूषण के नियंत्रण के लिए नए प्रौद्योगिकी उपाय विकसित करना।

4.15 सारांश

परिस्थितिकी अस्थिरता और पर्यावरण संकट आधुनिक युग की महामारी है, जिनके कई कारण हैं। जलवायु परिवर्तन, जल संकट, वन्य जीवन की हानि, और प्रदूषण इसमें मुख्य कारक हैं। ये संकट सामाजिक, आर्थिक और परिस्थितिकी दृष्टि से भी गहरे प्रभाव डाल रहे हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए विशेषज्ञता, सामुदायिक सहभागिता और सकारात्मकता नीतियों की आवश्यकता है।

4.16 शब्द सूची

पारिस्थितिकी	Ecology
पारिस्थितिकी उपागम	Ecology Approach
पारिस्थितिकी तंत्र	Ecology System
प्रजाति	Races
संघटक	Components
पर्यावरण	Enviranment
पर्यावरण संकट	Enviranment Crises
संसाधन	Resource
पारिस्थितिकी अस्थिरता	Ecology Instability

4.17 मूल्यांकन के प्रश्न

- इकोलॉजी (Ecology) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया था ?
(अ) ए० जी० टांसले (ब) ए० हैकेल
(स) फिटिंग (द) सी० सी० पार्क
- पारिस्थितिकी तंत्र (Eco System) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था ?
(अ) ग्रीनेल्स (ब) ए० जी० टांसले
(स) ए० हैकेल (द) लिण्डमैन
- निम्नलिखित में से कौन सा पारिस्थितिकी तंत्र का अजैविक घटक नहीं है?
(अ) ऊर्जा (ब) तापमान
(स) बैक्टेरिया और कवक (द) वर्षा
- वन किस पारिस्थितिकी तंत्र का एक प्रकार है?
(अ) प्राकृतिक पारिस्थितिकी (ब) मानव निर्मित पारिस्थितिकी
(स) जलीय पारिस्थितिकी (द) स्थलीय पारिस्थितिकी
- पर्यावरणीय अस्थिरता का मुख्य कारण क्या है?
(अ) जलवायु परिवर्तन (ब) भूमि का अत्यधिक उपयोग
(स) वन्य जीवन की हानि (द) सभी विकल्प
- वन्य जीवन की हानि का प्रमुख कारण क्या है?
(अ) जलवायु परिवर्तन (ब) जंगलो की कटाई
(स) प्रदूषण (द) सभी विकल्प
- पारिस्थितिकी अस्थिरता का सीधा परिणाम क्या है?
(अ) सामाजिक विवाह (ब) वन्य जीवन की हानि
(स) एकल निकासी (द) विकसित निकासी

आदर्श उत्तर—

(1) ब (2) ब (3) स (4) द (5) द (6) ब (7) ब

4.18 संदर्भ पुस्तकें / उपयोगी पुस्तकें

01. सविन्द्र सिंह— पर्यावरण भूगोल का स्वरूप— प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलहाबाद—2018
02. डॉ० गयात्री प्रसाद एवं डॉ० राजेश नौटियाल— पर्यावरण भूगोल—शारदा पुस्तक भवन इलहाबाद।
03. डॉ० राजकुमार गुर्जर एवं डॉ० बी० सी० जाट— पर्यावरण भूगोल
04. डॉ० रतन जोशी—पर्यावरण भूगोल—साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
05. एच० एम० सक्सेना, राहुल सक्सेना, पूजा सक्सेना—पर्यावरण भूगोल

4.19 अभ्यास प्रश्न— (सत्रांत परीक्षा की तैयारी हेतु)

01. पारिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं? पारिस्थितिकी तंत्र को कितने मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।
02. पारिस्थितिकी उपागम से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या कीजिए।
03. पारिस्थितिकी अस्थिरता को स्पष्ट कीजिए?
04. पर्यावरण क्या है? कितने प्रकार का होता है तथा इसके प्रमुख संघटकों की व्याख्या कीजिए।
05. पर्यावरण संकट क्या है? पर्यावरण संकट उत्पन्न होने के क्या कारण हैं?

नोट— इस इकाई का अध्ययन कर अभ्यास प्रश्नों के उत्तर स्वयं लिखिये।

इकाई-5 : आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संकट

इकाई की रूप रेखा—

- 5.1. प्रस्तावना
- 5.2. उद्देश्य
- 5.3. आर्थिक विकास
- 5.4. आर्थिक विकास का उद्देश्य
- 5.5. आर्थिक विकास की विशेषताएँ
- 5.6. आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
- 5.7. आर्थिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव
- 5.8. आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संकट के मध्य संतुलन
- 5.9. सारांश
- 5.10. शब्द सूची
- 5.11. स्वमूल्यांकन के प्रश्न
- 5.12. संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें
- 5.13. अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

सामान्यतया एक निचली स्थिति में ऊँची स्थिति की ओर गति को विकास सूचक माना जाता है। विकास एक बहुआयामी संकल्पना है जिसके आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक, राजनितिक, संस्थागत, पारिस्थितिकी, नैतिक आदि विविध आयाम हैं। विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जनता की आर्थिक स्थितियों में सुधार होता है, मानव कल्याण में वृद्धि होती है और जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है। विकास सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं में गुणात्मक परिवर्तन तथा मात्रात्मक संवृद्धि की एक प्रक्रिया है।

इस प्रस्तावना के माध्यम से हम इस बात को समझने का प्रयास कर रहे हैं कि किस प्रकार से आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संकट एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।

5.2 उद्देश्य

आर्थिक विकास वास्तविक विकास का एक पक्ष मात्र है जो क्षेत्रीय विकास और समृद्धि को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। इस इकाई के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है—

01. आर्थिक विकास के अर्थ को समझ सकेंगे।
02. आर्थिक विकास के क्या उद्देश्य हैं, के बारे में जान सकेंगे।
03. आर्थिक विकास की क्या आवश्यकताएँ हैं, को समझ सकेंगे।
04. आर्थिक विकास को कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं, को समझ विकसित कर सकते हैं।
05. आर्थिक विकास से किस प्रकार पर्यावरण संकट उत्पन्न होता है को समझ सकेंगे।

5.3 आर्थिक विकास

आर्थिक विकास का अभिप्राय वास्तविक राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से है और यदि किसी अर्थव्यवस्था में इसमें वृद्धि से हो रही है तो कहा जा सकता है कि उसका आर्थिक विकास हो रहा है। आर्थिक विकास एक गत्यात्मक प्रक्रिया है।

आर्थिक विकास को समाज के भौतिक कल्याण में निरंतर वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जाता है। आर्थिक विकास, आर्थिक संवृद्धि से अधिक व्यापक अवधारणा है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के अलावा इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनितिक तथा आर्थिक परिवर्तन सम्मिलित होते हैं जो कि भौतिक उन्नति में योगदान देते हैं। इसमें संसाधनों की आपूर्ति, पूँजी निर्माण की दर, जनसंख्या का आकार और बनावट, प्रौद्योगिकी-कौशल और कार्य-कुशलता संस्थागत तथा प्रबंध व्यवस्था में परिवर्तन शामिल होते हैं।

संक्षेप में आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें पूर्ति के भौतिक कारकों तथा मांग की बनावट जैसे अंतर्संबंधित परिवर्तनों की एक लम्बी श्रेणी सम्मिलित होती है, जिनसे देश के राष्ट्रीय उत्पादन दीर्घ काल तक वृद्धि होती है।

5.4 आर्थिक विकास के उद्देश्य

आर्थिक विकास के उद्देश्यों को विस्तार से समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये उद्देश्य देश की समग्र प्रगति और समृद्धि के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त होते हैं। आर्थिक विकास के उद्देश्यों को निम्नलिखित बिंदुओं से विस्तृत किया जा सकता है—

01. आय और रोजगार के अवसर बढ़ाना—

आर्थिक विकास का एक प्रमुख उद्देश्य लोगों की आय में वृद्धि करना और रोजगार के नये अवसर पैदा करना है। इससे लोगों की जीवन स्तर में सुधार होता है और गरीबी कम होती है। औद्योगिकीकरण, कृषि विकास और सेवा क्षेत्र में वृद्धि के माध्यम से रोजगार के अवसर उत्पन्न किये जाते हैं।

02. गरीबी उन्मूलन—

आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण उद्देश्य गरीबी को समाप्त करना है। यह तभी सम्भव है जब आर्थिक संसाधनों का सही और समान वितरण हो और समाज के सभी वर्गों को विकास का लाभ मिले। सरकारी योजनाएं और नीतियां जैसे मनरेगा और जन धन योजना गरीबी उन्मूलन में सहायक हो सकती हैं।

03 शिक्षा और स्वास्थ्य योजनाओं में सुधार—

शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और पहुंच में सुधार करना आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अच्छे स्वास्थ्य और शिक्षा से कार्यबल की उत्पादकता बढ़ती है, जो कि आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

04 औद्योगिकीकरण और तकनीकी उन्नति—

औद्योगिकीकरण और तकनीकी उन्नति को बढ़ावा देना आर्थिक विकास के लिए प्रमुख उद्देश्यों से एक है। इससे उत्पादन की क्षमता बढ़ती है, रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं, और अर्थव्यवस्था में विविधता आती है।

05 संसाधनों का उचित वितरण—

आर्थिक विकास का एक और महत्वपूर्ण उद्देश्य प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों का उचित और संतुलित वितरण सुनिश्चित करना है इससे यह सुनिश्चित होता है कि संसाधनों का उपयोग अधिकतम और स्थायी रूप से किया जा सकता है।

06 मानव विकास—

आर्थिक विकास के माध्यम से विकास का समग्र उद्देश्य प्राप्त करना भी शामिल है, जिससे लोगों के जीवन स्तर और जीवन गुणवत्ता को बेहतर बनाना शामिल है। यह केवल आर्थिक समृद्धि तक सीमित नहीं है बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय आयाम भी शामिल है।

07 सतत विकास एवं पर्यावरण संरक्षण—

आर्थिक विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण है इसके तहत विकास की प्रक्रिया को इस प्रकार से संचालित करना शामिल है कि पर्यावरण पर न्यूनतम नकारात्मक प्रभाव पड़े और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग हो सके।

08 आर्थिक स्थिरता

अंततः आर्थिक विकास का उद्देश्य आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना है। इसके तहत मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करना वित्तीय असंतुलन को कम करना, और आर्थिक नीतियों को स्थायी और संतुलित बनाना शामिल है। इससे दीर्घकालिक आर्थिक विकास संभव हो पाता है।

इन सभी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, आर्थिक विकास एक समग्र प्रक्रिया है जो समाज की भलाई और समृद्धि के लिए आवश्यक है। यह न केवल आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहित करता है, बल्कि सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और व्यक्तिगत विकास को भी सुनिश्चित करता है।

5.5 आर्थिक विकास की विशेषतायें—

आर्थिक विकास किसी देश या समाज की समग्र प्रगति को दर्शाता है। यह केवल आर्थिक सुधार तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि इसके कई आयाम और गहराइयाँ हैं। जो निम्नलिखित हैं—

01. अर्थव्यवस्था का विस्तार—

आर्थिक विकास का पहला और सबसे महत्वपूर्ण पहलू है अर्थव्यवस्था का विस्तार। जब किसी देश की आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ती हैं, तब उसका सकल घरेलू उत्पाद (GDP) बढ़ता है। इस विस्तार के कारण उत्पादन और सेवा क्षेत्रों में बढ़ोत्तरी होती है, जिससे रोजगार के नये अवसर पैदा होते हैं। विभिन्न उद्योगों जैसे कृषि, विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में वृद्धि होती है, जिससे समग्र अर्थव्यवस्था का विकास होता है।

02. आय और जीवन स्तर में सुधार—

आर्थिक विकास का सीधा प्रभाव लोगों की आय और जीवन स्तर पर पड़ता है। आय में वृद्धि होने से लोग बेहतर जीवन जी सकते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और आवास की उपलब्धता में सुधार होता है। इससे लोग अपनी और अपने परिवार की बुनियादी जरूरतों को आसानी से पूरा कर सकते हैं, जिससे जीवन स्तर में सुधार होता है।

03. औद्योगिकीकरण और शहरीकरण—

आर्थिक विकास के साथ-साथ औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया भी तेज होती है। उद्योगों के विस्तार के कारण ग्रामीण क्षेत्रों से लोग रोजगार की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास करते हैं। इससे शहरों का विकास होता है और नई बुनियादी सुविधाओं जैसे सड़कें, बिजली और पानी की व्यवस्था में सुधार होता है।

04. प्राकृतिक संसाधनों का दोहन—

आर्थिक विकास के दौरान प्राकृतिक संसाधनों का आधिकाधिक दोहन होता है। खनिज, वन, जल और ऊर्जा संसाधनों का व्यापक रूप से उपयोग होता है। इस दोहन से उत्पादकता में वृद्धि होती है, लेकिन इससे पर्यावरण पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए, सतत विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

05. प्रौद्योगिकी विकास—

आर्थिक विकास के साथ-साथ प्रौद्योगिकी में भी तेजी से सुधार होता है। नये और उन्नत उत्पादन विधियों का विकास होता है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है। प्रौद्योगिकी के विकास से कृषि, विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में दक्षता बढ़ती है और नई तकनीकों का उपयोग कर उत्पादन लागत को कम

किया जा सकता है।

06. वित्तीय संसाधनों का विकास—

आर्थिक विकास के साथ-साथ बैंकिंग और वित्तीय संसाधनों का भी विस्तार होता है। इससे पूंजी का संचय और निवेश में वृद्धि होती है। बैंक, बीमा कम्पनियाँ और अन्य वित्तीय संस्थाएँ आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करती हैं और आर्थिक विकास को बढ़ावा देती हैं।

07. मानव संसाधन विकास—

आर्थिक विकास के लिए मानव संसाधन का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उच्च गुणवत्ता वाले कामगार और विशेषज्ञ आर्थिक विकास को गति देते हैं। शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से मानव संसाधनों की दक्षता में वृद्धि होती है। जिससे उत्पादन और सेवा क्षेत्रों में सुधार होता है।

08. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—

आर्थिक विकास से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी वृद्धि होती है। जब देश की उत्पादकता सामग्री और सेवाएँ उच्च गुणवत्ता की होती हैं। जब देश की उत्पादन सामग्री और सेवाएँ उच्च गुणवत्ता की होती हैं, तब वे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा कर सकती हैं। निर्यात के माध्यम से विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है और आयात के माध्यम से नवीनतम तकनीक और उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं। इससे देश की आर्थिक स्थिति और मजबूत होती है।

09. बाजार का विस्तार—

आर्थिक विकास से बाजार का भी विस्तार होता है। घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तुओं और सेवाओं की मांग और आपूर्ति में वृद्धि होती है। इससे व्यापारिक गतिविधियाँ बढ़ती हैं और देश की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है।

10. आर्थिक असमानता —

आर्थिक विकास के बावजूद, कई बार आर्थिक असमानता भी बढ़ती है। कुछ वर्गों को विकास का अधिक लाभ मिलता है जबकि अन्य वंचित रह जाते हैं। यह असमानता सामाजिक और आर्थिक असंतोष को जन्म दे सकती है। इसलिए, आर्थिक विकास को साथ-साथ समानता और समावेशी विकास को भी सुनिश्चित करना आवश्यक है।

11. संरचनात्मक परिवर्तन—

आर्थिक विकास के साथ-साथ संरचनात्मक परिवर्तन भी होते हैं। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे औद्योगिक और सेवा प्रधान अर्थव्यवस्था में बदलती है। इससे रोजगार के नये अवसर पैदा होते हैं और आर्थिक गतिविधियों में विविधता आती है।

12. सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन—

आर्थिक विकास से सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन भी होते हैं। लोगों की सोच, जीवन शैली, और समाज में शिक्षा और जागरूकता का स्तर बढ़ता है, जिससे सामाजिक प्रगति होती है।

निष्कर्ष—

आर्थिक विकास की ये विशेषताएँ दिखती हैं कि यह एक जटिल और व्यापक प्रक्रिया है जो समाज के हर पहलू को प्रभावित करती है। आर्थिक विकास से न कि अर्थव्यवस्था में सुधार होता है बल्कि समाज में समग्र रूप से सकारात्मक बदलाव भी आते हैं। आर्थिक विकास के लिए संतुलित और सतत विकास को सुनिश्चित करना आवश्यक है, ताकि सभी वर्गों को विकास का लाभ मिल सके और समाज में समानता और समृद्धि बनी रहे।

5.6 आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- प्राकृतिक संसाधनों में भूमि क्षेत्र और मिट्टी की गुणवत्ता, वन सम्पदा, अच्छी नदी प्रणाली, खनिज और तेल संसाधन अनुकूल जलवायु आदि शामिल हैं।
- आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों में भूमि क्षेत्र और मिट्टी की गुणवत्ता वन सम्पदा, अच्छी नदी प्रणाली, खनिज और तेल संसाधक अनुकूलन जलवायु आदि शामिल हैं।
- आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता महत्वपूर्ण है।
- प्राकृतिक संसाधनों की कमी वाला देश तेजी से विकास करने में असमर्थ हो सकता है।

पूंजी निर्माण—

पूंजी निर्माण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समुदाय की बचत को संयंत्र, उपकरण और मशीनरी देश की पूंजीगत वस्तुओं में निवेश किया जाता है, जिससे देश की उत्पादक क्षमता और श्रमिक दक्षता बढ़ती है, तथा देश में वस्तुओं और सेवाओं का अधिक प्रवाह सुनिश्चित होता है।

तकनीकी प्रगति—

तकनीकी प्रगति में मुख्य रूप से उत्पादन की नई और उन्नत विधियों के प्रयोग अथवा विद्यमान विधियों में सुधार पर अनुसंधान करना शामिल है।

- प्राकृतिक संसाधन कभी-कभी तकनीकी तौर पर, तकनीकी प्रगति से उत्पादकता में वृद्धि होती है।

उद्यमशीलता—

उद्यमशीलता में नये निवेश अवसरों की पहचान करने की क्षमता के साथ-साथ जोखिम लेने और नई एवं बढ़ती व्यवसायिक इकाइयों में निवेश करने की इच्छा भी शामिल है।

मानव संसाधन विकास—

- आर्थिक विकास के स्तर को निर्धारित करने में जनसंख्या की अच्छी गुणवत्ता महत्वपूर्ण है।
- परिणामस्वरूप शैक्षिक चिकित्सा और अन्य सामाजिक योजनाओं के रूप में मानव पूंजी में निवेश अत्यधिक वाछनीय है।

जनसंख्या वृद्धि—

- श्रम आपूर्ति में वृद्धि का परिणाम है, जो वस्तुओं और सेवाओं के लिए एक बड़ा बाजार बनाती है। परिणामस्वरूप अधिक श्रम अधिक उत्पादन पैदा करता है, जिसे एक बड़ा बाजार अवशोषित करता है।
- इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पादन, आय और रोजगार में वृद्धि जारी रहती है तथा आर्थिक विकास में सुधार होता है।

गैर आर्थिक कारक—

राजनीतिक कारक—

आधुनिक आर्थिक विकास के लिए राजनीतिक स्थिरता और मजबूत प्रशासन महत्वपूर्ण है।

एक स्थिर, मजबूत और कुशल सरकार ईमानदार प्रशासन, पारदर्शी नितियाँ और उनका कुशल कार्यान्वयन निवेशकों का विश्वास बढ़ाता है और घरेलू और विदेशी पूंजी को आकर्षित करता है, जिसके परिणामस्वरूप तेजी से आर्थिक विकास होता है।

सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारक—

- सामाजिक कारकों में सामाजिक दृष्टिकोण, सामाजिक मूल्य और सामाजिक और सामाजिक संस्थाएँ शामिल हैं, जो शिक्षा के विस्तार और एक समाज से दूसरे समाज में संस्कृतियों के स्थानांतरण के साथ बदलती हैं।
- आधुनिक विचारधारा, मूल्य और दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप नई खोजें और नवाचार होते हैं, साथ ही नए उद्यमियों का उदय भी होता है।

शिक्षा—

- अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि शिक्षा विकास का प्राथमिक साधन है।
- उन देशों में अधिक प्रगति हुई है जहाँ शिक्षा व्यापक रूप से उपलब्ध है।

निष्कर्ष—

किसी देश में सतत आर्थिक विकास का राष्ट्रीय आय और रोजगार के स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप जीवन स्तर में सुधार होता है। इसके अलावा, यह कर राजस्व में वृद्धि करके सरकारी, वित्त को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी देश में आर्थिक विकास तभी सम्भव है जब अर्थव्यवस्था की ताकत और कमजोरियों का सही तरीके से आकलन किया जाए।

आर्थिक विकास और पर्यावरण के बीच जटिल सम्बन्ध—

पर्यावरण एवं आर्थिक विकास एक दूसरे से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। अर्थव्यवस्था के लिए संसाधन पर्यावरण से आते हैं, जबकि आर्थिक गतिविधि का पर्यावरण प्रभाव पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह परस्पर क्रिया दो तरफा है, भले ही इसे मापना जटिल और चुनौती पूर्ण हो सकता है।

किसी न किसी तरह से, आर्थिक गतिविधि पर्यावरण को नुकसान पहुँचा सकती है। उदाहरण के लिए, ऊर्जा उत्पादन को लिए जीवाश्म ईंधन के जलने से ग्रीन हाउस गैसों का वायुमण्डल में उत्सर्जन होता है, जो जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। खनिजों और लकड़ी जैसे प्राकृतिक संसाधनों के खनन से भी इसी तरह का पारिस्थितिक नुकसान हो सकता है।

दूसरी ओर ऐसे समय भी होते हैं जब पर्यावरण का अर्थव्यवस्था या आर्थिक विकास पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए बाढ़ और तुफान जैसी प्राकृतिक आपदाएँ बुनियादी ढाँचे को नुकसान पहुँचा सकती हैं, और आर्थिक गतिविधियों में बाधा डाल सकती हैं। हाल के वर्षों में पर्यावरण पर आर्थिक गतिविधियों के प्रभावों को संबोधित करने की आवश्यकता अधिक से अधिक स्पष्ट हो गई है। परिणाम स्वरूप कई पर्यावरण कानून बनाए गए हैं, जिनमें ईंधन दक्षता और उत्सर्जन नियंत्रण की सीमाएँ शामिल हैं।

कोविड-19 महामारी ने आर्थिक विकास और पर्यावरण के बीच के अन्तर्संबंध को और उजागर किया है। महामारी ने दुनिया भर में आर्थिक गतिविधियों को बाधित किया है, उदाहरण के लिए, यातायात कम होने के कारण कुछ क्षेत्रों में वायु प्रदूषण में वृद्धि ने इसकी भरपाई कर दी है।

आर्थिक विकास और पर्यावरण संकट किस प्रकार परस्पर संबंधित है, इसके कुछ विशिष्ट उदाहरण यहाँ दिये गये हैं।

- आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि से ऊर्जा की माँग बढ़ जाती है, जिससे प्रदूषण बढ़ सकता है।
- कृषि या विकास के लिए बनों की कटाई की संख्या कम हो सकती है तथा समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँच सकता है।
- कारखानों और वाहनों से होने वाला प्रदूषण मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को नुकसान पहुँचा सकता है।

परन्तु इसके अतिरिक्त पर्यावरण पर आर्थिक गतिविधियों के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं। जो निम्न हैं।

1. नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में निवेश
2. ऊर्जा दक्षता में सुधार
3. अपशिष्ट कम करना
4. प्राकृतिक आवासों की सुरक्षा
5. टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देना

ये कदम उठाकर हम सभी के लिए अधिक समृद्ध और टिकाऊ भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

सारांश—

इस इकाई के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है किस प्रकार से आर्थिक विकास किसी देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है।

5.7 आर्थिक विकास पर पर्यावरण पर प्रभाव

आर्थिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव एक व्यापक और जटिल विषय है, जिसमें कई विभिन्न पहलुओं और दृष्टिकोणों का समावेश होता है। आर्थिक विकास और पर्यावरण के बीच का संबंध हमेशा सीधा नहीं होता इसमें कई परस्पर संबंधित जीवन स्तर में सुधार, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, और राष्ट्रीय धन में वृद्धि के रूप में मापा जा सकता है, पर्यावरण पर कई तरह के प्रभाव डालता है।

1. प्राकृतिक संसाधनों का दोहन —

आर्थिक विकास के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी बढ़ता है। उद्योग और कृषि और शहरीकरण के लिए जल, खनिज, वन और भूमि जैसी संसाधनों की मांग बढ़ती जाती है। यह संसाधनों की अधिकता और असंतुलन का कारण बनता है। उदाहरण के लिए भारत में तेजी से हो रहे औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने जल संकट को जन्म दिया है, क्योंकि उद्योग और शहरी क्षेत्रों में पानी की भारी मात्रा में आवश्यकता होती है।

संसाधनों के अत्यधिक दोहन का दीर्घकालिक प्रभाव गंभीर होता है। जैसे-जैसे संसाधन कम होते जाते हैं, उनका पुनः पूर्ति संभव नहीं होता, जिससे पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त, वन्यजीवों का प्राकृतिक निवास स्थान नष्ट हो जाता है, जिससे जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. प्रदूषण—

आर्थिक विकास और प्रदूषण के बीच का संबंध स्पष्ट और महत्वपूर्ण है। उद्योगों से निकलने वाले रसायन, वाहनों से निकलने वाला धुआं, और कचरे का अनियंत्रित निपटान सभी प्रकार के प्रदूषण का कारण बनते हैं। वायु, जल और मिट्टी का प्रदूषण पर्यावरण के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

वायु प्रदूषण, जो कारखानों और वाहनों में निकलने वाले धुएं के कारण होता है, श्वसन तंत्र के रोगों हृदय रोगों, और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों का कारण बनता है। जल प्रदूषण जो उद्योगों और कृषि से निकलने वाले रसायनों के कारण होता है, पेयजल को नुकसान पहुंचाता है। मिट्टी का प्रदूषण, जो रसायनों के अत्यधिक उपयोग और कचरे के निपटान के कारण होता है, कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है और खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

3. जैव विविधता का नुकसान—

जंगलों की कटाई, भूमि उपयोग में परिवर्तन और अन्य मानव गतिविधियाँ जैव विविधता को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। आर्थिक विकास के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती है, जिसके कारण जंगलों की कटाई होती है और वन्यजीवों का प्राकृतिक निवास स्थल नष्ट हो जाता है। यह न केवल वन्य जीवों के जीवन को प्रभावित करता है, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन को भी बीगाड़ता है। कई

प्रजातियां विलुप्त के कगार पर पहुँच जाती हैं। उदाहरण के लिए, अमेजन वर्षा वन में हो रही वनों की कटाई ने वहाँ की कई प्रजातियों को विलुप्ति के कगार पर ला दिया है। जैव विविधता का नुकसान पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यक्षमता को प्रभावित करता है और उसके लचीलापन को कम करता है।

4. जलवायु परिवर्तन—

आर्थिक गतिविधियों से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन होते हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव वैश्विक स्तर पर महसूस किया जाता है और इसके परिणाम स्वरूप बाढ़ सूखा और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता बढ़ती है।

वैश्विक उष्मन के कारण ध्रुवीय बर्फ पिघल रही है, जिससे समुद्र का स्तर बढ़ रहा है और तटीय क्षेत्रों में बाढ़ का खतरा बढ़ गया है। जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप कृषि उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे खाद्य सुरक्षा पर खतरा उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, भारत में हाल के वर्षों में असमान्य मानसून और सूखा पड़ने के कारण कृषि उत्पादन में कमी आयी है, जिससे किसानों की समस्याएं बढ़ गयी हैं।

5. मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट—

कृषि और निर्माण कार्यों के कारण मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है। कृषि में रसायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोगों से मिट्टी की उर्वरता कम होती है। इसके अलावा शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण मिट्टी का क्षरण होता है और भूमि बंजर होती जाती है।

मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट का प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है, जिससे खाद्य सुरक्षा को खतरा होता है। मिट्टी के क्षरण के कारण जल धारण क्षमता भी कम हो जाती है, जिससे सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए, अफ्रीका के सहेल क्षेत्र में मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट के कारण कृषि उत्पादन में कमी आई है और खाद्य संकट की स्थिति उत्पन्न हुई है।

6. ऊर्जा की खपत और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन—

आर्थिक विकास के लिए ऊर्जा की भारी मात्रा में आवश्यकता होती है। पारंपरिक ऊर्जा का स्रोत जैसे कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस का उपयोग ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का प्रमुख कारण है। ऊर्जा की खपत बढ़ने से ग्रीन हाउस गैसों को उत्सर्जन भी बढ़ता है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन में वृद्धि होती है।

विशेषकर विकासशील देशों में, ऊर्जा की मांग ईंधनों पर निर्भरता बढ़ी है। इसके कारण वायु प्रदूषण और (ग्लोबल वार्मिंग) वैश्विक उष्मन के स्तर में भी वृद्धि हुई है। ऊर्जा की खपत और उसके प्रभाव को संतुलित करने के लिए हरित ऊर्जा स्रोतों का उपयोग बढ़ाना आवश्यक है।

7. शहरीकरण और भूमि उपयोग परिवर्तन—

आर्थिक विकास अक्सर शहरीकरण के माध्यम से होता है, जिससे भूमि उपयोग में परिवर्तन होता है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या का प्रवास होता है, जिससे शहरो का विस्तार होता है और प्राकृतिक भूमि का शहरी भूमि में रूपांतरण होता है।

शहरीकरण के कारण वनस्पति और जल निकायों का क्षरण होता है, जिससे पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं। शहरी क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे के निर्माण के कारण प्राकृतिक भूमि पर दबाव बढ़ता है, जिससे पारिस्थितिक संतुलन में असंतुलन उत्पन्न होता है।

8. अपशिष्ट प्रबंधन की समस्याएं—

आर्थिक विकास के साथ-साथ अपशिष्ट उत्पादन में भी वृद्धि होती है। उद्योगों, घरों और व्यवसायों से उत्पन्न ठोस और तरल अपशिष्ट का प्रबंधन एक बड़ी चुनौती बन जाता है। अनुचित अपशिष्ट प्रबंधन से पर्यावरण प्रदूषण और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

विशेष रूप से प्लास्टिक और इलेक्ट्रॉनिक कचरे का बढ़ता उत्पादन पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा है। इन अपशिष्टों का उचित निपटान न होने से मिट्टी, जल और वायु प्रदूषित होते हैं, जिससे जैव विविधता और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

9. जल संसाधनों पर दबाव—

आर्थिक विकास के कारण जल संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। उद्योगों, कृषि और घरेलू उपयोग के लिए पानी की माँग तेजी से बढ़ती है, जिससे जल संकट उत्पन्न होता है। कई क्षेत्रों में जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है, जिससे जलस्तर में गिरावट आ रही है और जल की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है।

जल संसाधनों के अत्यधिक दोहन से नदियों, झीलों और भूजल स्रोतों का सूखना शुरू हो जाता है। यह पारिस्थितिक तंत्र को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। और विविधता को खतरे में डालता है। जल संसाधनों के सतत प्रबंधन के लिए जल संरक्षण और पुनर्चक्रण की तकनीकों का उपयोग आवश्यक है।

10. कृषि और पारिस्थितिकीय प्रभाव—

आर्थिक विकास के लिए कृषि का विस्तार आवश्यक है, लेकिन यह पारिस्थितिक तंत्र पर भी गंभीर प्रभाव डालता है। कृषि के लिए वनों की कटाई, जल संसाधनों का अत्यधिक उपयोग, और रासायनिक उर्वरकों का उपयोग पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करता है।

रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरकता कम होती है और जल संसाधनों में प्रदूषण बढ़ता है। इसके अलावा जैविक खेती के स्थान पर मोनोक्रॉपिंग के चलन से जैव विविधता में कमी आती है। कृषि के सतत विकास के लिए जैविक खेती और जल संरक्षण तकनीकों का उपयोग बढ़ाना आवश्यक है।

11. वन और वनीकरण—

आर्थिक के वनों की कटाई से न केवल जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, बल्कि कार्बन डाई आक्साइड के अवशोषण की क्षमता भी कम होती है। वनों की कटाई के कारण मिट्टी का कटाव, बाढ़ और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएं बढ़ जाती हैं।

वनीकरण और पुनर्वनीकरण के प्रयासों से इन समस्याओं को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। वन संरक्षण और पुनर्वनीकरण के प्रयासों को बढ़ावा देने से कार्बन डाई ऑक्साइड का अवशोषण बढ़ेगा और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सकेगा।

12. पारिस्थितिक सेवाओं पर प्रभाव—

आर्थिक विकास से पारिस्थितिक सेवाओं पर प्रभाव पड़ता है। पारिस्थितिकी सेवाएँ जल की शुद्धता, वायु की गुणवत्ता, और पोषक तत्वों को पुनर्चक्रण, आर्थिक गतिविधियों से प्रभावित होती हैं। पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता और कार्यक्षमता में कमी आने से मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पारिस्थितिक सेवाओं के संरक्षण के लिए सतत विकास नीतियों और प्रभाओं को अपनाना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि आर्थिक विकास पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए हो, ताकि पारिस्थितिक सेवाएं सुरक्षित रहें।

13. मृदाक्षरण—

मृदाक्षरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव है जो आर्थिक विकास से उत्पन्न होता है। कृषि निर्माण और औद्योगिकीकरण के कारण मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट आती है। मिट्टी क्षरण से मिट्टी की गुणवत्ता कम होती है, जिससे उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और खाद्य सुरक्षा को खतरा होता है।

मृदा क्षरण के कारण जलधारण क्षमता भी कम हो जाती है। मिट्टी के संरक्षण और पुनर्वास के लिए

सतत कृषि प्रथाओं और भूमि उपयोग की योजनाओं को सतत कृषि प्रथाओं और भूमि आयोग की योजनाओं को अपनाना आवश्यक है।

14. खाद्य सुरक्षा और पोषण—

आर्थिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव खाद्य सुरक्षा और पोषण पर भी पड़ता है। कृषि उत्पादन में कमी, मृदाक्षरण और जल संसाधनों की कमी से खाद्य सुरक्षा और पोषण की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सतत कृषि प्रथाओं जल संरक्षण तकनीकों और खाद्य उत्पादन में विविधता को बढ़ावा देना आवश्यक है। इसके अलावा कृषि अनुसंधान और विकास में निवेश बढ़ाना भी महत्वपूर्ण है।

15. सामाजिक और आर्थिक विषमता—

आर्थिक विकास से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएं सामाजिक एवं आर्थिक विषमता को भी बढ़ा देती हैं। पर्यावरणीय समस्याओं का प्रभाव अक्सर समाज के कमजोर और गरीब वर्गों पर अधिक पड़ता है। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और संसाधनों की कमी से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले लोग होते हैं। जो आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं।

सामाजिक और आर्थिक विषमता को कम करने के लिए पर्यावरणीय न्याय सुनिश्चित करना आवश्यक है। पर्यावरणीय नीतियों और कार्यक्रमों में सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित करना और उन्हें लाभ पहुंचाना महत्वपूर्ण है।

16. स्वास्थ्य पर प्रभाव—

आर्थिक विकास और पर्यावरणीय प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। वायु और जल प्रदूषण से श्वसन तंत्र के रोग, हृदय रोग, और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों का खतरा बढ़ता है। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न गर्मी की लहरें बाढ़ और सूखा स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ाते हैं।

स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने के लिए पर्यावरणीय नीतियों और कार्यक्रमों में स्वास्थ्य संबंधी दृष्टिकोण को शामिल करना आवश्यक है। सार्वजनिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए पर्यावरणीय संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण के उपायों को सख्ती से लागू करना आवश्यक है।

निष्कर्ष—

आर्थिक विकास और पर्यावरण के बीच का संबंध जटिल और परस्पर संबंधित है। आर्थिक विकास आवश्यक है लेकिन इसे पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए करना महत्वपूर्ण है। सतत विकास हरित प्रौद्योगिकी और पर्यावरणीय नीतियों को अपनाना समय की आवश्यकता है। इसके लिए सरकारों, उद्योगों और समाज के सभी वर्गों को मिलकर प्रयास करना होगा ताकि आर्थिक विकास और पर्यावरणीय संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित किया जा सके। सतत विकास के लिए समग्र दृष्टिकोण और दीर्घकालिक योजनाएं आवश्यक हैं ताकि हम एक सुरक्षित और स्वस्थ भविष्य की ओर बढ़ सकें।

5.8 आर्थिक विकास और पर्यावरणीय संकट के मध्य संतुलन

आर्थिक विकास और पर्यावरण संकट के बीच संतुलन बनाना एक जटिल और महत्वपूर्ण चुनौती है। दोनों के बीच एक स्थायी संतुलन प्राप्त करना न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए आवश्यक है बल्कि आने वाली पीढ़ियों के भविष्य को भी सुरक्षित करता है। यहाँ कुछ बिन्दु हैं जो इस संतुलन को समझने में मदद कर सकते हैं।

(I) पर्यावरणीय संरक्षण की आवश्यकता—

- आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया जाता है इससे जलवायु परिवर्तन वनों की कटाई और जैव विविधता की हानि जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।
- पर्यावरणीय संकट से बचने के लिए हमें अपने विकास के तरीकों को स्थायी बनाना होगा, जैसे कि

हरित ऊर्जा स्रोतों का उपयोग और पुर्नचक्रण बढ़ावा देना।

(II) स्थायी विकास की ओर—

- सतत विकास का उद्देश्य आर्थिक, समाजिक और पर्यावरणीय पक्षों के बीच संतुलन स्थापित करना है।
- यह दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करता है कि विकास न केवल आर्थिक लाभ लाए, बल्कि पर्यावरण और सामाजिक जिम्मेदारियों को भी ध्यान में रखे।

(III) पर्यावरणीय नीतियों का समावेश—

- सरकारों और व्यवसायों को पर्यावरणीय नीतियों को अपने विकास योजनाओं में शामिल करना चाहिए।
- स्थानीय स्तर पर भी पर्यावरण संरक्षण की पहल को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जैसे कि वृक्षारोपण, जल संरक्षण और कचरा प्रबंधन।

(IV) सामाजिक जागरूकता और शिक्षा—

- लोगों को पर्यावरण संरक्षण के महत्व के बारे में शिक्षित करना और जागरूकता फैलाना अत्यन्त आवश्यक है।
- शिक्षा के माध्यम से लोग समझ सकते हैं कि वे किस प्रकार अपने जीवन में छोटे-छोटे बदलाव करके पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं।

(V) तकनीकी नवाचार—

- तकनीकी नवाचारों का उपयोग करके हम पर्यावरणीय समस्याओं का सामाधान खोज सकते हैं।
- उदाहरण के लिए, ऊर्जा दक्षता बढ़ाने वाली प्रौद्योगिकियाँ और कम प्रदूषण वाली परिवहन प्रणालियाँ।

(Vi) तकनीकी नवाचार—

- पर्यावरणीय समस्याएं वैश्विक होती हैं और इनके समाधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है।
- देशों के एक साथ आकर वैश्विक जलवायु संधियों और अन्य समझौतों के माध्यम से एक जुट प्रयास करना चाहिए।

5.9 सारांश

आर्थिक विकास और पर्यावरण संकट के बीच संतुलन बनाये रखना एक कठिन कार्य हो सकता है, लेकिन यह आवश्यक है। हमें अपने विकास के मॉडल को इस प्रकार से पुर्नपरिभाषित करना होगा कि वह पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना हो। इसके लिए एकीकृत प्रयास जागरूकता और सतत विकास की ओर बढ़ने की आवश्यकता है।

इस इकाई से स्पष्ट है कि एक सुदृढ़ आर्थिक विकास की क्या विशेषताएं हैं तथा कौन से ऐसे कारक हैं जो किसी देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। इसमें यह समझाने का प्रयास किया गया है कि आर्थिक विकास के कुछ सकारात्मक पहलू पर्यावरण संकट उत्पन्न होता है। निम्न बातें जो ध्यान देने योग्य हैं—

- आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण से भी सम्बन्धित बातों का ध्यान देना आवश्यक है। किस देश का आर्थिक विकास वहां की अर्थव्यवस्था को मजबूत करना है परन्तु पर्यावरण की गुणवत्ता को नष्ट करता है जो कि ध्यान देने योग्य बातें हैं।

5.10 शब्दसूची

विकास	Development
विशेषताएं	Speciality
पर्यावरण	Environment
संकट	Crises
गुणवत्ता	Quality
कारक	Factors
अर्थव्यवस्था	Economy
ऊर्जा दक्षता	Energy Efficiency

5.11 स्वमूल्यांकन के प्रश्न

1. "विकास के तीन आयाम" में से निम्नलिखित में से कौन सा आयाम नहीं है?
 - (अ) सामाजिक विकास
 - (ब) आर्थिक विकास
 - (स) राजनीतिक विकास
 - (द) पर्यावरणीय विकास
2. आर्थिक विकास का क्या अर्थ है?
 - (अ) केवल उत्पादन में वृद्धि
 - (ब) सामाजिक और आर्थिक स्थिति में समग्र सुधार
 - (स) केवल सेवा क्षेत्र में वृद्धि
 - (द) केवल निर्यात में वृद्धि
3. किसी देश की आर्थिक प्रगति का माप किससे किया जाता है?
 - (अ) सकल घरेलू उत्पाद(GDP) के माध्यम से
 - (ब) मानव सूचकांक(HDI) के माध्यम से
 - (स) गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या के माध्यम से
 - (द) उपरोक्त सभी से
4. प्रवासी श्रमिकों का क्या अर्थ है?
 - (अ) जो एक देश से दूसरे देश में कार्य करने के लिए जाते हैं ।
 - (ब) जो केवल ग्रामीण क्षेत्रों में काम करते हैं।
 - (स) जो अपने मूल निवास स्थान से दूर दूसरे क्षेत्रों में काम करते हैं।
 - (द) जो केवल शहरों में काम करते हैं।
5. निम्नलिखित में से कौन सा कारक पर्यावरण संकट में योगदान नहीं देता है?
 - (अ) औद्योगिकरण
 - (ब) वनीकरण (अधिक पेड़ लगाना)
 - (स) शहरीकरण
 - (द) कृषि विस्तार
6. निम्नलिखित कौन सी रणनीति पर्यावरण संकट को कम करने में सबसे प्रभावी है?
 - (अ) ऊर्जा के नवीनीकरणीय स्रोतों का उपयोग।
 - (ब) आर्थिक कारखाने लगाना।

- (स) अधिक खनिज संसाधनों का उपयोग
(द) सभी उत्पादन गतिविधियों को बढ़ाना

आदर्श उत्तर—

(1) द (2) ब (3) द (4) स (5) ब (6) अ

5.12 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

5.13 अभ्यास प्रश्न

1. आर्थिक विकास से क्या अभिप्राय है? एवं इसकी क्या विशेषताएं हैं?
2. आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले गैर आर्थिक एवं आर्थिक कारक को स्पष्ट कीजिए।
3. विकासशील देशों में आर्थिक विकास को क्या प्रभावित करता है?
4. आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संकट किस प्रकार से एक दूसरे से सम्बन्धित हैं? व्याख्या कीजिए।

इकाई-06 : जनसंख्या पर्यावरण ह्रास एवं निर्धनता

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

- 6.1 उद्देश्य
- 6.2 जनसंख्या में वृद्धि तथा अवनयन
- 6.3 विश्वव्यापी जनसंख्या वृद्धि
- 6.4 जनसंख्या विस्फोट – परिवार कल्याण कार्यक्रम
- 6.5 मानवीय निर्धनता एवं पर्यावरण
- 6.6 औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण ह्रास
- 6.7 नगरीयकरण एवं पर्यावरण ह्रास
- 6.8 औद्योगिक प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण ह्रास
- 6.9 सारांश
- 6.10 शब्द सूची
- 6.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 6.12 अभ्यासार्थ प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)
- 6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें

6.0 प्रस्तावना

पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास के लिए लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO-113 की षष्ठम इकाई है। इस इकाई में आप जनसंख्या की वृद्धि विश्वव्यापी जनसंख्या वृद्धि, जनसंख्या विस्फोट के अन्तर्गत परिवार कल्याण कार्यक्रम का अध्ययन करेंगे। इसके अतिरिक्त अधिक जनसंख्या के कारण निर्धनता कैसे आती है अर्थात् संसाधन व पर्यावरण का दोहन के विषय का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अन्तर्गत पर्यावरण ह्रास के विषय में अध्ययन करेंगे, जिसमें पर्यावरण ह्रास का मानव जीवन पर दुष्प्रभाव के विश्व संकट आदि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

6.1 उद्देश्य :

भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO-113 पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास की षष्ठम इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- पर्यावरण भूगोल के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि तथा जनसंख्या विस्फोट के विषय में समझ सकेंगे।
- जनसंख्या वृद्धि के अन्तर्गत होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का दोहन के दुष्परिणाम की पूर्णतय: जानकारी प्राप्त करेंगे।
- औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण ह्रास के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नगरीकरण एवं पर्यावरण ह्रास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण ह्रास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 जनसंख्या में वृद्धि तथा अवनयन

पर्यावरण अवनयन एवं परिस्थितिकीय असन्तुलन का मूल कारण जनसंख्या वृद्धि है, क्योंकि कृषि विस्तार, नगरीकरण, आद्योगीकरण आदि बढ़ते मानव समुदाय का प्रतिफल है। जनसंख्या में लगातार वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों में निरन्तर कमी आ रही है।

प्रागैतिहासिक काल से अब तक विश्व जनसंख्या का निरन्तर बढ़ोत्तरी हुयी है। 8000 ई० पू० से 1650 ई० तक के मध्यतक सौगुनी वृद्धि हुई। एक अनुमान के अनुसार 500 मिलियन तक बतायी गयी। 1650 ई० की अनुमानित विश्व जनसंख्या (500 मिलियन) 200 वर्षों में बढ़कर अर्थात् 1850 ई० तक दोगुनी होकर 1000 मिलियन हो गयी। 1850 ई० से लेकर 1930 ई० तक जनसंख्या दोगुनी (2000 मिलियन) हो गयी। 1930 ई० से 1975 ई० में मात्र 45 वर्षों के भीतर ही विश्व की जनसंख्या 4000 मिलियन हो गयी। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में विश्व की जनसंख्या 1.6 बिलियन थी तथा सदी के अन्त तक यह बढ़कर 6.1 बिलियन हो गयी। 2005 ई० में विश्व की जनसंख्या 6.5 बिलियन हो गयी है। यदि इसी अनुपात में यह बढ़ती रही तो 2050 ई० तक 9 बिलियन हो जायेगी।

विश्व में जनसंख्या के स्थानिक वितरण में पर्याप्त विभिन्नता पायी जाती है। जनसंख्या का सर्वाधिक गहनता, महानगरों मेगालोपोलिस, तथा विकासशील देशों में पाया जाता है। विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या विकासशील देशों में पायी जाती है। जनसंख्या वितरण कुछ क्षेत्रों में अधिक होने के कारण वहाँ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अधिक होता है। इसी तरह नगरीय केन्द्रों में जनसंख्या का सान्द्रण अधिक होने से मलिन बस्तियों का आविर्भाव हो रहा है तथा पर्यावरण अवनयन एवं प्रदूषण में वृद्धि हो रही है।

6.3 विश्वव्यापी जनसंख्या वृद्धि :

यद्यपि विश्व की जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी आयी है, फिर भी विश्व की जनसंख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। विश्व की वार्षिक जनसंख्या में परिवर्तन की दर को निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

$$\text{राष्ट्रीय जनसंख्या में प्राकृतिक परिवर्तन की वार्षिक दर (\%)} = \frac{\text{जन्म दर-मृत्युदर}}{1000 \text{ व्यक्ति}} \times 100$$

विश्व में जन्मदर की तुलना म मृत्युदर म कमी आयी है। इसका मुख्य कारण चिकित्सा सुविधा का बेहतर होना है। इसके अतिरिक्त रोग प्रतिरोधक टीकों की खोज से चिकित्सा क्षेत्र में बेहतर परिणाम सामने आया तथा, लोगों में स्वच्छता व प्रदूषण को लेकर जागरूकता भी बढ़ी है। अतः जहाँ एक ओर घातांक वृद्धि दर (Exponential Growth Rate) धीमी दर से घटी है। 1963 और 2005 के बीच 2.2 प्रतिशत, वहीं दूसरी ओर इसी अवधि के दौरान मूल जनसंख्या लगभग दोगुनी 3.2 मिलियन से 6.5 बिलियन हो गयी (मिलर 2006)। इसके अतिरिक्त घातांक वृद्धि दर विकासशीलता देशों की तुलना में (1.5 प्रतिशत वार्षिक) विकसित देशों में काफी भिन्न (0.1 प्रतिशत वार्षिक) है। इसका अर्थ यह है विकसित देशों की जनसंख्या 1.2 बिलियन है। अगले 50 वर्ष इसमें और अधिक गिरावट होने की सम्भावना है। विश्व जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण और पर्यावरण विकास पर गहरा प्रभाव डालने वाला एक गंभीर मुद्दा है। जैसे-जैसे वैश्विक जनसंख्या 8 अरब से अधिक होने वाली है, मानव संख्या, संसाधन उपयोग और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच अंतरसंबंध को समझना तेजी से आवश्यक हो जाता है। पिछली सदी में, वैश्विक जनसंख्या तेजी से बढ़ी है, 1900 में लगभग 1.6 अरब से बढ़कर आज 8 अरब से अधिक हो गई है। यह विकास दर क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग रही है, कई विकासशील देशों में तेजी से वृद्धि हुई है, जबकि विकसित देशों में विकास धीमा हुआ है। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि वैश्विक जनसंख्या 2050 तक 9.7 अरब और 2100 तक 10.4 अरब तक पहुंच सकती है, जिसमें अधिकांश वृद्धि उप-सहारा अफ्रीका और एशिया के कुछ हिस्सों में केंद्रित होगी।

जनसंख्या में वृद्धि ने पर्यावरण पर मानव प्रभाव को काफी तीव्र कर दिया है। भोजन, पानी और ऊर्जा की बढ़ती मांग के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है। जनसंख्या वृद्धि से प्रेरित कृषि

विस्तार के परिणामस्वरूप वनों की कटाई, मिट्टी का क्षरण और जैव विविधता का नुकसान हुआ है। औद्योगिक गतिविधियों, परिवहन और कृषि से उच्च ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन ने जलवायु परिवर्तन को बढ़ा दिया है। बढ़ती आबादी की ऊर्जा जरूरतें और अपशिष्ट उत्पादन वायु और जल प्रदूषण में योगदान करते हैं, जिससे ग्रह के पारिस्थितिकी तंत्र पर और दबाव पड़ता है। पर्यावास विनाश, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन ने प्रजातियों के नुकसान को तेज कर दिया है। IUCN रेड लिस्ट इंगित करती है कि 25 से अधिक प्रजातियाँ विलुप्त होने के खतरे में हैं, जिसका मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि से जुड़ी मानवीय गतिविधियाँ हैं। सतत विकास को बढ़ावा देते हुए जनसंख्या वृद्धि के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए कई रणनीतियाँ आवश्यक हैं। कृषि पारिस्थितिकी, संरक्षण जुताई और जैविक खेती जैसी टिकाऊ कृषि प्रथाओं को लागू करने से मिट्टी के स्वास्थ्य और जैव विविधता को बनाए रखते हुए खाद्य सुरक्षा को बढ़ाया जा सकता है। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को कम करने के लिए सौर, पवन और पनबिजली जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों में परिवर्तन महत्वपूर्ण है। अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों में सुधार और पुनर्चक्रण को बढ़ावा देने से प्रदूषण और संसाधन की कमी को कम किया जा सकता है। अपशिष्ट—से—ऊर्जा प्रौद्योगिकियों में नवाचार भी स्थायी अपशिष्ट प्रबंधन का वादा करते हैं। शिक्षा और परिवार नियोजन सेवाओं तक पहुंच प्रदान करना व्यक्तियों को प्रजनन के बारे में सूचित विकल्प चुनने के लिए सशक्त बनाता है, जो जनसंख्या वृद्धि को स्थिर करने और जीवन स्तर में सुधार करने में मदद कर सकता है। संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना और उन्हें लागू करना, खराब हुए पारिस्थितिकी तंत्र को बहाल करना और स्थायी भूमि उपयोग प्रथाओं को बढ़ावा देना जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है। विश्व जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो पर्यावरणीय स्थिरता को आर्थिक और सामाजिक विकास के साथ एकीकृत करे। इकोडेवलपमेंट सिद्धांतों को अपनाकर, हम एक ऐसे भविष्य की दिशा में काम कर सकते हैं जहां मानव कल्याण और पर्यावरणीय स्वास्थ्य परस्पर सहायक होंगे, जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्थायी ग्रह सुनिश्चित होगा।

6.4 जनसंख्या विस्फोट : परिवार कल्याण कार्यक्रम

विश्व की आबादी में तेजी से हो रही वृद्धि एक गंभीर समस्या है, जिसे जनसंख्या विस्फोट के रूप में जाना जाता है। इस समस्या का समाधान करना अत्यंत आवश्यक है, विशेष रूप से उन देशों के लिए जहां जनसंख्या वृद्धि की दर अत्यधिक है। भारत जैसे विकासशील देशों में, जनसंख्या विस्फोट का प्रभाव बहुत व्यापक है, जो आर्थिक, सामाजिक, और पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देता है। इस समस्या के समाधान के लिए परिवार कल्याण कार्यक्रमों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। जनसंख्या विस्फोट का मतलब है कि किसी देश या क्षेत्र की जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है, जिससे वहां के संसाधनों पर भारी दबाव पड़ता है। यह स्थिति सामान्यतः तब उत्पन्न होती है जब किसी क्षेत्र में जन्मदर बहुत अधिक हो और मृत्यु दर में कमी आई हो। भारत जैसे देश में, जहां स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ है और जीवन प्रत्याशा बढ़ी है, वहां जन्मदर अधिक होने के कारण जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है।

जनसंख्या विस्फोट का प्रभाव अनेक स्तरों पर देखा जा सकता है।

आर्थिक प्रभाव: जनसंख्या विस्फोट का आर्थिक प्रभाव बहुआयामी होता है। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि से बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के साथ रोजगार के अवसरों में कमी होती है। अधिक जनसंख्या के कारण नौकरी की मांग बढ़ती है, लेकिन सभी को रोजगार प्रदान करना मुश्किल हो जाता है। इससे बेरोजगारी दर बढ़ती है, जिससे गरीबी और आर्थिक असमानता में वृद्धि होती है। अधिक जनसंख्या का मतलब है अधिक खाद्य, पानी, और आवास की मांग। इससे प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन होता है, जिससे उनकी उपलब्धता में कमी आती है और उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं पर भारी दबाव पड़ता है। अधिक बच्चों का जन्म होने से स्कूलों और अस्पतालों की मांग बढ़ती है, जिससे इनकी गुणवत्ता प्रभावित होती है। इससे सामाजिक विकास में भी बाधा उत्पन्न होती है। सरकार को अधिक जनसंख्या के लिए बुनियादी ढांचे, शिक्षा, स्वास्थ्य, और अन्य सेवाओं पर अधिक खर्च करना पड़ता है। इससे विकास परियोजनाओं के लिए उपलब्ध संसाधनों में कमी आती है। अधिक जनसंख्या से संसाधनों की कमी होती है, जिससे गरीब और अमीर के बीच असमानता बढ़ती है। गरीब वर्ग को बुनियादी सेवाओं तक पहुंच नहीं मिल पाती, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति और भी कमजोर हो जाती है।

सामाजिक प्रभाव: जनसंख्या विस्फोट का सामाजिक प्रभाव भी गंभीर होता है। इससे समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। बढ़ती जनसंख्या से सामाजिक असमानता बढ़ती है। अधिक जनसंख्या के कारण संसाधनों की कमी होती है, जिससे गरीब और अमीर के बीच असमानता बढ़ती है। गरीब वर्ग को बुनियादी सेवाओं तक पहुँच नहीं मिल पाती, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति और भी कमजोर हो जाती है। अधिक जनसंख्या के कारण लोग गांवों से शहरों की ओर पलायन करते हैं, जिससे शहरी क्षेत्रों में अतिक्रमण बढ़ता है। इससे झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या में वृद्धि होती है और शहरी बुनियादी ढांचे पर भारी दबाव पड़ता है। इससे शहरी क्षेत्रों में रहने की स्थिति बहुत ही दयनीय हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि से रोजगार के अवसर कम हो जाते हैं, जिससे बेरोजगारी बढ़ती है। बेरोजगारी के कारण लोग अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं, जिससे समाज में असुरक्षा और अपराध दर बढ़ती है। यह समाज के समग्र विकास को बाधित करता है और सामाजिक स्थिरता को कमजोर करता है। अधिक जनसंख्या से स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव बढ़ता है। इससे बीमारियों के फैलने का खतरा बढ़ता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां स्वच्छता और स्वास्थ्य सेवाएं पर्याप्त नहीं हैं। जनसंख्या विस्फोट से बच्चों की मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर भी बढ़ती है, जिससे समाज का समग्र स्वास्थ्य स्तर प्रभावित होता है। समाज में सामाजिक तनाव और विवाद बढ़ते हैं। जनसंख्या वृद्धि से संसाधनों की प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, जिससे सामाजिक संघर्ष और तनाव उत्पन्न होते हैं। इससे समाज में विभाजन और सामाजिक एकता में कमी आती है।

पर्यावरणीय प्रभाव: जनसंख्या विस्फोट से पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों की कमी और प्रदूषण जैसी समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के कारण और भी गंभीर हो जाती हैं। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से, बढ़ती जनसंख्या प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन का कारण बनती है। वनों की अंधाधुंध कटाई से जैव विविधता को नुकसान पहुंचता है, जिससे कई प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बढ़ जाता है। कृषि योग्य भूमि की मांग बढ़ने से वनों की भूमि को खेती के लिए बदल दिया जाता है, जिससे प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र बुरी तरह प्रभावित होते हैं। जलवायु परिवर्तन भी जनसंख्या विस्फोट का एक महत्वपूर्ण परिणाम है। ऊर्जा की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए अधिक कोयला, तेल, और प्राकृतिक गैस का उपयोग किया जाता है, जिससे ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है। इसके परिणामस्वरूप, वैश्विक तापमान में वृद्धि होती है, जिससे प्राकृतिक आपदाएं और मौसम के पैटर्न में बदलाव आते हैं। परिवार कल्याण कार्यक्रम जनसंख्या विस्फोट की समस्या से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य परिवार नियोजन को प्रोत्साहित करना, जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना और समाज में जनसंख्या शिक्षा को बढ़ावा देना है। भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रमों की शुरुआत 1950 के दशक में हुई थी और तब से यह विभिन्न चरणों में विकसित हुए हैं।

परिवार नियोजन: परिवार कल्याण कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य परिवार नियोजन को बढ़ावा देना है। इसके तहत विभिन्न गर्भनिरोधक उपायों की जानकारी और उपयोग को प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें गर्भनिरोधक गोवियां, कंडोम, इन्ट्रायूट्रिन डिवाइस (आईयूडी) और नसबंदी जैसे उपाय शामिल हैं।

स्वास्थ्य सेवाएं: इन कार्यक्रमों के तहत मातृ और शिशु स्वास्थ्य सेवाओं को सुधारने पर जोर दिया जाता है। इससे जन्मदर को नियंत्रित करने में मदद मिलती है और नवजात मृत्यु दर में कमी आती है। स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार से महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति में भी सुधार होता है, जिससे वे परिवार नियोजन के प्रति अधिक जागरूक होती हैं।

शिक्षा और जागरूकता: परिवार कल्याण कार्यक्रमों के अंतर्गत जनसंख्या शिक्षा और जागरूकता अभियान भी चलाए जाते हैं। इसके तहत लोगों को परिवार नियोजन के महत्व, गर्भनिरोधक उपायों और जनसंख्या विस्फोट के प्रभावों के बारे में जानकारी दी जाती है। शिक्षा और जागरूकता से समाज में सकारात्मक परिवर्तन आते हैं और लोग परिवार नियोजन को अपनाने के प्रति अधिक सजग होते हैं।

महिला सशक्तिकरण: महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के अवसर प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाना भी परिवार कल्याण कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। सशक्त महिलाएं परिवार नियोजन के महत्व को समझती हैं और अपने परिवार के लिए सही निर्णय ले पाती हैं। इससे जनसंख्या वृद्धि की दर में कमी आती है।

6.5 मानवीय निर्धनता एवं पर्यावरण

जनसंख्यातिरेक के कारण आर्थिक निर्धनता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, क्योंकि आधारभूत आवश्यकताओं (खाना, कपड़ा, मकान) की पूर्ति हेतु समस्त संसाधनों का दोहन अत्यधिक तीव्रता से किया जा रहा है। इस अंधाधुंध दोहन से प्राकृतिक संसाधनों में असंतुलन बढ़ता जा रहा है। उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों में अधिक जनसंख्या वाले देशों में आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों का दोहन किया जा रहा है। जिससे मानवीय बस्तियां, कृषि योग्य भूमि, औद्योगिक धंधों आदि का विकास किया जा सके। उष्ण कटिबंधी क्षेत्रों के सदाबहार वर्षा वन के क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 20 हेक्टेयर वन भूमि का ह्रास हो रहा है। अमेजन बेसिन के वनों का प्रतिवर्ष 5 मिलियन वन क्षेत्रों का ह्रास हो रहा है। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के अधिकांश विकासशील देशों व्यापार को बढ़ावा देने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन जारी है। जिस कारण प्राकृतिक स्थलाकृति का एक बड़ा भू-भाग बंजर भूमि में परिवर्तित होता जा रहा है। इसके कारण कई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या के कारण गरीबों की संख्या बढ़ती जा रही है। दुनिया की एक-तिहाई गरीब नगरीय क्षेत्रों में रहते हैं। इन क्षेत्रों में जल, बिजली, गन्दगी आदि की समस्या बनी रहती है। ऐसी बस्तियों में गन्दगी का साम्राज्य होता है। साफ वातावरण बनाये रखने के लिये बुनियादी ढाँचों का पूर्णतया अभाव रहता है। मानवीय निर्धनता और पर्यावरणीय संकट के बीच एक जटिल और गहरा संबंध है, जो वैश्विक सामाजिक और पारिस्थितिकीय समस्याओं को जन्म देता है। इस संबंध की जटिलता को समझने के लिए हमें यह देखना होगा कि निर्धनता किस प्रकार से पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देती है और कैसे पर्यावरणीय संकट निर्धनता को बढ़ावा देता है। यह एक नकारात्मक प्रतिक्रिया चक्र है, जिसमें दोनों समस्याएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं और एक स्थायी संकट की स्थिति उत्पन्न होती है।

निर्धनता, विशेष रूप से विकासशील देशों में, प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भरता को बढ़ावा देती है। गरीब समुदाय अक्सर अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगलों, जलाशयों और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करते हैं। इस अत्यधिक उपयोग के परिणामस्वरूप जंगलों की अंधाधुंध कटाई और जलाशयों की अत्यधिक निकासी जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, विश्व वन की स्थिति पर 2019 की रिपोर्ट के अनुसार, हर साल लगभग 12 मिलियन हेक्टेयर जंगल समाप्त हो जाते हैं। इन जंगलों की कटाई से जैव विविधता में कमी आती है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाता है। मृदा की गुणवत्ता में गिरावट और भूमि अपरदन जैसी समस्याएँ उभरती हैं, जो बाढ़ और सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं की संभावनाओं को बढ़ाती हैं।

इसके अलावा, निर्धनता के कारण गरीब समुदायों को जल, लकड़ी और अन्य संसाधनों की सीधी और तात्कालिक जरूरत होती है, जिससे वे अधिक से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने लगते हैं। इस अत्यधिक दोहन से पर्यावरणीय संकट उत्पन्न होता है और पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन आ जाता है। उदाहरण के लिए, भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में, जहाँ गरीबी की दर अधिक है, जंगलों की अत्यधिक कटाई ने स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचाया है। इस नुकसान के कारण मृदा की गुणवत्ता में कमी आई है, और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव भी बढ़े हैं।

जलवायु परिवर्तन निर्धनता को और भी बढ़ा सकता है। गरीब समुदाय जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, जैसे कि बाढ़, सूखा और चरम मौसम की घटनाएँ। इन घटनाओं की तीव्रता और आवृत्ति जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ गई है, और गरीब समुदाय इस संकट से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए, बांग्लादेश जैसे देशों में, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं, लगभग 20 प्रतिशत आबादी हर साल बाढ़ और चक्रवात जैसी आपदाओं से प्रभावित होती है। 2021 में, बांग्लादेश में आई बाढ़ ने लाखों लोगों को प्रभावित किया, जिससे उनके जीवनस्तर में भारी गिरावट आई। जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होने के कारण गरीब समुदायों को आपदा प्रबंधन और पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक संसाधनों और तकनीकियों की कमी का सामना करना पड़ता है। इन आपदाओं के बाद पुनर्निर्माण कार्यों के लिए सरकारों और सहायता संगठनों की मदद की आवश्यकता होती है, लेकिन निर्धनता के कारण गरीब समुदाय अक्सर इस सहायता से वंचित रह जाते हैं। इस स्थिति से न केवल उनकी जीवनशैली प्रभावित होती है, बल्कि उनके आर्थिक स्थायित्व पर भी गंभीर प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरणीय संकट निर्धनता को भी बढ़ा सकता है। प्राकृतिक संसाधनों की कमी और पारिस्थितिक तंत्र

के असंतुलन के कारण गरीब समुदायों की आजीविका और आर्थिक अवसर सीमित हो जाते हैं। जब संसाधन कम होते हैं, तो लोग प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करने लगते हैं, जिससे पर्यावरणीय क्षति होती है और उनकी स्थिति और खराब होती है। यह एक स्थायी गरीबी चक्र को जन्म देता है, जिसमें लोग गरीबी के कारण संसाधनों का अत्यधिक उपयोग करते हैं, और इस दोहन से पर्यावरणीय संकट उत्पन्न होता है, जिससे उनकी स्थिति और भी खराब होती है। आंकड़ों के अनुसार, 2030 तक, वैश्विक जल आपूर्ति में 40% की कमी हो सकती है, जिससे गरीब समुदायों के लिए जल संबंधी समस्याएँ और बढ़ सकती हैं। जल की कमी से गरीब किसानों की फसल की पैदावार प्रभावित होती है, जिससे खाद्य सुरक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अफ्रीका के कई हिस्सों में, जहाँ सूखा और जलवायु परिवर्तन के कारण पानी की उपलब्धता कम हो गई है, लोग अत्यधिक खेती कर रहे हैं, जिससे मृदा की गुणवत्ता में और गिरावट आ रही है और खाद्य संकट उत्पन्न हो रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो न केवल पर्यावरणीय संकट को संबोधित करे बल्कि निर्धनता को भी कम करे। पहला कदम सतत विकास के सिद्धांतों को अपनाना है, जो पर्यावरणीय सुरक्षा और आर्थिक विकास को संतुलित करता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों के तहत, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों, जैसे कि सौर और पवन ऊर्जा, का उपयोग गरीबी को कम करने और पर्यावरणीय प्रभाव को सुधारने में सहायक हो सकता है।

दूसरा कदम शिक्षा और जागरूकता बढ़ाना है। गरीब समुदायों को पर्यावरणीय प्रबंधन और संरक्षण के महत्व को समझने में मदद मिलनी चाहिए। शिक्षा से लोगों को नई प्रौद्योगिकियों और बेहतर प्रबंधन विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, जो उनके जीवन स्तर में सुधार करती है और पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करती है। तीसरा कदम प्रौद्योगिकी और नवाचार को अपनाना है। आधुनिक प्रौद्योगिकियाँ, जैसे कि जल-संवर्धन तकनीकें और स्मार्ट कृषि विधियाँ, गरीब समुदायों को संसाधनों के अधिक प्रभावी उपयोग में सहायता कर सकती हैं। इन प्रौद्योगिकियों के माध्यम से जल और मृदा के प्रबंधन में सुधार किया जा सकता है और पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सकता है।

चौथा कदम स्थानीय समुदायों को पर्यावरणीय प्रबंधन में शामिल करना है। उनके अनुभव और ज्ञान का उपयोग कर स्थायी समाधान विकसित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, 'कोम्युनिटी फॉरेस्ट मैनेजमेंट' पहल के तहत, स्थानीय समुदायों को जंगलों के प्रबंधन में शामिल किया जाता है, जिससे वन संरक्षण और आर्थिक विकास दोनों को बढ़ावा मिलता है।

अंततः, सरकारों को ऐसी नीतियाँ बनानी चाहिए जो पर्यावरणीय सुरक्षा और सामाजिक न्याय दोनों को प्राथमिकता दें। गरीब समुदायों के लिए विशेष सहायता योजनाएँ, जैसे कि आपदा राहत, स्वास्थ्य सेवाएँ, और बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता, निर्धनता को कम करने और पर्यावरणीय प्रभाव को सुधारने में सहायक हो सकती हैं।

मानवीय निर्धनता और पर्यावरणीय संकट का समाधान एक दूसरे से जुड़े हुए मुद्दे हैं। इन दोनों समस्याओं को एक साथ संबोधित करने से हम न केवल पर्यावरणीय संकट को कम कर सकते हैं बल्कि निर्धनता को भी समाप्त कर सकते हैं। एक स्थायी और समावेशी

दृष्टिकोण अपनाकर, हम एक अधिक समान और स्वस्थ भविष्य की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं, जहाँ पर्यावरणीय सुरक्षा और सामाजिक न्याय दोनों को प्राथमिकता दी जाए। इस प्रकार, निर्धनता और पर्यावरणीय संकट के बीच के जटिल संबंध को समझते हुए, हमें एक समग्र और सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जो न केवल आज के मुद्दों का समाधान करे, बल्कि भविष्य के लिए भी एक स्थायी और समृद्ध आधार तैयार करे।

6.6 औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण ह्रास

औद्योगिक विकास और पर्यावरण ह्रास के बीच का संबंध एक जटिल और महत्वपूर्ण मुद्दा है, जो न केवल वैश्विक जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करता है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं को भी चुनौती देता है। औद्योगिक क्रांति के बाद से, औद्योगिक विकास ने आर्थिक समृद्धि और प्रौद्योगिकी में अभूतपूर्व प्रगति की है, लेकिन इसके साथ ही इसने पर्यावरण पर गहरा प्रभाव भी डाला है। इस लेख में, हम औद्योगिक विकास और पर्यावरण ह्रास के बीच के संबंध का विस्तृत विश्लेषण करेंगे, जिसमें औद्योगिक क्रांति से लेकर वर्तमान

समय तक के प्रमुख घटनाक्रम, प्रभाव, और संभावित समाधान शामिल होंगे।

औद्योगिक क्रांति, जो 18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी की शुरुआत में शुरू हुई, ने उत्पादन और निर्माण की दुनिया में क्रांतिकारी बदलाव किए। इस काल में मशीनों का प्रयोग, नई प्रौद्योगिकियाँ, और बड़े पैमाने पर उत्पादन ने समाज के आर्थिक और सामाजिक ढाँचे को बदल दिया। औद्योगिक क्रांति के दौरान, विशेष रूप से ब्रिटेन, अमेरिका, और यूरोप के अन्य हिस्सों में, बड़ी संख्या में कारखाने स्थापित किए गए, जिससे कार्यकर्ता वर्ग की वृद्धि हुई और शहरीकरण में तेजी आई।

इस विकास ने उत्पादन क्षमता को बढ़ाया और जीवन स्तर में सुधार किया, लेकिन इसके साथ ही इसने पर्यावरणीय समस्याएँ भी उत्पन्न कीं। कोयला, तेल और अन्य जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक उपयोग ने वायु और जल प्रदूषण को बढ़ाया, और पर्यावरणीय असंतुलन को जन्म दिया। औद्योगिक क्रांति के बाद से, औद्योगिक गतिविधियों ने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया, जिसने पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता को प्रभावित किया।

औद्योगिक विकास और पर्यावरणीय प्रभाव

वायु प्रदूषण:

औद्योगिक विकास ने वायु प्रदूषण को बढ़ावा दिया। कारखानों और उद्योगों से निकलने वाले धुएँ, गैसों और अन्य प्रदूषक पदार्थ वायुमंडल में फैल गए हैं। यह प्रदूषण न केवल स्थानीय पर्यावरण को प्रभावित करता है, बल्कि ग्लोबल वॉर्मिंग और जलवायु परिवर्तन को भी उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए, 2020 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिपोर्ट के अनुसार, वायु प्रदूषण के कारण हर साल लगभग 7 मिलियन लोग मौतों का सामना करते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में विशेष रूप से कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂), सल्फर डाइऑक्साइड (SO₂), और नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO) जैसी गैसों की उच्च मात्रा उत्सर्जित होती है। CO₂ की उच्च मात्रा जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण है, जिससे ग्लोबल वॉर्मिंग और उसके परिणामस्वरूप समुद्र स्तर में वृद्धि होती है।

जल प्रदूषण:

औद्योगिक विकास ने जल संसाधनों पर भी गहरा प्रभाव डाला है। औद्योगिक प्रक्रियाओं के दौरान उपयोग की जाने वाली रसायन, भारी धातु, और अन्य प्रदूषक पदार्थ जल स्रोतों में समाहित हो जाते हैं। इन प्रदूषकों के कारण नदी, झील, और अन्य जलाशयों में प्रदूषण होता है, जो जलवायु, जीवन, और मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, गंगा नदी में औद्योगिक कचरे के प्रवाह के कारण नदी का पानी अत्यधिक प्रदूषित हो गया है। भारत सरकार ने गंगा सफाई कार्यक्रम की शुरुआत की है, लेकिन प्रदूषण की समस्या आज भी गंभीर है। इसी प्रकार, यांगत्से नदी और मेकांग नदी भी औद्योगिक प्रदूषण का सामना कर रही हैं, जिससे इन क्षेत्रों में जलवायु संकट और स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

मृदा प्रदूषण और अपरदन:

औद्योगिक गतिविधियाँ मृदा प्रदूषण और अपरदन को भी जन्म देती हैं। खनन, निर्माण, और कृषि में उपयोग किए जाने वाले रसायन और कीटनाशक मृदा की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। मृदा प्रदूषण का परिणाम भूमि की उपजाऊता में कमी और खाद्य सुरक्षा पर नकारात्मक प्रभाव के रूप में सामने आता है। उदाहरण के लिए, भारत में पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में, जहाँ उच्च मात्रा में कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है, मृदा की गुणवत्ता में गिरावट देखी गई है। इसके परिणामस्वरूप, फसल की पैदावार में कमी आई है और खाद्य सुरक्षा पर खतरा उत्पन्न हुआ है।

जैव विविधता की हानि:

औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप जैव विविधता की हानि भी हुई है। वनस्पति और जीवों के प्राकृतिक आवासों की क्षति और परजीवियों के अत्यधिक उपयोग ने जैव विविधता को प्रभावित किया है। जंगलों की अंधाधुंध कटाई, वनों की समाप्ति, और भूमि उपयोग परिवर्तन के कारण कई प्रजातियाँ विलुप्त हो गई हैं या संकटग्रस्त हो गई हैं। उदाहरण के लिए, अमेजन वर्षावन, जो एक जैव विविधता का महत्वपूर्ण स्रोत है, की कटाई ने कई प्रजातियों के आवासों को नष्ट किया है। इसके अलावा, विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों के कारण

समुद्री पारिस्थितिक तंत्र भी प्रभावित हो रहे हैं, जिससे कई समुद्री प्रजातियाँ संकट में हैं।

स्वास्थ्य समस्याएँ:

औद्योगिक प्रदूषण ने स्वास्थ्य समस्याओं को भी जन्म दिया है। वायु और जल प्रदूषण के कारण सांस संबंधी बीमारियाँ, त्वचा रोग, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ गई हैं। प्रदूषण के संपर्क में आने से जन्म दोष, कैंसर, और अन्य गंभीर बीमारियाँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, चीन में बीजिंग और शंघाई जैसे शहरों में वायु प्रदूषण ने सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट उत्पन्न किया है। उच्च मात्रा में PM2-5 (पार्टिकुलेट मैटर) के कारण, वहाँ की आबादी सांस संबंधी बीमारियों और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर रही है।

औद्योगिक विकास और पर्यावरणीय संतुलन व समाधान के उपाय

औद्योगिक विकास और पर्यावरणीय ह्रास के बीच के संबंध को सुधारने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं। इन उपायों का उद्देश्य औद्योगिक गतिविधियों के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करना और सतत विकास की दिशा में कदम बढ़ाना है। सतत प्रौद्योगिकी और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग औद्योगिक गतिविधियों के पर्यावरणीय प्रभाव को कम कर सकता है। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, और जल ऊर्जा जैसे नवीकरणीय स्रोत पर्यावरणीय संकट को कम करने में सहायक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, डेनमार्क ने अपनी ऊर्जा जरूरतों का एक बड़ा हिस्सा पवन ऊर्जा से पूरा करना शुरू कर दिया है। इससे न केवल ऊर्जा सुरक्षा में सुधार हुआ है, वायुप्रदूषण में भी कमी आई है। इसी प्रकार, भारत और चीन जैसे देशों में सौर ऊर्जा परियोजनाएँ बढ़ रही हैं, जो पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में मदद कर रही हैं। औद्योगिक उत्सर्जन और प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाना चाहिए। जैसे कि कारखानों में फिल्टरेशन सिस्टम, प्रदूषण नियंत्रण उपकरण, और कचरा पुनर्चक्रण प्रौद्योगिकियाँ प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, जापान ने अपनी औद्योगिक गतिविधियों के दौरान उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए उच्च मानक अपनाए हैं। इसके परिणामस्वरूप, वायु और जल प्रदूषण में कमी आई है और पर्यावरणीय स्वास्थ्य में सुधार हुआ है। वन और अन्य प्राकृतिक आवासों की रक्षा के लिए वनीकरण और संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता है। जंगलों की कटाई को रोकने और नए वन क्षेत्र बनाने के लिए नीतियाँ बनाई जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, ब्राजील में अमेजन वर्षावन के संरक्षण के लिए विभिन्न अंतरराष्ट्रीय प्रयास किए जा रहे हैं। इसके साथ ही, स्थानीय समुदायों को वन प्रबंधन में शामिल किया जा रहा है, जिससे जंगलों की रक्षा की जा रही है और जैव विविधता को संरक्षित किया जा रहा है।

पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता बढ़ाने से लोगों को पर्यावरणीय समस्याओं के बारे में जानकारी मिलती है और वे सतत प्रथाओं को अपनाने के लिए प्रेरित होते हैं। स्कूलों और कॉलेजों में पर्यावरणीय शिक्षा को प्राथमिकता देने से युवा पीढ़ी में जागरूकता बढ़ाई जा सकती है। इसके साथ ही, सार्वजनिक अभियान और मीडिया के माध्यम से लोगों को पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति जागरूक किया जा सकता है।

औद्योगिक विकास ने मानव समाज को आर्थिक और प्रौद्योगिकी में अभूतपूर्व प्रगति प्रदान की है, लेकिन इसके साथ ही पर्यावरणीय संकट भी उत्पन्न किया है। वायु और जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, जैव विविधता की हानि, और स्वास्थ्य समस्याएँ औद्योगिक गतिविधियों के प्रमुख पर्यावरणीय प्रभाव हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए सतत प्रौद्योगिकी, उत्सर्जन नियंत्रण, वनीकरण, शिक्षा, और नीति निर्माण की आवश्यकता है। औद्योगिक विकास और पर्यावरणीय ह्रास के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए, हमें एक समग्र और सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। सतत विकास की दिशा में कदम बढ़ाकर, हम एक अधिक स्वस्थ और समृद्ध भविष्य की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं, जहाँ औद्योगिक गतिविधियाँ पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए मानव समाज की भलाई में योगदान कर सकें।

6.7 नगरीकरण एवं पर्यावरण ह्रास :

नगरीकरण, यानि शहरीकरण, आधुनिक समय का एक प्रमुख परिवर्तनकारी तत्त्व है। यह प्रक्रिया न केवल आर्थिक और सामाजिक विकास को गति देती है, बल्कि इसके साथ-साथ पर्यावरण पर कई नकारात्मक प्रभाव भी डालती है। विशेषकर, 1950 के बाद से नगरीकरण में तीव्रता आई है, जिससे विकसित और विकासशील देशों में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और भी गंभीर हो गई है।

नगरीकरण का तीव्र विस्तार और औद्योगिक विकास ने पर्यावरणीय समस्याओं को और गंभीर बना दिया है। भूमि उपयोग परिवर्तन, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा क्षति, और ठोस अवशिष्ट पदार्थों की समस्याएँ नगरीकरण के प्रमुख पर्यावरणीय प्रभाव हैं। शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों की अत्यधिक खपत और प्रदूषण की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। यह पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता और मानव जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित कर रहा है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए सतत शहरी विकास, प्रदूषण नियंत्रण, वनीकरण, और ठोस कचरे के निस्तारण की उचित व्यवस्थाएँ आवश्यक हैं। साथ ही, सार्वजनिक जागरूकता और नीतिगत सुधार भी आवश्यक हैं ताकि नगरीकरण के पर्यावरणीय प्रभावों को कम किया जा सके और एक स्वस्थ और स्थायी शहरी वातावरण की दिशा में अग्रसर हो सकें। केवल समन्वित प्रयासों के माध्यम से हम नगरीकरण के पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर सकते हैं और भविष्य के लिए एक स्थायी और स्वस्थ जीवन सुनिश्चित कर सकते हैं। 1950 के दशक के बाद से नगरीकरण की गति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1950 में, वैश्विक स्तर पर नगरी जनसंख्या का प्रतिशत 29% था, जो 1980 तक बढ़कर 41.3% हो गया। इसी प्रकार, विकसित देशों में नगरी जनसंख्या का प्रतिशत 70.2% और विकासशील देशों में 30.5% तक पहुँच गया। अनुमान है कि 2030 तक, वैश्विक नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 56% तक पहुँच जाएगा। इस तीव्र नगरीकरण का मुख्य परिणाम भूमि उपयोग में व्यापक परिवर्तन के रूप में सामने आया है। शहरी क्षेत्रों के विस्तार के साथ, कृषि भूमि, वन क्षेत्र, और अन्य प्राकृतिक आवासों का रूपांतरण शहरी विकास के लिए किया गया है। यह परिवर्तन पारिस्थितिक तंत्रों को नष्ट करता है और पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ता है।

भूमि उपयोग परिवर्तन का पर्यावरणीय प्रभाव

भूमि उपयोग परिवर्तन के पर्यावरणीय प्रभाव गंभीर और व्यापक हैं। जब वन या कृषि भूमि को शहरी विकास के लिए बदल दिया जाता है, तो यह जैव विविधता को खतरे में डालता है। वनस्पतियों और जीवों की प्रजातियाँ विलुप्त होने लगती हैं और पारिस्थितिक तंत्र की कार्यक्षमता प्रभावित होती है।

उदाहरण के रूप में, अमेजन वर्षावन की कटाई का मामला लिया जा सकता है, जो कि जैव विविधता का महत्वपूर्ण स्रोत है। वन कटाई के कारण कई प्रजातियों के आवास नष्ट हो गए हैं और पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ा है। इसी तरह, भारतीय शहरों में कृषि भूमि और वन क्षेत्र के रूपांतरण ने जैव विविधता में कमी लाई है और पारिस्थितिक तंत्र की संरचना को प्रभावित किया है।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण नगरीकरण का एक अन्य गंभीर पर्यावरणीय प्रभाव है। शहरीकरण के साथ-साथ, वाहनों की संख्या में वृद्धि, औद्योगिक गतिविधियाँ, और निर्माण कार्य वायु में प्रदूषक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाते हैं। 1950 के बाद, विश्व भर में शहरी वाहनों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। सन् 2011 में दिल्ली में कुल स्वचालित वाहनों की संख्या 60 लाख से अधिक होने का अनुमान था। इन वाहनों से निकलने वाले प्रदूषक गैसों, जैसे कि कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, और सल्फर डाइऑक्साइड, वायु की गुणवत्ता को खराब करती हैं। दिल्ली में 60% वायु प्रदूषण केवल वाहनों के कारण होता है। वायु प्रदूषण के स्वास्थ्य प्रभाव गंभीर हैं। लंबे समय तक वायु प्रदूषण के संपर्क में रहने से सांस संबंधी बीमारियाँ, हृदय रोग, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। राष्ट्रीय पर्यावरण शोध संस्थान (NEERI) के सर्वेक्षण के अनुसार, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, चेन्नई, अहमदाबाद, कोचीन, जयपुर और कानपुर जैसे प्रमुख नगरों में वायु प्रदूषण सबसे अधिक है। इन नगरों में नाइट्रोजन और सल्फर ऑक्साइड के सान्द्रण के कारण अम्लीय वर्षा का खतरा बढ़ गया है।

औद्योगिक नगरों में शीत ऋतु के दौरान तापीय प्रतिलोमन के कारण धूम्र-कोहरा उत्पन्न होता है, जो वायु गुणवत्ता को और भी खराब करता है। यह वायु प्रदूषण स्थानीय और क्षेत्रीय जलवायु पर प्रभाव डालता है, और तापमान में असंतुलन पैदा करता है।

जल प्रदूषण

जल प्रदूषण नगरीकरण का एक अन्य गंभीर परिणाम है। शहरी क्षेत्रों में बढ़ती जनसंख्या और औद्योगिक गतिविधियों के कारण जल स्रोतों में प्रदूषण की मात्रा में वृद्धि हो रही है। दिल्ली में यमुना नदी एक प्रमुख जल स्रोत है, लेकिन यह नदी मलजल वाहक के रूप में रह गई है। प्रतिदिन लगभग 323 मिलियन गैलन मलजल नदी में पहुँचता है, जबकि दिल्ली नगर महापालिका निगम के दूषित जल शोधन संयंत्रों की

सकल शोधन क्षमता केवल 184 मिलियन गैलन प्रतिदिन है। इसी तरह, भारत और विश्व के अन्य बड़े औद्योगिक नगरों के किनारे नदियाँ जल प्रदूषण का सामना कर रही हैं। जल प्रदूषण के कारण जल स्रोतों की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हो रहा है। जल प्रदूषण से उत्पन्न हानिकारक तत्व जल के उपयोग की गुणवत्ता घटाते हैं, और जलवायु संकट को बढ़ावा देते हैं।

मृदा क्षति

शहरीकरण और औद्योगिक गतिविधियों के कारण मृदा क्षति एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या है। निर्माण कार्यों, औद्योगिक गतिविधियों, और अत्यधिक रसायनों के उपयोग के कारण मृदा की उर्वरता कम हो जाती है। विकसित देशों में मृदा क्षति के निस्तारण के प्रयास किए जाते हैं, लेकिन विकासशील देशों में इस समस्या का समाधान नहीं हो पाया है। मुंबई और कोलकाता जैसे शहरों में प्रति व्यक्ति नगरीय अपशिष्ट पदार्थों का उत्पादन 0.5 किलोग्राम है, जबकि अन्य नगरों में यह 0.15 से 0.35 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है। इस कचरे का निस्तारण ठीक से न होने के कारण यह कई दिनों तक सड़ता रहता है, जिससे दुर्गन्ध और जहरीली गैसों का उत्सर्जन होता है। मृदा प्रदूषण का खाद्य सुरक्षा पर भी प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक रसायनों और कीटनाशकों के उपयोग से मृदा की उर्वरता प्रभावित होती है, और यह खाद्य उत्पादन को कम कर देती है।

ठोस अवशिष्ट पदार्थों की समस्या

नगरीकरण के साथ-साथ ठोस अवशिष्ट पदार्थों की समस्या भी बढ़ी है। शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन निकलने वाले ठोस अवशिष्ट पदार्थों की मात्रा में वृद्धि हुई है, और विकासशील देशों में इनका निस्तारण एक बड़ी चुनौती बन गई है। ठोस अवशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की उचित व्यवस्था न होने के कारण इन कचरों का कई दिनों तक सड़ना, दुर्गन्ध फैलाना, और जहरीली गैसों का उत्सर्जन होना आम बात हो गई है। यह वायु प्रदूषण का एक प्रमुख कारक बनता है और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

जल निकासी और बाढ़ की समस्या

नगरीकरण का एक अन्य गंभीर परिणाम जल निकासी और बाढ़ की समस्या है। शहरी क्षेत्रों में निर्माण कार्यों और पक्की सतहों के कारण जल का प्राकृतिक रिसाव कम हो जाता है, जिससे धरातलीय वाही जल में वृद्धि होती है। वर्षा का अधिकांश जल नदियों में पहुँच जाने से बाढ़ की समस्या उत्पन्न होती है। शहरी क्षेत्रों में जल निकासी की व्यवस्था अक्सर अपर्याप्त होती है, जिससे मानसून के दौरान बाढ़ की घटनाएँ सामान्य हो गई हैं। यह न केवल संपत्ति की हानि का कारण बनता है, बल्कि जनजीवन को भी गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

नगरों के ऊष्मा द्वीप और प्रदूषण गुम्बद

नगरीकरण के कारण नगरों में ऊष्मा द्वीप और प्रदूषण गुम्बद का निर्माण होता है। शहरी क्षेत्रों में भवनों, सड़कों, और अन्य निर्माण कार्यों के कारण स्थानीय तापमान में वृद्धि होती है। इसे 'ऊष्मा द्वीप प्रभाव' कहा जाता है। इसके अलावा, नगरों के ऊपर प्रदूषण गुम्बद का निर्माण होता है, जो स्थानीय और क्षेत्रीय विकिरण और ऊष्मा संतुलन में परिवर्तन करता है। यह स्थानीय जलवायु को प्रभावित करता है और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनता है।

जलवायु परिवर्तन और नगरीकरण

नगरीकरण का जलवायु परिवर्तन पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। शहरी क्षेत्रों में ऊर्जा खपत, वाहनों की संख्या में वृद्धि, और औद्योगिक गतिविधियों के कारण ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है। ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा देता है। यह प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता को बढ़ा सकता है, जिससे शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए खतरा बढ़ जाता है।

6.8 आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण हास:

प्रस्तर युग से लेकर वर्तमान समय तक मानव समाज के विकास में प्रौद्योगिकी का अत्यधिक महत्व रहा है। प्रारम्भिक युगों में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी की तुलना में वर्तमान प्रौद्योगिकी अत्यधिक भयावह है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के मानव समाज के प्रत्येक अंग (यथा, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, सामाजिक) में प्रवेश कर चुकी है।

आज कृषि के क्षेत्र में जुताई, निराई, बुवाई, सिंचाई, व कटाई के लिये बेहतर एवं उन्नत विधियों, बीजों रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक आदि उपलब्ध है। वर्तमान समय में अत्याधिक आधुनिक कम्प्यूटरों तथा पूर्ण स्वचालन, प्राकृतिक संसाधनों के त्वरित एवं सक्षम विदोहन, तेज एवं सक्षम यातायात के वाहनों के प्रयोग द्वारा औद्योगिक विकास करना विश्व के सभी राष्ट्रों का एक लक्ष्य बन गया है। अति सुपर सॉनिक युद्धक जेट विमान, जलपोत व अत्याधिक अतिआधुनिक ट्रेन, परमाणु, तथा हाइड्रोजन बम, प्रक्षेपास्त्र रासायनिक व जैविक बम आदि मुख्य है। कम्प्यूटर, मोबाइल, हवाई छायाचित्र, उपग्रह, रॉकेट आदि वर्तमान प्रौद्योगिकी का एक उदाहरण है। आज मनुष्य बहुत आलसी हो गया है, जिसका मुख्य कारण रेफ्रिजरेटर, एयरकण्डीशनर, हेयर ड्रायर, स्प्रैकैन डिस्पेन्सर, वातानुकूलित मोटरकार आदि उपकरणों अत्यधिक प्रयोग है। वर्तमान समय में कृत्रिम जलवृष्टि का भी विकल्प उपलब्ध है। जिसमें अधिक वर्षा प्राप्त करने के लिए ठोस कार्बन डाईऑक्साइड तथा आयोडीन के प्रयोग से बादल बनाकर अतिरिक्त वर्षा हो सकती है। इस प्रक्रिया को 'मेघबीजन' कहते हैं। इसके अतिरिक्त आज मनुष्य विज्ञान के बदौलत उपलवृष्टि रोकने में सक्षम है। बादलों को भगाने तथा चक्रवातों के रास्ते परिवर्तित करना भी मानव ने सीख लिया है।

वास्तव में आधुनिक प्रौद्योगिकी से उत्पन्न होने वाले दुष्प्रभावों की सूची बहुत बड़ी है। रोज नये-नये प्रयोगों के कारण अत्यधिक आधुनिक प्रौद्योगिकी का विकास होता जा रहा है। जिसे रोक पाना अब असंभव सा है। आधुनिक प्रौद्योगिकी का सबसे भयानक पक्ष नाभिकीय अपषिष्ट पदार्थों का निस्तारण है। मनुष्य ने नाभिकीय बम बनाकर स्वयं के लिए एक कब्र बना ली है। यदि कभी भी तृतीय विश्वयुद्ध होता है तो नाभिकीय सर्वनाश हो जायेगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आधुनिक प्रौद्योगिकी के द्वारा मनुष्य ने काफी प्रगति की है, परन्तु दूसरी तरफ अपने विनाश की तैयारी भी कर ली है।

6.9 सारांश :

आपने इस षष्ठम इकाई में स्पष्ट रूप से जाना कि जनसंख्या वृद्धि के क्या-क्या दुष्परिणाम हैं। जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिये "परिवार कल्याण कार्यक्रम" को लागू कर जनमानस का जागरूक किया जाना चाहिये। मानवीय निर्धनता एवं पर्यावरण के सम्बन्ध के विषय में वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त पर्यावरण ह्रास के मुख्य बिन्दुओं पर भी विस्तार पूर्वक बताया गया है।

6.10 शब्द सूची :

अम्ल वर्षा	— Acid Rain
आहार श्रृंखला	— Food Chains
सीवर	— Sewers
ओजोन अल्पता	— Ozone Depletion
नाभिकीय सर्वनाश	— Nuclear Holocaust
नाभिकीय शरद	— Nuclear Winter
प्रदूषण गुम्बद	— Pollution Domes
मेघ बीजन	— Cloud Seeding
उपल वृष्टि	— Hails Storm
जनसंख्यातिरेक	— Overpopulation

6.11 स्वयं मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर :

1. क्लोरोफ्लोरो कार्बन द्वारा कौन सी परत का क्षय होता है?

- | | |
|----------------------|------------|
| (अ) नाइट्रोजन | (ब) ओजोन |
| (स) कार्बनडाईऑक्साइड | (द) हीलियम |

2. भोपाल गैस त्रासदी की घटना किस वर्ष हुई?
 (अ) 1990 (ब) 1982
 (स) 1984 (द) 1991
3. चेरनोबिल नाभिकीय विनाश की दुखद घटना किस द्वेष से सम्बन्धित है?
 (अ) इंग्लैण्ड (ब) भारत
 (स) चीन (द) यूक्रेन
4. राष्ट्रीय पर्यावरण शोध संस्थान किस नगर में स्थित है?
 (अ) कानपुर (ब) नागपुर
 (स) रायपुर (द) सीतापुर
5. हरितगृह प्रभाव के लिये कौन सी गैस मुख्य है?
 (अ) CO₂ (ब) O₂
 (स) H₂ (द) H₂SO₄

आदर्श उत्तर :-

1. (ब) 2. (स) 3. (द) 4. (ब) 5. (अ)

6.12 अभ्यास प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु) :

1. जनसंख्या वृद्धि क्या है? तथा जनसंख्या विस्फोट से क्या तात्पर्य है?
2. मानवीय निर्धनता तथा पर्यावरण में क्या सम्बन्ध है?
3. नगरीयकरण एवं पर्यावरण ह्रास के मुख्य बिन्दुओं को स्पष्ट कीजिए?
4. औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण ह्रास को स्पष्ट कीजिए?
5. आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण ह्रास का अर्थ समझाते हुए अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

6.13 सन्दर्भ सूची/उपयोगी पुस्तकें :

- 1- Bharucha, Erach (2003): Biodiversity of India, The Map in Publishing.
- 2- Mishra, K.C., Ecological Sciences and Phytogeography, Varansi, 1971
- 3- Singh, L.R. (Ed.), Environmental Management Allahabad, 1983
- 4- Agarwal, S.K., 2005: Environmental Management, APH Publishing Corporation New Delhi, 397 PP.
5. सिंह सविन्द्र, पर्यावरण भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद,।

इकाई-7 : कृषि क्षेत्र में विस्तार, हरित क्रान्ति पर्यावरणीय प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 हरित क्रान्ति की पृष्ठभूमि
- 7.4 भारत में हरित क्रान्ति
- 7.5 भारत में हरित क्रान्ति की विशेषताये
- 7.6 भारत में हरित क्रान्ति का प्रभाव
- 7.7 हरित क्रान्ति के पर्यावरणीय प्रभाव।
- 7.8 द्वितीय हरित क्रान्ति (समस्या से समाधान की ओर)
- 7.9 भारत में हरित क्रान्ति के तहत योजनाएं
- 7.10 हरित क्रान्ति से जीन क्रान्ति तक
- 7.11 सारांश
- 7.12 शब्द सूची
- 7.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न
- 7.14 सन्दर्भ/उपयोगी पुस्तके
- 7.15 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम कपास, चाय एवं दलहन का उत्पादन एवं वितरण, भारत में हरित क्रान्ति एवं इसके पर्यावरणीय प्रभाव का अध्ययन करेंगे। स्वतंत्रता के बाद देश की प्रमुख समस्याओं में खाद्य सुरक्षा व कृषि का विकास रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना का मुख्य केन्द्र कृषि विकास एवं खाद्य सुरक्षा रहा, इसके बावजूद भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान देश ने गम्भीर खाद्य कमी का सामना किया है। फलस्वरूप इस प्रकार की समस्या से निपटने के लिये जाँच करने व उपचारी सुझाव देने के लिए अमेरिकी विशेषज्ञों के दल को आमन्त्रित किया गया। यह दल USA के कृषि विभाग के डॉ.एस.एफ. जानसन की अध्यक्षता में भारत आया था। इस दल ने "Indian's Food Problem and steps to meet it" (1959) नाम से अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की कि भारत को ऐसे क्षेत्रों पर अत्याधिक ध्यान देना चाहिये जहाँ कृषि उत्पादकता बढ़ाने की सम्भावना अधिक है। 1960 के ही दशक कृषि विकास के संबंधित दो मुख्य कार्यक्रमों यथा सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (IAAP, 1961) तथा सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP, 1964) प्रारंभ किए गए। उपर्युक्त दोनों ही कार्यक्रमों द्वारा कृषि अनुसंधान और विकास, शिक्षा और विस्तार सेवाओं पर भारी निवेश किया गया परिणामतः भारतीय कृषि में उत्पादकता और उत्पादन में उच्च वृद्धि को सम्भव बनाया। एक तरफ जहाँ हरित क्रान्ति समग्र कृषि उत्पादन, उत्पादकता व आय पर्याप्त रूप से बढ़ाई, खाद्य कमी अर्थव्यवस्था को खाद्य पर्याप्तता में रूपांतरित किया वही दूसरी तरफ पर्यावरणीय दृष्टि से हरित क्रान्ति ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कई नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किये तथा भौमजल स्तर का अवक्षय, मृदा की गुणवत्ता में कमी आदि। इस इकाई के अन्तर्गत हम भारतीय अर्थव्यवस्था पर हरित क्रान्ति के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर विस्तार से अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप—

- हरित क्रांति (Green Revolution) की अवधारणा समझ सकेंगे।
- प्रथम हरित क्रांति के ऐतिहासिक संदर्भ और मुख्य विशेषताओं की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे।
- हरित क्रांति की विशेषताओं का, उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों आयामों से वर्णन कर सकेंगे; और
- हरित क्रांति के बाद उन प्रयासों की आवश्यकता निर्दिष्ट कर सकेंगे जो उन क्षेत्रों का कृषि विकास प्राप्त करने के लिए प्रारंभ किये जाने आवश्यक हैं जिनमें हरित क्रांति नहीं फैली हैं।

7.3 हरित क्रांति की पृष्ठभूमि

हरित क्रांति का तात्पर्य 1960 के दशक में खाद्य फसलों के ऐसे बीजों के विकास एवं उपयोग से हैं जिसके कारण इनके उत्पादन में आश्चर्य की वृद्धि हुई है। 'हरित क्रांति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग USA के डॉ० विलियम गैड ने किया। इसकी शुरुआत का श्रेय 1950 के दशक में राकफेलर और फोर्ड फाउण्डेशन के तत्वाधान में विकसित गेहूँ की अधिक उपज देने वाली ऐसी किस्मों से है जो पारंपारिक किस्मों से ठिगनी एवं अधिक उत्पादक थी। ये ऐसी किस्में थी जो मौसम परिवर्तनों से कम प्रभावित होती थी, धीरे-धीरे तैयार हो जाती एवं उर्वरकों से अनुकूल प्रतिक्रिया दर्शाती थी। इसी कारण इस कार्यक्रम के निदेशक डॉ० नारमन बोरलाग को 1970 में विश्व शान्ति का नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

1960 के दशक में ही राकफेलर व फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा स्थापित मनीला (फिलीपींस) के अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान ने चावल की एक ऐसे बीज का विकास किया जो इण्डोनेशिया एवं ताइवान के चावल का वर्ण संकर या एवं अधिक उपज देने वाला था। इस तरह गेहूँ एवं चावल के इन नये बीजों का प्रसार विश्व में हुआ। इसकी सफलता का आशय इस तथ्य से लगाया जा सकता कि भारत में गेहूँ का उत्पादन केवल 5 वर्षों में दुगुना हो गया उदाहरणार्थ भारत ने 1965–66 के दौरान लगभग 10 मिलियन टन गेहूँ आयात किया था परन्तु 1971 में आत्मनिर्भरता के साथ-साथ वह गेहूँ के निर्यात की स्थिति में आ गया। इसी प्रकार की दशा एशिया एवं लैटिन अमेरिका के विभिन्न देशों में देखी गयी।

भारतीय हरित क्रांति के जनक के रूप में M.S. स्वामीनाथन को जाना जाता है, ये एक जेनेटिक्स वैज्ञानिक थे जिन्होंने मैक्सिको के बीजों को पंजाब के देशी बीजों के साथ मिश्रित करते हुये एक नई एवं अत्याधिक उत्पादन देने वाली किस्मों का विकास किया था। इनके इसी योगदान के कारण इन्हें पद्मभूषण पुरस्कार से भी नवाजा गया।

7.4 भारत में हरित क्रांति (GREEN REVOLUTION IN INDIA)

भारत स्वतंत्रता के पहले से ही खाद्य समस्या से झूम रहा था। अनाज की कमी की आपूर्ति के लिए भारत ने USA के साथ 1956 में PL –480 व्यापार समझौता किया, जिसके अन्तर्गत 3.1 मिलियन टन गेहूँ तथा 0.19 मिलियन टन चावल के आयात का प्रावधान किया गया। 1962–63 में भीषण सूखा पड़ने के कारण पैडॉक बन्धुओं ने भारत में अकाल पड़ने की भविष्यवाणी की और कहा कि 1975 तक भारत में माल्थस का सिद्धान्त लागू हो जायेगा। ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए भारत में हरित क्रांति आरम्भ हुई। भारत में हरित क्रांति की शुरुआत 1966–67 में मेक्सिको में विकसित नवीन उर्वरक प्रतिक्रिया (Responsive) गेहूँ की बौनी प्रजातियों के प्रयोग से हुयी। इसके पहले 1959 में फोर्ड फाउण्डेशन के कृषि वैज्ञानिकों के एक समूह को भारत की कृषि में सुधार हेतु समुचित सुझाव देने के लिए आमंत्रित किया गया था। जिन्होंने अपनी रिपोर्ट अप्रैल 1959 में प्रस्तुत की थी। इसी के परिणाम स्वरूप 1960–61 में देश के 7 चयनित जनपदों (आंध्र प्रदेश के पं० गोदावरी, बिहार के शाहाबाद, छत्तीसगढ़, के रायपुर, तमिलनाडु के तंजावुर, पंजाब के लुधियाना, राजस्थान के पाली एवं उत्तरप्रदेश के अलीगढ़) में सघन कृषि जनपद कार्यक्रम (IADP) को प्रारम्भ किया गया। इसके अन्तर्गत खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि हेतु शुरु किये गये एक कार्यक्रम की सफलता को देखते हुये अक्टूबर 1965 में सघन कृषि क्षेत्र

कार्यक्रम (IAAP) के रूप में इसे देश के 114 जनपदों तक फैला दिया गया। 1966-67 में घोषित नयी कृषि नीति में उन्नत बीजों के प्रयोग के कार्यक्रम (HYVP) पर अधिक जोर दिया गया।

भारत में हरित क्रांति की शुरुआत पंजाब, हरियाण एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में गेहूँ की कृषि से हुई। परन्तु 1983 के बाद इसका प्रसार चावल की कृषि में हुआ जिससे बिहार, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडू के भाग लाभान्वित हुए। हरित क्रांति के कारण देश में गेहूँ का उत्पादन 123 लाख टन (1964-65) से बढ़कर (1985-86) में 470.5 लाख टन एवं 1990-91 में 551.3 लाख टन पहुँच गया। यह मुख्यतः गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उपज में तीव्र वृद्धि के कारण था। गेहूँ के बाद हरित क्रांति का प्रभाव को चावल की खेती पर देखा गया, जिसके परिणामस्वरूप चावल का उत्पादन 1965-66 के 306 लाख टन से बढ़कर 1980-81 में 536 लाख टन तथा 2008-09 में 992 लाख टन तक पहुँच गया जिससे गत 43 वर्षों में 224 प्रतिशत की तीव्र वृद्धि का संकेत मिलता है।

7.5 भारत में हरित क्रांति की विशेषतायें

भारत में हरित क्रांति की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

- HYV बीज, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग।
- आधुनिक कार्य मशीनों का अनुप्रयोग।
- विस्तृत सिंचाई सुविधायें।
- अनेक शस्यन।
- उन्नत ऋण सुविधायें।
- समर्थन मूल्य नीति और उन्नत अनुसंधान।
- विकास, विस्तार तथा आधारभूत संरचना।

उपर्युक्त सभी तथ्य भारत में हरित क्रांति आन्दोलन की मुख्य विशेषतायों के रूप में उल्लेखनीय है।

7.6 भारत में हरित क्रांति का प्रभाव

निश्चित रूप से स्वतंत्रता के बाद या उससे पहले भारत खाद्य संसाधनों की बेहद कमी थी जिसको हरित क्रांति के माध्यम से बेहद प्रभावित व त्वरित तरीके से दूर किया। वहीं पर जहां हरित क्रांति के माध्यम से खाद्य संसाधनों में आत्मनिर्भरता मिली दूसरी तरफ अनेक प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय समस्याये भी जन्म ली। इस प्रकार भारत में हरित क्रांति का प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलुओं में महत्वपूर्ण रहा है।

7.6.1 सकारात्मक प्रभाव

हरित क्रांति के भारतीय कृषि पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों को निम्न प्रकार से विवेचित किया जा सकता है—

1. हरित क्रांति से कृषि गहन उत्पादन प्रणाली का विकास हुआ जिससे कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि के कारण खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा रहा है।
2. हरित क्रांति के कारण भारतीय कृषि, जीवन निर्वाहक कृषि के बजाय व्यापारिक तथा बाजारोन्मुखी रूप ग्रहण करती जा रही है। इसके साथ ही नयी प्रौद्योगिकी के उपयोग से कृषि में रोजगार के अवसरों की वृद्धि हुई है।
3. हरित क्रांति से कृषि उद्योग सम्बन्धों में मजबूती आयी है जिसके परिणाम स्वरूप पहले अग्र अनुबन्ध (Forward Linkage) के साथ-साथ अब पश्च अनुबन्ध (Back Linkage) भी क्रियाशील हो गये हैं।
4. हरित क्रांति से अभिज्ञान प्रसार के माध्यम से कृषि का विकास अन्य क्षेत्रों में होने की संभावना के साथ- साथ

इससे ग्रामीण समृद्धि में वृद्धि हुयी हैं, इसके द्वितीयक एवं तृतीयक प्रभाव संभावित हैं।

7.6.2 नकारात्मक प्रभाव

हरित क्रांति के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं जिनका विवरण निम्नवत हैं।

1. हरित क्रांति में भारी पूँजी निवेश की आवश्यकता फलस्वरूप इसका लाभ बड़े कृषकों तक सीमित हैं क्योंकि भारी पूँजी की छोटे व सीमान्त कृषक सहन नहीं कर सकते हैं।
2. राव (V.K.R.V. Rao) के अनुसार यह बात अब सर्वविदित है कि हरित क्रांति ने कृषकों के मध्य आर्थिक विषमता को व्यापक कर दिया।
3. हरित क्रांति से ग्रामीण क्षेत्रों में त्रिकोणीय संघर्ष का सृजन हुआ, जिससे बड़े व छोटे किसानों के बीच भू स्वामी एवं असामी के बीच तथा मालिक व मजदूर के बीच सदैव टकराहट की स्थिति बनी रही।
4. हरित क्रांति का प्रभाव कुछ खाद्यान्न फसलों, जैसे गेहूँ, चावल, मक्का, बाजरा आदि तक सीमित रहा हैं, वही दलहन, तिलहन, मुद्रादायिनी एवं चारा आदि की फसले इसके प्रभाव से वंचित रही हैं।
5. हरित क्रांति के कारण होने वाली कृषि समीकरण के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर श्रम विस्थापन एवं बेरोजगारी के बढ़ने की प्रबल सम्भावना हैं।
6. वर्तमान के अध्ययनों से पता चला है कि (लेस्टर ब्राउन व हालकेन की पुस्तक 'Full House' में की गयी भविष्यवाणी) सन् 2030 तक भारत को प्रतिवर्ष 4 करोड़ टन खाद्यान्न का आयात करना पड़ेगा जो 1966 के पूर्व के आयात का चार गुना होगा।

7.7 हरित क्रांति के पर्यावरणीय प्रभाव

नये अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ हैं कि हरित क्रांति के क्षेत्रों में प्रति हे० उत्पादन या तो स्थिर रहा हैं अथवा उसमें गिरावट आ रही हैं। इन क्षेत्रों में भूगर्भ जल, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अन्धाधुन प्रयोग से पर्यावरणीय प्रदूषण का खतरा बढ़ रहा हैं।

लवणीकरण

नवीन बीजों में कई बार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हैं, विशेषकर पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश में जहाँ वर्षा मात्र 60—65 सेमी० होती हैं। सिंचाई के माध्यम से निरंतर आर्द्रता की आपूर्ति से मृदा में परिवर्तन आया हैं। लवणी तथा क्षारीय प्रभावित मृदा को पंजाब में कल्लया थूर, उत्तर प्रदेश में कल्लर ऊसर अथवा रेह कहा जाता हैं। एक आकलन के अनुसार पंजाब तथा हरियाणा के कृषीय भूमि का लगभग 50 प्रतिषत घुलनशील लवणों से प्रभावित हुआ हैं। लवणता तथा क्षारीयता का हल गोबर तथा वनस्पतिक खाद का प्रयोग द्वारा फसल चक्र में दलहन की फसलों का चयन कर लिया जा सकता है। लवण सहनशील फसलें, जैसे टमाटर, पालक, जौ, घास, शतावर, चुकन्दर इत्यादि की खेती इस समस्या के समाधान में सहायता कर सकती हैं तथा भूमि की उर्वरता में सुधार ला सकती हैं।

मृदा अपरदन

हाल के वर्षों में कृषि भूमि के विस्तार के लिए बड़ी मात्रा में वृक्षों को काटा गया हैं फलस्वरूप मृदा अपरदन की बढ़ती गति के कारण न केवल कृषि क्षेत्रों को नुकसान पहुँचता हैं बल्कि उन क्षेत्रों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं जहाँ अपरदित मृदा का निक्षेपण होता हैं।

मृदा अपरदन की समस्या से निपटने का सर्वाधिक कारगर तरीका वनारोपड़ हैं। अवनालिकाओं का समतलीकरण किया जाना चाहिये। पहाड़ी क्षेत्रों में समोच्च रेखाएँ जुताई के द्वारा भी मृदा अपरदन कम किया जा सकता है।

प्रदूषण

यदि रासायनिक खाद, कीटनाशकों तथा पीड़कनाशियों का अधिक मात्रा में उपयोग किया गया तो उच्च उत्पादक फसल जातियों से पैदावार अच्छी होती हैं। अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाने पर ये निवेश उन सूक्ष्म

जीवों को नष्ट कर देते हैं, जो मृदा की उर्वरता को कायम रखने के लिए अनिवार्य हैं। रासायनिक खादों की जगह हरी एवं गोबर की खाद के प्रयोग से मृदा प्रदूषण की समस्या को कम किया जा सकता है।

जलमग्नता

जलमग्न भूमि की समस्या अत्यधिक सिंचाई से जुड़ी है। पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नहर सिंचित क्षेत्र में यह एक गंभीर समस्या है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण राजस्थान के श्री गंगानगर, बीकानेर तथा जैसलमेर में स्थिति इंदिरा गाँधी नहर प्रणाली के चतुर्दिक् क्षेत्रों में पाया जाता है जहाँ पहले मोटे अनाजों जैसे बाजरा, ज्वार, राई, दलहन, जौ, कपास, मूंगफली, ज्वार, चारा एवं सूरजमुखी की खेती होती थी किन्तु वर्तमान में वहाँ के लोग चावल तथा गेहूँ की खेती करने लगे हैं। गर्मी तथा जाड़े के मौसम में इन क्षेत्रों की बार-बार सिंचाई के कारण काफी भूमि जलमग्न हो गयी है, विशेषकर नहर के दोनों ओर।

भौम जलस्तर का घटना

चावल तथा गेहूँ के नये बीजों को सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है। पंजाब तथा हरियाणा के कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चावल तथा गेहूँ की फसल को कई बार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है इस पानी की आपूर्ति सिंचाई के द्वारा की जाती है, यह सिंचाई नलकूपों तथा पम्पिंग खेतों के द्वारा अधिक की जाती है। इसके कारण हरियाणा के पूर्वी जिलों में भौम जल स्तर नीचे चला गया है।

स्वास्थ्य के लिये खतरा

बड़ी मात्रा में कीटनाशकों, तथा रासायनिक खादों का प्रयोग स्वास्थ्य के लिये खतरनाक साबित हो रहा है। इनका सब्जियों, फलों तथा घासों पर प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (AIMS) के अनुसार खाद्य, कीटनाशक तथा पीड़कनाशी के छिड़काव के कारण दूध तथा सब्जियों में जस्ता, तांबा, सीसे के अंश पाए जाते हैं। पंजाब में कैंसर के रोगियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। धान तथा गेहूँ के पुआल/भूसा को खेत में जलाने से वायु प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है, जिसका लोगों के स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ रहा है।

राजस्थान तथा पंजाब के शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के सिंचित भाग में बड़ी मात्रा में मलेशिया के मामले देखे जाते हैं क्योंकि अत्यधिक सिंचाई तथा नहर के किनारे जलाक्रांति के कारण मच्छरों के प्रजनन के लिए एक उपयुक्त स्थान बन जाता है।

7.8 द्वितीय हरित क्रांति (समस्या से समाधान की ओर)

भारत में कृषि उत्पादन धीमी, स्थिर तथा कुछ क्षेत्रों में ह्रासमान है। कृषि क्षेत्र में वर्तमान वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत (2021-22) रही। इससे कृषि में तेजी हेतु नवीन कृषि क्रांति लाने की जरूरत है। दूसरी हरित क्रांति मुख्य रूप से भोजन की आवश्यकता और पृथ्वी पर बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण की मांग को पूरा करने हेतु कृषि उत्पादन में एक परिवर्तन है। इसे खाद्य पदार्थों की बढ़ती कीमतों, और अन्य कारकों के बीच खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग के प्रत्युत्तर के तौर पर शुरू किया गया।

भारत में, जैसा कि प्रथम हरित क्रांति ने खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया चूंकि देश में भोजन की अत्यंत कमी थी। दूसरी हरित क्रांति का उद्देश्य निर्धनों के लिए सतत आजीविका का सृजन करना है और लाभकारी स्व-रोजगार के सृजन से निर्धनता उन्मूलन करना है। जहां प्रथम हरित क्रांति का उद्देश्य बेतहाशा उत्पादन करना था, दूसरी हरित क्रांति लोगों द्वारा उत्पादन को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य रखती है।

दूसरी हरित क्रांति में फसल प्रतिरूप, विविधीकरण, पशु-फसल हानियों को रोकना, सतत संव्यवहार, मृदा एवं जल संरक्षण इत्यादि शामिल किया गया है। इसमें जैव उर्वरकों, जैव-कीटनाशी, एवं जैविक खेती को प्रोत्साहित करने का भी समावेश किया गया है। इसमें अवसंरचना, भण्डारण, और मूल्य-वर्द्धन कृषि संसाधन के सुधार के तत्व भी शामिल हैं।

दूसरी हरित क्रांति ने कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी करते हुए लघु एवं सीमांत किसानों और भूमिहीन किसानों के लिए रोजगार सृजन पर बल दिया। जैसाकि इन परिवारों के पास अधिकतर बंजर एवं निम्न उर्वर भूमि है, जो सिंचाई से वंचित है, ऐसी भूमियों के बेहतर प्रयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। जैसाकि ऐसी

भूमियां उच्च पैदावार खाद्यान्न और नकदी फसल की गहन फसल के लिए उचित नहीं हैं, शुष्क भूमि बागवानी और एग्री-चारागाह को प्रमुखता दी जानी चाहिए। वृक्षारोपण की फसल प्रकृति के प्रतिकूल प्रभावों में भी बनी रहती है और किसी प्रकार का भारी नुकसान नहीं होता। वृक्ष की खेती पूरे वर्ष रोजगार प्रदान करती है और मृदा अपरदन और वर्षा जल बहाव को भी रोकती है। वृक्ष की खेती को प्रोत्साहन मृदा उर्वरता में भी वृद्धि करेगी और भूमि जल स्तर में बढ़ोतरी करेगी। इसलिए, ऐसे कार्यक्रम जीवन गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं और पर्यावरण का संरक्षण करते हैं।

11वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में इस प्रकार के समग्र ढांचे पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया तथा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अग्रलिखित नीति का सुझाव दिया गया— (1) सिंचित क्षेत्र की वृद्धि दर को दुगुना करना (2) जल प्रबंधन में सुधार करना, वर्षा जल का संचयन तथा जल संभर विकास (3) निम्नस्तरीय भूमि का पुनरुद्धार करना तथा मृदा गुणवत्ता पर ध्यान देना (4) प्रभावी विस्तार के माध्यम से ज्ञान के अंतर को पाटना (5) उच्च मूल्य वाली उपज, फल, सब्जियां, फूल, जड़ी-बूटी, मसाले, औषधीय पौधे, बांस, बायो-डीजल जैसी विभिन्न प्रकार की फसलें उगाना। किंतु ऐसा करते समय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित किये जाने के लिए पर्याप्त उपाय किये जाने चाहिए (6) पशुपालन और मत्स्यपालन को बढ़ावा देना (7) वहनीय दरों पर आसान ऋण उपलब्ध कराना (8) प्रोत्साहन ढांचा और बाजारों की कार्यप्रणाली को सुधारना (9) कृषि सुधार संबंधी मुद्दों पर फिर से ध्यान देना।

दूसरी हरित क्रांति को पूरी तरह से नवीन पद्धति और समग्र तौर पर प्रौद्योगिकियों के नए समुच्चय पर चलाए जाने की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन, न केवल भारत पर अपितु पूरे विश्व पर अपना शिकंजा कस रहा है और खाद्य आपूर्ति को खतरा पैदा कर रहा है। कृषि के लिए अपरिहार्य दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कभी भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा।

‘यथार्थ कृषि’ की नई पद्धति मुख्य समाधान हो सकती है। हरित क्रांति के संदर्भ में अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि बीज-पानी-उर्वरक तकनीक पर आधारित यह व्यवस्था अपने चरम बिंदु पर पहुंच गई है एवं उत्पादकता में और अधिक वृद्धि कर पाना अब इस तकनीक से संभव नहीं होगा। इसके साथ ही हरित क्रांति के पर्यावरण पर प्रभावों को देखते हुए भी उत्पादकता वृद्धि के वैकल्पिक मार्गों की खोज की जा रही है। इसी का परिणाम है यथार्थ कृषि।

यथार्थ कृषि में मृदा-प्रबंधन, किस्म संवर्द्धन, जल प्रबंधन, समेकित कीट नियंत्रण, टिशू कल्चर, जेनेटिक इंजीनियरिंग एवं समेकित बीज प्रबंधन जैसे विभिन्न विषयों के समन्वय के माध्यम से कृषि कार्य किया जाता है। यथार्थ कृषि विधि भूमि व जल के वैज्ञानिक आयोजन पर आधारित होती है जिसके अंतर्गत प्रकृति की सेवाओं व प्राकृतिक पूंजी स्टॉक पर एक साथ ध्यान दिया जाता है। प्राकृतिक पूंजी स्टॉक में मिट्टी व मिट्टी के पोषक तत्व, जैव-विविधता, जल, खनिज, वन व सागर इत्यादि आते हैं। प्रकृति की सेवाओं में जल-चक्र, पोषण-चक्र कृषि-वानिकी इत्यादि आते हैं।

यथार्थ कृषि के अंतर्गत कृषि विज्ञान, मृदा विज्ञान, कीट विज्ञान, मौसम विज्ञान, पादप क्रिया विज्ञान, पादप रोग विज्ञान, पारिस्थितिकी विज्ञान व अर्थशास्त्र इत्यादि क्षेत्रों के अनुसंधान कार्यों से लाभ उठाया जाता है। भविष्य में मानव की मूलभूत आवश्यकताओं को, पर्यावरण को बिना क्षति पहुंचाये पूरा करने की दिशा में यथार्थ कृषि आशा की किरण है। वर्तमान बीज-जल-उर्वरक आधारित तकनीक संवहनीय विकास की दिशा में नहीं ले जाती

कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन पर दूसरी हरित क्रांति के दौरान विचार किए जाने की आवश्यकता है—

(अ) जैसाकि बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए भूमि की उत्पादकता बढ़ाए जाने की आवश्यकता है, यह सुझाव दिया गया कि बंजर भूमि को सड़क निर्माण, कृषि-संसाधन उद्योगों और भण्डारण सुविधाओं के निर्माण हेतु उपयोग किया जाए, जो कृषि उत्पाद के संसाधन और बिक्री के लिए आवश्यक हैं। इसके अलावा मौजूदा खेती तकनीकियों के परिणामस्वरूप पानी की बर्बादी होती है। भारत को जल संरक्षण प्रौद्योगिकियों को अपनाने की आवश्यकता है, जैसाकि कई विकसित देश कर रहे हैं। यह कम पानी वाले कृषि क्षेत्रों में मदद करेगा, और पर्यावरणीय रूप से अधिक सतृप्त होगा।

(ब) मनोवृत्ति में परिवर्तन: किसान परम्परागत रूप से यह विश्वास करते हैं कि उनकी भूमिका फसल

उगाने तक सीमित है। उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन उन्हें यह समझने या महसूस करने में मदद करेगा कि उनके कार्य का क्षेत्र अनाज उत्पादन से खाद्य संसाधन और विपणन तक बढ़ सकता है। इसके लिए, सेवाओं में नई प्रौद्योगिकियों पर जोर देना चाहिए।

द्वितीय हरित क्रांति तत्त्व निम्नवत है

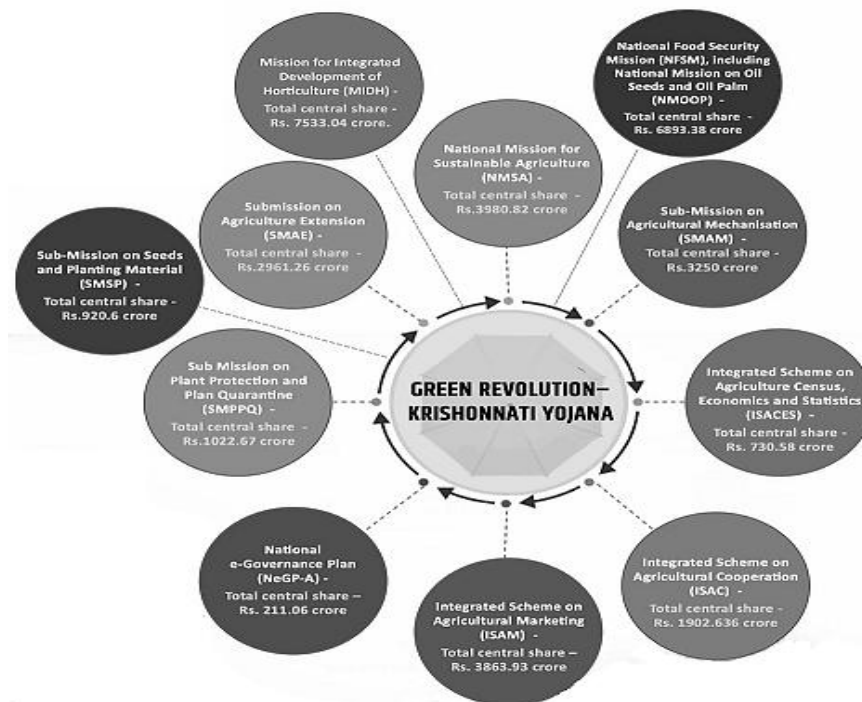
1. भारत जैसे जनाधिक्य वाले देश में हरित क्रांति के अन्तर्गत ऐसी प्रौद्योगिकी के अपनाये जाने की आवश्यकता है जिसकी लागत कम हो तथा जिससे श्रम का विस्थापन न्यूनतम संभव हो सके।
2. हरित क्रांति को कृषि के नये क्षेत्रों में लागू करने की आवश्यकता है। अर्थात् पारिस्थितिकीय विशेषताओं के आधार पर नये बीजों का अनुसंधान कर इसे मोटे अनाजों, दलहन, तिलहन, मुद्रादायिनी एवं चारा आदि फसलों में लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है।
3. हरित क्रांति को अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिए समूचे देश को कृषि जलवायु प्रदेशों (Agro – Climatic regions) में बाँटकर तदानुसार कृषि योजनाओं को बनाने और क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है।
4. हरित क्रांति को कारगर बनाने के लिये राइजोबियम, नील हरित शैवाल आदि जैव रसायनों का प्रयोग किया जाना चाहिये।
5. जल संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता को देखते हुए सिंचाई एवं जल प्रबन्धन की नई विकास विधि को अपनाये जाने की जरूरत है ऐसे में स्प्रिकिंग सिंचाई, ड्रिप सिंचाई आदि की विधियों से जल का संरक्षण किया जा सकता है।
6. ऐसी सहकारी समितियों का गठन किया जाना चाहिये जिससे छोटे एवं सीमान्त कृषकों को उन्नत बीज, उर्वरक, मशीन आदि क्रय करने हेतु कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध हो सके। किराये पर ट्रैक्टर, हारवेस्टर आदि की उपलब्धि छोटे किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।
7. कृषि उत्पादों के मूल्य की एक सन्तुलित नीति होनी चाहिये जिससे कृषकों को कृषि उत्पादों का समुचित लाभ मिल सके तथा वे कृषि में अधिकाधिक निवेश हेतु प्रोत्साहित हो सके।

7.9 भारत में हरित क्रांति के तहत योजनाएं

प्रधानमंत्री ने 2017 से 2020 तक कृषि क्षेत्र में छाता योजना हरित क्रांति— कृषोन्नति योजना (Umbrella Scheme Green Revolution – 'Krishonnati Yojana') का समर्थन किया, 33,269.976 करोड़ रुपये के केंद्रीय हिस्से के साथ अम्ब्रेला योजना हरित विद्रोह कृषोन्नति योजना (Umbrella plan Green Insurgency Krishonnati Yojana) में इसके तहत 11 योजनाएं शामिल हैं और योजनाओं के इस भार से कृषि व्यवसाय और एकीकृत क्षेत्र को तार्किक और व्यापक तरीके से बढ़ावा देने की उम्मीद है ताकि उपयोगिता, सृजन, और उपज से बेहतर लाभ का विस्तार करके किसानों के वेतन का निर्माण किया जा सके। निर्माण ढांचा, बागवानी और भागीदारी उपज के निर्माण और प्रदर्शन के खर्च को कम करना।

हरित क्रांति के तहत अम्ब्रेला योजनाओं के लिए आवश्यक 11 योजनाएं निम्नलिखित हैं—

7.9.1 बागवानी के एकीकृत विकास के लिए मिशन या MIDH— यह कृषि क्षेत्रों के व्यापक विकास को आगे बढ़ाने, क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि, पोषण सुरक्षा पर काम करने और परिवार के खेतों को आय में वृद्धि करने की योजना बना रहा है।



7.9.2 कृषि विस्तार पर प्रस्तुतीकरण

राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों आदि के निरंतर विस्तार तंत्र को मजबूत करने के लिए और इसी तरह खाद्य सुरक्षा और किसानों की वित्तीय मजबूती को पूरा करने के लिए, विभिन्न भागीदारों के बीच सफल लिंकेज और सहकारी ऊर्जा का उत्पादन करने के लिए, कार्यक्रम व्यवस्था और निष्पादन उपकरण को व्यवस्थित करने के लिए, एचआरडी मध्यस्थता का समर्थन करना, इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया, रिलेशनल पत्राचार, और आईसीटी उपकरणों और इसी तरह के अपरिहार्य और अभिनव उपयोग को आगे बढ़ाता है।

7.9.3 सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन

लक्ष्य आर्थिक कृषि प्रथाओं को आगे बढ़ाना है जो प्रमुख कृषि विज्ञान के लिए उपयुक्त हैं जो खेती को शामिल करने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, अधिकारियों की मिट्टी को अच्छी तरह से फिट कर रहे हैं, और संपत्ति संरक्षण नवाचार को समन्वयित कर रहे हैं।

7.9.4 बीज और रोपण सामग्री पर उप-मिशन

नींव को मजबूत और आधुनिक बनाने के लिए मूल्य बीजों के उत्पादन का विस्तार करने, खेत से बचाए गए बीजों की प्रकृति में बदलाव और एसआरआर (SRR) बढ़ाने, बीज दोहराव श्रृंखला को मजबूत करने और बीज उत्पादन, परीक्षण, प्रसंस्करण आदि में नई तकनीकों और प्रगति को आगे बढ़ाने का इरादा है। बीज उत्पादन, गुणवत्ता, भंडारण और प्रमाणन आदि के लिए।

7.9.5 कृषि मशीनीकरण पर उप-मिशन

रैंच ऑटोमेशन (Ranch Automation) के दायरे को बहुत कम और नगण्य रैंचों तक विस्तारित करने के लिए और उन जिलों में जहां होमस्टेड पावर (Homestead power) की पहुंच कम है, कस्टम हायरिंग सेंटर (Custom Hiring Centers) को तरक्की करने के लिए, छोटे जोत और व्यक्तिगत स्वामित्व के महत्वपूर्ण खर्च के कारण उभरती पैमाने की विरोधी अर्थव्यवस्थाओं को संतुलित करने के लिए, उच्च तकनीक और उच्च-सम्मान वाले रैंच गियर (ranch gear) के लिए केंद्र बनाएं, निर्माण अभ्यासों को दिखाने और सीमित करने के माध्यम से भागीदारों के बीच सचेतन बनाने के लिए, और देश भर में पाए जाने वाले परीक्षण समुदायों में निष्पादन परीक्षण और मान्यता की गारंटी दें।

7.9.6 पौध संरक्षण और योजना संगरोध

इस योजना का उद्देश्य दुर्भाग्य को कीड़ों, कीटों, खरपतवारों आदि से फसल की गुणवत्ता और उपज तक सीमित करना है, हमारी बागवानी जैव-सुरक्षा को बाहरी प्रजातियों के आक्रमण और प्रसार से बचाने के लिए, भारतीय कृषि के किराए के साथ काम करना है। विश्वव्यापी व्यापार क्षेत्रों के लिए वस्तु, और महान ग्रामीण प्रथाओं को आगे बढ़ाने के लिए, विशेष रूप से संयंत्र बीमा पद्धतियों और प्रक्रियाओं से संबंधित।

7.9.7 कृषि जनगणना, अर्थशास्त्र और सांख्यिकी पर एकीकृत योजना

बागवानी गणना का प्रयास करने के लिए, देश के कृषि-मौद्रिक मुद्दों पर केंद्रित अनुसंधान को शामिल करें, प्रमुख उपज, स्टोर सभाओं, स्टूडियो और पाठ्यक्रमों के विकास के खर्च का अध्ययन करें, जिसमें प्रसिद्ध ग्रामीण शोधकर्ताओं, व्यापार विश्लेषकों, विशेषज्ञों का नेतृत्व करने के लिए कागजात लाने के लिए शामिल हैं। क्षणिक जांच, कृषि अंतर्दृष्टि दर्शन को और विकसित करना और फसल की स्थिति और फसल उत्पादन पर बुवाई से लेकर कटाई तक विभिन्न स्तरीय डेटा ढांचा बनाना।

7.9.8 राष्ट्रीय ई-शासन योजना कृषि

राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना (National e-Governance Plan) का उद्देश्य भारतीय कृषि क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा देकर किसानों को सशक्त बनाना है। इस योजना का लक्ष्य कृषि उत्पादकता को बढ़ाना, कृषि विपणन में सुधार करना, और किसानों को समय पर सटीक जानकारी प्रदान करना है। योजना के अंतर्गत विभिन्न आईटी आधारित सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं, जिससे किसानों को आधुनिक तकनीक और जानकारी का लाभ मिल सके।

कृषि पोर्टल और मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से किसानों को खेती से संबंधित सभी जानकारी जैसे मौसम पूर्वानुमान, बीज, खाद, कीटनाशक, और नवीनतम कृषि तकनीकों की जानकारी प्रदान की जाती है। ये प्लेटफॉर्म किसानों को उनके प्रश्नों के उत्तर पाने और कृषि विशेषज्ञों से सलाह लेने में भी मदद करते हैं। इसके अतिरिक्त, किसानों के लिए कॉल सेंटर स्थापित किए गए हैं, जहां वे अपनी समस्याओं का समाधान पा सकते हैं। ग्रामीण ज्ञान केंद्रों के माध्यम से किसानों को आधुनिक कृषि प्रथाओं और प्रौद्योगिकियों की जानकारी दी जाती है, जिससे वे अपनी खेती को और अधिक प्रभावी बना सकते हैं।

राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इससे किसानों को सूचना तक त्वरित पहुंच मिलती है। उन्हें कृषि संबंधित जानकारी तुरंत प्राप्त होती है, जिससे वे समय पर सही निर्णय ले सकते हैं। इससे उनकी खेती की उत्पादकता में वृद्धि होती है और वे बाजार में अपने उत्पादों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा, यह योजना कृषि संबंधित गतिविधियों की लागत को कम करने में भी सहायक है। किसानों को विभिन्न सेवाओं के लिए इधर-उधर भटकने की जरूरत नहीं पड़ती, जिससे उनके समय और प्रयास की बचत होती है।

हालांकि, राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना को लागू करने में कुछ चुनौतियां भी सामने आती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी एक प्रमुख समस्या है, जिससे किसानों को इन सेवाओं का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। इसके अलावा, सभी किसानों के पास तकनीकी ज्ञान का अभाव है, जिससे वे इन सेवाओं का प्रभावी ढंग से उपयोग नहीं कर पाते। इस समस्या का समाधान करने के लिए किसानों को इन सेवाओं का उपयोग करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इसके लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों और कार्यशालाओं का आयोजन किया जा सकता है।

कुल मिलाकर, राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना के माध्यम से कृषि क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करके किसानों की आय में वृद्धि और उनके जीवन स्तर में सुधार किया जा सकता है। इस योजना का सफल क्रियान्वयन किसानों को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। किसानों को सशक्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें सही जानकारी, सही समय पर, सही माध्यम से प्रदान की जाए। इस दिशा में राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना एक महत्वपूर्ण कदम है, जो भारतीय कृषि को एक नई दिशा देने में सहायक साबित हो सकता है। इस योजना के माध्यम से किसानों को न केवल आधुनिक कृषि तकनीकों की जानकारी मिलती है, बल्कि उन्हें कृषि उत्पादों के बेहतर विपणन की सुविधा भी प्राप्त होती है। इससे उनकी आय में वृद्धि होती है

और वे अपने जीवन स्तर को सुधारने में सक्षम होते हैं।

इस प्रकार, राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना भारतीय कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकती है, जिससे किसानों को अधिक सक्षम और सशक्त बनाया जा सके। इस योजना के माध्यम से किसानों को आधुनिक प्रौद्योगिकी का लाभ मिल सकता है और वे अपनी खेती को और अधिक प्रभावी बना सकते हैं।

7.9.9 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन या **NFSM**

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (National Food Security Mission) का शुभारंभ भारत सरकार ने 2007-08 में किया था। इसका उद्देश्य देश में खाद्य उत्पादन को बढ़ाना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना था। यह मिशन तीन प्रमुख खाद्य फसलों – चावल, गेहूं, और दलहन – के उत्पादन को बढ़ाने के लिए विशेष रूप से केंद्रित है। इस मिशन के तहत कृषि वैज्ञानिकों, राज्य सरकारों, और किसानों के साथ मिलकर काम किया जाता है ताकि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

इस मिशन का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन को बढ़ाना और किसानों की आय में सुधार करना है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत किसानों को उन्नत किस्म के बीज, खाद, और कीटनाशक उपलब्ध कराए जाते हैं। इसके अलावा, खेत की सिंचाई की सुविधाओं को भी बढ़ावा दिया जाता है। खेत की मिट्टी की गुणवत्ता को सुधारने के लिए जैविक और रासायनिक खादों का उपयोग किया जाता है। किसानों को नवीनतम कृषि तकनीकों और प्रथाओं के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे अपनी फसलों की उत्पादकता को बढ़ा सकें।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत विभिन्न प्रकार की योजनाएं और कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इनमें से एक प्रमुख कार्यक्रम है आत्मनिर्भर भारत योजना जिसके तहत किसानों को वित्तीय सहायता और तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है। इसके अलावा, मिशन के तहत किसानों को कृषि संबंधी जानकारी देने के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएं, और प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं। किसानों को आधुनिक कृषि उपकरणों और मशीनों का उपयोग करने के लिए भी प्रेरित किया जाता है।

इस मिशन के अंतर्गत 'फसल अवशेष प्रबंधन' पर विशेष ध्यान दिया जाता है ताकि खेत की मिट्टी की उर्वरकता को बढ़ाया जा सके और पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। फसल अवशेष प्रबंधन के तहत किसानों को फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उन्हें खाद के रूप में उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे न केवल मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, बल्कि वायु प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना' भी चलाई जाती है। इस योजना के अंतर्गत किसानों को उनके खेत की मिट्टी का परीक्षण करके एक मृदा स्वास्थ्य कार्ड दिया जाता है, जिसमें मिट्टी की गुणवत्ता और उसमें आवश्यक पोषक तत्वों की जानकारी होती है। इसके आधार पर किसान अपनी फसलों के लिए उचित खाद और पोषक तत्वों का चयन कर सकते हैं। इससे फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है और किसानों की आय में सुधार होता है।

इस मिशन के अंतर्गत 'सिंचाई सुविधाओं का विकास' भी एक महत्वपूर्ण घटक है। सिंचाई की सुविधा बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएं और परियोजनाएं चलाई जाती हैं। इसमें ड्रिप इरिगेशन, स्प्रिंकलर इरिगेशन, और अन्य आधुनिक सिंचाई तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इससे पानी का समुचित उपयोग होता है और फसलों को समय पर पर्याप्त पानी मिलता है। इसके अलावा, तालाबों और जलाशयों का निर्माण और सुधार भी किया जाता है ताकि पानी की उपलब्धता बढ़ाई जा सके।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत 'फसल बीमा योजना' भी चलाई जाती है। इस योजना के तहत किसानों को उनकी फसलों की बीमा सुरक्षा प्रदान की जाती है ताकि प्राकृतिक आपदाओं, कीटों और रोगों के कारण होने वाले नुकसान से उन्हें बचाया जा सके। इससे किसानों को आत्मविश्वास मिलता है और वे अधिक जोखिम उठाने के लिए प्रेरित होते हैं।

मिशन के अंतर्गत 'किसान उत्पादन संगठन' (FPOs) का गठन भी किया जाता है। यह संगठन किसानों को समूह में संगठित करके उन्हें कृषि उत्पादन और विपणन में मदद करता है। FPOs के माध्यम से किसानों को उन्नत किस्म के बीज, खाद, और कीटनाशक सामूहिक रूप से खरीदने की सुविधा मिलती है। इससे उनकी

लागत कम होती है और उन्हें बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। इसके अलावा, FPOs के माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों के लिए बाजार और विपणन की सुविधा भी मिलती है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत 'कृषि वानिकी' (Agroforestry) पर भी जोर दिया जाता है। कृषि वानिकी के तहत किसानों को उनके खेतों में पेड़ लगाने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे न केवल मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी मदद मिलती है। पेड़ लगाकर किसान अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत 'महिला किसान सशक्तिकरण' पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। महिलाओं को कृषि कार्यों में सशक्त बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। महिलाओं को कृषि से संबंधित विभिन्न कार्यों में शामिल किया जाता है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें और परिवार की आय में योगदान दे सकें।

मिशन के अंतर्गत 'जैविक खेती' को भी बढ़ावा दिया जाता है। किसानों को जैविक खाद और कीटनाशक उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाता है ताकि उनकी फसलों की गुणवत्ता में सुधार हो और पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। जैविक खेती के माध्यम से किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और उनकी आय में वृद्धि होती है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत 'फसल विविधीकरण' पर भी जोर दिया जाता है। किसानों को एक ही प्रकार की फसल के बजाय विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होती है और उन्हें विभिन्न फसलों के लिए बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

कुल मिलाकर, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन भारतीय कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पहल है जिसका उद्देश्य खाद्य उत्पादन को बढ़ाना और किसानों की आय में सुधार करना है। इस मिशन के तहत विभिन्न प्रकार की योजनाएं और कार्यक्रम चलाए जाते हैं, जो किसानों को उन्नत किस्म के बीज, खाद, और कीटनाशक, सिंचाई की सुविधा, फसल बीमा, और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इससे न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि किसानों की आय में भी सुधार होता है। इस मिशन के सफल क्रियान्वयन से भारत में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है और किसानों का जीवन स्तर सुधार सकता है।

7.9.10 कृषि विपणन पर एकीकृत योजना

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना का मुख्य उद्देश्य किसानों को उनके उत्पादों का बेहतर मूल्य दिलाना और कृषि विपणन तंत्र को सुधारना है। इस योजना के तहत, विभिन्न प्रकार की नीतियों और कार्यक्रमों को एकीकृत किया जाता है ताकि किसानों को एक संगठित और सुविधाजनक विपणन प्रणाली प्रदान की जा सके। कृषि विपणन तंत्र में सुधार के माध्यम से किसानों को अधिक आय और बेहतर जीवन स्तर प्रदान करना इस योजना का प्रमुख लक्ष्य है।

भारत में कृषि विपणन की पारंपरिक प्रणाली में कई समस्याएँ हैं, जैसे कि बिचौलियों की अधिकता, बाजार में पारदर्शिता की कमी, और उचित मूल्य निर्धारण का अभाव। इन समस्याओं के समाधान के लिए कृषि विपणन पर एकीकृत योजना के तहत अनेक सुधारात्मक उपाय किए गए हैं। सबसे पहले, इस योजना के तहत किसानों को उनके उत्पादों के लिए उचित मूल्य प्राप्त करने में मदद करने के लिए एक ई-नाम (National Agriculture Market) प्लेटफॉर्म की स्थापना की गई है। ई-नाम एक इलेक्ट्रॉनिक ट्रेडिंग पोर्टल है जो किसानों को उनके उत्पादों के लिए एक ऑनलाइन बाजार प्रदान करता है। इसके माध्यम से किसान सीधे खरीदारों के साथ संपर्क कर सकते हैं और उन्हें अपने उत्पादों का बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। इससे बिचौलियों की भूमिका कम होती है और बाजार में पारदर्शिता बढ़ती है।

इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण बाजारों और मंडियों के आधुनिकीकरण और विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। ग्रामीण मंडियों को आधुनिक सुविधाओं से लैस किया जा रहा है ताकि किसानों को बेहतर विपणन सुविधा मिल सके। इसमें वेयरहाउस, कोल्ड स्टोरेज, और परीक्षण प्रयोगशालाओं का निर्माण शामिल है। इसके अलावा, किसानों को उनके उत्पादों की गुणवत्ता और ग्रेडिंग के बारे में जानकारी देने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। इससे किसान अपने उत्पादों को बेहतर ढंग से तैयार कर सकते हैं

और बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना के तहत कृषि उत्पादों की प्रोसेसिंग और मूल्यवर्धन पर भी जोर दिया गया है। इसके माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों की प्रोसेसिंग करने और उन्हें मूल्यवर्धित उत्पाद बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इससे न केवल उनकी आय में वृद्धि होती है, बल्कि उन्हें बाजार में बेहतर प्रतिस्पर्धा करने में भी मदद मिलती है। प्रोसेसिंग और मूल्यवर्धन के लिए किसानों को आवश्यक मशीनरी और उपकरण प्रदान किए जा रहे हैं, साथ ही उन्हें तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है।

इस योजना के तहत 'किसान उत्पादन संगठन' (FPO) का गठन भी एक महत्वपूर्ण घटक है। FPOs के माध्यम से किसानों को समूह में संगठित किया जाता है ताकि वे सामूहिक रूप से अपने उत्पादों को बेच सकें और बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकें। FPOs किसानों को उन्नत किस्म के बीज, खाद, और कीटनाशक सामूहिक रूप से खरीदने की सुविधा भी प्रदान करते हैं, जिससे उनकी लागत कम होती है। इसके अलावा, FPOs के माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों के लिए विपणन और वितरण की सुविधा भी मिलती है।

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'कृषि निर्यात' को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में बेचने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके लिए किसानों को आवश्यक दस्तावेजीकरण, गुणवत्ता मानकों, और अंतरराष्ट्रीय विपणन की जानकारी प्रदान की जा रही है। इससे किसानों को उनके उत्पादों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और उनकी आय में वृद्धि होती है।

इस योजना के तहत 'कृषि बीमा' पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। कृषि बीमा के माध्यम से किसानों को उनके फसलों की सुरक्षा प्रदान की जाती है ताकि प्राकृतिक आपदाओं, कीटों, और रोगों के कारण होने वाले नुकसान से उन्हें बचाया जा सके। इससे किसानों को आत्मविश्वास मिलता है और वे अधिक जोखिम उठाने के लिए प्रेरित होते हैं। कृषि बीमा के माध्यम से किसानों को उनके फसलों के नुकसान की भरपाई मिलती है, जिससे उनकी आय में स्थिरता बनी रहती है।

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'कृषि वित्त' की सुविधा भी प्रदान की जा रही है। किसानों को उनके कृषि कार्यों के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है ताकि वे अपने कृषि उत्पादन को बढ़ा सकें। इसके लिए किसानों को कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान किया जा रहा है और उन्हें वित्तीय प्रबंधन के बारे में भी जानकारी दी जा रही है। इससे किसानों को उनके कृषि कार्यों में निवेश करने में मदद मिलती है और उनकी आय में वृद्धि होती है।

इस योजना के तहत 'कृषि वानिकी' (Agroforestry) पर भी जोर दिया गया है। कृषि वानिकी के माध्यम से किसानों को उनके खेतों में पेड़ लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इससे न केवल मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी मदद मिलती है। पेड़ लगाकर किसान अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें उनके उत्पादों के लिए बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'महिला किसान सशक्तिकरण' पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। महिलाओं को कृषि कार्यों में सशक्त बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है। महिलाओं को कृषि से संबंधित विभिन्न कार्यों में शामिल किया जा रहा है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें और परिवार की आय में योगदान दे सकें। महिला किसानों को विशेष योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा रहा है ताकि वे कृषि विपणन तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

कृषि विपणन पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'जैविक खेती' को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। किसानों को जैविक खाद और कीटनाशक उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है ताकि उनकी फसलों की गुणवत्ता में सुधार हो और पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। जैविक खेती के माध्यम से किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और उनकी आय में वृद्धि होती है। जैविक उत्पादों की मांग बढ़ रही है और इस योजना के माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों के लिए बेहतर बाजार उपलब्ध कराया जा रहा है।

कुल मिलाकर, कृषि विपणन पर एकीकृत योजना भारतीय कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पहल है जिसका उद्देश्य कृषि विपणन तंत्र को सुधारना और किसानों को उनके उत्पादों का बेहतर मूल्य दिलाना है। इस योजना

के तहत विभिन्न प्रकार की नीतियों और कार्यक्रमों को एकीकृत किया गया है, जो किसानों को एक संगठित और सुविधाजनक विपणन प्रणाली प्रदान करते हैं। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि होती है, बल्कि उन्हें बाजार में बेहतर प्रतिस्पर्धा करने में भी मदद मिलती है। इस योजना के सफल क्रियान्वयन से भारत में कृषि विपणन तंत्र को सुधारने और किसानों को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है।

7.9.11 कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना का उद्देश्य भारतीय कृषि क्षेत्र में समग्र सुधार और विकास लाना है। इस योजना के तहत, कृषि उत्पादन, विपणन, संसाधन प्रबंधन, और किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को एकीकृत किया जाता है। कृषि सहयोग का मुख्य उद्देश्य किसानों को उनकी खेती के सभी पहलुओं में सहयोग प्रदान करना है ताकि वे अपने उत्पादन को बढ़ा सकें और अपनी आय में सुधार कर सकें।

भारत में कृषि का मुख्य आधार छोटे और सीमांत किसान हैं, जिनके पास सीमित संसाधन होते हैं। इन्हें तकनीकी जानकारी, वित्तीय सहायता, और आधुनिक कृषि उपकरणों की कमी के कारण कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के माध्यम से इन किसानों को संगठित करके उन्हें आवश्यक सहयोग और समर्थन प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत किसानों को कृषि के विभिन्न चरणों जैसे बीज, खाद, सिंचाई, और विपणन के बारे में सहायता दी जाती है।

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के तहत 'किसान उत्पादन संगठन' (FPOs) का गठन एक महत्वपूर्ण पहल है। FPOs किसानों को एक समूह में संगठित करके उन्हें सामूहिक रूप से कृषि कार्य करने और अपने उत्पादों को बेचने में मदद करते हैं। इससे किसानों को उन्नत किस्म के बीज, खाद, और कीटनाशक सामूहिक रूप से खरीदने की सुविधा मिलती है, जिससे उनकी लागत कम होती है। इसके अलावा, FPOs के माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों के लिए बाजार और विपणन की सुविधा भी मिलती है। यह किसानों की आय बढ़ाने और उनके उत्पादों को बेहतर मूल्य दिलाने में मदद करता है।

इस योजना के तहत किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकों और प्रथाओं के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है। कृषि वैज्ञानिक और विशेषज्ञ किसानों को नवीनतम कृषि तकनीकों, जैविक खेती, और टिकाऊ कृषि प्रथाओं के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। इससे किसानों को अपनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने और उनकी गुणवत्ता में सुधार करने में मदद मिलती है। इसके अलावा, किसानों को सिंचाई प्रबंधन, मिट्टी की उर्वरकता, और कीट नियंत्रण के बारे में भी जानकारी दी जाती है।

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'कृषि वित्त' की सुविधा भी प्रदान की जाती है। किसानों को उनके कृषि कार्यों के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है ताकि वे अपने उत्पादन को बढ़ा सकें। इसके लिए किसानों को कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान किया जाता है और उन्हें वित्तीय प्रबंधन के बारे में भी जानकारी दी जाती है। इससे किसानों को उनके कृषि कार्यों में निवेश करने में मदद मिलती है और उनकी आय में वृद्धि होती है।

इस योजना के तहत 'कृषि बीमा' भी एक महत्वपूर्ण घटक है। कृषि बीमा के माध्यम से किसानों को उनके फसलों की सुरक्षा प्रदान की जाती है ताकि प्राकृतिक आपदाओं, कीटों, और रोगों के कारण होने वाले नुकसान से उन्हें बचाया जा सके। इससे किसानों को आत्मविश्वास मिलता है और वे अधिक जोखिम उठाने के लिए प्रेरित होते हैं। कृषि बीमा के माध्यम से किसानों को उनके फसलों के नुकसान की भरपाई मिलती है, जिससे उनकी आय में स्थिरता बनी रहती है।

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के तहत 'कृषि उपकरण' और 'प्रौद्योगिकी हस्तांतरण' पर भी जोर दिया गया है। किसानों को आधुनिक कृषि उपकरण और मशीनरी प्रदान की जाती है ताकि वे अपने कृषि कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से कर सकें। इसके अलावा, उन्हें नई प्रौद्योगिकियों और नवाचारों के बारे में भी जानकारी दी जाती है ताकि वे अपनी खेती को और अधिक लाभदायक बना सकें। कृषि उपकरणों के उपयोग से न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि समय और श्रम की भी बचत होती है।

इस योजना के तहत महिला किसान सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। महिलाओं को कृषि

कार्यों में सशक्त बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। महिलाओं को कृषि से संबंधित विभिन्न कार्यों में शामिल किया जाता है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें और परिवार की आय में योगदान दे सकें। महिला किसानों को विशेष योजनाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा रहा है ताकि वे कृषि सहयोग तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'जैविक खेती' को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। किसानों को जैविक खाद और कीटनाशक उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है ताकि उनकी फसलों की गुणवत्ता में सुधार हो और पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। जैविक खेती के माध्यम से किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और उनकी आय में वृद्धि होती है। जैविक उत्पादों की मांग बढ़ रही है और इस योजना के माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों के लिए बेहतर बाजार उपलब्ध कराया जा रहा है।

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के तहत 'कृषि वानिकी' (Agroforestry) पर भी जोर दिया गया है। कृषि वानिकी के माध्यम से किसानों को उनके खेतों में पेड़ लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इससे न केवल मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी मदद मिलती है। पेड़ लगाकर किसान अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें उनके उत्पादों के लिए बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

इस योजना के तहत 'फसल विविधीकरण' को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। किसानों को एक ही प्रकार की फसल के बजाय विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होती है और उन्हें विभिन्न फसलों के लिए बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। फसल विविधीकरण से किसानों को जोखिम कम करने और उनकी आय को स्थिर रखने में मदद मिलती है।

कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना के अंतर्गत 'कृषि निर्यात' को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके माध्यम से किसानों को उनके उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में बेचने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके लिए किसानों को आवश्यक दस्तावेजीकरण, गुणवत्ता मानकों, और अंतरराष्ट्रीय विपणन की जानकारी प्रदान की जा रही है। इससे किसानों को उनके उत्पादों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त होता है और उनकी आय में वृद्धि होती है।

कुल मिलाकर, कृषि सहयोग पर एकीकृत योजना भारतीय कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पहल है जिसका उद्देश्य किसानों को सभी संभव सहायता प्रदान करके उनके कृषि उत्पादन और आय में सुधार करना है। इस योजना के तहत विभिन्न प्रकार की नीतियों और कार्यक्रमों को एकीकृत किया गया है, जो किसानों को एक संगठित और सहयोगात्मक कृषि प्रणाली प्रदान करते हैं। इससे न केवल किसानों की आय में वृद्धि होती है, बल्कि उन्हें बाजार में बेहतर प्रतिस्पर्धा करने में भी मदद मिलती है। इस योजना के सफल क्रियान्वयन से भारत में कृषि क्षेत्र को मजबूती मिल सकती है और किसानों का जीवन स्तर सुधार सकता है।

7.10 हरित क्रांति से जीन क्रांति तक

हम जानते हैं कि जीन क्रांति प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध उत्पादकता में बढ़ोत्तरी 1990 के दशक के दौरान काम होनी प्रारंभ हो गई थी, इस संदर्भ में कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए अपेक्षित संभावना प्रदान करने तथा खाद्य सुरक्षा की समस्या हल करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी की संकल्पना की गई है। प्रौद्योगिकी ने 1980 के दशक के प्रारंभ में गति प्राप्त की जब विशाल निगमों ने पराजैविक फसलें विकसित करने के लिए अनुसंधान और विकास के लिए भारी निवेश करना प्रारंभ किया।

जननिक रूप से रूपांतरित बीजों के प्रयोग की भूमिका उत्पादकता में आश्चर्यजनक वृद्धि करने के वचन की पूर्ति माना गया था तथा एक ओर किसानों को कृषि से अपनी आय बढ़ाने के सहायक अन्य संसाधन तो दूसरी ओर अधिक सस्ता और गुणवत्ता की खाद्य सामग्री मुहैया कर उपभोक्ताओं के लिए लाभ कर बन गया। जैव प्रौद्योगिकी केंद्रित तरीकों के प्रयोग को भी पैमाना निरपेक्ष समझा गया था क्योंकि यह बीजों पर फोकस करता है, रासायनिक, उर्वरकों और महंगी फार्म मशीनरी पर नहीं। बीजों को अधिक उत्पादनकारी, अधिक कीटनाशी सह और सभी श्रेणियों के फार्मों और सभी कृषि क्षेत्रों के लिए उपयुक्त समझा गया है। परंतु भारतीय कृषि में जीन प्रौद्योगिकी का अंगीकरण अभी वाद विवाद और चर्चा का विषय है क्योंकि पादपों, जंतुओं और

मानव जीवन पर उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का पूरी तरह से परीक्षण अभी नहीं हुआ है। यद्यपि एक ओर बीज प्रौद्योगिकी के पर्यावरणीय, पारिस्थितिकीय और स्वास्थ्य संबंधी परिणामों को उसके आर्थिक लाभों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है तो दूसरी ओर बहुत से ऐसे मुद्दे हैं जिन्होंने अनुसंधानकर्ताओं और सक्रियतावादियों का ध्यान आकर्षित किया है। उनमें प्रमुख हैं, नैतिक, सुरक्षा और स्वामित्व मुद्दे। उसे अपनाने का सबसे बड़े खतरों में एक यह है कि आधारभूत मानवीय आवश्यकता (भोजन), पर कुछ बहुराष्ट्रीय जैव बीजों के प्रजनन कंपनियों का एकाधिकार नियंत्रण हो जाएगा। इस प्रकार यद्यपि बीज प्रौद्योगिकी में भारतीय कृषि में क्रांति लाने की विपुल संभावना है परंतु बीज प्रौद्योगिकी महंगी और अपने स्वरूप में स्वामित्व होने के कारण संदेह है कि प्रौद्योगिकी संसाधन सम्पन्न किसानों के लिए अधिक उपयुक्त हो सकती है सीमांत और छोटे किसानों की बहुत बड़ी संख्या, विशेषकर पिछड़े कृषि क्षेत्रों में इसके लाभ प्राप्त करने से छूट जाते हैं। परंतु हमें स्मरण करना चाहिए कि जीन क्रांति आधारित प्रौद्योगिकी भी छोटे और सीमांत किसानों की तुलना में केवल धनी किसानों के अनुकूल है। इसलिए हरित क्रांति और जीन क्रांति के बीच आधारभूत अंतर है, ऐसा कहा जा सकता है कि हरित क्रांति मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र प्रेरित थी तो 'जीन क्रांति का आधार निजी क्षेत्र रहेगा।

7.11 सारांश

संक्षेप में कहा जाय तो भारत में हरित क्रांति का प्रभाव मिश्रित रहा है। एक ओर जहाँ पंजाब, हरियाणा, व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बड़े किसानों को अत्यधिक लाभ मिला है वहीं दूसरी तरफ पूर्वोत्तर भारत में यह लगभग अनुपस्थित रहा है। निश्चित ही एक तरफ जहाँ 1965-66 में हुई खाद्यान्न की कमी को 1971-72 में खाद्यान्न आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई, वहीं दूसरी तरफ इसके क्षेत्र में पर्यावरणीय समस्याओं सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं को भी जन्म दिया। इसीलिये उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर ही हाल में "दूसरी हरित क्रांति" की आवश्यकता पर चर्चा आरम्भ हुई है जो अधिक समावेशी स्वरूप से खाद्य सुरक्षा/असुरक्षा की समस्या का समाधान करने के लिये उपयुक्त हो, अर्थात् प्रक्रिया के मुख्य घटकों के रूप में छोटे सीमांत किसानों और वर्षा प्रधान तथा शुष्क क्षेत्रों पर बल सहित कृषि उत्पादकता बढ़ाने का आग्रह करती हों।

7.12 शब्द सूची

भूमि उपयोग	Land Use
कृषि प्रदेश	Agriculture region
कृषि शाख	Agriculture credit
कृषि आदान	Agriculture input
कृषि उत्पादकता	Agriculture productivity
कृषि जलवायु प्रदेश	Agro climatic region
कृषि वानिकी	Agroforestry
कृषि पारिस्थितिक प्रदेश	Agro ecological region

7.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

- वैश्विक संदर्भ में हरित क्रांति के जनक कौन थे?
 - (अ) राजकृष्णा
 - (ब) M.S. स्वामीनाथन
 - (स) नॉर्मन बोरलाग
 - (द) इनमें से कोई नहीं
- निम्नलिखित में से कौन हरित क्रांति को संदर्भित करता है?
 - (अ) हरी खाद का उपयोग
 - (ब) फसलों का उच्च उत्पादन
 - (स) हरित वनस्पति
 - (द) उच्च पैदावार विविधता कार्यक्रम

3. हरित क्रांति के बुनियादी तत्व हैं—
 (अ) खेती के क्षेत्रों का विस्तार (ब) मौजूदा खेती की दोहरी फसल
 (स) हरित क्रांति की विधि में HYVP बीजों का उपयोग (द) उपरोक्त सभी।
4. किसने भारत में कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु 'सदाबहार क्रांति' शब्द का प्रयोग किया।
 (अ) M.S. स्वामीनाथन (ब) नार्मन बोरलाग
 (स) राजकृष्णा (द) आर० के० वी० राव
5. द्वितीय हरित क्रांति का उद्देश्य किन फसलों के उत्पादन के लिए था।
 (अ) चावल के उत्पादन के लिए। (ब) दलहन के उत्पादन के लिये।
 (स) तिलहन के उत्पादन के लिए। (द) इनमें से सभी के लिये।
6. हरित क्रांति की शुरुआत किस पंचवर्षीय योजना के दौरान की गई थी?
 (अ) प्रथम (ब) द्वितीय (स) तृतीय (द) चतुर्थ

आदर्श उत्तर (1) स, (2) द, (3) द, (4) अ, (5) द, (6) स,

7.14 सन्दर्भ / उपयोगी पुस्तकें

1. प्रो.आर.सी. तिवारी — भारत का भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन प्रयागराज।
2. डॉ. अलका गौतम — भारत का वृहद् भूगोल, शारदा पुस्तक भवन प्रयागराज।
3. प्रोफेसर माजिद हुसैन — भारत का भूगोल, मैकग्रा हिल, नयी दिल्ली।
4. Jagdish Singh, India : A Comprehensive and systematic Geography. Gyanodaya Publication Grokhpur.
5. Singh R.L. — India : A Regional Geography, N.G.S.I. Grokhpur
6. Nag, P. and Sengupta, S : Geography , New Delhi.
7. Ford Foundation (1959 : Report on Indian's Food crisis and step to meet It New Delhi : Ministry of food and agriculture and Ministry of community Development.

7.15 अभ्यास प्रश्न (परीक्षा की तैयारी हेतु)

- स्वतंत्रोत्तर देश में उत्पन्न खाद्य संकट को किस प्रकार दूर किया गया?
- हरित क्रांति का भारत में किस प्रकार प्रचार-प्रसार किया गया?
- हरित क्रांति के ऐतिहासिक संदर्भ की एक संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत कीजिये।
- हरित क्रांति के सकारात्मक व नकारात्मक पहलुओं की व्याख्या कीजिये।
- हरित क्रांति के पर्यावरणीय प्रभाव को महत्वपूर्ण बिन्दुओं के माध्यम से समझाइये।
- द्वितीय हरित क्रांति से आप क्या समझते हैं? समझाइयें
- भारत में कपास के उत्पादन एवं वितरण व्याख्या कीजिए।
- भारत में चाय के उत्पादन एवं वितरण व्याख्या कीजिए।
- दलहन पर टिप्पणी लिखिए।

नोट: इस इकाई का अध्ययन कर अभ्यास प्रश्नों के उत्तर स्वयं लिखिये।

इकाई—8 : वनस्पतिक अनुक्रम, पादप समुदाय का उद्भव एवम् विकास

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 वनस्पति अनुक्रम का अर्थ

8.3 वनस्पति अनुक्रम की अवस्थाओं के भेद

8.3.1 जीवीय अनुक्रम की अवस्थाएँ

8.3.2 अनुक्रम की क्रमिक अवस्थाओं के भेद

8.3.3 जैविक अनुक्रम के कारक

8.3.4 जैविक अनुक्रम के भेद

A प्राथमिक अनुक्रम

B द्वितीय अनुक्रम

C चरम वनस्पति

1— एकल चरम सिद्धान्त

2— बहुल चरम सिद्धान्त

8.4 पौधों का उद्भव

8.5 पौधों के उद्भव की प्रक्रियाएँ

1— प्राकृतिक एवम् कृत्रिम चयन

2— पृथक्करण

3— विषमता

8.6 पादपों का उद्भव एवम् विकास

8.6.1 परपोषित जीवों का उद्भव विकास

8.6.2 स्वपोषित पौधों का उद्भव विकास

8.6.3 स्थलीय पौधों का उद्भव एवं विकास

8.6.4 वनस्पति समुदाय का उद्भव एवम् विकास

8.6.5 कार्बोनिफेरस कालीन पादपों का उद्भव विकास

8.6.6 मेसोजोइक कालीन वनस्पति का उद्भव एवम् विकास

8.6.7 तृतीयक युगीन पादप का उद्भव एवम् विकास

8.7 सारांश

8.8 बोध प्रश्न

8.9 शब्दावली

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में वनस्पति अनुक्रम, वनस्पति एवं जन्तुओं का उद्भव विकास का वर्णन किया जाना है। वनस्पतियाँ सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र का आधार हैं। किसी एक स्थान पर धीरे-धीरे उनका विकास होता है, ये एक अनुक्रम से दूसरे अनुक्रम में परिवर्तित होते हुए चरम वनस्पति में अन्ततोगत्वा परिणत हो जाती है। प्रथम अनुक्रम से लेकर द्वितीय अनुक्रम तक वनस्पतियों को अनेक पर्यावरणीय दशाओं से संघर्ष करते रहना होता है, जो वनस्पति इन पर्यावरणीय दशाओं से समायोजन स्थापित करती हैं, वे चरम जलवायु, चरम वनस्पति की दशा को प्राप्त करती है। पौधों और जन्तुओं का उद्भव विकास कोई एक निश्चित अथवा अकस्मात् घटना नहीं है, बल्कि अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं का करोड़ों वर्षों तक की घटनाओं का परिणाम है। इसीलिए पौधों और जन्तुओं के उद्भव और विकास के विभिन्न सोपानों को समझने के लिए कैम्ब्रियन, कार्बोनिफेरस, जुरैसिक, ट्रियासिक, क्रिटैसियस, प्लोस्टोसीन आदि युगों की विभिन्न जलवायविक, रासायनिक घटनाओं को समझना आवश्यक है, क्योंकि किसी युग में किसी वनस्पति का विकास हुआ, दूसरे युग में वह धरातल से विलुप्त हो गयी। इसी तरह जन्तुओं के साथ भी घटनायें विभिन्न युगों में घटी, जैसे— डायनासोर जुरासिक युग में सर्वप्रमुख जीव था, लेकिन क्रिटैसियस युग तक विलुप्त होते गये। इसी तरह अनेक स्तनधारी, रेंगने वाले जन्तुओं का वनस्पतियों का विकास हुआ, जो आज विद्यमान हैं।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है कि आप

- वनस्पति अनुक्रम समझ सकेंगे।
- चरम जलवायु, चरम वनस्पति क्या है, समझ सकेंगे।
- वनस्पतियों का उद्भव और विकास किन-किन युगों में किन-किन जलवायु परस्थितियों में हुआ, की व्याख्या कर सकेंगे।

8.2 वनस्पति अनुक्रम का अर्थ

जीवमण्डल में पौधों का सर्वाधिक महत्व पाया जाता है, यह प्राथमिक उत्पादक हैं। प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण पोषक स्तर के सदस्यों को आहार उपलब्ध कराते हैं। पौधों की प्रजातियाँ उनके विशेषताओं आदि को सामूहिक रूप से पादप समुदाय कहते हैं। पौधे वनस्पति समुदाय के आधारभूत इकाई हैं। पौधे ऐसे जीव हैं जो सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से सूर्य के प्रकाश में ऑक्सीजन की उपस्थिति में जल की उपलब्धता में पौधे अपना आहार स्वयं बनाते हैं। इस तरह पौधों द्वारा सौर ऊर्जा का रासायनिक ऊर्जा में रूपान्तरण होता रहता है। ऊर्जा का आहार शृंखला के द्वारा पोषण स्तर के विभिन्न जीवजन्तुओं में सतत प्रवाह होता रहता है। पेड़ पौधे सौर ऊर्जा का प्रत्यक्ष रूप से उपभोग करते, हैं जबकि जीव जन्तु पौधों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस तरह जैविक घटक एवं अजैविक घटक के मध्य पेड़ पौधे मध्यस्थता की भूमिका निभाते हैं। जीव मण्डल में पेड़ पौधे सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक हैं। भूगोल की एक स्वतंत्र शाखा के रूप में पादप भूगोल को विकसित किया गया है। पादप भूगोल में पौधों के उत्पत्ति, विकास उनका वितरण, वर्गीकरण, विसरण, सामुदायिक विकास, विलोपन एवं विभिन्न कार्यों का वर्णन एवं व्याख्या किया जाता है। पारिस्थितिक तंत्र में पौधों का प्रमुख कार्य सूर्य द्वारा उपलब्ध सौर्यिक प्रकाश को प्रकाश संश्लेषण क्रिया के द्वारा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तन है। यही रासायनिक ऊर्जा या आहार ऊर्जा पूरे जीव मण्डल का आधार है। जैविक एवं अजैविक घटक के मध्य वनस्पतियाँ सम्बन्ध स्थापित करने वाली एक कड़ी हैं, दोनों को आपस में जोड़ती हैं। पौधे द्वारा बनी रासायनिक ऊर्जा पोषण स्तर एक, पोषण स्तर दो, पोषण स्तर तीन, पोषण स्तर चार में संचरण करती है। किसी भी एक निश्चित पर्यावरणीय आवास में विकसित होने वाली पौधों के समूह को पादप समुदाय कहते हैं। पादप समुदाय की अनेक विशेषताएं होती हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं। प्रथम किसी भी पादप समुदाय में न्यूनतम दो से अधिक प्रजातियों के पौधे पाए जाते हैं। द्वितीय एक ही पर्यावरणीय दशाओं

में ऐसे पौधों की प्रजातियाँ विकसित होती हैं, जो एक ही विशेष प्रकार के आवास में रहने में सक्षम होती हैं। तृतीय पौधों के सभी सदस्य पारिस्थितिक तंत्र में सभी सदस्यों से सम्बन्धित होते हैं, किसी भी प्रदेश में पाए जाने वाले पादप के समुदायों के समूह को वनस्पति कहते हैं। वनस्पति और पादप समुदाय में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। वनस्पतियाँ अपनी प्रजाति और संख्या पर निर्भर होती हैं, भिन्न-भिन्न आवास में सामान पौधे या पादप हो सकते हैं, लेकिन उनके वनस्पति का प्रतिरूप अलग होता है। इसी तरह से भिन्न भिन्न क्षेत्र की वनस्पति एक प्रकार की हो सकती है, लेकिन उनकी जाति अलग हो सकती है, जैसे यदि दो पर्यावरणीय आवास क्षेत्र हैं, एक में घास है, दूसरे में सागौन है। प्रथम में घास की बहुलता है द्वितीय में सागौन की बहुलता है। इस तरह प्रथम को घास वनस्पति और दूसरे को सागौन वनस्पति या सागौन वन कहेंगे। वनस्पति मूलतः संख्या पर निर्भर होती है। वनस्पति अनुक्रम को जीवी अनुक्रम भी कहते हैं। किसी भी पर्यावरण में वनस्पति के एक समुदाय का दूसरे समुदाय द्वारा स्थानापन्न ही अनुक्रम कहलाता है। इस तरह के वनस्पति समुदाय के क्रमिक परिवर्तन को क्रमक (शेरे) कहते हैं। जब किसी भी पर्यावरण में वनस्पति के परिवर्तन की अवस्थाओं से गुजरने के बाद एक स्थिरता प्राप्त होती है या स्थिर दशा में प्राप्त होती है तो उस क्रमक को पूर्ण हुआ माना जाता है। ऐसी स्थिति में पादपों का सबसे अधिक विकास होता है जिसे चरम वनस्पति अथवा चरम समुदाय कहते हैं। चरम अनुक्रम परिवर्तित वनस्पति परिवर्तन की अन्तिम अनुक्रम होता है अन्तिम अनुक्रम को चरम समुदाय चरम जलवायु भी कहते हैं। चरम जलवायु इसलिए कहते हैं क्योंकि वनस्पति के विकास और संवर्धन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान जलवायु का ही होता है। विद्वान क्लीमेंट महोदय ने 1916 में वनस्पति के अनुक्रम को पाँच अवस्थाओं में वर्गीकृत किया था। प्रथम जीवीय अनुक्रम व्यवस्था, द्वितीय अनुक्रम की क्रमिक अवस्था के प्रकार, तृतीय जैविक अनुक्रम के प्रकार, चतुर्थ जीवीय अनुक्रम के प्रकार हैं।

8.3 वनस्पति अनुक्रम की अवस्थाओं के भेद –

- 1 सर्वप्रथम, इसमें कोई क्षेत्र पूरी तरह से वनस्पतिविहीन होता है या नग्न क्षेत्र होता है।
- 2 द्वितीय प्रावस्था दो नग्न धरातल में अन्यत्र क्षेत्र से उत्पन्न होने के लिए पौधों के बीजों का आगमन होता है।
- 3 तृतीय प्रावस्था तीन आए हुए पौधों के बीजों का अंकुरण एवं पौधों का जन्म कार्य सम्पन्न होता है।
- 4 चतुर्थ प्रावस्था चार पौधों का विकास हो जाता है और विकसित हुए पौधों के मध्य भोजन या आहार, सूर्य प्रकाश आदि के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा होती है। उसका आसपास के पर्यावरण पर प्रभाव होता है।
- 5 पंचम प्रावस्था, इसे स्थिरीकरण की प्रावस्था कहते हैं। इसमें जिस पौधों की प्रजातियाँ वहां उपलब्ध होती है वह अपनी अन्तिम समय स्थिति की दशा को प्राप्त करता है। यह दशा वहां के स्थानीय आवास प्रादेशिक आवास अथवा पर्यावरण की संतुलित दशाओं के सन्दर्भ में होता है।

8.3.1 जीवीय अनुक्रम की अवस्थायें –

यह स्पष्ट है कि विभिन्न आवासों में विभिन्न प्रकार की वनस्पति समुदाय का विकास होता है, इसलिए आवास की विविधता के आधार पर अनुक्रम की क्रमक अवस्थाओं को अनेक वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1— तर क्रमक –

यह अवस्था जलीय अवस्था की द्योतक है, ऐसी स्थिति में तालाब, झील, नदी, दलदल के किनारे वनस्पतियों का विकास होता है।

2— शुष्क क्रमक –

इस क्रमक का विकास शुष्क मरुस्थलीय क्षेत्र में पाया जाता है। शुष्क मरुस्थल में बालुका स्तूप, बरखान, स्थलाकृतियों में इसका विकास होता है।

3— स्थल क्रमक –

यह नंगी चट्टानों पर होता है जहां पर वर्षण कम वाष्पीकरण अधिक होने से स्वच्छ पर्यावरण का विकास

होता है।

8.3.3 जैविक अनुक्रम के कारक —

किसी भी पर्यावरण में वनस्पति समुदाय का विकास अनेक कारकों पर निर्भर है। जलवायु, मृदा, भौतिक, जैविक एवं मानवीय हस्तक्षेप प्रमुख हैं। भौतिक कारक में जलवायु, मिट्टी, धरातल का स्वरूप ऊँचाई धरातलीय ढाल आदि को शामिल किया जाता है।

क— जलवायु कारक —

वनस्पतियों के विकास में तापमान, सूर्य का प्रकाश, वायुमण्डल की आर्द्रता, वायु, जल, वर्षा, आज का महत्वपूर्ण योगदान है। किसी भी वनस्पति के विकास में सूक्ष्म जलवायु का अधिक प्रभाव होता है क्योंकि सूक्ष्म जलवायु एक अत्यन्त छोटे क्षेत्र में अपना प्रभाव छोड़ती है। वनस्पतियाँ अपने स्थानीय जलवायुविक चरों के द्वारा प्रभावित होती हैं। स्थानीय स्तर पर मृदा पौधों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है क्योंकि मृदा के भौतिक और रासायनिक गुण, मृदा गठन, मृदा में अम्लीय, क्षारीयता उसके पोषक तत्व वनस्पति के विकास को प्रभावित करते हैं, उनको नियंत्रित करते हैं।

ख— भौतिक कारक या धरातलीय कारक —

धरातलीय कारक के अन्तर्गत धरातल के स्वरूप, ढाल, कोण, ढाल के पहलू, उच्चावच आदि को शामिल किया जाता है जैसे सूर्य के सम्मुख धरातल ढाल पर वनस्पतियों का विकास अच्छी तरह से होता है लेकिन विमुख ढाल पर जहाँ पर सूर्य के प्रकाश का पहुँचना मुश्किल है, वहाँ पर वनस्पतियों का विकास अच्छी तरह से नहीं हो सकता। ढाल और उच्चावच के सूक्ष्म जलवायु प्रभावित होती है जो वनस्पति के विकास और संवर्धन को नियंत्रित करती है।

8.3.3 जैविक अनुक्रम के कारक —

किसी भी स्थान के पौधों के विकास में आस पास पाए जाने वाले पौधों जीव-जन्तुओं प्राणियों विशेषकर के मानव का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मानव स्वभाववश जाने अनजाने में प्रायः जंगलों को नष्ट करता है। इससे भी वनस्पतियों का विकास और संवर्धन या जैविक अनुक्रम प्रभावित होता है। पौधों द्वारा आपस में स्थान, पोषक आहार, सूर्य का प्रकाश, जल मिट्टी से उपलब्ध खनिज तत्व की प्राप्ति हेतु प्रतिस्पर्धा होती रहती है। इसीलिए जो पौधे इसमें अनुकूलन स्थापित कर लेते हैं उनके अनुक्रम का विकास व्यवस्थित हो जाता है।

8.3.4 जैविक अनुक्रम के भेद —

वानस्पतिक अनुक्रम को किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में दो वर्गों में रखा गया है— प्रथम, स्वजात अनुक्रम यह वर्ग वनस्पतियों द्वारा स्वयं होता है। द्वितीय अन्य जात इस अनुक्रम का प्रारम्भ उस दौर में होता है जब किसी स्थान के सन्दर्भ में पारिस्थितिक तंत्र के भौतिक घटकों में विभिन्नता पाई जाती है। जैसे जलवायु परिवर्तन, अवसादीकरण, तीव्र अपरदन, भूस्खलन, भूकम्प, बाढ़ आदि के घटना से अनुक्रम में विविधता पाई जाती है। विद्वान क्लीमेंट महोदय ने 1916 में अनुक्रम को दो प्रकार में विभक्त किया है— प्रथम, प्राथमिक अनुक्रम, दूसरा, द्वितीय अनुक्रम।

A प्राथमिक अनुक्रम —

प्राथमिक अनुक्रम में वनस्पति समुदाय के उस क्रम को शामिल करते हैं, जहाँ पर पहले से किसी भी प्रकार के प्राणी व पौधों का उद्भव और विकास नहीं हुआ रहता है। ऐसे समय में जहाँ पर वनस्पति का विकास सर्वप्रथम होता है, ऐसे क्षेत्र अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे नवीन धरातल का निर्माण, (लावा प्रवाह), हिमोढ़ से नवीन सेल का उद्भव, सागरीय तली के निर्गमन से उत्पन्न नया भूभाग अथवा झील के सूखने से प्राप्त नवीन भूमि खादर के जमा होने या किसी खान से प्राप्त चट्टानों के ढेर से बना नया भू क्षेत्र।

प्राथमिक जैविक अनुक्रम के चरण —

नए क्षेत्र में वनस्पतियों का पहली बार जन्म होता है एवं उसका विकास होता है। ऐसे क्षेत्र में वनस्पतियाँ पहले से नहीं पाई जाती हैं। इसी कारण से इसे प्राथमिक अनुक्रम कहते हैं क्योंकि प्राथमिक अनुक्रम

का यह अर्थ है कि उस क्षेत्र में पहले से किसी भी प्रकार का वनस्पति व विकास न हुआ हो, प्राथमिक अनुक्रम के वर्णन के लिए ऐसे भूक्षेत्र का चयन किया जा रहा है, जो पहले से वनस्पतिविहीन रहा हो या नवीन भूचित्र का उद्भव हुआ हो या नग्न शैलबाला हो किसी भी तरह का वनस्पति या प्राणी वहाँ पर नहीं पाया जाता है, यहाँ पर किसी भी तरह के वनस्पतियों जीव-जन्तुओं का न तो जन्म हुआ है, न तो वहाँ पर उनका विकास हुआ है। ऐसे आवासीय भौतिक क्षेत्र में वनस्पति के विकास के लिए निम्न क्रम सम्पन्न होते हैं जिसके चरण अग्रांकित हैं। पुरोगामी पौधों की अवस्था, सूची में जीवों की अवस्था, पुरोगामी समुदाय की अवस्था, बन्द समुदाय की अवस्था, शाकीय पौधों के विकास की अवस्था, समुदाय की अवस्था, चरम समुदाय की अवस्था, इस तरह से कुल 7 अवस्थाओं में प्राथमिक अनुक्रम को विभाजित किया जाता है जिनके विशेषताएं अग्रांकित हैं।

1- प्वाणीयर पौधों की अवस्था-

इस अवस्था में पर्यावरण में आर्द्रता नहीं होती है। इस अवस्था में स्थानीय पर्यावरण शुष्क होता है, जहाँ पर चट्टाने नग्न हैं, वहाँ पर कोई भी पेड़ पौधा वनस्पति नहीं पाई जाती है। यहाँ पर वर्षण की तुलना में वाष्पीकरण की अधिकता होती है। ऐसी स्थिति में स्थानीय स्तर पर शुष्क पर्यावरण उद्भव होता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जलवायु शुष्क है, क्योंकि जलवायु एक दीर्घकालिक विशेषता मानी जाती है। इस विषय पर अथवा नवनिर्मित चट्टान पर प्रथम वनस्पतियों का उद्भव और विकास होता है, जैसे कोई झील सूख जाती है तो उसके नवीन चट्टान पर लाइकेन और शैवाल का उद्भव होता है, क्योंकि यह दोनों वनस्पतियाँ आसानी से उस नंगी धरातल पर बनी रहती हैं और यह उस आवास के पर्यावरणीय दशाओं, जैसे- शीतलता, उष्णता, शुष्कता को आसानी से सहन करने में समर्थ होती है।

2- सूक्ष्मजीवों की अवस्था-

जब उस नवीन धरातल पर लाइकेन शैवाल का विकास होता है, धीरे-धीरे लाइकेन के अम्ल आदि का स्राव होने लगता है और चट्टानों में विद्यमान खनिज स्रावित अम्ल से क्रिया करके अपने रूप में परिवर्तन करता है। यह अम्ल कुछ खनिजों को घुला देता है और धीरे-धीरे उस क्षेत्र की जलवायु में जैविक पदार्थ चट्टान उच्चावच समय के आपसी मिश्रण से मृदा का निर्माण प्रारम्भ होता है और इस मृदा में अत्यन्त सूक्ष्म कीट-पतंग, जीवजन्तु का विकास होने लगता है।

3- पुरोगामी समुदाय की अवस्था -

पुरोगामी समुदाय की अवस्था नवीन चट्टान पर लाइकेन, काई, शैवाल के साथ-साथ जीवजन्तु का विकास हुआ रहता है। वहाँ पर धीरे-धीरे मृदा का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है तथा सूक्ष्म जीवों का विकास होने लगता है। मृदा की मोटाई बढ़ने लगती है। उस मिट्टी में बिल बनाकर रहने वाले चूहे, मकड़ी, चींटी, कुटकी आदि का विकास होने लगता है, ऐसी अवस्था में यत्र-तत्र छोटे-छोटे पौधों का भी विकास होने लगता है और उनके बीच-बीच में थोड़ा भाग वनस्पति विहीन या पौधों से भिन्न खुला रहता है। ऐसे समुदाय को खुला समुदाय करते हैं, ऐसी स्थितियाँ नवीन चट्टानी भाग में स्पष्ट दिखाई देती हैं।

4- बन्द समुदाय की अवस्था -

बन्द समुदाय की अवस्था बढ़ते समय के साथ शैवाल, लाइकेन के विकसित भूभाग पर द्वितीयक समुदाय का विकास होने लगता है, जिसमें मास प्रमुख वनस्पति होती है। मृदा आवरण पर मांस का विस्तार होता है और मिट्टी में नमी की मात्रा पूर्व से अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है। मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ जाती है और लाइकेन, शैवाल, मांस के स्थान पर धीरे-धीरे घास उगने लगती है, घास का विकास होता है और नए जीव-जन्तु प्राणियों का भी विकास होता है, जिसमें गोल कृमि प्रमुख है और वनस्पतियों द्वारा धरातल का खुला भाग ही ढक लिया जाता है। घने वनस्पति के कारण से वहाँ की सूक्ष्म जलवायु, सूक्ष्म पर्यावरण में परिवर्तन होने लगता है। धरातल के ढके होने की वजह से मिट्टी का तापमान और प्रकाश भी परिवर्तित होने लगता है। उसकी नमी में भी परिवर्तन होने लगता है जब वनस्पतियों से मिट्टी ढक ली जाती है, तो तापमान और प्रकाश पूर्व की तुलना में कम हो जाता है। तापमान और प्रकाश के कम हो जाने के कारण से मिट्टी में नमी की मात्रा बढ़ जाती है। इस कारण से वाष्पोत्सर्जन के द्वारा मिट्टी से नमी ह्रास की दर में कमी आती है। आर्द्रता अधिक होती है तो बन्द समुदाय का विकास होता है, बन्द समुदाय से तात्पर्य यह है कि धरातल का कोई भी भूभाग वनस्पतियों से रिक्त नहीं रहता है। अर्थात् वनस्पतियाँ धरातल के यानी उस भू-भाग को पूरी

तरह से ढक लेती है और जब नवीन क्षेत्र में भौतिक दशाएं वनस्पतियों के अनुकूल नहीं होती हैं तो प्रायः वनस्पतियों के बीच-बीच में कुछ क्षेत्र वनस्पति से रिक्त रहता है ऐसी स्थिति को खुला वनस्पति समुदाय कहते हैं।

5—शाकीय पौध समुदाय की अवस्था —

जब वनस्पति अत्यन्त सघन हो जाती है तो मिट्टी पर प्रकाश कम पहुँच पाता है, जल की उपलब्धता प्रति पेड़ पौधों की अनुसार कम उपलब्ध होती है, मृदा के पोषक तत्वों की भी उपलब्धता कम हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में पेड़ पौधों में प्रकाश, पोषक तत्व, जल आदि की प्राप्ति के लिए आपस में कड़ी प्रतिस्पर्धा होती है। कभी-कभी वहाँ पर यदि एक ही प्रजाति के पौधों का विकास होता है तो उनमें प्रतिस्पर्धा अत्यन्त तीव्र रहती है, क्योंकि सभी पौधों को एक ही प्रकार के पोषक तत्व की आवश्यकता होती है और ऐसी परिस्थिति में जो पौधा प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ होता है वही समायोजन स्थापित कर पाता है और अपने को बनाए रख पाता है। कमजोर पौधा समाप्त हो जाता है परन्तु उस पौधे की प्रजाति बनी रहती है। यदि उस धरातलीय क्षेत्र में अनेक प्रजातियों का विकास होता है तो उनके मध्य प्रकाश, जल, पोषक तत्वों के लिए भी प्रतिस्पर्धा होती है। ऐसी परिस्थिति में सर्वाधिक आक्रामक और समर्थ प्रजाति का पूरे वनस्पति समुदाय में अपना प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। यदि सभी प्रजातियाँ एक समान दृष्टिकोण में समर्थ होती हैं तो वह उसमें प्रतिस्पर्धा होने पर सन्तुलन स्थापित होने लगता है और सभी प्रजातियाँ धीरे-धीरे समायोजन स्थापित करके संरक्षित होने लगती हैं। शाक समुदाय अवस्था इस अवस्था में शाक वनस्पति का भी विकास होता है। इसीलिए ऐसी अवस्था को शाक समुदाय कहते हैं।

6— वन समुदाय की अवस्था—

समुदाय की अवस्था में बढ़ते समय के साथ-साथ उक्त आवासीय क्षेत्र में धरातल पर अनेक झाड़ियों का विकास होने लगता है। झाड़ी समुदाय स्थापित होने लगता है जो धीरे-धीरे वन समुदाय का स्थान ले लेता है। पुष्पी पौधों के बीज हवा द्वारा उड़ाकर इस आवास क्षेत्र में धीरे-धीरे जमा होने लगते हैं। झाड़ियों के मध्य यत्र तत्र वृक्षों का भी आविर्भाव और विकास होता है। वृक्षों का आवरण झाड़ियों के आवरण से भी अधिक ऊँचा हो जाता है। इसीलिए ऐसे वानस्पतिक समुदाय को वन समुदाय के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस क्रमक वनस्पति के विकास के पहले के पूर्व चरम वनस्पति का विकास होता है या चरम समुदाय का विकास होता है। इसीलिए वन समुदाय की अवस्था को पूर्व चरम अवस्था के नाम से भी सम्बोधित करते हैं।

7— चरम समुदाय अवस्था —

चरम समुदाय की अवस्था प्राथमिक अनुक्रम के सात अवस्थाओं में सबसे अन्तिम अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था में ऊँचे वृक्षों, वृहद आकार के वृक्षों का जन्म और विकास होता है। इनकी संख्या भी अधिक होती है। समस्त आवास में घने वृक्ष का आवरण पाया जाता है। मृदा का अधिक विकास होता है। मिट्टी की गहराई अधिक होती है। इन वृक्षों की जड़ें अधिक गहराई तक आसानी से पहुँच जाती है। मिट्टी में परिच्छेदिका का विकास अच्छी तरह से हो जाता है। मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता के कारण से अनेक जीवों का विकास होता है। यह जीव न केवल ऊर्जा का स्थानान्तरण करते हैं, बल्कि पेड़-पौधों जीव-जन्तुओं के मृत शरीर को आयोजित करते हैं। इस अवस्था में चरम समुदाय में पौधों का एक निश्चित स्तरीकरण भी हो जाता है। इस अन्तिम अवस्था को क्रमशः चरम अनुक्रम, चरम समुदाय, चरम वनस्पति, चरम जलवायु के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस दशा को विकसित पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। इसे कभी-कभी प्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र भी कहते हैं। सन् 1883 ई० में इण्डोनेशिया के क्राकाटोआ द्वीप पर तीव्र ज्वालामुखी के विस्फोट से धरातल पर मैग्मा का विस्तार हुआ, यही मैग्मा धीरे-धीरे ठण्डा होकर लावा निर्मित मृदा के रूप में परिवर्तित हुआ। इस मृदा पर किसी भी तरह की वनस्पति पेड़ पौधों का विकास नहीं हुआ था क्योंकि यह नवीन मृदा थी, इस वनस्पति में इस प्रकार की मिट्टी पर प्राथमिक अनुक्रम का विकास मात्र 100 वर्षों में ही विकसित हो गया। वनस्पति समुदाय के प्राथमिक अनुक्रम के विकास के लिए यह अत्यन्त उत्तम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी तरह से क्रीटेशियस युग में दक्कन क्षेत्र में लावा का उद्भेदन हुआ जहाँ पर प्रथम बार विकसित वनस्पति को प्राथमिक अनुक्रम के रूप में समझा जा सकता है।

B द्वितीय अनुक्रम –

द्वितीय अनुक्रम के अन्तर्गत किसी वनस्पति समुदाय का जो विकसित अवस्था में रहती है, को मानव अपने हस्तक्षेप द्वारा जैसे वनों को जलाने, वनों को काटने, पर्यटन, सड़क भूमि उपयोग में परिवर्तन, झूमिंग कृषि आदि द्वारा आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से प्रथम वनस्पति समुदाय को भी नष्ट करता है। इसी तरह से प्राकृतिक कारक, जैसे अग्नि, सूखे का प्रकोप, भूस्खलन, ज्वालामुखी, हरिकेन, बाढ़, जलवायु परिवर्तन व जैविक प्रकोप के कारण से उस वनस्पति तंत्र के उस प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के आवास के अथवा उस विकसित वनस्पति समुदाय अथवा पेड़ पौधों के समुदाय का आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने पर प्रारंभिक वनस्पति का जो कुछ भाग बचा रहता है, उस वनस्पति समुदाय को पुनः विकास करता है। ऐसे पुनः विकास की अवस्था के अनुक्रम को द्वितीय अनुक्रम कहते हैं। इस तरह के आवास प्रौढ़ मृदा आवरण क्षेत्र में पाया जाता है। द्वितीय अनुक्रम का विकास प्राथमिक अनुक्रम के विकास से पूरी तरह से अलग रहता है या भिन्न होता है। द्वितीय अनुक्रम में वनस्पति समुदाय के वनस्पति का चरम जलवायु विकास का समय प्राथमिक अनुक्रम की तुलना में बहुत कम होता है। जब किसी क्षेत्र के या मिट्टी की वनस्पति समुदाय के विकास की अपने सातवें अवस्था चरम जलवायु में पहुँचने से पहले ही मानवीय व प्राकृतिक हस्तक्षेप उत्पन्न हो जाता है तो ऐसी स्थिति में वनस्पति को उप चरम जलवायु, उप चरम वनस्पति समुदाय के नाम से जानते हैं। यह व्यवधान जब अत्यन्त लम्बे समय तक विद्यमान रहता है तो वनस्पति समुदाय को विकास की सामान्य अवस्थाएं भी नहीं संचालित हो पाती हैं। व्यवधान वाले कारक वनस्पति समुदाय के सामान्य क्रमक को भी बाधित कर देते हैं। इस बाधित क्रमक में जो वनस्पति रहती है वह तब तक बनी रहती है, जब तक व्यवधान करने वाला प्राकृतिक व मानवीय कारक विद्यमान या क्रियाशील रहता है। इस तरह से बाधित चरम को बाधित जलवायु अथवा इसको बाधित चरम वनस्पति कहते हैं। कुछ समय के बाद यदि मानवीय और प्राकृतिक व्यवधान समाप्त हो जाता है, तो उस आवास की दशा या पर्यावरण या सूक्ष्म जलवायु बदल जाती है। परिणामतः नया पर्यावरण, नया सूक्ष्म जलवायु, नया आवास उस अवस्थित वनस्पति समुदाय को संरक्षण प्रदान नहीं कर पाता है या उसका पोषण नहीं कर पाता है, ऐसी दशा में उस वनस्पति समुदाय के स्थान पर नए पर्यावरण के अनुसार नई वनस्पति समुदाय का विकास होता है तथा वनस्पति समुदाय का पुनः सामान्य क्रमक में विकास प्रारम्भ होने लगता है। कुछ समय के बाद यदि मानवीय और प्राकृतिक व्यवधान समाप्त हो जाता है, तो उस आवास की दशा, पर्यावरण या सूक्ष्म जलवायु बदल जाती है।

उत्तर भारत के विशाल मैदान में वैदिक काल में घने जंगलों (प्राकृतिक वनस्पतियों) को मानव द्वारा काटकर कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया। मानव ने वनस्पतियों के विकास में व्यवधान उत्पन्न किया और आज कृषि कार्य सम्पादित कर रहा है। ऐसी स्थिति में यदि मानव आज कृषि कार्य सम्पन्न करना बन्द कर दे तो इस पूरे सतलज गंगा ब्रह्मपुत्र के मैदान में उन्हें पूर्व की वनस्पति को विभिन्न क्रमकों का विकास सामान्य दशा में स्थापित होगा और वनस्पति समुदाय के विकास की चरम स्थिति स्थापित हो जाएगी। हिमालय प्रदेश में या उत्तर-पूर्व के राज्यों में या दक्षिण के अनेक पहाड़ी क्षेत्रों में भारतीय भूभाग में स्थानान्तरित कृषि या झूम कृषि प्रचलित है, जिसे वानरा, कुमारी, पोदू, दावी, कमान, बूंगा आदि के नाम से जानते हैं। ऐसी कृषि विश्व के उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में भी अनेक भागों में सम्पन्न होती है। इसमें मानव वनों को काट कर के खेती करता है, वहां पर प्राथमिक अनुक्रम की वनस्पतियों के कुछ अवशेष रह जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में कृषि कार्य तब तक सम्पादित करता है जब तक उस मिट्टी की उर्वरा शक्ति होती है और अच्छी फसल पाई जाती है। जब मृदा के पोषक तत्व समाप्त होने लगते हैं, तो आदिम जनजातियों द्वारा वहाँ की मिट्टी को छोड़ दिया जाता है और पुनः नए क्षेत्र में वन को काटकर, जलाकर साफ किया जाता है तो नए स्थान पर कृषि भूमि बना ली जाती है। ध्यान देने की बात है कि जो प्रथम परित्यक्त कृषि भूमि थी, वहाँ पर अब नई वनस्पतियों का विकास होता है। यही नवीन वनस्पतियों को हम लोग द्वितीय अनुक्रम के नाम से जानते हैं। प्रारम्भ में ताकि पौधे खरपतवार घास और धीरे-धीरे इनका आवरण घना होता चला जाता है और बाद में यहाँ पर झाड़ियां बड़े बड़े वृक्ष आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार वनस्पति समुदाय की चरम स्थिति पुनः स्थापित होने लगती है।

C चरम वनस्पति –

चरम वनस्पति या चरम समुदाय किसी वनस्पति समुदाय के अनुक्रमिक विकास की अन्तिम अवस्था मानी जाती है। यह प्रौढ़ प्राकृतिक तन्त्र की सूचक होती है। यह वनस्पति के आवासीय पर्यावरण एवं वनस्पति के

मध्य सन्तुलन का परिचायक है। इस स्थिति में सकल बायोमास अधिकतम होता है, लेकिन शुद्ध सामुदायिक उत्पादन कम होता है। आहार शृंखला जटिल होती है, आहार जाल का निर्माण होता है। चरम वनस्पति के विकास के सन्दर्भ में दो सिद्धान्त की व्याख्या की जा सकती है।

1— एकल चरम सिद्धान्त —

विद्वान क्लीमेण्ट्स ने 1916 एवं 1936 में एकल चरम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। क्लीमेण्ट्स के अनुसार, जलवायु चरम वनस्पति को सर्वाधिक नियन्त्रित करती है। किसी भी क्षेत्र की जलवायु के अनुरूप ही वनस्पति का विकास होता है। इस तरह विकसित वनस्पति को चरम वनस्पति, चरम जलवायु वनस्पति के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस पारिस्थितिकी तन्त्र में कोई बाह्य हस्तक्षेप नहीं होता है। पौधों के समुदाय में विविधता और जटिलता अनवरत बढ़ती है।

2— बहुचरम सिद्धान्त —

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एकल चरम सिद्धान्त के विचारों से अलग है। इसमें यह माना गया कि कोई भी पादप समुदाय जलवायु के साथ हमेशा समस्थित या सन्तुलन की स्थिति में नहीं रहता है। पादप समुदाय में क्रमिक परिवर्तन भी हमेशा नहीं होता, बल्कि चरम का निर्धारण जलवायु के अलावा मानवीय क्रिया, मिट्टी की गुणवत्ता, स्थलाकृति आदि अनेकों भौतिक और जैविक संघटकों का परिणाम होती है। विद्वान टान्सले ने किसी निश्चित आवासीय क्षेत्र में वनस्पति की सर्वाधिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक के आधार पर चरम वनस्पति समुदाय को परिभाषित किया है। वास्तव में चरम अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे— जैविक चरम, मृदा चरम, मानव चरम, उच्चावच चरम, जलवायु चरम आदि। विद्वान आर०एच० हिवटेकर के अनुसार कोई निरपेक्ष चरम नहीं होता है, बल्कि चरम का विकास अनेक कारकों के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम होता है।

8.4 पौधों का उद्भव

पौधों का उद्भव एवं विकास समय के सन्दर्भ में वृद्धि का द्योतक होती है, उद्भव एक ऐतिहासिक वृद्धि का सूचक है, पृथ्वी पर पौधों का जीवन स्थलीय एवं जलीय दोनों क्षेत्रों में है। पादपों के विकास के पहले पौधों के विकास प्रक्रम और प्रक्रियाओं का उल्लेख करना आवश्यक होता है। पौधों के इस प्रक्रिया में प्राकृतिक एवं कृत्रिम चयन, विषमता, पृथक्करण का प्रभाव विशेष रूप से पाया जाता है।

8.5 पौधों के उद्भव की प्रक्रियाएँ

जीव भूगोल में पौधों के उद्भव के तीन प्रक्रिया हैं, जो निम्नलिखित हैं—

1. प्राकृतिक एवं कृत्रिम चयन —

पौधों के प्राकृतिक एवं कृत्रिम चयन, विकास और वृद्धि को प्रभावित करता है, किसी भी पेड़-पौधों में कुछ गुण विरासत में पाए जाते हैं और कुछ गुण स्वयं पर्यावरण के साथ क्रिया करके पाया जाता है, कुछ पादप अपने आवास से अनुकूलन स्थापित कर लेता है। कुछ पेड़ पौधों में अनुकूलन की क्षमता नहीं पायी जाती है। ऐसी स्थिति में अनुकूलन स्थापित करने वाले पौधे उन पौधों को गायब या लुप्त कर देते हैं, जो अपने आवासीय पर्यावरण के साथ अनुकूलन स्थापित नहीं कर पाते। इसी प्रक्रिया को प्राकृतिक चयन के नाम से जानते हैं। कृत्रिम चयन वास्तव में मानव द्वारा निर्मित होता है, मानव अपने कृत्यों से नए पर्यावरण का निर्माण करता है, जैसे आज 21वीं सदी में वर्णसंकर द्वारा नए बीजों का निर्माण करना, इसका प्रमुख उदाहरण आज पेड़-पौधों में वर्णसंकर के द्वारा जिन वैज्ञानिकों ने पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास किया, जिससे पौधे कीट, पतंगों, रोगाणुओं से मुक्त होते हैं और विभिन्न प्रकार की मिट्टियों और विभिन्न प्रकार की जलवायु में वृद्धि और विकास में वर्णसंकर के पौधे समर्थ होते हैं, मनुष्य अपने पर्यावरण के अनुकूल ऐसे पौधों का विकास करता है, जो आसपास के अनुपयोगी पौधों को मुक्त कर देते हैं, ऐसे प्रक्रिया को कृत्रिम चयन के नाम से जाना जाता है।

2. पृथक्करण —

पौधों की वृद्धि और विकास में इस प्रक्रिया का अपना महत्व है। यह प्रक्रिया जन्म से सम्बन्धित है, इसमें विभिन्न सदस्यों के मध्य जिनका आदान-प्रदान बाधित हो जाता है, यह अलगाव अनेक प्रकार के विरोधियों द्वारा

सम्पन्न होता है, अलगाव को प्रभावित करने वाले कारकों को दो वर्गों में रखते हैं—**प्रथम आन्तरिक कारक**, यह पौधों के अन्तर्गत अन्दर कार्य करते हैं। यह वर्णसंकर की प्रक्रिया को रोकते हैं। वर्णसंकर के जन्म को बाधित करते हैं। इस तरह के अलगाव के कारण एक प्रजाति के पौधों में अन्तःजनन न हो पाने के कारण एक प्रजाति में अनेकों उपप्रजातियों का विकास हो जाता है। **बाह्य कारक**, यह कारक अलगाव या पृथक्करण में बाहर से पौधों को प्रभावित करते हैं। यह विभिन्न प्रजाति पौधों के मध्य क्रॉस परागण की प्रक्रिया को बाधित करते हैं। बाह्य कारकों में मौसमी पृथक्करण, भौगोलिक अलगाव, यांत्रिक अलगाव, पारिस्थितिकीय अलगाव आदि प्रमुख भौगोलिक दूरी के द्वारा होता है। एक प्रजाति के पौधों का कोई ऐसा विस्तृत क्षेत्र हो जाता है, जिससे क्रॉस परागण की प्रक्रिया बाधित होती है, तो उसे भौगोलिक अलगाव या दूरी पृथक्करण कहते हैं, जैसे एक प्रजाति के दो सदस्यों के मध्य किसी बड़े सागर का या बड़े पर्वत का स्थित होना, यह सागर या पर्वत पृथक्करण को बढ़ावा देता है।

3. विषमता —

पौधों में विषमता बहुत अधिक पाई जाती है, किसी भी प्रजाति के पौधों में लम्बाई, ऊँचाई, उसके फूलों की संख्या, रूप, रंग, आकार आदि में बहुत अन्तर पाया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही प्रजाति या एक ही संतति जनक की अनेक वंशजों में आने का अन्तर परिलक्षित होता है, उसमें भी क्षमता होती है। प्रत्येक पौधा अपने पूर्वज के गुणों को विरासत में प्राप्त करता है और इन गुणों का पौधों की वृद्धि विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है, पौधों के आवासीय पर्यावरण के कारण से इनके गुणों में परिमार्जन और परिवर्तन भी होता रहता है। अपने पूर्वजों से प्राप्त विरासत के गुणों को अनुवांशिक गुण कहते हैं और पर्यावरण के द्वारा उन गुणों में जो परिवर्तन होता है, उसे व्यक्त गुणोपलक्षण के नाम से जानते हैं। भूगोल में विषमता एक सामान्य बात है, जो किसी भी पर्यावरण में परिलक्षित होती है, पेड़ पौधे इससे अलग नहीं हैं।

8.6 पादपों का उद्भव एवम् विकास

पादप समुदाय जैव विविधता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पादप समुदाय की संरचना विभिन्न प्रकार के पौधों की उपस्थिति, उनकी संख्या, वितरण और पारस्परिक संबंधों पर निर्भर करती है। पृथ्वी धरातल पर पादप की उत्पत्ति से लेकर आज तक विभिन्न वनस्पति समुदाय के काल्पनिक विकास का अध्ययन विभिन्न चट्टानों में पाई जाने वाली वनस्पतियों के अवशेषों के विशद विश्लेषण, विवेचन, मूल्यांकन के आधार पर किया जाता है। इसीलिए पादपों को इतिहास मूलतः पुरावनस्पतिशास्त्र के अन्तर्गत समाहित होता है। विभिन्न चट्टानों में पाई जाने वाली प्राचीन वनस्पतियों के अवशेष उसकी पहचान, उसके निर्माण, उसके विकास की गाथा का समय के साथ सम्बन्ध निर्धारित करना एक दुरूह कार्य है और उसकी व्याख्या भी गलत होने की पूरी सम्भावना बनी रहती है। चट्टानों में पाए जाने वाले पौधों के अवशेषों के विकास में परिवर्तन की व्याख्या करने वाले विद्वानों को दो वर्गों में रखा गया है —

1. संघीय अनुक्रमवाद
2. सविराम समस्थितिवाद

संघीय अनुक्रमवाद —

इस वर्ग के विद्वानों ने समस्त पौधों और प्राणियों की सम्पूर्ण शाखाओं का उद्भव विकास क्रमशः साथ-साथ माना है। उद्भव और विकास मध्यम गति से दीर्घकाल में हुआ। कुछ पौधों का विकास दूसरे की तुलना में तीव्र हुआ। इस अनुक्रमवाद को भौगोलिक उद्भवन या क्रमिक उद्भवन भी कहते हैं।

1— सविराम समस्थितिवाद —

इस वर्ग के विद्वानों ने यह माना कि सम्पूर्ण पादप जगत् समस्थिति में होता है, परन्तु समय के अनुसार इसमें बाधा भी उत्पन्न होती है, जब कभी दो समय के मध्य एक अल्पकाल में अनेक अचानक प्रलयकारी घटनाएँ घटती हैं, उससे पौधों का उद्भव और विकास अचानक होने लगता है, इसे त्वरित या अचानक या उद्भवन कहते हैं।

विद्वान डी०वी० एजर (1976) में चट्टानों में पाए जाने वाले जीव अवशेषों के आधार पर बताया है कि

चट्टानों के जीवावशेष से प्राप्त अभिलेख वनस्पतियों के क्रमिक विकास को व्यक्त नहीं कर सकते हैं, बल्कि विभिन्न घटनाओं के सूचक होते हैं। पृथ्वी पर पौधों के उद्भव और विकास का अध्ययन स्पष्ट रूप से भौमिकीय इतिहास के विभिन्न युगों के सन्दर्भ में किया जाना प्रासंगिक लगता है, जो निम्नलिखित है –

1. परपोषित जीवों का उद्भव विकास
2. स्वपोषी पौधों का उद्भव विकास
3. वनस्पति समुदाय का उद्भव विकास
4. स्थलीय पौधों का उद्भव विकास
5. कार्बोनिफेरस युगीन पादप का उद्भव विकास
6. मेसोजोईक युगीन वनस्पति का उद्भव विकास
7. टर्शियरी युगीन वनस्पति का उद्भव विकास ।

8.6.1— परपोषित जीवों का उद्भव विकास –

भूतल पर जीवों के विकास की शुरुआत सागर से मानी जाती है, उस समय जलीय क्षेत्रों में एककोशीय जीवों का विकास हुआ, यह जीव परपोषित जीव थे और ऑक्सीजन का उपयोग नहीं करते थे और प्रारम्भिक दौर में प्रकाशसंश्लेषण द्वारा आहार निर्मित करने वाले पेड़-पौधे का विकास नहीं हुआ था, इस समय के सूक्ष्म जीवों का आहार का आधार भौतिक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ आदि थे। उस समय तक ऑक्सीजन वायुमंडल में विद्यमान नहीं थी, इन एककोशीय जीवों का आहार द्रव के रूप में होता था, जो बिना ऑक्सीजन के ग्रहण करते थे। इस समय अनेक साधारण तत्व, जैसे— अमोनिया, मीथेन, विद्यमान था। इन तत्वों के साथ जल वाष्प मिश्रण से पराबैंगनी विकिरण द्वारा अनेक प्रकार के कार्बनिक यौगिकों का निर्माण सम्भव हुआ होगा, जिसके आधार पर एककोशीय जीवों का विकास हुआ।

8.6.2— स्वपोषित पौधों का उद्भव विकास –

यह माना जाता है कि परपोषित जीवों द्वारा ऐसे जीव-जन्तुओं का विकास हुआ, जो अपने भोजन का निर्माण करते थे। इसमें बैक्टीरिया, नीला-हरा शैवाल आदि प्रमुख था, इन्हीं जलीय पौधों द्वारा धीरे-धीरे जैविक क्रिया विधि से ऑक्सीजन का निर्माण हुआ और इसका विसरण वायुमण्डल में हुआ, जिससे अनेक जीवों का विकास सम्भव हो सका वायुमण्डल में ऑक्सीजन के तीन एटम की उपलब्धता से ओजोन गैस निर्मित होने लगी। उसकी सघनता के कारण ओजोन मण्डल का विकास हुआ, यह ओजोन मण्डल सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को दीर्घकाल तक अवशोषित करती रही, जिससे वायुमण्डल का तापमान सन्तुलन की दशा में आने लगा और जीवन के लिए उपयोगी हो गया। ऑक्सीजन वाले अनेक जन्तुओं का विकास हुआ, बहुकोशिकीय जीवों का विकास होने लगा, लगभग 60 करोड़ वर्ष पहले बहुकोशीय जन्तु का उद्भव हुआ, जिसमें स्पंज वाले जीव, कृमि, मूंगा, रीढ़ वाले जन्तुओं के पूर्वज भी शामिल हैं।

8.6.3— धरातलीय पौधों का उद्भव एवम् विकास –

अनेक विद्वानों का मानना है कि पौधों, जीव-जन्तुओं का उद्भव सबसे पहले जल में हुआ था, वहाँ से सिल्यूरियन एवं डिवोनियन युग में यह स्थल पर विस्तृत हुए। जलीय क्षेत्र में अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे लाल, भूरे शैवाल का विकास हुआ, यह शैवाल हरे पौधों की विशेषता से युक्त थे और शुष्क पर्यावरण में भी सरलतापूर्वक अनुकूलन स्थापित करने में सक्षम थे। प्रारम्भ में स्थल पर *Rhynia* कुकसोनिया पौधे उत्पन्न हुए। इन पौधों में जाइलम, फ्लोएम, छाल, रन्ध्र, बीजाणु व अन्य अंग उपांग विकसित थे।

8.6.4— वनस्पति समुदाय का उद्भव एवम् विकास –

डिवोनियन युग के अन्तिम समय में वृक्ष की तरह के पौधों का उद्भव हुआ, जिसमें अनेक शाखाएं थी। इन पौधों में लाइकोपोडिस एवं हार्सटेल्लस प्रमुख थे। बाद में चलकर इन पौधों का समापन हो गया। इन पौधों के साथ बीजाणु द्वारा जनन करने वाले फर्न जैसे वृक्ष का विकास हुआ। इसी समय कोणधारी वृक्षों का विकास हुआ था, धीरे-धीरे पर्यावरण में परिवर्तन के कारण से यह वृहद् वनों का रूप धारण करने लगे।

8.6.5— कार्बोनिफेरस कालीन पादपों का उद्भव एवम् विकास —

कार्बोनिफेरस काल में समस्त स्थल खण्ड आपस में जुड़े थे, जिसको विद्वानों ने पैजिया कहा। यह पैजिया विशाल महासागर से घिरा था, जिसे पैथालासा कहा गया। पैजिया के दो भाग थे, उत्तरी भाग को अंगारालैण्ड दक्षिणी भाग को गोंडवानालैण्ड कहा जाता है। जुरासिक युग में पैजिया टूटने लगा और विभिन्न गति से विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होने लगा। गोंडवानालैण्ड के टूटने से भारत, मेंडागास्कर, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, का निर्माण हुआ और अंगारालैण्ड के विखण्डन से एशिया, यूरोप, उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैंड का निर्माण हुआ। कार्बोनिफेरस काल में सम्पूर्ण अंगारालैण्ड में घना जंगल फैला था। यहाँ पर 30 मीटर से अधिक ऊँचे वृक्ष थे, इन वृक्षों में कोणधारी पौधे फर्न मास पौधे प्रमुख हैं। यहाँ पर दलदली क्षेत्र भी था, धीरे-धीरे वनस्पतियाँ विवर्तनिक हलचल के कारण मलवा में दब गईं और उन पर मलवा के भार से दाब और ताप में परिवर्तन आया, जिससे वनस्पतियाँ कोयले में बदल गईं। इसी कारण से उत्तरी गोलार्द्ध में कोयले का निर्माण हुआ, पर्मियन युग में वनस्पतियों में परिवर्तन आया और तीन प्रकार की वनस्पतियाँ विकसित हुईं, जिसमें पश्चिमी यूरोप, पूर्वी अमेरिका में अमेरिकन वनस्पति साइबेरिया में अंगारा वनस्पति, वर्तमान चीन, दक्षिण पूर्वी एशिया में कैथीसियन वनस्पति का विकास हुआ। गोंडवानालैण्ड में भी वनस्पति का विकास हुआ, लेकिन कार्बोनिफेरस काल में जलवायु में अनेक परिवर्तन आये, शीतकाल आया, ग्लासोप्टेरिस वनस्पति का विस्तार हुआ।

8.6.6— मेसेजोइक कालीन वनस्पति का उद्भव एवम् विकास —

इस कल्प में ट्रियासिक, जुरासिक, क्रीटेशियस युग शामिल थे। इस कल्प में जलवायु, वनस्पति में बड़े पैमाने पर परिवर्तन के साथ ही प्राणी जीवन में भी परिवर्तन आया। पर्मियन युग में शुष्क जलवायु वाली वनस्पतियों का विकास हुआ, अनेक पौधों और वनस्पतियों का विलोपन हो गया, परन्तु कुछ जानवर जैसे डायनासोर अभी भी विद्यमान थे तथा डायनासोर का जीवन—यापन का आधार फर्न, कोणधारी, साइकड वृक्ष बचे रहे, जो शुष्क जलवायु के साथ समायोजन स्थापित कर लिए थे। जुरासिक और क्रीटेशियस युग में गोंडवानालैण्ड में सदाहरित वनों का विकास हुआ और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव भी देखा गया। पहली बार फूल वाले पौधों का विकास हुआ और इनमें बड़े पैमाने पर रूपान्तरण हुआ, फूल वाले पौधे इतनी तेजी से फैले कि इनका रूप घने जंगल जैसा दिखाई देने लगा, अन्य सदस्यों की निहायत कमी थी। इस तरह के फूल वाले पौधों में मैपिल, पोपलर, ऐटा, साहकामोर, ओक महत्वपूर्ण था, बड़े-बड़े वृक्षों के नीचे शाकीय पौधों का विकास हुआ था। पुष्पी पौधों शाकीय पौधों के उद्भव विकास के साथ वनस्पतियों के लम्बवत स्तरीकरण की विशेषता दिखाई देने लगी। पुरावनस्पति शास्त्रियों ने फूल वाले पौधों तथा अन्य पौधों के विकास के लिए निम्नलिखित कारण को उत्तरदायी बताया —

1. प्रथम फूलवालों पौधों में लम्बवत स्तर के विकास की क्षमता थी।
2. पुष्पी पौधों, कीटों का विकास आपसी सहयोग के कारण एक साथ हुआ। इस कारण क्रास परागण प्रक्रिया से पौधों में आनुवांशिक तथा पारिस्थितिक विभिन्नता आई और नई प्रजातियों का जन्म हुआ।
3. तृतीय क्रीटेशियस युगीन पृथ्वी धरातल पर अनेक परिवर्तन हुए। सागर, स्थल क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ, जलवायु में परिवर्तन हुआ, जैसे पुष्पी पौधों में पर्यावरण के साथ समायोजन की क्षमता उसकी एक विशिष्टता थी, इस कारण से पुष्पी पौधों और अन्य पौधों का प्रभुत्व धरातल पर विद्यमान हो गया।

8.6.7— तृतीयक युगीन पादप का उद्भव एवम् विकास —

फूल वाले पौधों के विकास में विद्वानों में आपसी सहमति नहीं है, अधिकांश विद्वान फूल वाले पौधों का उद्भव गोंडवानालैण्ड के पश्चिमी भाग को मानते हैं और बताते हैं कि यहीं से विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में इनका प्रसार हुआ। इस युग में डायनासोर की चरम वृद्धि और विकसित हुई। तृतीयक युग में विश्व के नवीन वलित (मोड़दार) युवा पर्वत का विकास हुआ, जैसे आल्प्स, हिमालय राकीज, ऐण्डीज आदि प्रमुख हैं। चतुर्थक तंत्र में अमेरिका, यूरेशिया के अधिकांश क्षेत्रों में बर्फ का जमाव हुआ। बर्फ का पिघला हुआ हिमयुग, अन्तर्हिम युग के कारण स्थल क्षेत्र, सागर, जल, थल में परिवर्तन जलवायु में परिवर्तन के कारण वनस्पतियों के विशेषताओं, उसके प्रारूप में परिवर्तन आया।

8.7 सारांश

इस इकाई में जैविक अनुक्रम पादप, जन्तु के उद्भव विकास का विशद वर्णन किया गया है। जैविक अनुक्रम क्या है? इसकी अवस्थाएँ कितनी हैं, इस प्रावस्था में क्या घटनाक्रम है, पर्यावरण से कैसे सम्बन्धित है, का वृहद् वर्णन के साथ पादप जन्तु का उद्भव किन-किन क्षेत्रों में, किन-किन समयों में हुआ, उनका विलोपन कब हुआ, वृद्धि विकास पर्यावरण के साथ समायोजन का विशद विवरण प्रस्तुत इकाई में किया गया है। जीवमण्डल का मूलभूत सदस्य वनस्पति और जीवजन्तु है। जैविक अनुक्रम के सन्दर्भ में विद्वान क्लीमेण्ट्स ने प्राथमिक अनुक्रम, द्वितीयक अनुक्रम और चरम वनस्पति का विभाजन करके सभी अनुक्रम की विशिष्टताओं को रेखांकित किया है। प्राथमिक अनुक्रम में पौधे वहाँ पर उत्पन्न होते हैं, जहाँ पर कभी पौधों का विकास नहीं हुआ रहता है। द्वितीय अनुक्रम में किसी वनस्पति समुदाय में जब हस्तक्षेप होता है और वनस्पतियाँ नष्ट होने लगती हैं, अवशेष के रूप में बची वनस्पतियों से पुनः वनस्पति समुदाय का विकास होता है तो उसे द्वितीय अनुक्रम कहते हैं। चरम वनस्पति समुदाय में वनस्पति का पूरी तरह से विकास हो जाता है और यह प्रौढ़ अवस्था होती है। चरम वनस्पति को एकल चरम वनस्पति और बहुचरम वनस्पति सिद्धान्त में वर्गीकृत किया गया है। पौधों का उद्भव और विकास के अनेक चरण, जैसे-परपोषित जीवों का उद्भव विकास, स्वपोषी पौधों का उद्भव विकास, वनस्पति समुदाय का उद्भव विकास, स्थलीय पौधों का उद्भव विकास, कोर्बोनिफेरस युगीन पादपों का उद्भव विकास, इसी तरह से मेसोजोइक, टर्शियरी युगीन, पादपों का उद्भव विकास का वर्णन किया गया है।

8.8 बोध प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए –

1. जीवीय अनुक्रम में कितने अनुक्रम हैं –
क. 1, ख. 2, ग. 3, घ. 4.
2. एकल चरम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था –
क. वैलास, ख. प्रो० आर०एल० सिंह, ग. हिवीटेकर, घ. एफ० ई० किलमेन्ट।
3. प्रजाति के उद्भव से सम्बन्धित सिद्धान्त दिया था –
क. हम्बोल्ट, ख. चार्ल्स डार्विन, ग. प्रो० जगदीश सिंह, घ. प्रो० के०एन० सिंह।
4. मेसोजोइक कल्प में शामिल नहीं है –
क. इओसीन, ख. ट्रियासिक, ग. जुरैसिक, घ. क्रिटैसियस।
5. डायनासोर युग कहा जाता है –
क. पर्मियन युग, ख. ट्रियासिक युग, ग. जुरासिक युग, घ. क्रिटैसियस युग।
6. यूरोप में कितने हिमयुग प्लिस्टोसीन काल में हुए –
क. 5, ख. 4, ग. 3, घ. 2.

8.9 शब्दावली

1. प्रजाति विलोपन— पृथ्वी से किसी जन्तु या पौधे की प्रजाति का विलुप्त होना।
2. प्रजाति उद्भवन —गुणसूत्र में परिवर्तन से प्रजाति का उत्पन्न होना।
3. कृत्रिम चयन —मानव निर्मित पर्यावरण में प्रजातियों के जन्म लेने की प्रक्रिया।
4. प्राकृतिक चयन —किसी प्रजाति में पूर्व के वंशज द्वारा प्राप्त गुण, जिससे वे पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित कर लेते हैं, जबकि दूसरे पौधे समायोजन नहीं स्थापित कर पाते।
5. अन्यत्रजनिक अनुक्रम —पर्यावरणीय दशाओं में परिवर्तन से उत्पन्न जैविक अनुक्रम।

6. **मानवजनित चरम** —मानवीय प्रभाव से उत्पन्न जैविक चरम को कहते हैं।
7. **जैविक अनुक्रम** —किसी पर्यावरणीय दशा में वनस्पति का एक समुदाय का दूसरे समुदाय द्वारा किया जाने वाला विस्थापन।
9. **चरम वनस्पति** —वनस्पति समुदाय के विकास की अन्तिम सोपान है, इसे चरम जलवायु भी कहते हैं।
10. **प्रजाति** —जन्तु एवं पादप समुदाय के सोपानी क्रम में सबसे पहले वाले सोपान को, जिसकी समान विशेषता होती है, ऐसे वर्ग को प्रजाति के नाम से जानते हैं।

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, सविन्द्र (2016) — पर्यावरण भूगोल का स्वरूप, प्रवालिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
2. सिंह, सविन्द्र (2016) — जैव भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. शर्मा, मनोज (2010) पर्यावरण भूगोल, इशिका पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, राजस्थान।
4. कुदेसिया, वी०पी० (1980) — वाटर पोल्यूशन, प्रगति प्रकाशन, मेरठ।
5. सिंह, जगदीश (2001) — पर्यावरण एवं संविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
6. चाँदना, आर०सी० (2004) — पर्यावरण : समस्या और समाधान, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. श्रीवास्तव, गोपीनाथ (2001) — पर्यावरण प्रदूषण, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली।
8. वाल्दिया, के०सी० (1987) — इन्वायरमेण्टल जियोलॉजी : इण्डियन कांटेक्स्ट, टाटा मैकग्राहित पब्लिशिंग कम्पनी, लिमिटेड, न्यू देहली।
9. सिंह, डी०एन० एण्ड सिंह जे० (1988) — ऑवर अर्थ एण्ड इन्वायरमेंट, इन्वायरमेण्ट एण्ड डेवलमेंट स्टडी सेण्टर, वाराणसी।

8.11 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ग, 2. घ, 3. ख, 4. क, 5. ग, 6. ख।

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जैविक अनुक्रम क्या है?
2. वनस्पति अनुक्रम क्या है?
3. चरम वनस्पति, चरम जलवायु की व्याख्या कीजिए।
4. वनस्पतियों के उद्भव एवं विकास का विशद वर्णन कीजिए।
6. द्वितीयक अनुक्रम क्या है?
7. प्राथमिक अनुक्रम की प्रमुख अवस्थाओं की व्याख्या कीजिए।
8. मेसोजोइन युगीन वनस्पति के विकास की व्याख्या कीजिए।

इकाई-9 : विश्व के प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र, वननाशन, उसके कारण एवम परिणाम

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 प्रस्तावना
- 9.1 उद्देश्य
- 9.2 विश्व के पारिस्थितिक तंत्र
- 9.3 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र
 - 9.3.1 घास के मैदान के पारिस्थितिक तंत्र
 - (A) सवाना घास पारिस्थितिक तंत्र
 - (B) उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन बायोम
 - (C) शीतोष्ण घास प्रदेश पारिस्थितिक तंत्र
 - (D) कोणधारी वन अथवा टैगा बायोम
 - (E) संक्रमण क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र
- 9.4 जलीय पारिस्थितिक तंत्र
 - 9.4.1 सागरीय बायोम के प्रकार
 - (A) पैलेजिक बायोम
 - (B) सागर तलीय बायोम
 - 9.4.2 सागरीय पारिस्थितिक तंत्र के जीव-जन्तु
 - (A) प्लैंकटन
 - (B) बेक्टन
- 9.5 वनोन्मूलन
- 9.6 वनोन्मूलन के परिणाम
- 9.7 भारत में वन संरक्षण
- 9.8 सारांश
- 9.9 पारिभाषिक शब्दावली

9.0 प्रस्तावना

पीछे के सभी अध्यायों में पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न पहलुओं तथा उसके गठन को प्रभावित करने वाले कारको, आदि के बारे में विस्तृत विवरण दिया जा चुका है। इन सब विवरणों के पश्चात् यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण प्राणी ही वास्तव में एक विशाल पारिस्थितिक तंत्र है। किन्तु यह विशाल पारिस्थितिक तंत्र भी बहुत सारे पारिस्थितिक तंत्रों का संयोजन है। सम्पूर्ण विश्व में जलवायु एवं स्थलीय स्थिति के अनुरूप अनेक पारिस्थितिक तंत्र हैं। अतः इस अध्याय में हम इन सभी पारिस्थितिक तंत्रों का अध्ययन करेंगे जो सम्पूर्ण प्राणी में बिखरे हुए हैं। साथ ही साथ कोई विशेष पारिस्थितिकीय किसी खास स्थान या परिवेश में ही क्यों विकसित हुई है इसके कारणों पर भी विस्तृत विवेचना करेंगे। चूंकि सामान्य जनों में यह धारणा होती है कि पारिस्थितिकी तंत्र सब एक जैसे ही होते हैं। उनमें भोजन चक्र एवं अन्तर्सम्बन्ध भी एक ही तरीकें से कार्य करते हैं किन्तु एक पर्यावरणविद् या पर्यावरण के अध्ययन करने वाले विद्वान तथा सब यह जानते हैं कि पारिस्थितिक तंत्र अपने परिवेश के साथ बदलता रहता है। अतः जो बदलते रहते हैं, उनको ही आधार मान कर इस अध्याय में हम विश्व के मुख्य पारिस्थितिक तंत्रों का अध्ययन करेंगे ताकि विद्वानों एवं अध्ययनरत छात्रों के साथ आम जनमानस भी पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तंत्र से परिचित हो जाये। वन प्राकृतिक वनस्पति संसाधन है। वृक्षों एवं झाड़ियों से अवतरित बड़े भूभाग को वन कहते हैं। वनों का दुरुपयोग या वनोंन्मूलन प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों कारणों से होता है लेकिन मानवीय कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों का अन्धाधुंध दोहन करता है। वनोंन्मूलन के कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है जैसे जलवायु परिवर्तन, विश्वव्यापी तापन, बाढ़, जल संसाधनों की कमी इस इकाई के अध्ययन में वनों दुरुपयोग, उससे होने वाले दुष्प्रभाव एवं संरक्षण के बारे में अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

9.1 उद्देश्य

इस पाठ से आप समझेंगे कि—

1. जलीय एवं स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा।
2. किसी खास स्थान में विशेष पारिस्थितिक तंत्र के विकसित होने के क्या कारण हैं।
3. एक पारिस्थितिक तंत्र दूसरे पारिस्थितिक तंत्र से किस प्रकार अलग होता है।
4. पर्यावरण अवनयन एवं पारिस्थितिकी में उसके क्या प्रभाव पड़ते हैं।
5. पीछे के अध्यायों में पढ़े हुये सिद्धान्तों के आधार पर पारिस्थितिक तंत्रों का विभाजन।
6. वनोंन्मूलन व जैवविविधता की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।
7. विद्यार्थी वनों के महत्व उनके विनाश के दुष्प्रभाव को व्याख्या कर सकेंगे।
8. संरक्षण के नियमों को समझकर वन संरक्षण की अपील कर सकेंगे।
9. प्राकृतिक वनस्पति एवं जैवविविधता को नुकसान न पहुंचाकर संरक्षण की जन चेतना का प्रसार कर सकेंगे।

9.2 विश्व के पारिस्थितिक तंत्र

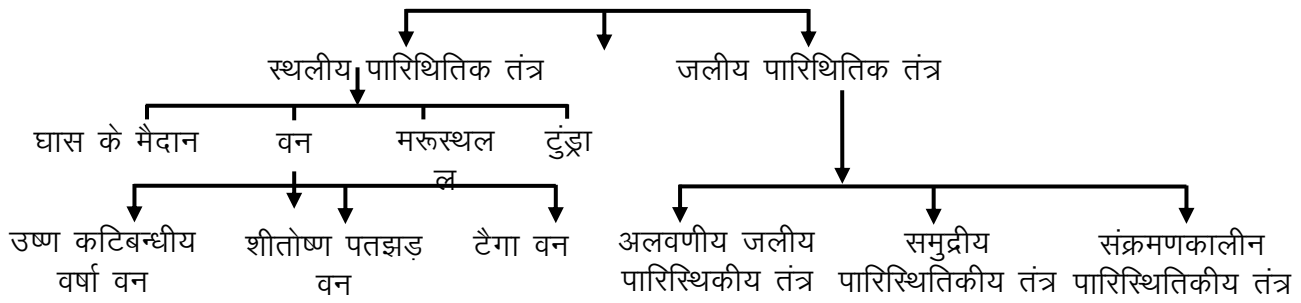
हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी ही एक विशाल पारिस्थितिक तंत्र है। यह तथ्य सर्वविदित है किन्तु यह विशाल पारिस्थितिक तंत्र भी छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों से मिलकर बना है। चूंकि पृथ्वी के तीन आयाम हैं स्थल, जल, एवं वायु जिसमें से पारिस्थितिक क्षेत्र दो आयामों जल एवं स्थल में ही विकसित होता है। तीसरा आयाम अर्थात् वायु, इन दोनों में पारिस्थितिक तंत्र के विकास हेतु सहायता करता है।

इस प्रकार प्रथम दृष्टया हम पारिस्थितिक तंत्र को दो भागों में बाँट सकते हैं।

1. स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र
2. जलीय पारिस्थितिक तंत्र

इसे निम्न रेखाचित्र के माध्यम से समझा जा सकता है—

प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र

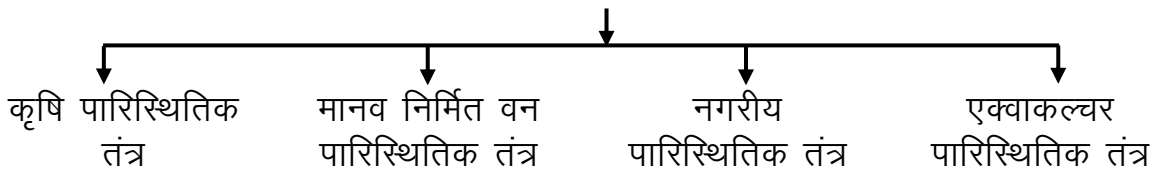


उपरोक्त रेखाचित्र प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को प्रदर्शित करता है। किन्तु पारिस्थितिकी का एक मुख्य तत्व मानव भी है। अतः वह भी कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्रों की रचना करता है।

9.3 स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र

स्थल मण्डल समस्त ग्लोब के क्षेत्रफल का 29 प्रतिशत का भाग है। स्थलमण्डल पर विभिन्न कारकों द्वारा उत्पन्न विभिन्न प्रकार के स्थलमण्डल के स्वरूप, पौधों— तथा जन्तुओं के विभिन्न प्रकारों को निवास स्थान प्रदान करता है। पारिस्थितिकी, जलवायु, स्थान, स्थिति के आधार पर स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र को हम कई भागों में बाँट सकते हैं। वास्तविक रूप से स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में ही सभी अन्य पारिस्थितिक तंत्र विकसित होते हैं। (सागरों को छोड़कर) या सभी पारिस्थितिक तंत्रों का आधार स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र होता है।

मानव निर्मित पारिस्थितिक तंत्र



मानव निर्मित कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र

जब मानव अपने आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन करता है या स्वयं ही कृत्रिम रूप से छोटे पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण करता है तो उसे मानव निर्मित पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। आज के युग में मानव पृथ्वी से बाहर अन्तरिक्ष में जा के कुछ ऐसे ही प्रयोग कर रहा है कि किस प्रकार से वह एक बड़े और बेहतर पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण कर सके ताकि वह दूसरे ग्रहों या उप-ग्रहों में मानव को बसा सके। इस प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र के उदाहरण हैं— एक्वैरियम, फसल क्षेत्र, उद्यान, बाँध, झील (कृत्रिम) तालाब आदि।

9.3.1 घास के मैदान के पारिस्थितिक तंत्र

घास के मैदानों की पारिस्थितिकी दो प्रकार की होती है जिसका विभाजन जलवायु एवं स्थिति के अनुसार की जाती है।

(A) सवाना घास पारिस्थितिक तंत्र

स्थिति तथा विस्तार — सवाना घास के मैदान उन भागों में स्थित हैं जहाँ पर उष्ण कटिबन्धीय जलवायु पाई जाती है। सवाना पारिस्थितिकी में ऊँची घास एवं छोटी झाड़ियाँ तथा पौधे मिलते हैं। इनका विस्तार 0° अक्षांश से 10° से 15° अक्षांश उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों में है।

जलवायु — सवाना बायोम की जलवायु में स्पष्ट रूप से शुष्क तथा आर्द्र ऋतुएँ मिलती हैं। वर्षभर तापमान

ऊँचा रहता है। वार्षिक वर्षा 500 से 2000 मिमी के बीच होती है साल के किसी भी महीने का तापमान 20° से कम नहीं होता है। स्मरण रहे कि सवाना प्रदेशों के विभिन्न भागों (वैश्विक रूप में) वर्षा एवं तापमान अलग-अलग रहता है। उदाहरण के लिये ब्राजील में तापमान 20 से 26°C तथा वर्षा 75 से 200 सेमी के बीच होती है। वहीं अफ्रीका के सवाना प्रदेशों में वर्षा 50 सेमी से 150 तथा वार्षिक तापमान 22°C से 32°C के बीच रहता है।

सवाना वनस्पति— सवाना बायोम घास के मैदानों के लिये जाना जाता है। सवाना बायोम में वनस्पतियों का त्रिस्तरीय विन्यास होता है किन्तु घास लगभग सभी में मौजूद रहती है। सवाना बायोम की घास स्थूल एवं चौड़ी पत्तियों वाली होती है। जिसकी ऊँचाई 80 सेमी से अधिक हो सकती है। इनमें सबसे ऊँची घास हाथी घास होती है। जिसकी ऊँचाई 5 मीटर से भी अधिक होती है। ज्ञातव्य रहें कि सवाना मैदान पूरी तरह से घास से नहीं ढके होते बल्कि बीच-बीच में कुछ खुले भाग भी होते हैं। गर्मी के मौसम में यह घास सूखी नजर आती है किन्तु जैसे ही मौसम सामान्य होता है पुनः यह घास हरी हो जाती है। इसका कारण इन घासों की लम्बी जड़ें होती हैं। जो कि 2.5 मीटर तक गहराई में समाई रहती हैं। जिनसे यह नीचे से जल प्राप्त करती रहती हैं।

सवाना बायोम का त्रिस्तरीय विन्यास — 1. वृक्ष सवाना 2. झाड़ी सवाना 3. घास सवाना

सवाना बायोम के जीव-जन्तु — सवाना बायोम विश्व के लगभग 3 महाद्वीपों में पाया जाता है। तथा उसी के अनुरूप यहाँ पर जीवों का विकास भी हुआ है। जैसे— अफ्रीका सवाना में बड़े चाराशील जीवों यथा— हाथी, गैंडा, जेब्रा, जिराफ, बिलडर बीस्त आदि के बड़े-बड़े झुण्ड पाये जाते हैं। तथा इनके साथ ही साथ मांसाहारी जीव— शेर, सिंह, चीता, तेन्दुआ आदि भी बहुलता से मिलते हैं। इसके विपरीत या अमेरिकी भागों में पक्षियों की संख्या अधिक मिलती है। जबकि आस्ट्रेलिया में कंगारू प्रजाति के 50 से अधिक प्रकार के जीव मिलते हैं। इनमें सबसे बड़ा लाल कंगारू 1.5 मीटर ऊँचा होता है। यह जीव अपने पेट के बाहरी भाग में विकसित थैली में अपने नवजात शिशुओं को रखती है। सवाना प्रदेशों की एक विशिष्ट बात यह है कि यहाँ पर भोजन के लिये प्रतिस्पर्धा कम है क्योंकि यहाँ वनस्पतियों के अनुरूप आहार ग्रहण करने वाले जीव मौजूद हैं। जैसे ऊँचे वृक्षों से जिराफ पत्तियाँ खा लेते हैं, मध्यम ऊँचाई की घास जेब्रा, बिलडरबीस्त खाते हैं तथा छोटी घास हिरण खाते हैं। इस प्रकार से सभी प्रकार के जीवों को भोजन सुलभता से उपलब्ध होता है।

पर्यावरणीय अवनयन (सवाना प्रदेशीय)

सवाना प्रदेशों का विस्तार तो वास्तव में मानवीय हस्तक्षेप के कारण ही हुआ है क्योंकि मानवीय गतिविधियों के कारण ही बड़े वृक्षों एवं घने जंगलों का विनाश हुआ और इनका स्थान बड़ी घासों एवं झाड़ियों ने ले लिया। वर्तमान में भी मानवीय हस्तक्षेप जारी है। घास में प्रतिवर्ष आग लगाई जाती है। जिससे बड़ी घास तो जल जाती है किन्तु वर्षाकाल में छोटी एवं मुलायम घास उगती है। इससे धीरे-धीरे बड़े जीवों का समापन हो रहा है तथा मानव के द्वारा पालतू पशुओं की संख्या धीरे-धीरे बढ़ाई जा रही है। जिससे प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की क्षति हो रही है और मानव निर्मित चारागाहों के क्षेत्र में वृद्धि हो रही है। मानव द्वारा अनियंत्रित शिकार से सवाना बायोम में शेर, गैंडा जैसे जीवों की संख्या भी निरन्तर कम होती जा रही है। गैंडा जैसे जीव तो प्रायः विलुप्त श्रेणी में पहुँच गये हैं।

(B) उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन बायोम

स्थिति तथा विस्तार — इस बायोम का विस्तार मुख्य रूप से 10° उत्तरी तथा 10° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य पाया जाता है। इनका सर्वाधिक विस्तार द0 अमेरिका के अमेजन बेसिन, ब्राजील, अफ्रीका के कांगो-जायरे बेसिन तथा पूर्वी द्वीप समूहों में हुआ है।

जलवायु — उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन बायोम में लगभग वर्ष भर तापमान उच्च रहता है तथा वर्षभर वर्षा प्राप्त होती है। तापमान लगभग 27°C के आसपास रहता है। इस प्रकार की मौसमी दशाओं के कारण यहाँ पर ऊँचे एवं घने जंगल उगते हैं। जिन्हें ब्राजील में **सेल्वास** कहा जाता है।

वनस्पतियाँ — वनस्पतियों के रूप में यहाँ पर घने जंगल पाये जाते हैं। जिसमें लगभग 40,000 से अधिक प्रकार के वृक्ष उगते हैं। इन भागों में सूर्य प्रकाश प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र होती है कि सभी वृक्ष आपस में होड़ करते हैं। जिससे इनकी ऊँचाई बढ़ती जाती है। कुछ वृक्षों की ऊँचाई तो 120 फीट से भी

अधिक हो जाती है। इन वृक्षों पर लतायें पनपती हैं। जिससे यह और भी जटिल एवं सघन हो जाते हैं।

जीव-जन्तु — वर्षा वनों की पारिस्थितिकी बेहद जटिल एवं अस्पष्ट होती है। इन बायोम में बड़े जन्तुओं के रूप में चिम्पान्जी, गोरिल्ला तथा अन्य वृक्षों में निवास करने वाले जीव मिलते हैं। इसके साथ ही साथ लोमड़ी, वृक्षों में निवास करने वाले मेढक, चीटी, दीमक, गिलहरी, विशालकाय सरीसृप, साँप, सुअर आदि मिलते हैं।

इन वर्षा वनों में आज भी विशुद्ध रूप से पारिस्थितिक तंत्र विकसित है। किन्तु रबर के बागान लगाने के कारण इन भागों का भी धीरे-धीरे पारिस्थितिकी तंत्र अव्यवस्थित हो रहा है।

उपरोक्त वर्णित बायोम के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलीय बायोमों का विवरण संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित है।

उष्ण कटिबन्धीय मौसमी वन बायोम — यह बायोम उन भागों में विकसित हुआ है जहाँ कम एवं अनियमित वर्षा होती है। इन क्षेत्रों में वृक्ष पर्णपाती लगभग 3 माह का होता है। मानसूनी वर्षा बायोम में वर्षा का औसत 50 से 100 सेमी के मध्य रहता है। अधिकांश वर्षा जून से सितम्बर के बीच प्राप्त हो जाती है। इसका विस्तार भारत, इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार, फिलिपीन्स, थाइलैण्ड, ब्राजील, जाम्बिया, तंजानिया जैसे देशों में पाया जाता है। मौसमी वर्षा वन बायोम में वृक्षों की ऊँचाई 15 मीटर तक पाई जाती है। यहाँ मुख्य रूप से साल, सागौन, आम, पीपल, महुआ, शीषम आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। जिससे प्राकृतिक गोंद प्राप्त होता है। इन बायोम में जैविक विविधता विशाल है। यहाँ चीटी, दीमक से लेकर विशालकाय हाथी एवं गैंडे मिलते हैं तो पक्षियों में हम्मिंग बर्ड से लेकर मोर एवं सारस जैसे बड़े पक्षी भी मिलते हैं।

शीतोष्ण वर्षा वन बायोम — विश्व में इस प्रकार के बायोम का विस्तार बेहद कम है। यह मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में विस्तारित है। जो कि प्रशान्त महासागर का तटीय भाग है। इस बायोम की सबसे खास बात यह है कि यहाँ पर पाये जाने वाले ऊँचे वृक्ष जिनकी ऊँचाई 90 मीटर तक हो सकती है, इनकी उम्र 1500 वर्ष तक हो सकती है, इनमें मुख्य रूप से डग्लस, फर, स्प्रूस शामिल है। इस प्रकार के बायोमों को रूस सागरीय बायोम या भूमध्य सागरीय बायोम के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ की जलवायु गर्म तथा शुष्क ग्रीष्म एवं आर्द्रशीत के रूप में पाई जाती है। शीतकाल में औसत तापमान 5° से 10° c रहता है तथा ग्रीष्मकाल में तापान्तर बढ़कर 20° से 27° c रहता है। औसत वर्षा 37 सेमी से 65 सेमी रहती है। गर्मियों में वर्षा न होने के कारण पौधों को पानी की कमी रहती है जिससे इनकी जड़ें लम्बी, छाल मोटी एवं पत्तियाँ चिकनी रहती हैं जिससे वाष्पीकरण कम हो। रूस सागरीय वनस्पति (बायोम) में जीव जन्तुओं के रूप में खरगोश, भूमिहारी गिलहरी, शेर, भेड़िया, भालू आदि मिलते रहे हैं, किन्तु अब यह जीव विलुप्त हो चुके हैं या विलुप्ति के कगार पर हैं। यहाँ के अधिकांश जीव तीक्ष्ण दन्त वाले होते हैं। रूस सागरीय बायोम में मानवीय हस्तक्षेप सबसे अधिक हुआ है वृक्षों को काटना, जीव जन्तुओं का शिकार आदि के कारण यहाँ के अधिकांश जीव अब दुर्लभ की श्रेणी में सम्मिलित हो चुके हैं।

(C) शीतोष्ण घास प्रदेश बायोम

स्थिति तथा विस्तार — शीतोष्ण कटिबन्धीय घास मैदानों का विस्तार अधिकांशतः उत्तरी गोलार्द्ध में है। जहाँ यह घास बायोम महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में विस्तृत है। शीतोष्ण घास के मैदानों में महाद्वीपीय प्रकार की जलवायु का विस्तार है जिसमें ग्रीष्म तथा शीत ऋतु की मौसमी दशाओं में भारी अन्तर होता है। उत्तरी अमेरिका में यह मैदान **प्रेयरी** यूरोप में **स्टेपी**, दक्षिणी अमेरिका के अर्जेन्टाइना तथा उरुग्वे में **पम्पाज**, द0 अफ्रीका में **वेल्ड**, आस्ट्रेलिया में **डाउन्स** कहा जाता है।

जलवायु — शीतोष्ण कटिबन्धीय बायोम में महाद्वीपीय प्रकार की जलवायु होती है। जिसमें वार्षिक तापान्तर बहुत ज्यादा होता है। हालाँकि उ0 अमेरिकी स्टेपी प्रदेशों की अपेक्षा द0 अमेरिकी घास मैदानों में यह अन्तर 40° की अपेक्षा मात्र 10° से 12° रहता है। इस बायोम में वर्षा मूसलाधार न होकर फव्वारों के रूप में होती है। वार्षिक वर्षा 25 से 70 सेमी रहती है। जिसको यहाँ पर सदाबहार हरी घास की पनपने का मौका मिलता है।

वनस्पतियाँ — शीतोष्ण घास बायोम का सर्वाधिक अभाव पाया जाता है और यदि कहीं वृक्ष मिलते भी हैं तो रसीले फलों एवं मोटी छाल वाले होते हैं ताकि वाष्पीकरण को वह रोक सकें। इस बायोम की घासें पुष्पित नहीं

होती बल्कि वायु परागण (विषरण) के द्वारा यह परागण का कार्य सम्पन्न करती हैं ध्यान रहे कि इन भागों के अधिकांश क्षेत्रों में प्राकृतिक घास के मैदान नहीं हैं। अपितु मानवकृत बड़े कृषि फार्म में विकसित हो चुके हैं। यही कारण है कि शीतोष्ण घास मैदानों को विश्व की खाद्यान्न भण्डार कहा जाता है।

जीव-जन्तु — शीतोष्ण घास मैदानों में अधिकांशतः छोटे तथा मध्यम आकार के जानवर पाये जाते हैं। जिनमें हिरण, बारहसिंघा, खरगोश, कंगारू आदि मुख्य हैं। किन्तु मानव द्वारा यहाँ पर विशाल स्तर पर दुग्ध एवं ऊन व्यवसाय का विकास हुआ है। जिसके लिये भेड़े एवं गायों का पालन किया गया है। अतः यह बायोम मुख्य रूप से एक चारागाह के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं।

(D) कोणधारी वन अथवा टैगा बायोम —

टैगा बायोम वास्तविक रूप से शीतोष्ण कटिबन्धीय बायोम का ही सबसे उत्तरी विस्तार है। इस प्रकार का बायोम द० गोलार्द्ध में मौजूद नहीं है क्योंकि जिन अक्षांशों पर (40° से 60°) इनका विस्तार होता है वहाँ पर द० गोलार्द्ध में स्थल का विस्तार बेहद कम है। इस बायोम की सबसे बड़ी विशेषता यहाँ के कोणधारी मुलायम लकड़ी वाले वृक्ष हैं। जिनका वैश्विक रूप से बहुत महत्व है। टैगा बायोम की जलवायु में शीतऋतु लम्बी एवं कठोर होती है। कम से कम 6 माह तक पारा 0°C के आस-पास रहता है। वर्षा भी यहाँ पर अधिकांशतः हिम के रूप में होती है। वार्षिक तापान्तर बहुत अधिक होता है। ग्रीष्मकाल में 25°C तथा शीतकाल में 40°C तक तापमान चढ़ता-उतरता है। वनस्पतियों के रूप में यहाँ पर स्प्रूस, पाइन तथा लार्च प्रजाति के वृक्ष पाये जाते हैं। साथ ही साथ एलर एवं पोपलर जैसे कठारे वृक्ष भी मिलते हैं। इनकी पत्तियाँ सुई की तरह नुकीली होती हैं ताकि यह वाष्पीकरण को कम करने में सहायक हो सके। जीव जन्तु के रूप में यहाँ पर लाल गिलहरी, बीबर, समूरधारी लोमड़ी, जंगली बिल्ली आदि मिलते हैं। यह जीव-जन्तु शीतकाल में अपने शरीर को बेहद शान्त कर लेते हैं। जिनसे उनकी ऊर्जा की जरूरत बहुत कम हो जाती है किन्तु बसन्त में हरी मुलायम घास एवं वृक्षों से फल तथा रस ग्रहण करते हैं। टैगा एवं टुण्ड्रा बायोम के जीव मौसम के अनुसार अपना स्थान परिवर्तन करते रहते हैं। कुछ जानवर शीतकाल में टैगा में निवास करते हैं। किन्तु ग्रीष्म काल आते-आते पुनः टुण्ड्रा बायोम में लौट जाते हैं।

(E) संक्रमण क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र—

संक्रमण क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र से आशय एक ऐसी पारिस्थितिक तंत्र से है जिसका विस्तार जलीय एवं स्थलीय दोनों में ही हो या यह कह सकते हैं कि वह स्थलीय बायोम एवं जलीय बायोम के बीच की कड़ी हो जिसमें दोनों बायोमों के गुण तथा भोजन श्रृंखला मौजूद हो।

इस प्रकार के बायोम को आर्द्र भूमि बायोम भी कहा जाता है।

आर्द्र भूमि अथवा मैंग्रोव वन बायोम — जलमग्न दलदली क्षेत्रों, सागरों के तटीय भागों में मैंग्रोव बायोम पाया जाता है। इस बायोम की वनस्पति लवणदार जल में भली-भाँति पनपती है। इस बायोम की वनस्पति में समुद्री वनस्पति के वृक्ष प्रमुख हैं। जिसमें सुन्दरी नामक वृक्ष उल्लेखनीय है। इसी के नाम पर गंगा-ब्रह्मपुत्र नदी का डेल्टा सुन्दरवन डेल्टा के नाम से जाना जाता है।

वैश्विक रूप से इस प्रकार के बायोम का विस्तार दक्षिण पूर्वी एशिया द्वीप समूह, गिनी तट, ब्राजील तट, वेस्टइण्डीज, सुन्दरवन, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, महानदी, डेल्टा, खम्भात की खाड़ी तथा कच्छ की खाड़ी में विस्तारित है। मैंग्रोव वनों के अतिरिक्त 30° अक्षांश के समान्तर भी तटों में तटीय पारिस्थितिकी विकसित है किन्तु मुख्य रूप से यह उत्तरी गोलार्द्ध में ही है।

आर्द्र भूमि बेहद नाजुक होती है। जिसमें मानवीय हस्तक्षेप का व्यापक प्रभाव पड़ता है। कुछ स्थानों में मैंग्रोव वनों को काटकर दलदल सूखाये जा रहे हैं ताकि उस भूमि का उपयोग कृषि के लिये किया जा सके। यह आर्द्र भूमि बायोम के लिये हानिकारक है।

9.4 जलीय पारिस्थितिक तंत्र

सागरीय बायोम (पारिस्थितिक तंत्र) स्थलीय बायोम से अलग विशेषताओं वाला होता है। चूँकि सागरीय जल का तापमान 0°C से 30°C के मध्य रहता है। अतः इसका सीधा प्रभाव यहाँ के जीव समुदायों पर पड़ता है।

सागरीय बायोम का आहार जाल या आहार श्रृंखला सूर्य के प्रकाश, जल एवं कार्बन डाई ऑक्साइड की प्राप्ति पर निर्भर करती है। चूंकि यह सभी तल सागर जल के मात्र 200 मीटर की गहराई पर मिलते हैं। अतः सागरीय बायोम का मुख्य विकास ऊपरी सतह पर ही होता है। 200 मीटर से अधिक गहराई पर यह समाप्त हो जाता है। स्थल की भाँति सागरों में भी उत्पादक के रूप में पौधे (फाइलोप्लैक्टन) होते हैं यही सागरी बायोम में सूर्य के प्रकाश एवं सागरीय जल में घुले रसायनों से भोजन का निर्माण करते हैं जिन्हें प्राथमिक उपभोक्ता भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। सागर की अप्रकाशित मण्डल में रहने वाले सूक्ष्म जीव एवं दृष्टिविहीन मछलियाँ (प्रकाश की अन-उपलब्धता के कारण दृष्टि की उपयोगिता नहीं होती) अपना भोजन अवसादों से प्राप्त करते हैं।

सागरीय बायोम की विस्तृत व्याख्या करते हुये भूगोलविद् **प्रो० सविन्द्र सिंह** ने अपनी पुस्तक समुद्र विज्ञान में निम्नलिखित सागरीय बायोम का उल्लेख किया है—

9.4.1 सागरीय बायोम के प्रकार

सागरीय पर्यावरण के आधार पर निम्नलिखित बायोम का उल्लेख किया गया है।

A. पेलैजिक बायोम (पेलैजिक सागरीय पारिस्थितिक तंत्र)

इस प्रकार के बायोम में निम्न दशायेँ मिलती है—

1. प्रकाशित बायोम 200 मीटर गहराई तक होता है।
2. अप्रकाशित मण्डल बायोम 200 मीटर से सागर की तली तक होता है।

अप्रकाशित मण्डल को भी तीन उपभागों में बाँटा जा सकता है—

- क. मध्य पेलैजिक बायोम 200 से 1000 मीटर की गहराई
- ख. गहरा पेलैजिक मण्डल बायोम 1000 से 4000 मीटर की गहराई
- ग. अतिगहरा मण्डल 4000 से 6000 मीटर मध्य

B. सागर तलीय बायोम

- क. तलांचली मण्डल बायोम
- ख. उपवेलांचली मण्डल बायोम
- ग. तलस्थ मण्डल बायोम

सागरीय जल के तापमान, स्थिति एवं पोषक तत्वों के आधार पर निम्न भागों में सागरीय बायोम को बाँटा जा सकता है।

- गर्म जलीय महाद्वीपीय मग्नतट बायोम (ऊपरी सतह का तापमान $20-30^{\circ}\text{C}$ से अधिक)
- शीत जलीय महाद्वीपीय मग्नतट बायोम (ऊपरी सतह का तापमान 20°C से कम)
- आरोही पोषक तत्वों वाले सागरीय क्षेत्र बायोम
- शीत खुला सागर बायोम
- गर्म खुला सागर बायोम

9.4.2 सागरीय पारिस्थितिक तंत्र (बायोम) के जीव-जन्तु

सागरीय बायोम में जीव समुदाय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। इनके अन्तर्गत प्राथमिक उपभोक्ता द्वितीयक उपभोक्ता एवं विरंजक सभी सम्मिलित रहते हैं।

A. **प्लैक्टन** — यह सागरीय जल के ऊपरी भाग के प्लावी तथा वाही सूक्ष्म स्तरीय पादप तथा जन्तु होते

है। इनमें प्राथमिक उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों ही होते हैं।

- B. **बेक्टन** — इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से बड़े आकार वाली मछलियाँ सम्मिलित होती हैं जो कि प्लैंकटन को भोजन के रूप में ग्रहण करने वाली मछलियों का भोजन बनाती हैं यह एक प्रकार से स्थलीय पोषण स्तर के तृतीय श्रेणी के उपभोक्ताओं के समान हैं।
- C. **बेन्थन**— इसमें उन जीवों एवं मछलियों को शामिल किया जाता है जो कि सागर की तलहटी में होती हैं तथा अवसादों से अपना भोजन प्राप्त करती हैं।

9.5 वनोन्मूलन (DEFORESTATION)

प्रकृति में वनोन्मूलन कई प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिए किया जाता है यद्यपि वन विनाश प्राकृतिक कारणों से भी होता है, किन्तु मानवीय क्रियाओं की गतिशीलता तीव्र एवं लम्बी होती है। अतः स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्वस्तर पर वन विनाश के अग्र प्रमुख कारण हैं—

(1) **कृषि कार्य** (Agriculture)—प्रारम्भिक काल में मानव वन उपजों से ही अपना जीवन निर्वाह करता था, किन्तु जैसे-जैसे कृषि का विकास आरंभ हुआ, विस्तृत पैमाने पर वनों को साफ करके

कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण यह कार्य और भी तीव्र हो गया। कृषि एक अत्यावश्यक क्रिया है लेकिन वन संसाधन के साथ सामंजस्य करके किया जाना चाहिए। वनों की सर्वाधिक हानि स्थानान्तरित कृषि (Shifting cultivation) द्वारा होती है। यह प्राचीनतम कृषि पद्धति है जो उष्ण प्रदेशों के वर्षा प्रचुर वन एवं अर्द्धमरुस्थलीय क्षेत्रों में प्रचलित है। इसका विस्तार अफ्रीका, एशिया एवं दक्षिणी अमेरिका में है। यह कार्य विकसित तथा विकासशील दोनों श्रेणी के देशों में हो रहा है। अफ्रीका के सवाना घास प्रदेश, यूरेशिया के स्टेपी, उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी, दक्षिणी अमेरिका के पम्पास, लानोज तथा दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड प्रदेशों में घासों एवं वृक्षों को साफ करके कृषि कार्य हेतु उपलब्ध कराया है। इसी प्रकार भूमध्य सागर के तटीय प्रदेशों में उद्यान कृषि के अनुकूल जलवायु परिस्थितियाँ हैं, अतः यहाँ भी वृहद स्तर पर वनोन्मूलन करके बागाती कृषि का विकास किया गया है। स्थानान्तरित कृषि को स्थानीय रूप से मलेशिया व इण्डोनेशिया में लदांग (Ladang), फिलीपिन्स में केगीन (Caigin), मध्य अमेरिका, मैक्सिको तथा जिम्बाब्वे में मिल्पा (Milpa), वियतनाम में रे (Ray), वेनेजुएला में कानुको (Konuco), ब्राजील में रोका (Roc), जायरे में मसोले (Mosale), श्रीलंका में चेन्ना (Chen), सूडान में नगासु (Nagsu), इण्डोनेशिया में हूमाह (Humah) तथा म्यांमार में टोंग्या (Tongya) कहते हैं। भारत में विगत दो दशकों में लगभग 35 लाख हेक्टेयर वन भूमि को कृषि भूमि में परिवर्तित किया जा चुका है। कृषि कार्य हेतु वनोन्मूलन की सर्वाधिक दर ओडिशा में है जबकि कुल कृषि क्षेत्र के सन्दर्भ में स्थानान्तरण कृषि का अनुपात उत्तरी-पूर्वी राज्यों असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड, मेघालय तथा मणिपुर में है। यहाँ की जाने वाली स्थानान्तरी कृषि को झूमकृषि (Jhumming) कहते हैं। इस प्रकार की कृषि पद्धति को केरल में पोनाम (Ponam), आन्ध्र प्रदेश व ओडिशा में पोडू (Podu), मध्य प्रदेश में बेवर (Bewar), पेंडा (Panda), डाय (Dahya) तथा बीरा (Beera), पश्चिमी घाट में कुमारी (Kumari), हिमाचल प्रदेश में खील (Khil) तथा दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में वालरा (Vaira) आदि कई भिन्न-भिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है। स्थानान्तरी कृषि में पहाड़ी ढालों पर वन क्षेत्रों को काटकर तथा जलाकर भूमि को साफ किया जाता है। वहाँ कुछ वर्षों तक कृषि कार्य करने के उपरान्त जब उर्वरकता कम हो जाती है, तो आगे स्थानान्तरण कर नये क्षेत्र साफ कर लिये जाते हैं। इस प्रकार कृषि हेतु वनोन्मूलन किये जाने से पर्यावरण अवनयन होता है जिसकी पूर्ति कई वर्षों में संभव हो पाती है।

(2) **वनों का चरागाहों में परिवर्तन** (Forest Areas Converting to Pasture)—

बढ़ती जनसंख्या एवं घटते चरागाहों की स्थिति में वन क्षेत्र को साफ करके चरागाहों में रूपान्तरित कर लिया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों तथा शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों (Temperate zones) में वृहत् स्तर पर वन भूमि पर चरागाह विकसित किये गये हैं। डेयरी फार्मिंग व्यवसाय के अन्तर्गत विकसित देश भी ऐसा कर रहे हैं। अतः इस क्रिया के उपरान्त भी पर्यावरण अवनयन को गति मिलती है।

(3) **निर्माण कार्यों के लिए वन विनाश** (Deforestation for Construction)—

1860 के दशकों में औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त वन क्षेत्र को भी संभावना का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना

गया तथा वन आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास किया गया। बढ़ती जनसंख्या, नगरीकरण तथा आवासीय आवश्यकताओं के लिए वन आधारित निर्माण कार्य तीव्र हुए हैं। शहरी क्षेत्र वनों को साफ कर तीव्रता से प्रसार कर रहे हैं, जबकि सड़क निर्माण, आवास निर्माण, रेलवे लाइनों आदि के लिए भी वनोन्मूलन किया जाता है। विगत तीन दशकों के दौरान भारत में सड़क निर्माण के लिए 73 हजार हेक्टेयर, उद्योगों के 14.6 लाख हेक्टेयर तथा अन्य कार्यों हेतु 99 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र साफ किया गया है। बहुउद्देश्यीय नदी घाटी योजनाओं तथा छोटे बाँधों के निर्माण के लिए भी वृहत् स्तर पर वन विनाश किया गया है जबकि कुछ भाग जलमग्न भी हुआ है। अकेले नर्मदा सागर परियोजना तथा टिहरी बाँध परियोजना में क्रमशः 40322 हेक्टेयर तथा 3600 हेक्टेयर वन क्षेत्र का विनाश किया गया है। इसलिए ये बड़े बाँध, सड़कें, रेलवे मार्ग, शहर आदि एक ओर महत्वपूर्ण हैं तो दूसरी ओर पर्यावरण सन्तुलन की दृष्टि से अभिशाप भी हैं।

(4) घरेलू एवं व्यापारिक उद्देश्यों हेतु वन विनाश (Deforestation for Domestic and Commercial Purpose)–

वर्तमान प्रौद्योगिक मानव अपने घरेलू एवं व्यापारिक प्रयोजनों हेतु भी वन विनाश कर रहा है, क्योंकि तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या के कारण लकड़ी की माँग बढ़ रही है। विषुवत् रेखीय क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 20 मिलियन हेक्टेयर की दर से वन विनाश हो रहा है। आर्थिक लाभ हेतु उन्मुख भौतिकवादी मनुष्य व्यापक वन विनाश कर रहा है। ईंधन के अतिरिक्त भवन निर्माण, फर्नीचर आदि हेतु भी वन विनाश कर रहा है। कनाडा के लम्बरजेक व्यापारिक वन कटाई करते हैं। व्यापारिक स्तर पर लकड़ी काटने का कार्य, कागज एवं लुग्दी उद्योग, दियासलाई निर्माण, इमारतें बनाने, पुल, रेल के डिब्बे, नावों तथा अन्य निर्माण कार्यों हेतु होता है।

सारिणी-9.1: भारत में वनावरण के कारण

राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश	परिवर्तन के कारण
आन्ध्र प्रदेश	वन विभाग द्वारा पौधरोपण गतिविधियों को बढ़ावा देने के कारण अनन्तपुर, चित्तूर, पूर्वी गोदावरी, गुंटूर, कृष्णा, विजयनगरम, विशाखापट्टनम एवं प० गोदावरी जिलों में वनावरण में वृद्धि हुई
अरुणाचल प्रदेश	स्थानांतरी कृषि से कमी एवं कुछ क्षेत्रों में बाँस रोपण से वन वृद्धि ।
असोम	वनभूमि पर अतिक्रमण, जैविक दबाव, स्थानान्तरित कृषि से कमी ।
बिहार	पौधरोपण से आंशिक वृद्धि ।
छत्तीसगढ़	अतिक्रमण, वन्यजीव क्षेत्रों में पुनर्वास से वन अवनयन, खनन, सिंचाई परियोजनाओं के विकास के कारण वनावरण में कमी
दिल्ली	वनरोपण एवं वन सुरक्षा से वनावरण में वृद्धि
गोवा	मैंग्रोव क्षेत्रों में वृद्धि से वनावरण में वृद्धि
गुजरात	मैंग्रोव क्षेत्रों में वृद्धि एवं पौधरोपण द्वारा वृद्धि ।
हरियाणा	वन भूमि का गैर-वन उद्देश्यों में परिवर्तन से कमी ।

हिमाचल प्रदेश	पौधरोपण एवं संरक्षण गतिविधियों द्वारा वनावरण में वृद्धि ।
जम्मू एवं कश्मीर झारखण्ड	झाड़-झंखाड क्षेत्रों में वृद्धि ।
कर्नाटक	पौधरोपण से वृद्धि ।
केरल	व्यापारिक पौधरोपण से वृद्धि ।
मध्य प्रदेश	अतिक्रमण, खनन, चक्रीय क्रिया के असफल होने से कमी ।
महाराष्ट्र	चक्रीय क्रिया असफल, अतिक्रमण एवं गैर-वन उद्देश्यों को प्राथमिकता से कमी ।
मणिपुर	पौधरोपण एवं संरक्षण से वृद्धि ।
मेघालय	स्थानान्तरी कृषि एवं जैविक दबाव से कमी ।
मिजोरम	स्थानान्तरी कृषि एवं जैविक दबाव से कमी ।
नगालैण्ड	स्थानान्तरी कृषि एवं जैविक दबाव से कमी ।
ओडिशा	पौधरोपण के बेहतर संरक्षण से वनावरण में वृद्धि
पंजाब	चक्रीय क्रिया असफल, होने से कमी ।

राजस्थान	संरक्षण, पौधरोपण एवं खेजड़ी के <u>पुर्नस्थापन</u> से वनावरण में वृद्धि ।
सिक्किम	सड़क निर्माण, स्थानान्तरी कृषि एवं भूस्खलन से कमी ।
तमिलनाडु	सफल कृषि वानिकी से बेहतर संरक्षण से वृद्धि ।
तेलंगाना	व्यापारिक वृक्षों को काटना, अतिक्रमण व जैविक दबाव से कमी ।
त्रिपुरा	स्थानान्तरी कृषि एवं वन भूमि पर अतिक्रमण ।
उत्तर प्रदेश	पौधरोपण एवं बेहतर संरक्षण ।
उत्तराखण्ड	वन भूमि के विकास गतिविधियों में रूपान्तरण से वनावरण में कमी ।

पश्चिमी बंगाल	वृक्षारोपण गतिविधियों में वृद्धि, व्यापारिक पौधरोपण, चाय बागानों अंडमान एव में शेड ट्री बनाने तथा मैंग्रोव वृद्धि से वनावरण में वृद्धि।
अंडमान एवं निकोबार समूह	मैंग्रोव आवरण में संरक्षण से वृद्धि।
चण्डीगढ़	पौधरोपण एवं संरक्षण से वनावरण में वृद्धि।
दादरा एवं नगर हवेली	भारी जैविक दबाव से वनावरण में कमी।
दमन एवं दीव	व्यापारिक पौधरोपण से वनावरण में वृद्धि।
पुदुचेरी	पौधरोपण से वनावरण में वृद्धि।

(5) खनिज खनन के कारण वन विनाश (Deforestation due to Mining)–

खनिजों के खनन हेतु वनों को साफ किया जाता है। व्यापारिक स्तर पर किये जाने वाले खनन के दौरान तीव्र वन विनाश होता है। विनाश के उपरान्त खनन करते हैं तथा खनन हेतु वृहद् खड्डों का निर्माण हो जाता है, जिनका पुनः उस रूप में विकसित किया जाना संभव नहीं है, यदि पुनर्स्थापित कर भी देते हैं तो बहुत समय लगता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पेंसिलवानिया कोयला क्षेत्र, रूस के क्रिबोईराग (कुजनेत्स्क) लौह क्षेत्र में खनन कार्य द्वारा वृहद् स्तर पर वन विनाश हुआ है। भारत में पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, ओडिशा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा उत्तराखण्ड में खनन के लिए वनोन्मूलन हो रहा है। दून घाटी में चूना पत्थर के खनन द्वारा **3,90,000** हैक्टेयर क्षेत्र प्रतिवर्ष प्रभावित हो रहा है। राजस्थान के अरावली पर्वतीय क्षेत्रों में संगमरमर तथा ताँबा एवं अन्य खनिजों के खनन के लिए वन विनाश किया जा रहा है।

(6) वनाग्नि (Forest Fire)–

वनाग्नि द्वारा भी वन विनाश होता है, जिसकी उत्पत्ति प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों कारणों से हुई है। प्राकृतिक कारणों में वायुमण्डलीय बिजली सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मानवीय कारणों में मानव सोद्देश्य वनों को जलाता है। कृषि एवं चरागाह विकास हेतु भूमि साफ करने के लिए भी वनों को जलाता है। पशु चरवाहे भी आग का कारण बन जाते हैं। आग लगने से वन पारिस्थितिकी तन्त्र की जैव विविधता नष्ट होकर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करती है। एक ओर जंगलों में कई प्रकार के जीव जन्तु निवास करते हैं तो दूसरी ओर वनों से प्राप्त पत्तियों द्वारा मृदा को जीवांश प्राप्त होता है।

(7) जीवीय कारकों द्वारा वन विनाश (Deforestation by Animals)–

जीवीय कारकों द्वारा भी वनों का विनाश होता है, जिनमें पालतू जानवर तथा सूक्ष्म जीवाणु प्रमुख हैं। जानवर स्वतंत्र विचरण करके वनों का विनाश करते हैं, जबकि सूक्ष्म जीवाणु जैसे दीमक, कीट आदि विभिन्न प्रकार के हानिकारक प्रभाव डालते हैं। उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय तथा शुष्क प्रदेशों में पशुओं के अतिचारण पर भारी वन विनाश हुआ है। इन वनों में पशुओं के बड़े-बड़े झुण्ड सूक्ष्म वनस्पति को नष्ट करके मृदा के ऊपरी आवरण को भी क्षयित कर देते हैं, जिससे वनविनाश हो जाता है। उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त भूस्खलन एवं हिमस्खलन के द्वारा भी वन विनाश होता है। वन विनाश द्वारा उपरोक्त कारकों के कारण पर्यावरण असन्तुलित हो रहा है।

9.6 वनोन्मूलन का पर्यावरण पर प्रभाव (IMPACT OF DEFORESTATION ON ENVIRONMENT)

वन संसाधन जलवायु सन्तुलन के प्रमुख तत्त्व माने जाते हैं। वन विनाश का प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र पर दृष्टिगोचर होता है जिसके उपरान्त जीव जन्तु भी प्रभावित होते हैं। तीव्र मृदा अपरदन, बाढ़, सूखा आदि क्रियाओं में तीव्रता आती है। वन विनाश के निम्नलिखित दुष्प्रभाव प्रमुख हैं:-

(1) जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव- थार्नथ्वेट महोदय के अनुसार वर्षा की क्रियाशीलता में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्षा के उपरान्त आर्द्रता में वृद्धि होती है जो तापमान को नियन्त्रित करती है। यदि वर्षा की मात्रा में भी कमी होती चली जाएगी तो शुष्क अवस्था उत्पन्न हो जाएगी जिसके परिणामस्वरूप मरुस्थल जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वनोन्मूलन के कारण भूजैव रसायनिक चक्र बाधित होते हैं। जल चक्र में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। साथ ही कार्बन तथा नाइट्रोजन चक्रों की क्रियाशीलता भी अव्यवस्थित होती है क्योंकि पौधे भूमिगत जल का वाष्पोत्सर्जन करते हैं तथा वर्षा जल को रोककर निःस्यन्दित (Infiltrate) करने में सहायता करते हैं। प्राणवायु में भी कमी आती है। वनों में व्याप्त नमी विश्वव्यापी गर्मी (Global Warming) को नियन्त्रित करते हैं।

(2) बाढ़ों की पुनरावृत्ति-

जलग्रहण क्षेत्रों में वनोन्मूलन के उपरान्त बाढ़ों की पुनरावृत्ति अधिक होती है। वर्षा से प्राप्त जल को मृदा में सोखने से वनस्पति आवरण सहयोग करते हैं। किन्तु यदि वृक्षविहीन क्षेत्र है तो सूक्ष्म नालियों द्वारा वर्षा जल मुख्य धारा में मिश्रित होकर बाढ़ का रूप धारण कर लेता है। वन वर्षा जल की तीव्रता को कम कर देते हैं जिससे बाढ़ों पर नियंत्रण रहता है। भारत में बिहार राज्य में आयी बाढ़ें अधिकांशतया वन विनाश के कारण ही आयी हैं।

(3) जल संसाधनों की मात्रा पर प्रभाव-

वन विनाश के कारण वर्षा की मात्रा कम हो जाती है एवं तापमान बढ़ जाता है जिससे सतही जलस्रोत सूख जाते हैं एवं भूजल स्तर नीचे चला जाता है। वृक्षों द्वारा वातावरण नम रहता है जबकि वृक्षविहीन क्षेत्र में वाष्पीकरण अधिक है। विगत तीन सौ साल में पहली बार 1999 में राजस्थान की राजसमन्द झील सूख गई। भूजल तीव्रता से घटता जा रहा है। मसूरी, देहरादून के समीपवर्ती क्षेत्रों में वन विनाश के कारण अधिकांश जलस्रोत सूख गये हैं। वन विनाश के कारण चूना प्रधान शैलों वाले चेरापूंजी क्षेत्र में भी ग्रीष्मकाल में भयंकर जलाभाव रहता है।

(4) मृदा अपरदन में वृद्धि-

वृक्ष मृदा को बाँधकर रखने का कार्य करते हैं। वन विनाश के कारण वर्षा जल की बूँदें पूर्ण गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) के साथ धरातलीय भाग पर तीव्र प्रहार करती हैं, जबकि वनावरण के कारण ये गति कम हो जाती है। पेड़-पौधे धरातलीय प्रवाह को भी धीमा करके भूमिगत करने में सहायता करते हैं। वृक्षविहीन क्षेत्रों में जलग्रहण क्षेत्रों के तेज ढाल वाले भागों से जल तीव्रगति से मृदा को काटता हुआ प्रवाहित होता है जिसके उपरान्त नदियों में अवसाद भार में वृद्धि हो जाती है, जिससे मृदा अपरदन के साथ ही बाढ़ का प्रकोप पनपता है। वृक्षविहीन थार के मरुस्थल में तीव्र मृदा अपरदन हो रहा है।

(5) जैव विविधता का ह्रास-

वन पारिस्थितिक तन्त्र में जैव विविधता का अस्तित्व रहता है, जबकि वनोन्मूलन के उपरान्त इस पर संकट आ जाता है। वन्य जीव विलुप्त हो जाते हैं। कई संकटापन्न प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं, जिसका दुष्प्रभाव पर्यावरण सन्तुलन पर पड़ता है। दुनिया भर में जीव-जन्तुओं एवं पेड़-पौधों की लगभग 100 लाख प्रजातियाँ हैं जिनमें से 14 लाख प्रजातियाँ मानसूनी जलवायु वाले वनों में मिलती हैं। वर्तमान समय में प्रतिवर्ष 170 लाख हैक्टेयर जंगल साफ हो रहे हैं। यदि यही दर रही तो 2040 तक इन प्रजातियों की 25 से 75 प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त हो जाएंगी अतः वन संरक्षण आवश्यक है।

उपर्युक्त प्रभावों के अतिरिक्त वन विनाश के कारण भूमि संसाधन भी विकृत होते हैं। मरुस्थलीकरण की

प्रक्रिया को ऊर्जा मिलती है तथा भूमि बंजर होती है। वन विभिन्न प्रकार के उद्योगों से निसृत कार्बन-डाई-ऑक्साइड (CO₂) को अवशोषित करते हैं। वन विनाश के कारण प्रकृति में प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ने के साथ ही विश्वव्यापी तापन (Global Warming) की समस्या उभरेगी। इन सभी क्रियाओं के उपरान्त पर्यावरण अवनयन को गति मिलती है। फ्रांस के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में, स्पेन तथा पुर्तगाल के पश्चिम में स्थित यूरोप महाद्वीप के अन्य कारक उत्पादक क्षेत्र हैं।

9.7 वन-संरक्षण (FOREST CONSERVATION)

मनुष्य कितना भी भौतिक प्रवृत्ति का क्यों न बने, फिर भी उसके मस्तिष्क में स्वस्थ एवं सन्तुलित पर्यावरण की कल्पना रहती है जिसमें वह निरन्तर संलग्न रहता है। पृथ्वी तल पर किसी भी राजनीतिक प्रदेश के लिए वन सम्पदा का संरक्षण आवश्यक भी है। सामान्यतया वन संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं :-

(1) वनों की पोषणीय सीमा तक कटाई-

प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन के दोहन की एक सीमा होती है जिसे पोषणीय या जीवनधारणीय सीमा (Sustainable limit) कहते हैं। मनुष्य के विवेकपूर्ण उपयोग द्वारा वनों का दोहन उसी सीमा तक किया जाये जिस सीमा तक उनका पुनर्भरण (Regeneration) हो सके अर्थात् वन काटने और वृक्षारोपण की दरों में अनुपात होना चाहिए। लगाये गये वृक्षों का उस समय तक दोहन आरंभ न हो जब तक से पूर्ण परिपक्व न हों

(2) वनाग्नि से सुरक्षा-

वृक्षों की आग से सुरक्षा की जानी चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1955 से 1964 के दौरान वन अग्नि से 10 लाख हैक्टेयर वन नष्ट हो गये। अतः केम्प फायर, शिखर आग तथा माचिस आग से सुरक्षा की जानी चाहिए।

(3) वनों का हानिकारक कीटों से रक्षण-

मनुष्य के अतिरिक्त जीवों में वनों को अनेक हानिकारक कीट नष्ट करते हैं, इनमें दीमक, सूंडी, झींगुर, गुबरैला आदि प्रमुख हैं। इन कीटों को जैविक नियन्त्रण विधियों द्वारा नष्ट करना चाहिए। कीट प्रभावित वृक्ष शीघ्र सूख जाता है अतः अन्य वृक्षों में इसके कीटाणु विसरण होने से पूर्व ही ऐसे वृक्षों को हटा देना चाहिए। एक सीमा तक कीटाणुनाशक दवाइयों द्वारा भी कीट नियंत्रण किया जा सकता है।

(4) चयनात्मक कटाई

चयनात्मक कटाई की जानी चाहिए। उन्हीं वृक्षों की कटाई की जाय जिनकी वास्तव में माँग हो। सम्पूर्ण वृक्ष को काटने के बजाय उसकी शाखाएं काटी जायें ताकि पारिस्थितिक सन्तुलन एकाएक विकृत न हो।

(5) ईंधन के लिए वनोन्मूलन नहीं किया जाये वरन् अन्य वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध कराये जायें।

(6) घरेलू उपयोग हेतु इमारती लकड़ी के स्थान पर कुछ वैकल्पिक वस्तुओं से निर्मित भी उपयोग करना चाहिए।

(7) पुनः वनीकरण को व्यवस्थित विधि से विकसित किया जाये। ऐसे वृक्ष लगाये जायें जो बहुउद्देश्यीय व शीघ्र बढ़ने वाले हों। बहुउद्देश्यीय वृक्षों के अन्तर्गत बागवानी विकास को बढ़ावा दिया जाये।

(8) पारिस्थितिकी के अनुकूल दशाओं वाले वृक्षों का रोपण किया जाये ताकि जीवितता प्रतिशत सर्वाधिक हो।

(9) वनों के लाभ एवं हानियों के बारे में जन-चेतना फैलाई जाये।

(10) सामाजिक वानिकी व कृषि वानिकी जैसी योजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाये।

(11) राष्ट्रीय वन नीति के अनुरूप वन विकास किया जाये।

(12) वन संरक्षण से सम्बन्धित नियमों का कठोरता से पालन किया जाये।

उपरोक्त उपायों के साथ ही बड़े पौधों एवं बहुउद्देश्यीय योजनाओं का क्रियान्वयन करते समय वन

संसाधनों की महत्ता को मद्देनजर रखा जाये तथा चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन, अप्पिको आन्दोलन तथा राजस्थान के जोधपुर जिले की अमृता देवी द्वारा चलाये गये संरक्षणात्मक आन्दोलन को भी जन समर्थन मिलना चाहिए। इन आन्दोलन के तहत वृहत् स्तर पर वनों को बचाया गया है।

9.8 सारांश

ज्ञात ब्रह्माण्ड में अभी तक सिर्फ हमारी पृथ्वी में ही जीवन के प्रमाण उपलब्ध हैं इस पृथ्वी पर प्रकृति में सुन्दर चित्रकारी की है। कहीं घने जंगल है, तो कहीं ऊँचे पहाड़, सूखे रेगिस्तान है तो अथाह जलराशि को समेटे सागर और इन सभी में अलग-अलग जीवन भी पनपा है। सूक्ष्म, एक कोशिकीय जीवों से लेकर विशाल हाथियों एवं व्हेल जैसे भीमकाय स्तनधारी जो कि इस धरा को सुन्दर एवं विविधता से भर देते हैं। इस सम्पूर्ण पाठ में हम विश्व के उन सभी मुख्य भागों के बारे में जाना और समझा जो कि बाहर से भले ही अलग-अलग लग रहे हैं। किन्तु उनमें ऊर्जा प्रवाह की दिशा लगभग एक जैसी ही है। साथ ही साथ पारिस्थितिकी में मानवीय क्रियाकलाप के नकारात्मक एवं सकारात्मक आदेशों को भी जानने समझने का प्रयास किया।

इस इकाई कार्य में वनों के विनाश व संरक्षण के विषय में अध्ययन करने के बाद वन संसाधनों की महत्ता को मद्देनजर रखते हुए वनों को बचाया जाये। वनों के उपयोग के स्थान पर वैकल्पिक वस्तुओं का प्रयोग किया जाय, इस विषय की अध्ययन करने के बाद वन संसाधनों की महत्ता को मद्देनजर रखते हुए वनों को बचाया जाये। वनों यह इकाई अध्ययन वन संरक्षण, जैव विविधता व वन विनाश के दुष्प्रभावों को समझने में सहायक होगी जो—

9.9 पारिभाषिक शब्दावली

सेल्वास—ब्राजील के ऊष्ण कटिबन्धीय घने वर्षा वन

फाइलोप्लैकटन—सागर में 200 मीटर से अधिक गहराई में पाये जाने वाले जलीय पौधे।

पैलेजिक—सागर की 200 मीटर की गहराई में मिलने वाले पदार्थ।

वेलांचली मण्डल— वह क्षेत्र जो उच्च एवं निम्न ज्वार के मध्य स्थित हो।

पोनम—केरल में की जाने लाने वाली स्थानान्तरित कृषि।

पोंडू—आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा में स्थानान्तरित कृषि —

कुमारी— पश्चिमी घाट में स्थानान्तरित कृषि

9.10 बोध प्रश्न:

1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तरा—

प्रश्न —1 वनों के दुरुपयोग के बारे में विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न— 2 वनों के संरक्षण नियमों के बारे में बताइये?

प्रश्न: 3 भारत में वनों के प्रकार बताइये,

प्रश्न— 4 स्थानान्तरित कृषि के बारे में बताइये ।

प्रश्न— 5 मत्स्य उद्योग सागरीय पारिस्थितिक तंत्र के लिये अभिशाप बनता जा रहा है। स्पष्ट करें।

प्रश्न— 6 विश्व में घास पारिस्थितिक तंत्र के कितने प्रकार हैं? किसी एक का विस्तार से वर्णन करें।

प्रश्न— 7 उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन विश्व के सबसे जटिल पारिस्थितिक तंत्र है। कैसे उदाहरण देकर समझाइये।

प्रश्न— 8 भारत के किसी एक आर्द्र भूमि पारिस्थितिक की स्थिति, विस्तार एवं जन्तुगत विशेषताओं के साथ

वर्णन करें।

प्रश्न— 9 स्पष्ट करें कि शीतोष्ण घास के मैदान मानवीय क्रियाकलापों की देन हैं।

प्रश्न— 10. विश्व के मुख्य पारिस्थितिक तंत्रों के लुप्त प्रायः या विलुप्त प्राणियों के नाम बताइये?

3 बहुविकल्पीय प्रश्न —

प्रश्न:1 सुमेलित नहीं है

(सूची i)	(सूची ii)
(अ) इण्डोनेशिया	लदांग
(ब) फिलीपिन्स	केगीन (द)
(स) मैक्सिको	मिल्पा
(द) वियतनाम	रोका

प्रश्न:2 वालरा कृषि की जाती है —

(अ) राजस्थान	(ब) मध्यप्रदेश (अ)
(स) उत्तर प्रदेश	(द) उणीसा

प्रश्न: 3 सुमेलित नहीं है

(सूची i)	(सूची ii)
(अ) ब्रजील	रोका
(ब) सूडान	नगपसु (द)
(स) मध्यप्रदेश	बेवर
(द) म्यांमार	हूमह

प्रश्न: 4 सागर तली (तलहटी) में रहने वाले जीवों को क्या कहते हैं।

(A) बेंथम (B) प्लैक्टन (C) बेक्टन (D) सेरे

प्रश्न: 5 निम्नलिखित में से कौन सागर तलीय बायोम नहीं है—

(A) वेलांचली मण्डल बायोम (B) उपवेलांचली मण्डल बायोम
(C) तटस्थ मण्डल बायोम (D) मैंग्रोव बायोम

प्रश्न: 6 टैगा वन बायोम का विस्तार नहीं मिलता—

(A) एशिया (B) अफ्रीका (C) उ० अमेरिका (D) द० अमेरिका

प्रश्न:7 सागौन का वृक्ष किस प्रकार के बायोम की वनस्पति है—

(A) टैगा बायोम (B) मानसूनी बायोम
(C) उष्ण कटबन्धीय बायोम (D) सामरीय बायोम

प्रश्न 8 :प्रेयरी बायोम कहाँ पर है—

(A) उत्तरी अमेरिका (B) दक्षिणी अमेरिका (C) एशिया (D) आस्ट्रेलिया

प्रश्न:9 'डाउन्स' क्या है—

(A) घास मैदान (B) मरुस्थल (C) सागरतली (D) कोई नहीं

उत्तरमाला—

(4) A (5) D (6) B (7) C (8) A (9) A

9.11 सन्दर्भ सूची ग्रन्थ

प्रो० सविन्द्र सिंह— जलवायु विज्ञान— प्रयाग पुस्तक भवन, यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज

प्रो० माजिद हुसैन— विश्व का भूगोल— टाटा मैग्रा हिल, नई दिल्ली

प्रो० सविन्द्र सिंह— पर्यावरण भूगोल— प्रवालिका पब्लिकेशन यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज

डॉ बी.सी जाट “संसाधन एवं आर्थिक भूगोल मलिक जयपुर कम्पनी जयपुर

Dr. Alka Gauautam-” Resoucees Geograpy sharada pustak bhandar prayagraj

प्रो जगदीश, सिंह संसाधन भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर

इकाई—10 : मिट्टी संसाधन, वर्गीकरण, वितरण, मृदा अपरदन एवं संरक्षण, भारत में मिट्टी संरक्षण

इकाई की रूपरेखा

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 मिट्टी संसाधन
- 10.4 मृदा भौतिक वर्गीकरण
- 10.5 मृदा की विशेषताएँ
- 10.6 मृदा संरचना के प्रकार
- 10.7 मृदा परिच्छेदिका
- 10.8 मृदा निर्माण
- 10.9 मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक
- 10.10 मृदा का वर्गीकरण एवं वितरण
- 10.11 वृहद मृदा वर्गीकरण तंत्र
- 10.12 मृदा अपरदन एवं संरक्षण
- 10.13 मृदा संरक्षण
- 10.14 सारांश
- 10.15 पारिभाषिक शब्दावली:
- 10.16 बोध प्रश्न
- 10.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 प्रस्तावना

मृदा एक प्राकृतिक संसाधन है संसाधन भूगोल में मृदा के प्रमुख संघटक, उत्पत्ति वितरण विशेषताएँ तथा मृदा की उपलब्धता का अध्ययन किया जाता है। धरातल पर स्थित एक पतली परत जिसमें खनिजों के कण, ह्यूमस, आर्द्रता, वायु आदि होते हैं मृदा (मिट्टी) कहलाती है। मृदा का निर्माण चट्टानों के छोटे-छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है। इस इकाई में मृदा निर्माण से मानव के उपयोग एवं मृदा संरक्षण का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

10.2 उद्देश्य (OBJECTIVES)

इस इकाई में मृदा संसाधन का वर्गीकरण, वितरण, मृदा संरक्षण के सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किया जा रहा है। मृदा समाधान के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- (अ) मृदा संसाधन की विषयवस्तु को स्पष्ट करना।
- (ब) शिक्षार्थियों को मृदा के निर्माण, वर्गीकरण, उपयोग, वितरण, संरक्षण के विषय में पहुँच बना सकेंगे
- (स) मृदा संसाधन के विश्व वितरण एवं मृदा की विशेषताओं एवं प्रकारों को स्पष्ट करना।
- (द) विद्यार्थियों को मृदा संसाधन की उपयोगिता एवं संरक्षण के बारे में अवगत कराना।

10.3 मिट्टी संसाधन (SOIL RESOURCES)

मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है जो एक संसाधन के रूप में अन्य संसाधनों को प्रत्यक्ष रूप से आधार प्रदान करती है। धरातल पर स्थित ढीले तथा महीन कणों से निर्मित एक पतली परत जिनमें विभिन्न खनिजों के कण, ह्यूमस, आर्द्रता, वायु आदि संयुक्त होते हैं, मृदा (मिट्टी) कहलाती है। सामान्य रूप में मृदा का निर्माण मूल चट्टानों के विघटन तथा अपघटन (वियोजन) द्वारा होता है जिसे समय के साथ विभिन्न प्रकार की जलवायु प्रभावित करती है। प्रसिद्ध विद्वान रमन ने (1917) मृदा की निम्न परिभाषा दी है, “मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी अपक्षयित (weathered) ठोस पपड़ी की परत है, जो चट्टानों के टूटने व रासायनिक परिवर्तन से बने छोटे-छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है।”

डॉ. बेनेट के शब्दों में, “धरातल पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की ऐसी परत जो मूल चट्टान व वानस्पतिक अंश के संयोग से बनती है, मिट्टी कहलाती है।” अतः मृदा भूपृष्ठ पर व्याप्त चट्टानों के अपक्षय द्वारा निर्मित होती है, जिसका उस भूपृष्ठ पर पाये जाने वाले जीव-जन्तु, पादप, जलवायु दशाएँ आदि प्रभावित करती हैं एक निश्चित समय के अन्तराल पर मृदा निर्माण पूर्ण हो पाता है। इस प्रकार मृदा पर्यावरणीय एवं जीवीय प्रक्रमों का संयुक्त प्रतिफल होती है तथा इसका विभिन्न प्रकार की जलवायु वाले वातावरण में विभिन्न तरह की वनस्पति, जन्तु, इसके नीचे स्थित शैलों, भूपृष्ठ तथा समय के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। मृदा के अध्ययन के अन्तर्गत मृदा के संघटन, इसकी विशेषताओं, मृदा परिच्छेदिका तथा मृदा निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

कार्बनिक पदार्थ 35% अकार्बनिक पदार्थ – 45% जल 25%

कार्बनिक पदार्थ

मृदा संसाधन हो मृत, मिट्टी के निर्माण एवं परिवर्तन में बड़े योगदान देते हैं। ये आकार के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में मिलते हैं। बड़े आकार वाले जन्तु मिट्टियों तथा पत्तियों के ढेरों में रहते हैं। इनके शरीर की लम्बाई एक सेण्टीमीटर से अधिक होती है। ये रीढ़दार एवं बिना रीढ़ वाले दोनों प्रकार के होते हैं।

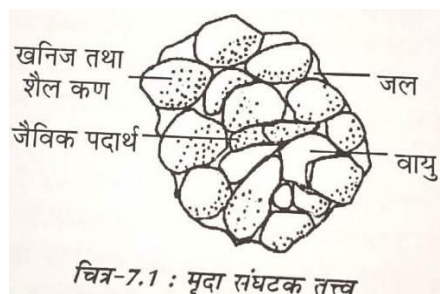
सारिणी— 7.1 मृदा के प्रमुख संघटक

प्रमुख संघटक	संगठन का प्रतिशत
1. जीवांश पदार्थ	5 से 12
2. मृदा वायु	15 से 35
3. अजैविक पदार्थ	38 से 47
4. मृदा जल	15 से 35

इनमें छछूंदर छोटा अमडिलो खरगोश, गिलहरी, चूहा, साँप आदि रीढ़दार तथा भूकीट, पौधा, शम्बुक, मकड़ा तथा किलनी बिना रीढ़दार जन्तुओं में प्रमुख हैं। मध्यम आकार के जन्तुओं के शरीर की लम्बाई एक सेण्टीमीटर से 0.2 मिलीमीटर के मध्य होती है। इसके अन्तर्गत कुटकी, मकड़ी, स्प्रिंगटेल कीट, लारवा सहस्रपादकोट (Millipode), समपाद जीव (Isopods) आदि महत्वपूर्ण जीव हैं। लघु आकार वाले जीवों के शरीर की लम्बाई 0.2 मिलीमीटर से कम होती है। इस श्रेणी में बैक्टीरिया सदृश्य जीवों को सम्मिलित किया गया है। मृदा में निवास करने वाले जीवों के कुछ पक्ष मिट्टियों के गुणों व विशेषताओं के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण होते हैं।

3.अजैविक पदार्थ (Inorganic Matter) या खनिज पदार्थ

ज्ञातव्य है कि मृदा का निर्माण मूल चट्टानों से होता है इस प्रकार खनिज पदार्थ मृदा के निर्माण में अति महत्वपूर्ण घटक होते हैं, क्योंकि ये मृदा निर्माण में सहायक होते हैं। इनमें हार्नब्लेन्ड, आलविन, बायोटाइट, हाइपरस्थीन, पोटाश, ओजाइट, कैल्सिक, कैल्सिक-अलकली, प्लैजियोक्लेज, क्वार्टज, फेल्सफार, मस्कोबाइट आदि को सम्मिलित किया जाता है। मृदा मण्डल में ऊपर से नीचे



जाने पर खनिजों का आकार बढ़ता जाता है। तथा खनिजों का निर्माण विघटन पुनः निर्माण चक्रीय रूप में होता रहता है परन्तु सदैव यह आवश्यक नहीं कि किसी क्षेत्र विशेष के खनिज पदार्थ एवं वहाँ की आधार शैली में समानता पाई जाये, क्योंकि वर्तमान समय में अधिकांश मृदाएँ आयातित हैं अर्थात् जब आधार शैली का अपक्षय द्वारा विघटन तथा अपघटन होता है, तो अपरदन के कारकों द्वारा यह वियोजित पदार्थ अन्यत्र जमा होता रहता है।

3.मृदा जल (Soil Water)

मृदा कणों के बीच रन्ध्र अवकाशों में उपस्थित जल को मृदा जल कहते हैं। प्रत्येक मृदा के रन्धावकाश अंशतः वायु और जल से भरे रहते हैं। यह विद्यमान जल की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता उसमें रहने वाले पौधों तथा जन्तुओं को प्रभावित करती है। मृदा में जल का रहना अति अनिवार्य है। यह सूक्ष्म जन्तुओं एवं वनस्पतियों को आश्रय प्रदान करता है। विलेय (Soluble) जल ऑक्सीजन को मृदा में ले जाता है। यह मृदा के तापमान को सन्तुलित अवस्था में रखता है। शीतकाल में तुषार के प्रतिकूल प्रभाव से फसलों की रक्षा करता है। जल एक सर्वव्यापी विलायक है, जो अधिकांश आवश्यक पोषक तत्वों को घोलकर पौधों के विभिन्न अंगों की आवश्यकतानुसार पूर्ति करता है मृदा में स्थित जल की मात्रा का निर्धारण जल वर्षा (Precipitation) तथा हिमद्रवित जल के मृदा में अन्तः संचरण की दर एवं मृदा की जलधारण क्षमता के आधार पर किया जाता है।

10.4 मृदा जल का भौतिक वर्गीकरण (PHYSICAL CLASSIFICATION OF SOIL WATER)

प्रसिद्ध मृदा वैज्ञानिक ब्रिग्स (Brigg) ने मृदा जल का भौतिक ढंग से वर्गीकरण करके निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया है :-

- (i) आर्द्रताग्राही (Hygroscopic Water)
- (ii) केशीय जल (Capillary Water)
- (iii) गुरुत्व (Gravitational Water)
- (i) आर्द्रताग्राही (Hygroscopic Water)

यह जल शुष्क मृदा द्वारा वायुमण्डलीय जलवाष्प को अवशोषित करके ग्रहण किया जाता है। यदि शुष्क मृदा को 15°C तापमान पर लगभग 8-12 घण्टे तक गर्म किया जाए तो जल की कुछ मात्रा मृदा से बाहर

निकल आएगी एवं जल की इस न्यूनतम मात्रा को हो आर्द्रताग्राही जल कहते हैं। यह जल एक पतली झिल्ली के रूप में मृदा कणों या जीवांश पदार्थों के चारों ओर आसंजन बल के साथ धारित होता है। यह जल तो वाष्पीकरण से नष्ट होता है एवं इसमें गति नहीं होती है। इसे व्यर्थ जल कहा जाता है क्योंकि मृदा के जैविक तत्व इसका उपयोग नहीं कर सकते हैं। मृदा के गठन, कलिलीय पदार्थ की मात्रा आर्द्रता एवम तापमान इसकी मात्रा को निर्धारित करते हैं। मृत्तिका में बालू की अपेक्षा आर्द्रताग्राही जल अधिक होता है। आर्द्रता बढ़ने से इसकी मात्रा बढ़ती है तथा तापमान बढ़ने से कम भी होती है।

(ii) केशीय जल (Capillary Water)–

केशीय जल (सुलभ जल) मृदा कणों के चारों ओर एक पतली परत के रूप में चिपका रहता है। इसे केशीय जल कहते हैं। यह जल मृदा कणों के चारों ओर छल्ले के आकार को आर्द्रता प्रभावित करती है, क्योंकि जैसे-जैसे आर्द्रता की मात्रा बढ़ती है इसका आकार भी बढ़ता जाता है। जब जल की यह परत पास वाले मृदा कणों से संयोजित होती है तो इन अधिकांश रन्ध्रावकाशों में जल भर जाता है तथा शेष में वायु विद्यमान रहती है। केशीय जल मृदा कणों के पृष्ठीय बलों द्वारा धारित रहता है एवं यह आर्द्रताग्राही जल की तरह मृदा कणों से कठोरता से नहीं चिपकता, परन्तु इतनी कठोरता अवश्य रखता है कि इसे पृथ्वी का गुरुत्वबल पृथक् न कर सके। केशीय जल के अणु स्वतंत्र गतिशील एवं द्रव अवस्था में होते हैं। इसी कारण आसानी से वाष्पीकृत भी हो जाते हैं केशीय जल को सुलभ जल के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसके मृदा कणों के दृढ़ता से चिपके रहने पर भी पेड़-पौधे इसका उपयोग कर लेते हैं।

(iii) गुरुत्वीय जल (Gravitational Water)

मृदा में जल विभिन्न रूपों में पाया जाता है। जब इस जल का गुरुत्वाकर्षण द्वारा मृदा के नीचे अन्तःस्त्रवण (Percolation) होता है तो इसे गुरुत्वीय जल या स्वतन्त्र जल कहते हैं। गुरुत्वीय जल मृदा कणों के मध्य व्याप्त स्थानों के अन्दर गति करता है। यह जल एक निश्चित सीमा तक भर जाता है जहाँ से आगे इसका अन्तःस्त्रवण नहीं हो सकता। इस स्थान को संतृप्त मण्डल (Zone of Saturation) कहते हैं। मृदा में गुरुत्वीय जल की मात्रा अनेक स्थितियों से सम्बन्धित रहता है जिनमें वर्षा की मात्रा एवं जल संग्रह का स्थान प्रमुख है। मृदा के अन्दर गुरुत्वीय जल विभिन्न कार्य करता है। प्रथमतः यह मृदा के रंग, संरचना एवं गठन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। जैसे ही गुरुत्वीय जल मृदा में प्रवेश कर गति करता है तो जल अवमृदा (Topsoil) के सूक्ष्मतम कणों को साथ ले लेता है। इस प्रकार ऊपरी मृदा के संघटकों का यह स्थानान्तरण अपवहन (Eluviation) कहलाता है। इसके उपरान्त यह जल उप मृदा (Sub soil) प्राप्त कणों का स्पंदन से करता हुआ अपने साथ ले जा कर जमा करता है मृदा की इस प्रक्रिया को संपोहन या विनिक्षेपण (Illuviation) कहते हैं। इस प्रकार गुरुत्वीय जल मृदा कणों को एक परत से दूसरी परत में परिवहन व मिश्रित करने वाला अभिकारक भी है। इसका प्रभाव यह होता है कि उपरी मृदा मोटे कणों वाली बन जाती है क्योंकि महीन (Finer) कण तो घुलकर इसके साथ निचली मृदा में चले जाते हैं। इस प्रकार निचली मृदा संघन एवं अच्छे गठन वाली बन जाती है।

3. मृदा वायु (Soil Air)

मृदा में बड़ा भाग वायु का होता है जो मृदा के कणों तथा पुंज के मध्य खाली स्थानों में पायी जाती है। इनके मध्य व्याप्त रिक्त स्थान जब जल से भर नहीं पाते तो वायु से भर जाते हैं मृदा वायु अधिकांश धरातल वायु पर पायी जाने वाली वायु मण्डल के सदृश्य होती है। इसमें ऑक्सीजन की मात्रा कम तथा कार्बन डाई ऑक्साइड एवं जलवाष्प की मात्रा अधिक पायी जाती है। आर्द्रताग्राही एवं केशीय जल की उपलब्धता के कारण आर्द्रता आपेक्षिक भी पायी जाती है। मृदा वायु में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु तथा पौधों को आवश्यक मात्रा में ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड की पूर्ति करती है। इस प्रकार वायु की नियमित पूर्ति में मृदा कणों के मध्य पाये जाने वाला जल बाधा डालता है। मृदा वायु में पायी जाने वाली ऑक्सीजन तथा कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में कमी एवं बढ़ोत्तरी होती रहती है। अच्छे वातन (Aeration) की पृष्ठीय सतह की मृदा में ऑक्सीजन की मात्रा 18 से 21 प्रतिशत तक होती है। गहराई पर इसकी मात्रा में कमी आती है ज्ञातव्य है कि भूतल के ऊपर वाले वायुमण्डल में ऑक्सीजन 20.97 प्रतिशत, कार्बन डाई ऑक्साइड 0.03 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79 प्रतिशत तथा जलवाष्प 100 प्रतिशत से कम पायी जाती है, जबकि घास के मैदान की मृदा में ऑक्सीजन 18.40 प्रतिशत, कार्बन डाई ऑक्साइड 1.6 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79.2 प्रतिशत तथा जलवाष्प प्रायः

100 प्रतिशत विद्यमान रहती है। इसी प्रकार कृषि योग्य मृदा में ऑक्सीजन 20.70 प्रतिशत, कार्बन डाई ऑक्साइड 0.10 प्रतिशत, नाइट्रोजन 79.2 प्रतिशत, जलवाष्प प्रायः 100 प्रतिशत पायी जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भू-सतह पर पायी जाने वाली कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में पायी जाने वाली मात्रा से अधिक होती है, क्योंकि मृदा के अन्दर मृत जीवांशों के विघटन से कार्बन डाई ऑक्साइड का सतत उद्भव होता रहता है। इसी प्रकार मृदावासी जीवों द्वारा श्वसन के कारण धीरे-धीरे ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आ जाती है।

10.5 मृदा की विशेषताएँ (CHARACTERISTICS OF SOIL)

मृदा में अनेक भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं, जो उसके व एवं विभिन्नता बनाने में उपयोगी होते हैं। इनमें रंग, गठन, संरचना, अम्लीयता और क्षारीयता तथा जल एवं वायु को रोकने व संचारित करने की क्षमता आदि सम्मिलित हैं।

1. रंग (Colour)–

मिट्टी के रंग से भौतिक एवं रासायनिक गुणों की जानकारी प्राप्त होती है। मिट्टी का रंग विभिन्न प्रकार का होता है जैसे—लाल, पीला, भूरा, काला, धूमिल (Grey), सफेदिया (Nearwhite) आदि। ये रंग किसी भी विशिष्ट मृदा की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं को जानकारी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, जीवांशयुक्त मृदा का रंग काला या भूरा होता है, जबकि इनकी उच्च मात्रा होने तथा वियोजित जैविक तत्वों के पाये जाने पर मृदा काली या गहरी भूरी (Dark Brown) होती है जैसे ही मृदा में अपक्षालन (Leaching) तथा न्यून जैविक वियोजन के परिणामस्वरूप जीवांश (Humus) की मात्रा कम होती है, इसका रंग हल्का भूरा या धूमिल (Grey) हो जाता है। मृदा में अधिक मात्रा में जीवांश (Humus) का पाया जाना सामान्यतया मृदा के उच्च उपजाऊ होने का संकेत होता है। यह जीवांश मृदा पर स्थित पेड़-पौधों को मृदा के पोषक तत्वों के ग्रहण करने में भी आवश्यक होते हैं। कुछ भागों में बिना जीवांश या कुछ मात्रा में जीवांश होने पर मृदा का रंग काला देखा गया है। मृदा का लाल एवं पीला रंग लौह तत्वों की उपस्थिति के कारण पाया जाता है। आर्द्र क्षेत्रों में हल्की धूसर या सफेद मृदा इस बात का संकेत है कि इनमें विद्यमान लौह तत्वों का अपक्षालन हो गया है, जबकि शुष्क क्षेत्रों में सफेद तथा हल्का धूसर रंग नमक की उच्च मात्रा का सूचक है। भूरे रंग की मृदा में ऑक्सीजन की कमी लोहे एवं जीवांशों की कमी का संकेतक है। जब मिट्टी के खनिज पदार्थ घुलकर निकल जाते हैं तो उसका रंग पीला हो जाता है। ऐसी मिट्टी अपूर्ण जलप्रवाह वाले क्षेत्रों में मिलती है। यह बहुत ही कम उपजाऊ शक्ति वाली होती है।

अतः मृदा रंग की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं का विवरण देने के साथ ही मृदा के गुणों एवं उपयोग की संभावनाओं (Potential) की भी उपयुक्त जानकारी प्रदान करता है।

2. गठन (Texture)–

मृदा विभिन्न आकार के छोटे-छोटे कणों से मिलकर निर्मित होती है। ये विभिन्न कण कंकड़, बालू, सिल्ट और मृत्तिका के होते हैं। इनके कणों के आकार में आपेक्षिक अनुपात होता है जिनके परिणामस्वरूप मृदा में मोटापन एवं महीनता होती है। इस प्रकार मृदा

सारणी-7.2 : मृदा कण वर्ग	
वर्ग का नाम	व्यास (मिमी.)
मोटी बजरी (Coarse Gravel)	2 से अधिक
महीन बजरी (Fine Gravel)	1-2
मोटी बालू (Coarse Sand)	0.5-1
मध्यम बालू (Medium Sand)	0.25-0.5
महीन बालू (Fine Sand)	0.1-0.25
अत्यधिक महीन बालू (Very Fine Sand)	0.05-0.1
सिल्ट (Silt)	0.002-0.1
मृत्तिका (Clay)	0.002 से कम

कणों के आकार को गठन कहते हैं। मृत्तिका के कणों का व्यास 0.002 मि.मि. से कम होता है। सिल्ट मृदा

के कणों का आकार 0.002 मि.मी से 0.5 मिमी. होता है, बलुई मृदा का कणाकार 0.05 से 2.0 मि.मी. तक होता है जबकि 2.6 मि.मी. से अधिक व्यास के कणाकार वाली मृदा बजरी या चट्टानी विखण्डित मृदा की श्रेणी में आती है।

कणों के आकार के अनुसार मुख्य रूप से मृदा को तीन वर्गों में बाँटा गया है— बालू , सिल्ट और मृत्तिका। बालू के कण सबसे बड़े सिल्ट के मध्यम तथा मृत्तिका के सबसे महीन कण होते हैं। इसी आधार पर तीनों वर्गों का विवरण निम्नलिखित है:—

(i) बालू (Sand)

बालू के कण मृदा को पृष्ठीय क्रियाशीलता कम होने के कारण रासायनिक एवं भौतिक गुणों में किसी भी प्रकार का योग नहीं देते हैं। इस मृदा में जल निकास तथा वायु संचार में भी सुविधा रहती है। इनमें जल का वाष्पन एवं अन्तःस्पन्दन भी तीव्र गति से होता है अतः ये मृदाएँ शुष्क कृषि के योग्य नहीं हैं। इसको कृषि योग्य बनाने हेतु जीवांश का मिश्रण किया जाना आवश्यक होता है।

(ii) सिल्ट (Silt)—

सिल्ट में 50 प्रतिशत तक बालू कण, 50—100 प्रतिशत सिल्ट तथा 20 प्रतिशत तक मृत्तिका की मात्रा होती है। इसमें बालू की अपेक्षा पृष्ठीय तनाव होता है तथा जल का अधिशोषण भी अच्छा होता है। 20 प्रतिशत से अधिक महीन सिल्ट वाली मृदाओं में कार्य करना कठिन होता है व जल का निकास भी अच्छा नहीं होता है, अतः वे सिंचित क्षेत्रों वाली कृषि के अयोग्य होती हैं। बालू एवं सिल्ट को कमजोर क्रियाशीलता के कारण इन्हें मात्र मृदा ढाँचा कहा जा सकता।

आर्थिक भूगोल

सारणी-7.3 : मृदा गठन वर्गों का विवरण

मृदा	विभिन्न कणों का सापेक्ष अनुपात		
	बालू	मृत्तिका	सिल्ट
1. बलुई दोमट	65	15	20
2. मृत्तिका दोमट	33.3	33.3	33.3
3. दोमट	40	18	42
4. सिल्ट मृत्तिका	10	45	45
5. सिल्ट दोमट	17	13	70

Source : USDA Yearbook of American Agriculture.

(iii) मृत्तिका (Clay)

मृत्तिका वर्ग की मृदा में 50 प्रतिशत बालू 50 प्रतिशत तक सिल्ट तथा 30—100 प्रतिशत तक मृत्तिका के कण विद्यमान रहते हैं मृत्तिका के कण बालू एवं सिल्ट से अधिक क्रियाशील होने के कारण मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में एक सीमा तक योगदान करते हैं कि मृत्तिका कणों की उपस्थिति मृदा को उपजाऊ बनाती है, जबकी अधिक होने पर हानिकारक प्रभाव दृष्टिगत होते हैं, इनमें जल को अधिक समय तक अवशोषित कर संचित रखने की क्षमता होती है, अतः ये मृदाएँ शुष्क कृषि के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। इनके कण अत्यधिक महीन होने के कारण यदि मृदा में 50 प्रतिशत अधिक मृत्तिका कण हो जाते हैं तो जल एवं वायु के संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है और अतिशीघ्र हो जलाक्रान्ति हो जाती है। इन पर मौसम का भी प्रभाव पड़ता है। ये मृदाएँ शीतकाल में शीतल तथा ग्रीष्मकाल में सिकुड़ कर टूट जाती है। इस प्रकार उपयुक्त अनुपात से कम या अधिक मात्रा में मृत्तिका की उपस्थिति हानिकारक सिद्ध होती है।

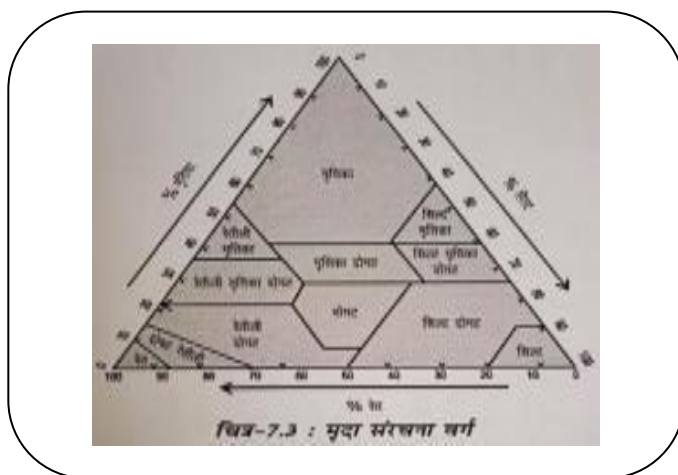
उपयुक्त तीनों कण वर्गों के अनुसार मृदा का वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार कणों के नामकरण से मृदा का गठन ज्ञात होने के साथ ही मृदा के विभिन्न गुणों को ज्ञात किया जाता है। जब इन तीनों कण वर्गों को एक विशेष अनुपात में मिश्रित करते हैं तो इस मृदा मिश्रण को एक विशेष नाम दिया जाता है जिसे मृदा गठन वर्ग कहते हैं। इनमें बालू मृदा, बलुई दोमट, सिल्ट दोमट, चिकनी दोमट, मृत्तिका, सिल्ट आदि को सम्मिलित करते हैं।

मृदा के कणाकार मृदा का महत्वपूर्ण गुण है। यह पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक मृदा नमी तथा वायु के ग्रहण क्षमता निर्धारण में सहयोग करता है। मृदा में जल संग्रह, मृदा की जुताई, वातन और उर्वरता की भी

मृदा गठन प्रभावित करता है, जैसे— चिकनी मृदा में जल का प्रवाह बहुत धीमी गति से होता है, जिसके कारण जलाक्रान्ता की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा वायु का वाहन भी ठीक ढंग से नहीं जो पाता जबकि जल एवं वायु का संचरण कृषि का प्रमुख अंग होता है।

(3) संरचना(Structure)

मृदा के संगठित एकांकी रूप में पाये जाने वाले समूहों को मृदा की संरचना कहते हैं। इस संरचना का निर्माण मिट्टी के कण आपस में संगठित हो जाते हैं तो इन संगठित पिण्डों की मिट्टी की संरचना कहते हैं। इस संरचना का निर्माण मिट्टी के प्राथमिक कणों (बालू, सिल्ट, मृत्तिका) द्वारा होता है। मृदा की संरचना मृदा की आर्द्रता, वायु, तापमान जलधारण क्षमता को प्रभावित करती है मृदा की संरचना जल, वायु, के सम्बंध को स्थापित करती है। यह मृदा में जल और वायु की मात्रा को नियंत्रित करते हैं, जिससे मृदा पोषक तत्व प्राप्त करके वृद्धि करती हैं। इस प्रकार मृदा संरचनाका निम्नलिखित महत्त्व है:-



चित्र— 7.3: मृदा संरचना वर्ग

- मृदा की संरचना, मृदा में जैविक तथा खनिज तत्वों को प्रदर्शित करती है।
- मृदा संरचना मृदा जल एवं वायु के संचलन को प्रभावित करती है।
- यह मृदा को जल एवं वायु धारण की क्षमता को प्रदर्शित करती है।
- यह मृदा के अपरदन की प्रकृति तथा मात्रा को निर्धारित करती है।
- मिट्टियों की जुताई तथा पौधों को वृद्धि भी संरचना से नियंत्रित होती है।
- यह जल की पारगम्यता एवं रन्धता को प्रभावित करती है।

10.6 मृदा संरचना के प्रकार (TYPES OF SOIL STRUCTURE)

मृदा संरचना में मृदा के प्राथमिक कणों तथा कण पुंज की आवृत्ति व्यवस्था, आकार तथा गुणों का अध्ययन किया जाता है। मृदा वैज्ञानिकों ने मृदा संरचना को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है, जो निम्नलिखित हैं:-

(i) कोणीय (Granular)–

इनके कणपुंज अपेक्षाकृत कम रन्ध्र वाले होते हैं। यह संरचना उपजाऊ मृदाओं में पायी जाती है, जिनमें कि जीवांश पदार्थ (Humus) की मात्रा अधिक होती है। इसके कण पुंजों का आकार 1–10 मिमी. होता है।

(ii) मृदु कणीय (Crumb)–

इस वर्ग के कणपुंज अधिक रन्ध्र युक्त होते हैं, इनके कणपुंजों का आकार 1–5 मिमी. होता है।

(ब) खण्ड सदृश्य (Blocky)–

खण्ड सदृश्य संरचना में कण पुंजों की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई (मोटाई) तीन अक्षों में समान अर्थात् घन आकृति में व्यवस्थित होते हैं और लगभग छः पृष्ठों और आठ कोनों का एक खण्डीय रूप धारण कर लेते हैं। खण्ड सदृश्य संरचना को इनकी दृढ़ता पर कोनों की रचना के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया गया है।

(i) कोणीय खण्डीय (Angular Blocky)

कोणीय खण्डीय संरचना में कण पुंजों के फलक चपटे, कोने व भुजायें समुचित, विकसित एवं तेज कोणीय होती हैं तथा कण पुंजों का आकार 5–50 मिमी. होता है।

(ii) उपकोणित खण्डीय (Sub- Angular Blocky)–

उपकोणित खण्डीय संरचना में कोने तथा भुजायें टूट-टूटकर घिस जाती हैं और खण्ड थोड़ा-सा मिश्रित गोलाकार रूप धारण कर लेता है।

(स) त्रिपाश्व सदृश्य संरचना (Prismatic Structure)–

इस तरह की संरचना में कणपुंजों को क्षैतिज अक्ष (Horizontal Axis) ऊर्ध्वाधर अक्षों की अपेक्षा अधिक विकसित नहीं होती है। यह संरचना शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पायी जाने वाली मृदाओं के संस्तरों (Horizon) में मिलती है। यह संरचना भी दो प्रकार की होती है:–

(i) त्रिपाश्वीय (Prismatic)–

त्रिपाश्वीय संरचना में त्रिपाश्व के शीर्ष चौरस (Plane), समतल और तीव्र धार वाली होती है। इनके कणपुंजों का आकार 10–100 मिमी. तक होता है।

(ii) स्तम्भी (Columnar)–

इस प्रकार की संरचना में कण पुंजों के शीर्ष तथा किनारे गोल टोपीनुमा आकार के होते हैं। मृदा परिच्छेदिका के परिवर्तनशील होने और उसके कुछ संस्तरों के अपघटित होने की दशा में यह संरचना विकसित होती है। इसके कण पुंजों का आकार 10–100 मिमी. होता है

(द) तश्तरीनुमा (Platy)–

तश्तरीनुमा संरचना में कणपुंजों के ऊर्ध्वाधर अक्ष की अपेक्षा क्षैतिज अक्ष अधिक विकसित होते हैं। इनके कणपुंज तश्तरी सदृश्य होते हैं तथा एक-दूसरे को ढके रहते हैं। ऐसी संरचना मृदा परिच्छेदिका के किसी भी भाग में पाई जा सकती है। इन कणपुंजों (Ped) की मोटाई के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है

(i) स्तरीय (Laminar)–

इस प्रकार की संरचना के कणपुंजों की मोटाई 1–2 मिमी. होती है, जो अन्य की तुलना में बहुत कम है।

(ii) तश्तरीय (Platy)–

तश्तरीय संरचना में कणपुंजों की मोटाई 2–10 मि.मी होती है, जो स्तरीय से अधिक है।

मृदा संरचना के उपर्युक्त सभी वर्ग कुछ बाहरी कारकों द्वारा प्रभावित होते हैं, जिनमें मृदा की नमी एवं पोषक तत्वों का चक्रीयकरण आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही मानवीय क्रियाओं से भी मृदा संरचना प्रभावित होती है।

(4) क्षारीयता एवं अम्लीयता (Alkalinity and Acidity)

मृदा में क्षारीयता एवं अम्लीयता का पाया जाना एक महत्वपूर्ण विशेषता है। क्षारीयता मृदा के पोषक तत्वों की पौधों के लिए उपलब्धता को निर्धारित करने में सहायक होने के साथ ही पौधों की वृद्धि पर भी नियंत्रण रखती है। अम्लीयता की मात्रा पाये जाने के कारण ही मृदा जल खनिज पदार्थों को घोलने एवं उनमें पाये जाने वाले पोषक पदार्थों को स्वतंत्र रूप देती है। क्षारीयता की मात्रा कम होने पर पोषक तत्व पौधों तक नहीं पहुँच पाते हैं। इसी प्रकार अम्लीयता भी पौधों की वृद्धि को निर्धारित करती है। मृदा में व्याप्त अम्लीयता

की मात्रा अधिक होने पर पोषक तत्वों को घोलने का कार्य करती है तथा पोषक तत्वों को पौधों की पहुँच में आने वाले से पूर्व ही अपक्षालन (Leaching) हो जाता है। मृदा में पायी जाने वाली अम्लीयता एवं क्षारीयता को 0 से 14 तक की pH मापनी पर मापा जाता है। इसकी मृदा में व्याप्त हाइड्रोजन आयनों की उपस्थिति में मापते हैं। न्यून pH मान मृदा में अधिक अम्लीयता को प्रदर्शित करता है, जबकि उच्च pH का मान 7 होने पर सन्तुलन को अवस्था को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार मृदा में पायी जाने वाली अम्लीयता एवं क्षारीयता की मात्रा सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता को भी प्रभावित करती है।

10.7 मृदा परिच्छेदिका (SOIL PROFILE)

भूसतह तथा नीचे स्थित शैलों के ऊपरी भाग के लम्बवत् संस्तरों को सामूहिक रूप से मृदा परिच्छेदिका कहते हैं। मृदा कई प्रकार की शैलों के टूटने व अपघटन, विघटन होने तथा उनमें जीवांशों के सम्मिश्रण से निर्मित होती है। मृदा कई मुलायम तत्वों से मिलकर बनी है। ये तत्व कई परतों के रूप में मृदा संस्तरों का निर्माण करते हैं जिनमें सबसे मुलायम व समान पदार्थों से बनी हुई परत सबसे ऊपर तथा सबसे कठोर चट्टानें सबसे नीचे स्थित होती हैं, जिसमें असमान प्रकार के मोटे कण मिलते हैं। मृदा परिच्छेदिका के संस्तरों को मुख्य रूप से दो प्रमुख वर्गों में मृदा परिच्छेदिका विभाजित किया गया है :-

(i) जैविक संस्तर (Organic Horizon),

(ii) खनिज संस्तर (Mineral Horizon)

(1) जैविक संस्तर (Organic Horizon)

मृदा परिच्छेदिका के ऊपरी भाग को जैविक संस्तर कहा जाता है। इसमें जीवित तथा मृत जैविक पदार्थ बहुतायत से पाये जाते हैं। इन संस्तरों को अंग्रेजी में O अक्षर द्वारा इंगित किया जाता है (O=Organic)। इन जैविक संस्तरों का निर्माण पौधों एवं जन्तुओं से प्राप्त जीवांश पदार्थों के संचयन से होता है। जैविक संस्तर को दो उपवर्गों में विभाजित किया जाता है। O₁ जैविक संस्तर सबसे ऊपरी भाग होता है। इसका निर्माण मूलरूप से पाये जाने वाले वानस्पतिक तत्वों से होता है। ये मूल वानस्पतिक तत्व शुद्ध या नवीन पत्तियों के ढेर तथा आंशिक रूप से अपघटित पत्तियों के ढेर होते हैं। नवीन पत्तियों वाले ढेरों को पर्णढेर संस्तर (Litter layer) भी कहते हैं। आंशिक रूप से अपघटित पत्तियों के ढेर को F संस्तर कहते हैं। O₁ के उपरान्त O₂ संस्तर आता है, जिसका निर्माण पौध तथा जन्तुओं के परिवर्तित अवशेषों से होता है। इस संस्तर में पाये जाने वाले जैविक तत्वों का एवं इनके मृत भागों को वियोजन द्वारा इतनी अधिक मात्रा में रूपान्तरण कर दिया जाता है कि बिना सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों के इनकी पहचान कठिन हो जाती है। O₂ संस्तर में स्थित इन वियोजित जैविक पदार्थों को जीवांश कहा जाता है।

(2) खनिज संस्तर (Mineral Horizon)–

इस संस्तर का निर्माण अकार्बनिक या अजैविक खनिजों से होता है। इन संस्तर में भी एक सीमित मात्रा में जैविक अंश पाये जाते हैं। खनिज संस्तर में भी ऊपर से लेकर अधः स्थल तक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं, इसलिए इस संस्तर को भी 3 स्तरों में विभाजित किया जाता है, जिनका नामकरण भी अंग्रेजी के A B तथा C अक्षरों से किया गया है, इन तीनों (A, B तथा C) स्तरों में भी विभिन्नता होने के कारण इनको भी A₁, A₂, A₃, B₁, B₂, B₃, आदि उपविभागों में विभाजित किया गया है। ज्ञातव्य है कि जलवायु प्रदेशों में विभिन्न प्रकार से इन संस्तरों में भी विभिन्नता आ जाती है। खनिज संस्तर के उपविभागों का विवरण निम्न है :-

A₁ - यह खनिज संस्तर का सबसे ऊपरी संस्तर होता है, जिसकी स्थिति O₂ के ठीक नीचे होती है। इनमें खनिजों के साथ जैविक पदार्थों का भी मिश्रण पाया जाता है। इस संस्तर का रंग काला होता है एवं इसमें जीवीय घटनाएँ अधिक होती हैं।

A₂ - इसमें खनिजों का अधिकतम अपवहन होता है तथा अपक्षालन की क्रिया अधिक होने के कारण इस संस्तर को *अपवहन मण्डल* (Eleniation Zone) कहते हैं। इसका रंग हल्का होता है।

A₃ - यह संस्तर A तथा B के मध्य *संक्रमित मण्डल* (Transitional Zone) होता है, परन्तु इसमें B की अपेक्षा A संस्तर के लक्षण अधिक मिलते हैं। यह मण्डल सभी प्रकार की मृदा परिच्छेदिकाओं में विद्यमान नहीं रहता है।

B₁— यह मण्डल A तथा B के मध्य का मण्डल है, जिसमें A की अपेक्षा B की विशेषताएँ अधिक मिलती हैं। यह भी हमेशा सभी प्रकार की मृदा परिच्छेदिकाओं में विकसित नहीं होता है।

B₂— इस संस्तर में कैल्सियम कार्बोनेट या जिप्सम को गहराई तक अधिक मात्रा में विनिक्षेपण (Illuviation) होता है। इनके साथ जैविक पदार्थों भी विनिक्षेपण होता है, अतः इसे विनिक्षेपण मण्डल भी कहते हैं।

B₃— यह B एवं C के मध्य का मण्डल है इसमें C की अपेक्षा संस्तर के लक्षण अधिक मिलते हैं।

C— इस संस्तर को अधोस्तर भी कहते हैं। यहाँ आधार शैल के अपक्षपित पदार्थों को रिंगोलिथ कहते हैं। इसमें आधार शैलों (Parent Rocks) को संरचनात्मक विशेषताएँ पूर्णरूप से परिलक्षित होती है।

D— मिट्टियों के नीचे संगठित दृढ़ एवं कठोर आधार शैल के मण्डल को D संस्तर कहते हैं। इस प्रकार मृदा के मूल पदार्थ से लेकर ऊपरी सतह तक के विवरण को धरातल के किसी भी भाग पर मृदा परिच्छेदिका के माध्यम से देखा जा सकता है।

10.8 मृदा निर्माण (Soil Formation)

मृदा पृथ्वी की ऊपरी सतह पर एक परत के रूप में मिलती है, जिसका निर्माण चट्टानों तथा खनिजों के अपक्षय से हुआ है, जिसमें समय के साथ एवं विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में जीवांश पदार्थ का भी मिश्रण हो जाता है। मूल पदार्थ का निर्माण शैलों के अपक्षय से हुआ है तथा इस मूल पदार्थ पर मृदा निर्माण करने वाले सक्रिय (जलवायु, जीवमण्डल), निष्क्रिय (उच्चावच, मूलपदार्थ) और उदासीन (समय) कारकों की निरन्तर प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मृदा का निर्माण हुआ है।

मृदा निर्माण की प्रथम अवस्था (First Stage of Soil Formation)

मृदा निर्माण की प्रथम अवस्था में भूपर्पटी में स्थित शैलों का निर्माण एवं रासायनिक कारकों द्वारा अपघटन एवं विघटन होता है, जिसके परिणामस्वरूप मूल पदार्थ (Parent Material) का निर्माण होता है। भौतिक परिवर्तन के अन्तर्गत तापमान, जल, बर्फ एवं वायु कटाव और संचयन के अतिरिक्त जैविक तत्त्व भी प्रभाव डालते हैं जिनमें पौधों एवं प्राणियों का प्रभाव प्रमुख है। इन कारकों के सामूहिक प्रभावों के कारण चट्टानों का विघटन होता है। इसमें तापमान पाकर चट्टानें फैलती हैं एवं ठण्डी होकर सिकुड़ती हैं जिस कारण अपपत्रण (Exfoliation) द्वारा शैल चूर्ण का निर्माण होता है। इसी प्रकार जल, बर्फ और वायु द्वारा कटाव होता है तथा पेड़-पौधे अपनी जड़ों से चट्टानों का विघटन करते हैं। इन सभी भौतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल पदार्थ का निर्माण होता है।

रासायनिक परिवर्तन के द्वारा चट्टानों का अपघटन होता है। रासायनिक परिवर्तन में विलयन, जल, अपघटन, जलयोजन, ऑक्सीकरण, कार्बोनेशन तथा आम्लिक प्रक्रिया प्रमुख हैं। इन क्रियाओं द्वारा शैलों तथा खनिजों का विभिन्न रूपों में अपघटन होता है। जल अपघटन (Hydrolysis) में जल दोहरा अपघटक का कार्य करता है। जलायोजन द्वारा जल खनिजों के साथ रासायनिक संयोग करते हैं। इस प्रकार भौतिक, रासायनिक एवं जैविक अपक्षय के परिणामस्वरूप मूल चट्टानों का अपघटन संसाधन विघटन होता है जिससे मूल पदार्थ (Parent Material) का निर्माण होता है जहाँ से मृदा निर्माण की अगली प्रक्रिया आरम्भ होती है।

मृदा निर्माण की द्वितीय अवस्था (Second Stage of Soil Formation)

प्रथम अवस्था में अपक्षय की सामूहिक क्रिया के फलस्वरूप मूल पदार्थ निर्मित होता है इसी क्रम में मृदा परिच्छेदिका का निर्माण होता है। मूल पदार्थ में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। इस मूल पदार्थ पर पेड़-पौधों एवं जीव-जन्तुओं के उत्पन्न होने और उनके मरने के फलस्वरूप इनके ऊपर जीवांश (Humus) पदार्थ एकत्रित हो जाता है तथा इनको जलवायु दशायेँ निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं। इन विभिन्न प्रक्रियाओं में निर्मित खनिजों का यह पिण्ड मृदा कहलाती है। मृदा निर्माण की इस प्रक्रिया में निर्मित पदार्थ को सोलम कहते हैं तथा सोलम का ऊपरी भाग ही मृदा कहलाता है।

10.9 मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक (FACTORS AFFECTING SOIL FORMATION)

मृदा ढीले एवं असंगठित पदार्थों की गतिशील परतें होती है, जिसके निर्माण की प्रक्रिया कई कारकों से प्रभावित होती है। मूल पदार्थ पर जब वर्षा, तापमान, जीव-जन्तु, उच्चावच तथा समय की अवधि आदि कारक सम्मिलित क्रियात्मक प्रभाव डालते हैं, तो मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार जहाँ एक ओर मूल पदार्थ का निर्माण होता रहता है वहीं दूसरी ओर चट्टानों के निरन्तर अपक्षय एवं अपरदन द्वारा नये मूल पदार्थ का निर्माण होता है। इन प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप मृदा परिच्छेदिका का विकास होता है। मृदा निर्माण में मूल पदार्थ, उच्चावच, जलवायु, जैविक तत्त्व तथा समय प्रत्येक स्थान पर एक सामूहिक प्रक्रिया द्वारा मृदा निर्माण करते हैं, अतः ये मृदा निर्माण के कारक कहलाते हैं, जिनका विवरण निम्न है :-

(1) मूल पदार्थ(Parent Materials)

सभी मृदाएँ विखण्डित शैल चूर्ण से प्रभावित होती हैं। विखण्डित शैल चूर्ण नदी, नहरें, पवन या हिमनदी द्वारा नये स्थान पर एक संहति (Mass) के रूप में जमा किया जाता है, जो सतही मृदा के रूप में विकसित होता है। मृदा के अकार्बनिक पदार्थ का मूल स्रोत जनक पदार्थ कहलाता है। मृदा को जैविक पदार्थ जनक पदार्थ से अलग बना देता है। जनक पदार्थ एक ऐसा पदार्थ होता है जिसके ऊपर जलवायु, जैविक गतिविधिया धरातलीय उच्चावच तथा समय अपनी प्रक्रियाओं का प्रभाव डालकर मृदा निर्माण को प्रभावित करते। निर्मित मृदा किस प्रकार की होगी यह मूल पदार्थ की प्रकृति पर निर्भर करता है। ग्रेनाइट का अपक्षय धीमी गति से होता है तथा इसमें पोषक तत्वों की मात्रा भी बहुत कम पायी जाती है। इस प्रकार ग्रेनाइट से बनी मृदाएँ बलुई मृदाएँ होती हैं ये कम उर्वर होती हैं। यदि जनक चूना पत्थर, आधा कार्बोनेट, आधा मृत्तिका, सिल्ट एवं बालू है तो इससे निर्मित होने वाली मृदा अच्छी उर्वरक होती है। मूल पदार्थ के निष्क्रिय कारक होने के कारण विभिन्न प्रकार के मूल पदार्थों से एक ही प्रकार की मृदा का निर्माण होता है लेकिन विभिन्न स्थानों को जलवायु के परिवर्तनों के कारण मृदाओं की प्रकृति से भिन्नता आ जाती है।

(2) जैविक तत्त्व(Organic Matter)

पौधे एवं जानवर मृदा निर्माण को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। मृदा के लिए प्रभावकारी पौधों की जीवन प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है जिनमें विशेष रूप से मृदा से सटे हुए छोटे पौधे एवं जानवर सम्मिलित हैं। वनस्पति आवरण मृदा अपरदन की दर को प्रभावित करता है तथा मृदा को सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करता है। धरातल पर पर्णढेर (litter) को पलवार (Mulching) उत्पन्न करता है जो वर्षा जल की तीव्रता को कम करके मृदा के अन्दर प्रवेश की दर वृद्धि करती है। वनस्पति वाष्पीकरण की दर को भी प्रभावित करती है। वनस्पति को कमी होने पर मृदा नमी का वाष्पीकरण हो जाता है तथा इसके कारण केशीय जल धरातल की ओर गति करने लगता है। वनस्पति आवरण को प्राकृतिक रासायनिक विनिमय में मुख्य भूमिका निभाती है जो मृदा निर्माण का मुख्य भाग है। इस प्रकार विलायक पोषक तत्त्व जिनका पौधे उपयोग नहीं कर पाते अपक्षालन द्वारा मृदा के नीचे वाले भाग में चले जाते हैं। बड़े पौधों की जड़ें मृदा में रन्ध्र बनाकर पानी तथा पोषक तत्वों का अवशोषण करके मृदा की संरचना को प्रभावित करते हैं। मृदा के जैविक तत्वों के रूप में वनस्पति के सभी भाग (पत्तियाँ, छाल, शाखाएँ, फूल और जड़ें) मरने के उपरान्त योगदान देते हैं जैसे प्रेयरी के घास के आवरण किसी रेगिस्तानी प्रदेश की अपेक्षा जैविक तत्वों की पूर्ति अधिक करता है जिसके कारण यह क्षेत्र संसार के अच्छे उर्वर प्रदेश में से एक है।

(3) जलवायु(Climate)

जलवायु मृदा निर्माण का सक्रिय कारक है। जलवायु के प्रमुख तत्त्व जो मृदा निर्माण को प्रभावित करते हैं, उनमें तापमान तथा वर्षा महत्वपूर्ण है। धरातल पर पाई जाने वाली मृदाओं में विभिन्नता का प्रमुख कारण जलवायु है।

तापमान मृदा के सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, जिसका प्रभाव जैविक पदार्थों के निर्माण पर पड़ता है। भूमध्यरेखीय ऊष्ण प्रदेशों में सूक्ष्मजीवों की उच्च क्रियाशीलता जीवांश पदार्थ के सघन जमाव को रोकती है। जबकि मध्यतापीय तथा सूक्ष्म जलवायु में मृदा जीवों को धीमी क्रियाशीलता के कारण पर्याप्त मात्रा में जीवांश पदार्थ एकत्रित होता है। इस प्रकार ठण्डे प्रदेशों में मृदा जीवों का संयोजन सीमित वृद्धि करता है जिससे अपघटित (Undecomposed) जीवांश पदार्थों की एक पतली परत निर्मित हो जाती है। तापमान मृदा पर पायी जाने वाली वनस्पति को भी प्रभावित करता है जैसा कि हम जानते

हैं कि वनस्पति का एक विशेष साहचर्य प्रकार की जलवायु में ही विकसित हो पाता है, तथा तापमान के असमान होने पर उचित वानस्पतिक आवरण विकसित न होने से पोषक तत्वों की प्राप्ति का चक्र पूर्ण नहीं हो पाता है, जबकि उचित तापमान की दशा में मृदा में रासायनिक सन्तुलन बना रहता है। आर्द्रता मृदा के विकास एवं विशेषताओं को अन्य कारकों की तुलना में अधिक प्रभावित करती है। वर्षा के अभाव में मृदा जल की कमी रहती है जिससे पौधों का जीवन असंभव हो जाता है तथा पौधों की अनुपस्थिति में मृदा में उपयुक्त मात्रा में जैविक पदार्थ उत्पन्न नहीं हो पाता व मृदा उर्वर नहीं बन पाती है।

(4) उच्चावच (Relief)

पृथ्वी की धरातलीय तलरूपता को उच्चावच कहते हैं। यह जल एवं तापमान के सहयोग से मृदा निर्माण को प्रभावित करता है। धरातल का ढाल मृदा निर्माण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में कम गहरी तथा कम ढाल वाले भागों में अधिक गहराई वाली मृदाएँ मिलती हैं, क्योंकि तीव्र ढाल वाले क्षेत्रों में मूल पदार्थ का जमाव नहीं हो पाता है तथा मृदा निर्माण में बाधा आती है। घाटियों के तल पर व समतल भूमि पर बहुत ही धीमा प्रवाह होता है जब जल स्तर पर धरातल के पास होता है तो गुरुत्व जल का नीचे स्पंदन नहीं हो पाता और केशीय जल के कारण मृदा में लवणीयता अथवा क्षारीयता आ जाती है। उच्चावच मृदा निर्माण को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है, क्योंकि समतल भूतल पर वनस्पति आवरण विकसित होता तो मृदा जीवांश की मात्रा बढ़ती है, जबकि तीव्र ढाल वाले भागों में जहाँ जल प्रवाह तीव्र होता है वहाँ जैविक पदार्थ संग्रहीत नहीं हो पाता, जिसका प्रभाव मृदा उर्वरता पर पड़ता है। अतः धरातल की मृदा निर्माण का जनक पदार्थ प्रदान करने वाला प्रमुख स्रोत है, जो अन्य कारकों के साथ मिलकर मृदा निर्माण को प्रभावित करता है।

(5) समय (Time)

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की तरह मृदाएँ भी समय के साथ विकसित होती हैं तथा इनका संगठन, संरचना तथा आन्तरिक विशेषताएँ निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। समय मृदा निर्माण में एक तटस्थ कारक की भूमिका निभाता है। मृदा निर्माण की सभी क्रियाएँ समय के अनुसार होती हैं। भूतल के कुछ क्षेत्रों व स्थानों पर मृदाओं के विलोपित हो जाने अपरदित व जमावों आदि के कारण इनका नवीनीकरण एक निश्चित समयान्तर में होता रहता है। मृदा के पूर्ण विकसित होने तथा विनिष्ट होने व फिर नवीन निर्माण आदि चक्र भी समय के अनुसार ही होते हैं।

10.10 मृदा का वर्गीकरण एवं वितरण (CLASSIFICATION AND DISTRIBUTION OF SOILS)

विश्व में मृदा वर्गीकरण एवं मृदा विज्ञान (Pedology) के विकास में रूसी विद्वान अग्रणी रहे हैं। 18वीं शताब्दी में सर्वप्रथम रूसी विद्वानों द्वारा स्पष्ट किया गया कि मृदा शैल संस्तरों का अपक्षयित रूप है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान बेसिली डोकुचायेव (V- V- Docku Chayev 1846–1903) प्रथम मृदा वैज्ञानिक थे, जिन्होंने स्पष्ट किया कि मूल पदार्थ (Parent Material) समान होने पर भी पर्यावरणीय दशाओं की भिन्नता के कारण भिन्न मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार उन्होंने किसी प्रदेश की मृदाओं के विकास एवं जलवायु में घनिष्ट सम्बन्ध बताया। उन्होंने अपने सहयोगी विद्वानों के साथ मिलकर (1870 में रूस की मृदाओं के अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किये। सन् 1914 में डोकुचायेव के शिष्य कॉन्स्टेन्टीन ग्लिंका (Konstantin D- Glinka 1867–1927) ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें डोकुचायेव के चिन्तन को प्रस्तुत किया गया था। इसका संयुक्त राज्य अमेरिका के मृदा वैज्ञानिकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में मारबुत (Curtis- F- Marbut, 1863–1935) नामक अमेरिकी मृदा वैज्ञानिक ने विस्तृत क्षेत्रीय अध्ययन के उपरान्त प्रथम आनुवांशिक व्यापक मृदा वर्गीकरण (Genetic Soil Classification) प्रस्तुत किया जिसे मृदा वर्गीकरण तन्त्र की व्यापक योजना (Scheme of Comprehensive Soil Classification System) के नाम से जाना जाता है। इसमें मारबुत ने रशियन योजना तथा शब्दावली का प्रयोग किया। मारबुत संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग में मृदा सर्वेक्षण संस्थान के निदेशक थे। इनके द्वारा तैयार मृदा वर्गीकरण की रूपरेखा सर्वप्रथम सन् 1938 में प्रकाशित हुई, जिसे 1940 में पुनः संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया। मृदा वर्गीकरण की इस योजना का निर्माण संयुक्त राज्य कृषि विभाग द्वारा किया गया था। अतः इसे USDA (United States Department of Agriculture) भी कहा जाता है। इस योजना में

मृदाओं की तीन श्रेणियाँ (Orders) बनायी गयी थीं—

- (i) कटिबन्धीय (Zonal),
- (ii) अन्तर्कटिबन्धीय (Intrazonal), तथा
- (iii) अकटिबन्धीय (Azonal)

1950 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका संरक्षण सेवा द्वारा मृदा वर्गीकरण का नया प्रयास किया गया तथा 1960 तक मृदा वर्गीकरण का सातवाँ संस्करण प्रस्तुत किया गया जिसमें प्रस्तुत नवीन योजना को व्यापक मृदा वर्गीकरण तन्त्र (Comprehensive Soil Classification System-CSCS) के नाम से जाना जाता है। मृदा वर्गीकरण की इस योजना को मुख्यतः सातवाँ अनुमान (Seventh Approximation) कहा गया था।

मृदा के प्रकार (Types of Soils)

सर्वप्रथम 1938 में संयुक्त राज्य कृषि विभाग ने विस्तृत अध्ययन कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर पायी जाने वाली मृदाओं को तीन भागों में विभक्त किया, जो निम्नलिखित हैं—

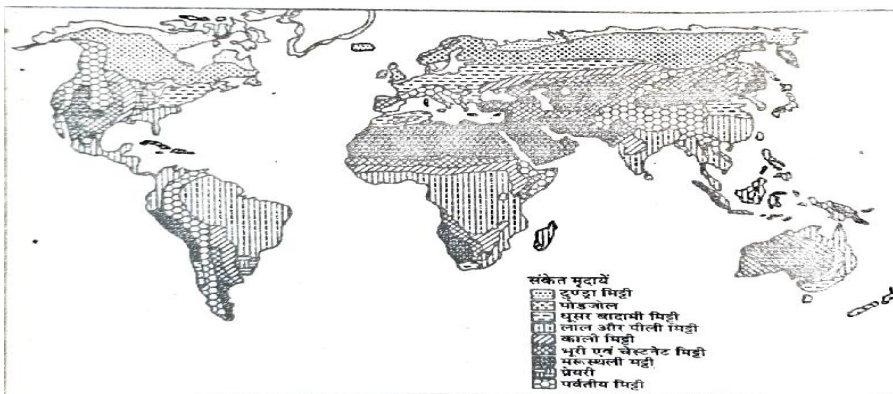
- (1) क्षेत्रीय या कटिबन्धीय मृदाएँ (Zonal Soils)
- (2) अन्तः क्षेत्रीय या अन्तर्कटिबन्धीय मृदाएँ (Intrazonal soil)
- (3) अपार्श्विक या अप्रादेशिक (Azonal Soils)

(1) कटिबन्धीय मृदाएँ (Zonal Soils)

ये मृदाएँ वनस्पति एवं जलवायु के लम्बे प्रभाव से पूर्ण विकसित होती हैं। इसमें विश्व की प्रमुख मृदा सम्मिलित हैं। इनका वितरण भी जलवायु वनस्पति प्रदेशों के अनुसार ही मिलता है। मूल शैलों (Parent Rocks) के क्षेत्र में विकसित होने के कारण इन मृदाओं का पार्श्व चित्र (Soil Profile) आदर्श रूप में परिलक्षित होता है। इसी कारण इन्हें पार्श्विक मृदा भी कहते हैं। इनका निर्माण सुप्रवाहित (Well Drained) दशाओं में होने से अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं। ये मिट्टियाँ तीन प्रकार की होती हैं।

(i) पेडाल्फर (Pedalfer)—

पेडाल्फर शब्द अंग्रेजी के तीन अक्षर समूहों (Ped+Al+Fe) का मेल है जिनका अभिप्रायः क्रमशः Ped= मृदा Al=एल्यूमिनियम, Feलोहांश (Ferrum) होता है। इस मृदा में एल्यूमिनियम एवं लोहांश की मात्रा अधिक पायी जाती है। ये मृदायें मुख्यतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में



मिलती हैं, जहाँ निक्षालन क्रिया (Leaching) अधिक होती है। इसे लेटेराइजेशन (Laterization) कहते हैं। इस वर्ग में तीन प्रकार की मृदायें मिलती हैं। प्रथम पॉडजाल, जो अलास्का, कनाडा, स्केन्डेनेविया तथा एशिया के उत्तरी भाग में पायी जाती है। इसका निर्माण पॉडजोलाइजेशन (Podzolization) के कारण होता है। यह ऐसी

क्रिया है जिसमें शीत आर्द्र प्रदेशों में तापमान कम होने पर वृक्षों की पत्तियों के सड़ने गलने के कारण ह्यूमिक अम्ल (Humic Acid) बनते हैं तथा अपक्षालन क्रिया द्वारा लोहा एवं एल्यूमिनियम मृदा के B संस्तर में चले जाते हैं तथा मृदा के ऊपरी संस्तर में सिलिका की प्रधानता हो जाती है। फलस्वरूप मृदा का रंग भूरा (Ash Gray) हो जाता है। द्वितीय, पॉडजालिक मिट्टी (Podzolic Soil) होती है, जो पॉडजॉल मिट्टी के दक्षिण में पायी जाती है। यहाँ उत्तरी भाग की अपेक्षा पॉडजॉलाइजेशन कम होता है तथा जीवाणु अधिक सक्रिय रहते हैं। अतः इनमें जीवांश पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तीसरी मृदा लेटेराइट है जो उष्ण आर्द्र क्षेत्रों में मिलती है। जहाँ लेटेराइजेशन (Latization) की क्रिया होती है। इस क्रिया में अपक्षालन (Laterization) द्वारा मृदा की ऊपरी सतह से सिलिका एवं जीवांश (Humus) आदि तत्त्व अपवहन (Eluviation) द्वारा नीचे जाकर विनिक्षेपण (Illuviation) क्रिया द्वारा जमा हो जाता है तथा ऊपरी सतह पर केवल लोहा एवं एल्यूमिनियम शेष बच जाते हैं। इस क्रिया से मृदा अनुपजाऊ होती है। यह भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में अधिक मिलती है।

(ii) पेडोकल (Pedocal)–

पेडोकल (Pedocal) मृदाओं में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है ये मृदायें मुख्य रूप से शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में मिलती हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण की दर अधिक होती है। फलस्वरूप केशिका क्रिया (Capillary Action) द्वारा कैल्सियम ऊपर पहुँच जाता है। इस वर्ग में छोटे घास वाले क्षेत्रों में विकसित चरनोजम (Chernozem), अत्यन्त शुष्क क्षेत्रों की मरुस्थलीय तथा इनके साथ पायी जाने वाली भूरी स्टेप्स (Brown Steppes) मृदाओं को सम्मिलित किया जाता है।

(iii) टुण्ड्रा मृदा (Tundra Soil)–

ये शीत प्रदेशों की बहुत कम विकसित मृदाएँ होती हैं। यहाँ जीवाणुओं की सक्रियता भी कम नहीं होती तथा ये उपजाऊ नहीं होती हैं।

(2) अन्तःकटिबन्धीय मृदाएँ (Intrazonal Soils) –

ये मृदाएँ विशेष परिस्थितियों में बनती हैं, जिन पर जलवायु तथा वनस्पति की तुलना में अन्य तत्त्वों का अधिक प्रभाव होता है। अतः इनका वितरण किसी विशेष जलवायु प्रदेश के नियन्त्रण से बाहर होता है। इनमें सर्वाधिक जमाव मूल पदार्थ तथा जल प्रवाह का पड़ता है। ये मृदायें कटिबन्धीय क्षेत्रों में बिखरी हुई मिलती हैं, जिस कारण इन्हें अन्तःकटिबन्धीय कहते हैं। इस वर्ग में उपजाऊ एवं अनुपजाऊ दोनों प्रकार की मृदायें होती हैं। इन मृदाओं का प्रवाह व्यवस्थित नहीं होने से जलाक्रान्ता (Waterlogging) की स्थिति बन जाती है। फलस्वरूप घुलनशील लवण तथा चूने की मात्रा बढ़ जाती है। रेण्डजीना एवं रेगुर इस वर्ग की उर्वर मृदायें हैं। रेण्डजीना आर्द्र प्रदेशों में मिलती है। इस वर्ग की अन्य मृदायें पीट मृदा (Peat Soil), लवणीय मृदा (Saline Soil) एवं चूना पत्थर से उत्पन्न मृदा (Limestone Soil) आदि हैं।

(3) अपार्श्विक मृदायें (Azonal Soils)–

ये अविकसित नवीन मृदायें होती हैं जिनका पार्श्व चित्र स्पष्ट नहीं होता है। इनका निर्माण नदी, हिमानी, वायु तथा सागरीय तरंग आदि प्राकृतिक कारकों की निक्षेपण क्रिया द्वारा होता है। ये मृदाएँ उपजाऊ होती हैं। जलोढ़ (Alluvial) मृदा या रेगोसोल रेतीली मृदा, हिमानी मृदा, सागरीय मृदा तथा पर्वतीय मृदा इसी वर्ग की मृदायें हैं। इन मृदाओं में प्रतिवर्ष नवीन पदार्थों का जमाव (निक्षेपण) होता रहता है, जिससे इनका नवीनीकरण हो जाता है।

7.11 वृहद् मृदा वर्गीकरण तन्त्र (COMPREHENSIVE SOIL CLASSIFICATION SYSTEM)

यह वर्गीकरण सन् 1975 में संयुक्त राज्य अमेरिका के मृदा सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसे संक्षेप में CSCS (Comprehensive Soil Classification System) भी कहते हैं। 1975 में अपनाये गये CSCS नाम के स्थान पर 1990 में मृदा वर्गीकरण (Soil Taxonomy) शब्द अपनाया जिसे CSCS की तुलना में साधारण माना गया। CSCS में 10 मृदा वर्ग ही प्रस्तुत किए गये थे लेकिन 1990 में 11वाँ मृदा वर्ग एण्डीसोल को सम्मिलित किया गया है। ये मृदा वर्ग निम्नलिखित हैं।

मृदा वर्गीकरण (Soil Taxonomy)

मृदा श्रेणियाँ (Soil Order)

cscs योजना के अन्तर्गत विश्व की सभी मृदाओं को उच्चतम वर्ग की 11 श्रेणियों में विभाजित किया गया है जिसका प्रमुख आधार मृदा पार्श्व (Soil Profile) के विभिन्न संस्तरों के लक्षणों को मापा जाता है, इनका निर्धारण निम्नलिखित आधारों पर किया जाता है—

(i) मृदा का संघटन (Composition of Soil)

(ii) लाक्षणिक संस्तरों की उपस्थिति या अनुपस्थिति (The Presence or Absence of Specific Diagnostic Horizons)

(iii) मृदा परिच्छेदिका के संस्तरों का समान अंशों में विकास (Similar Degrees of Horizon Development)

(iv) अपक्षय और निक्षालन (Weathering and Leaching)

(1) एण्टीसॉल (Entisols)–

ये पूर्ण विकसित नहीं होती हैं जिस कारण मृदा संस्तर दृष्टिगत नहीं होता है। यद्यपि संस्तर पर एक पतली परत के रूप में C तथा R संस्तर पर अध्यारोपित रहता है। इसके विकास को जलवायु अधिक प्रभावित नहीं कर पाती है। इसकी पाँच उपश्रेणियाँ (Sub-Orders) हैं।

(2) हिस्टोसॉल (Histosols)–

ये जैविक मृदाएँ होती हैं, जो वर्ष पर्यन्त जल से संतृप्त रहती हैं। हम इन मृदाओं को दलदल, पीट तथा बंजर भूमि रूप में पहचान सकते हैं 'C' संस्तर में जैविक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहता है तथा 'C' संस्तर में मृत्तिका मिलती है। हिस्टोसॉल मृदा में अम्ल की अधिक मात्रा मिलती है जबकि पोषक तत्त्व न्यून मात्रा में मिलते हैं। प्राकृतिक तथा कृत्रिम प्रवाह द्वारा इन्हें नष्ट भी किया गया है। दलदली क्षेत्रों के साथ इनके विस्तृत होने के कारण भौगोलिक वितरण दर्शाने में कठिनाई होती है। जलीय प्रवाह सुलभ होने पर इनमें गोभी, गाजर, आलू तथा अन्य कन्द फसलों की सघन कृषि की जा सकती है। मध्य अक्षांशों में इनका कृषि महत्त्व है तथा अन्य स्थानों पर चूने एवं उर्वरकों का प्रयोग करके उपजाऊ बनाया जा सकता है। इसे चार उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(3) वर्टीसॉल (Vertisols)

वर्टीसॉल मृदाओं के गठन में 35 प्रतिशत मात्रा मृत्तिका (Clay) की होती है। इस कारण ही नमी की कमी आते ही इसमें दरारें पड़ जाती हैं। मृत्तिका कणों के व्युत्पत्ति स्रोत इनका मूल पदार्थ हैं। अतः वर्टीसॉल मध्यतापीय या उष्ण कटिबन्धीय जलवायु में मिलती है जहाँ सामयिक सूखा तथा मौसमी नमी मिलती है। इसकी उपश्रेणियाँ विश्व के जलवायु विभागों में अत्यन्त निकट होते हैं। ये मृदा आस्ट्रेलिया, भारत तथा सूडान में अधिक मिलती हैं तथा इसका मानव द्वारा निर्माण कार्यों में अधिक प्रयोग किया जाता है। मृत्तिका में माण्टमोरिलोनाइट खनिज होता है जो नमी पाकर फैलता है तथा नमी के अभाव में सिकुड़ता है। इनमें कैल्सियम तथा मैग्नीशियम की पर्याप्त मात्रा होती है। वर्टीसॉल का पी.एच. तटस्थ (7) होता है। इसकी चार उपश्रेणियाँ हैं।

(4) इनसेप्टीसॉल्स (Inceptisols)–

इन मृदा में संस्तरों का शीघ्र विकास मिलता है जो पूर्ण नहीं होता है। इनमें जल इतना रहता है कि वर्ष के एक तिहाई समय में पौधे जीवित रह सकते हैं। इनका प्रारम्भ B संस्तर से होता है। मृदा लाल रंग लिये होती है जिनमें मृत्तिका का अभाव पाया जाता है। इसके कण बारीक होते हैं। ये मृदायें सामान्यतः आर्द्र जलवायु में मिलती हैं लेकिन आर्कटिक से लेकर उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों तक भी मिलती हैं। इसका विकास वन आवरण या घास क्षेत्रों में होता है। इन्हें 6 उपश्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(5) एरिडोसॉल्स (Aridisols)–

एरिडोसॉल्स मृदायें विश्व के 19.2 प्रतिशत भाग पर फैली हैं जो अन्य मृदाओं की तुलना में

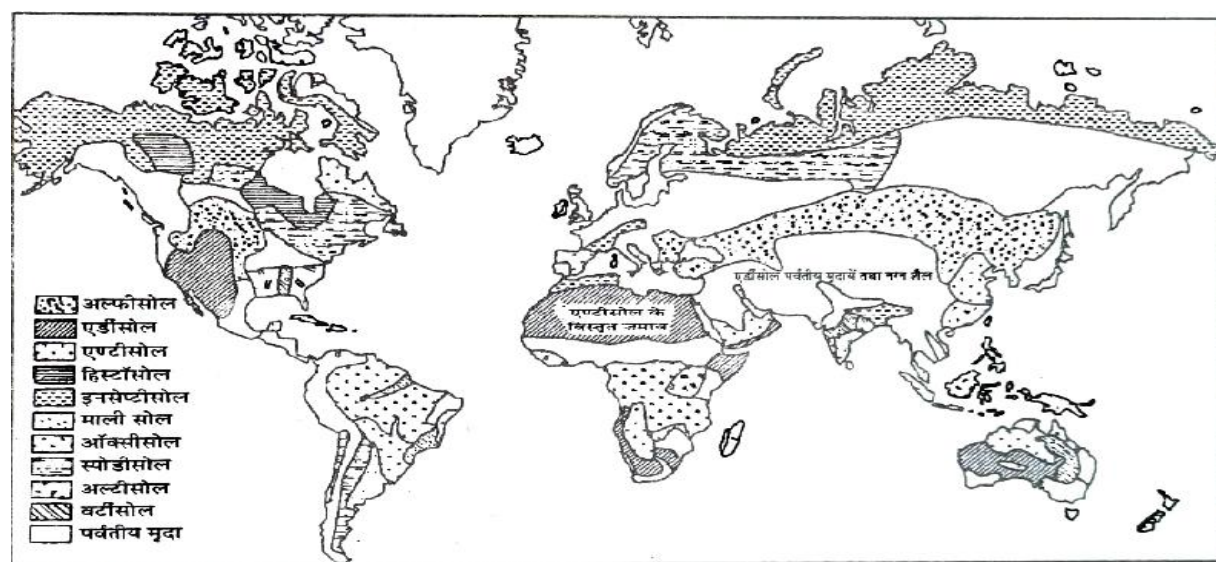
सर्वाधिक हैं। ये शुष्क होती हैं तथा जीवांश (Humus) का अभाव मिलता है। पादप पौधों को वर्ष के कम समय में ही वर्षा जल उपलब्ध हो पाता है। गहराई पर कार्बोनेट पदार्थों का संग्रह मिलता है। इनका निर्माण शुष्क मरुस्थलीय दशाओं में होता है, जहाँ वर्षा न्यून मात्रा में प्राप्त होती है। इस प्रकार विश्व के सभी मरुस्थलीय क्षेत्रों में इस प्रकार की मृदायें मिलती हैं। इनमें कैल्सियम, जिप्सम तथा लवणीय खनिजों की पर्याप्त मात्रा होती है। ये विशेषतः सहारा तथा गोबी के रेगिस्तान में मिलती हैं। इस मृदा में झाड़ियाँ तथा घास ही मुख्यतः पनपती है। इसकी आर्गिड्स तथा आरथिड्स दो उपश्रेणियाँ हैं।

(6) मोलीसॉल्स (Mollisol) –

ये मृदायें सूक्ष्म तापीय से उष्ण कटिबन्धीय जलवायु वाले क्षेत्रों में मिलती हैं। वर्षा द्वारा इस मृदा में निक्षालन तथा कैल्सिफिकेशन क्रियायें होती हैं। इनके ऊपरी संस्तरों का निर्माण मौलिक एपिपेडसन (Epipedon) द्वारा होता है। यह संस्तर काले रंग का होता है। मृदा निर्माण गहराई तक होता है। फलस्वरूप मृदा परिच्छेदिका पर्याप्त मोटी होती है तथा B संस्तरों में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है। इन मृदाओं का निर्माण उपोष्ण कटिबन्धीय (subtropical) तथा मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों की उष्णार्द्र जलवायु वाले घास के क्षेत्रों में होता है। ये क्षेत्र यूरोशिया में स्टेपीज, संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा में प्रेयरीज, दक्षिणी अमेरिका में पम्पाज आदि हैं। इन्हें 7 उपश्रेणियों में विभक्त किया गया है।

(7) अल्फीसॉल्स (Alfisols) –

ये मृदायें आर्द्र जलवायु में मिलती हैं। इनके 'B' संस्तर में मृत्तिका का संचयन मिलता है। मृदा संस्तरों का रंग धूसर (Gray), भूरा अथवा लाल होता है। जीवांश का अभाव पाया जाता है। पौधों को मृदा जल तीन महीने ही उपलब्ध हो पाता है। ये मृदायें विशेषकर मध्य उत्तरी अमेरिका, यूरोप, मध्य साइबेरिया, उत्तरी चीन, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, पूर्वी ब्राजील, पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका, उत्तरी आस्ट्रेलिया, पूर्वी भारत आदि में पायी जाती हैं। कृषि की दृष्टि से ये उपजाऊ होती हैं। अल्फीसॉल्स का विशाल क्षेत्र आर्द्र भूमध्यरेखीय प्रदेश तथा सहारा एवं कालाहारी के रेगिस्तान के मध्य उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में स्थित है। इन्हें पाँच उपवर्गों में विभाजित किया गया है।



(8) स्पोडोसॉल्स (Spodosols)–

ये मृदायें मुख्यतः उत्तरी गोलार्ध के उत्तरी भाग में विकसित होती हैं। इसमें सेस्क्वी ऑक्साइड्स (Sesquioxide) का संचयन मिलता है। इसके संस्तर का रंग धूसर (Ash Gray) होता है। इनमें अम्लों की अधिकता एवं पोषक तत्वों एवं जीवांश की कमी पायी जाती है। स्पोडोसॉल मृदाओं की जलधारण क्षमता भी कम होती है। अतः उत्पादकता कम होने के कारण कृषि के लिए कम महत्वपूर्ण है। इन्हें चार उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(9) अल्टीसॉल्स (Ultisol)–

ये मृदायें उपोष्ण तथा शुष्कतर उष्ण कटिबन्धीय जलवायु एवं मानसूनी जलवायु में पायी जाती हैं। इनका निर्माण मुख्यतः वनाच्छादित क्षेत्रों में होता है B संस्तर का रंग पीला भूरा होता है इनकी देशज वनस्पति सवाना घास है। ये मृदायें मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी चीन, बोलिविया, दक्षिणी ब्राजील, पश्चिमी तथा मध्य अफ्रीका, भारत, म्यांमार (बर्मा), पूर्वी द्वीप समूह तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में पायी जाती है। इनका सर्वाधिक विनाश स्थानान्तरी कृषि द्वारा हुआ है। इन्हें पाँच उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(10) आक्सीसॉल्स (Oxisols) –

ये अपक्षयित पुरानी मृदायें होती हैं जिनमें उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की मृदायें प्रमुख हैं। ये जैविक संस्तरयुक्त (O) अच्छी अवस्था में होती हैं। इनमें खनिजों का अत्यधिक अपक्षय होता है तथा लोहे के ऑक्साइड, एल्यूमिनियम तथा क्वोलिनाइट्स अधिक मात्रा में मिलते हैं। साथ ही दोमट एवं मृत्तिका के कण भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ये भूमध्यरेखीय तथा उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय भागों में सर्वाधिक विकसित हुई हैं। ऑक्सीसॉल मृदायें, लाल, पीली तथा पीली-भूरी रंग की होती हैं। इन्हें पाँच उपश्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(11) एण्डीसॉल्स (Andisols) –

यह श्रेणी 1990 में जोड़ी गई है। इसके निर्माण को मूल पदार्थ नियन्त्रित करता है। इसका मूल पदार्थ ज्वालामुखी राख है। परिप्रशान्त महासागरीय क्षेत्र में स्थित ज्वालामुखी क्षेत्रों में इसका सर्वाधिक विकास हुआ है। इस क्षेत्र को अग्निवृत्त (Firy Ring) भी कहते हैं। इनमें हवाई द्वीप प्रमुख थे। यह सूक्ष्म स्तर पर वितरित है। एण्डीसॉल मृदाओं में पर्याप्त जीवांश (Organic Matter) मिलता है तथा जल धारण क्षमता भी अच्छी है। ये मृदायें उर्वर होती हैं।

10.12 मृदा अपरदन एवं संरक्षण (SOIL EROSION AND CONSERVATION)

प्राकृतिक शक्तियों एवं मानवीय क्रियाओं द्वारा मृदा का इतनी तीव्र गति से निष्कासन होने लगे कि उसकी पूर्ति मृदा निर्माणकारी प्रक्रिया द्वारा न हो सके तो इस स्थिति को मृदा क्षय कहते हैं। इसमें शैलों एवं मृदा कणों का अपरदन के कारकों द्वारा अलग होने तथा परिवहन को सम्मिलित करते हैं। मृदा के एक इंच मोटे स्वस्थ स्तर को निर्मित होने में **500 से 1000 वर्ष** लग जाते हैं। पृथ्वी तल पर मृदा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पदार्थ है। पृथ्वी का लगभग सभी प्रकार का जीवन इस पर निर्भर रहता है। मृदा भूपृष्ठ पर एक ऐसी परत के रूप में स्थित है, जिसका निर्माण चट्टानों एवं जैव पदार्थों के अपघटन एवं विघटन के उपरान्त हुआ है इसके निर्माण में चट्टान की भूमिका मूल पदार्थ (Parent Material) की होती है तथा जलवायु, वनस्पति, धरातल की प्रकृति व समय अन्य महत्वपूर्ण सहायक तत्त्व हैं जो मृदा निर्माण (Soil Genesis) में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अपना योगदान देते हैं। मृदा जीवमण्डल में ऊर्जा एवं पदार्थों के स्थानान्तरण मार्गों के लिए माध्यम का कार्य करती है। यह पोषक तत्वों के जैविक संघटकों द्वारा चक्रण व पुनर्चक्रण में भी सहायता करती है। मृदा संसाधन विभिन्न जातियों एवं किस्मों के जीवित जीवों (पौधों एवं जन्तुओं) के लिए अनुकूल आदर्श पर्यावरणीय दशाएँ एवं आवास प्रदान करती है। मृदाएँ खाद्यान्नों, लकड़ियों के उत्पादन, भवनों एवं सड़क निर्माण के लिए आधारभूत संसाधन हैं। प्राकृतिक पर्यावरण अवनयन के रूप में जब मृदा अपरदन होने लगता है तो सम्पूर्ण उपर्युक्त क्रिया बाधित होकर पर्यावरण को अवक्रमित कर देती है। अपरदित क्षेत्र बंजर तथा कृषि के अयोग्य हो जाता है। साथ ही अधिक मृदा अपरदन से वनस्पति आवरण भी कम हो जाता है।

अपरदन के कारक (Agents of Erosion)

प्रकृति में मृदा अपरदन विभिन्न कारकों द्वारा होता है जिनकी प्रकृति एवं गतिशीलता मृदा अपरदन को नियंत्रित करती है। ये कारक निम्नलिखित हैं—

(1) वर्षा (Rain)

वर्षा की बूँदों, ओलों व बहते हुए पानी में बहुत शक्ति होती है जिसे पृथ्वी सहन करके मृदा अपरदन को जन्म देती है। वर्षा की अपरदनशीलता उसकी गहनता (Intensity) एवं मात्रा पर निर्भर करती है। बहते हुए जल एवं समुद्र की लहरों में भी अपार शक्ति होती है और जब इस पानी में रेत या बजरी आदि मिली होती है तो मिट्टी काटने की शक्ति कई गुनी अधिक हो जाती है।

(2) पवन(Wind) :

वायु की तरंगें भू-पटल पर अपघर्षण (abrasion) पैदा कर मिट्टी को अपने साथ उठा ले जाती है और ये मिट्टी के कण हवा में आपस में रगड़कर भी टूट-फूट (सन्निघर्षण) पैदा करते हैं।

(3) गुरुत्वाकर्षण बल (Gravitational Force):

पहाड़ी व अधिक ढाल वाले स्थानों में चट्टानें, पत्थर व मिट्टी भूस्खलन की प्रक्रिया से नीचे तीव्रता से या धीरे-धीरे आते रहते हैं और इकट्ठे होते रहते हैं।

(4) हिमनद (Glacier) :

काफी ऊँचे व बर्फीले पहाड़ों पर हिम शिलायें जब खिसकती हैं तो चट्टानों व रास्तों में अपरदन करती चलती हैं।

मृदा अपरदन की यांत्रिकी एवं प्रकार (Machinics and Types of Soil Erosion)

मृदा अपरदन के लिए विभिन्न अभिकर्ताओं से प्राप्त बल आवश्यक होता है। पदार्थों की गति में निहित तथा दूसरे पदार्थों में गति पैदा करने वाली ऊर्जा गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) होती है। जलीय बूँदों व हवा की शक्ति व गति से अपरदन होता है। मुख्यतया अपरदन तीन चरणों में होता है—

(i) मृदा कणों का ढीला होना एवं विलगन (Detachment)

(ii) विलगित कणों का परिवहन

(iii) कणों का स्थायीकरण (Resettlement)

विलगाव एवं परिवहन मृदा के गुणों एवं अभिकर्ता की प्रकृति एवं शक्ति पर निर्भर करता है।

प्रकृति में मृदा अपरदन निम्नलिखित रूपों में परिलक्षित होता है—

1. भूवैज्ञानिक अपरदन (Geological Erosion)

इसमें मानवीय प्रभाव नहीं होता है। मिट्टियों का यह मंद गति से होने वाला अपरदन है जो अनाच्छादन की प्राकृतिक भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक भाग है। इसमें मृदा को वृक्षों की कटाई, पशुपालन द्वारा अतिचारण, भूस्खलन, हिमानीकरण तथा विस्तृत बाढ़ आदि तत्त्व प्रभावित करते हैं। भू-वैज्ञानिक अपरदन में रिसाव या निक्षालन (Leaching) अपरदन के अन्तर्गत घुलनशील व अघुलनशील खनिज व जीवांश ऊपरी संस्तरों से नीचे चले जाते हैं। सतही अपरदन एवं भूस्खलन द्वारा वृहद स्तर पर पहाड़ी एवं ढालू भाग प्रभावित होते हैं साथ ही ऑक्सीकरण या अपचयन (Oxidation) अपरदन द्वारा खनिजों की टूट-फूट होती रहती है। भूवैज्ञानिक मृदा अपरदन को शैलों के प्रकार, निक्षेपण (Deposition) क्रिया, उत्थान (uplift) क्रिया के साथ ही वहाँ की भूआकृतिक विशेषताएँ प्रभावित करते हैं। स्ट्रेहलर के अनुसार यह अपरदन सार्वत्रिक एवं अपरिहार्य भी है। इसे प्राकृतिक या सामान्य अपरदन (Natural or Normal Erosion) भी कहते हैं।

2. जलीय अपरदन (Water Erosion)

जल द्वारा मृदा अपरदन तीन रूपों में परिलक्षित होता है। प्रथम — कणों (Grain) के रूप में द्वितीय — अलग-अलग कणों के रूप में धरातल पर वाहित होना तथा तृतीय रूप में कण अन्य नवीन स्थल पर निक्षेपित हो जाते हैं। बाढ़ के मैदान की ऊपरी सतह (Litter) के जल द्वारा अपरदित कर देने से होता है। अधिकांश बाढ़कृत मैदानों की मृदा जल फैलाव के कारण अपरदित होती है। यह पतली परत के रूप में स्थित होती है, इसका प्रमुख कारण छपछपाव कटाव (Splash Erosion) भी है, जिसमें वर्षा की बूँदों के एक अन्तराल पर गिरने से मृदा आवरण ढीला होकर अपरदित होता है। ये अपरदन अक्सर कम ढाल वाली जमीन में देखने को मिलता

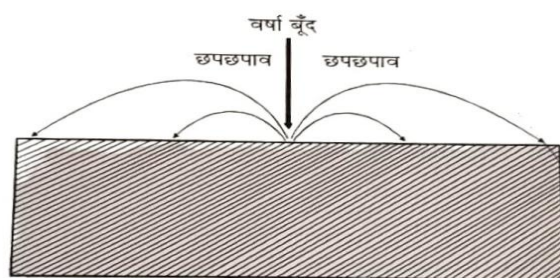
है। इसमें मिट्टी की पतली परत (Sheet) बह जाती है। इसलिए इसे परत अपरदन कहते हैं। इसे 'मिट्टी की रेंगती हुई मौत' भी कहते हैं।

(iii) नलिका या क्षुद्रसरिता अपरदन (Rill Erosion)–

जब ढाल 1 से 6 प्रतिशत तक होता है तो प्रवाहित जल मानव को अंगुली के आकार की छोटी-छोटी नालियों का जाल बना देता है, इसे क्षुद्रसरिता या अल्पसरिता अपरदन कहते हैं। यद्यपि खेत को जुताई के समय ये नालियाँ समाप्त हो जाती हैं। नलिका अपरदन सरिता को विभिन्न छोटी-छोटी धाराओं (Small Channels) के प्रवाहित होने से ऊपरी परत से महीन एवं चिकने मृदा कण अपरदित हो जाते हैं। नदी अपनी परिपक्व अवस्था में छोटी-छोटी जलधाराओं में बँट जाती है, दूसरी ओर अनेक जलधाराएँ भी एक-दूसरे से मिल जाती हैं। अतः यह अपरदन सरिता की जलीय मृदा अपरदन निम्न रूपों में पाया जाता है–

(i) वर्षा बूँद या छपछपाव अपरदन (Raindrop or Splash Erosion)

वर्षा की प्रकृति धीमी या रुक-रुककर होती है तो सतही मृदा ढीली होकर अपरदित हो जाती है, यह अपरदन ढाल से प्रभावित नहीं होता एवं मैदानों में भी प्रभावी रहता है।



वर्षा बूँद अपरदन

(ii) परत अपरदन (Sheet Erosion)

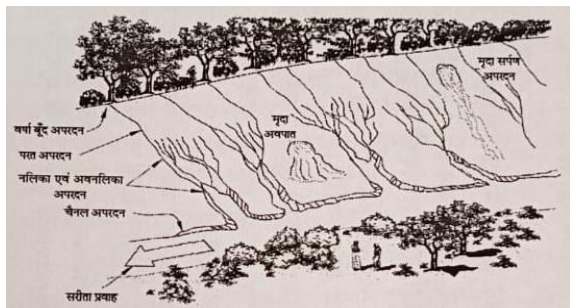
जल द्वारा मृदा की ऊपरी परत का अपरदन करना परत या फलक अपरदन कहलाता है। यह अपरदन नदियों के तलीय भाग (Littoral part) सहायक धाराओं पर निर्भर करती है। नलिका अपरदन दक्षिणी भारत की वर्टिसोल (Vertisol) मृदाओं में अधिक मिलता है।



नलिका अपरदन

(iv) खड्ड या अवनलिका अपरदन (Gully Erosion)–

अवनलिका अपरदन क्षुद्र सरिता अपरदन का विकसित रूप होता है। जब नलिका अपरदन पर नियंत्रण नहीं किया जाता है तो वह पृष्ठ तक पहुँच जाता है एवं अल्प सरितायें आपस में



अवनलिका अपरदन

जुड़कर अवनलिका का रूप धारण कर लेती हैं। ये अवनलिकायें विस्तृत होकर काफी गहरी व चौड़ी हो जाती हैं तथा इन पर वनस्पति आवरण विकसित हो जाता है।

(v) सरिता तटीय अपरदन (Stream Bank Erosion)

यह अपरदन सरिताओं के तीव्र प्रवाह के उपरान्त होता है। यह तटीय भागों में अधिक प्रभावी रहता है। सरिता तटीय अपरदन घाटी को चौड़ा करने के उपरान्त अधिक होता है। यह नदी के सर्पिलाकार अवस्था में भी होता है। नदियों के किनारे जब काफी क्षेत्र में गहरी एवं चौड़ी अवनलिकाओं का जाल-सा बिछ जाता है तो उसे बीहड़ (Ravine) कहते हैं। भारत में यमुना, चम्बल एवं माही नदियों के किनारे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात एवं राजस्थान में करीब 40 लाख हैक्टेयर में बीहड़ों का विस्तार है।

3. पवन अपरदन (Wind Erosion)

वायुशक्ति द्वारा मृदा कणों को काटकर प्रवाहित करके निक्षेपित करने की क्रिया को वायु अपरदन कहते हैं। चोविल (1957) महोदय ने पवन अपरदन की प्रकृति को वर्णित करते हुए लिखा है कि, पवन अपरदन मृदा कणों के ढीले होकर विभाजित होने से शुष्क अवस्था में होता है, इसमें मृदा आवरण चिकना एवं नंगा हो जाता है। पवन अपरदन से पर्यावरण वृहद् स्तर पर विकृत होता है, इस क्रिया द्वारा मृदा हास (Soil loss), मृदा गठन में परिवर्तन (Textural change), पोषक तत्वों का हास (Nutrient losses), उत्पादकता हास (Productivity losses), पवन प्रदूषण तथा तलछट का निक्षेपण होता है। पश्चिमी अफ्रीकी देशों में विस्तृत सहारा रेगिस्तान में प्रवाहित हरमट्टन पवन द्वारा पवन प्रदूषण काफी मात्रा में होता है। ऐसा ही पश्चिमी यूरोप में पासेटस्टॉब हवा द्वारा होता है। पवन अपरदन पवन की गति से प्रभावित होता है। पवन गति एवं अपरदन दर में सम्बन्ध स्थापित करने हेतु ब्यूफोर्ट (Beaufort) महोदय ने एक मापनी तैयार की है जिसके अनुसार 2.5 से 12 किमी. प्रति घण्टा की गति से प्रवाहित वायु द्वारा अपरदन नहीं होता है। 12 से 20 किमी प्रति घण्टा की गति पर आरंभ होता है तथा 20—40 किमी प्रति घण्टे की दर पर मध्यम मृदा अपरदन होता है। 40 किमी प्रति घण्टे की दर से अधिक वेग पर पवन द्वारा तीव्र (Severe) मृदा अपरदन आरंभ हो जाता है। वायु की प्रक्षुब्धता (Turbulence) तथा परिवहन क्षमता भी अपरदन की मात्रा को प्रभावित करती है।

पवन अपरदन खुले मैदानों एवं मरुस्थलों में अधिक होता है। पवन अपरदन में जलवायु की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि मरुस्थलीय भागों में अपक्षय की क्रिया को जलवायु नियन्त्रित करती है जिसके परिणामस्वरूप पवन अपरदन हेतु तलछट उपलब्ध होती है। पवन अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों में मृदा की प्रतिरोधक क्षमता (Soil Resistance), सतही कटक, वर्षा, वानस्पतिक आवरण आदि महत्वपूर्ण हैं।

4. समुद्री अपरदन (Marine Or Beach Erosion)

समुद्र तटवर्ती भागों में लहरों द्वारा अपरदन होता है। तटीय भागों में स्थित झीलों तथा नदियों का भी इसमें प्रभाव रहता है। समुद्री तटों पर लहरों द्वारा अपरदन के उपरान्त नवीन भू-आकृतियाँ बन जाती हैं। कई तटीय क्षेत्र तरंगों द्वारा जल प्राप्त कर दलदलों (Swamps) के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। पानी की तीव्र गति से बार-बार स्थल की ओर आने से गहरी नालियों का निर्माण हो जाता है। तटीय या समुद्री अपरदन सागरीय जल में गति के कारण होता है। यह गति सागरों में प्रवाहित पवन के घर्षण (Wind friction), भयानक तूफान, वाष्पन, नदियों, भूकम्प तथा ज्वालामुखी आदि क्रियाओं के कारण उत्पन्न होती है। समुद्री जल के कारण तटवर्ती

मृदायें लवणीय हो जाती हैं। अतः समुद्री अपरदन भी पर्यावरण अवनयन में सहयोग करता है।

5. मानवीय क्रियाओं द्वारा अपरदन (Erosion by Anthropogenic Activities)

यह मानवीय क्रिया-कलापों से तेजी से होने वाला अपरदन होता है जिसे त्वरित अपरदन (Accelerated Erosion) भी कहते हैं। मानव अपने द्वारा प्रयोग किये गये अवैज्ञानिक कारकों से मृदा अपरदन को त्वरित करता है। अविवेकपूर्ण कृषि पद्धतियाँ, भूमि का गलत उपयोग, फसलों की लगातार पुनरावृत्ति, अनियन्त्रित पशुचारण तथा अविवेकपूर्ण वनोन्मूलन आदि क्रियायें मानव द्वारा की जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप मृदा अपरदन होता है। मानवीय क्रियाओं द्वारा मिट्टी की सघनता / सुगाढता (Compaction), लेपन (smearing), भुरभुरापन (Pulverization) तथा अत्यधिक उपयोग से अवनयन होता है। मृदा अवनयन से मृदा परिच्छेदिका के ऊपरी संस्तरों से उर्वर तत्त्वों का निक्षालन हो जाता है। शेरलोक ने मानव को एक प्रमुख प्रभावकारी कारक माना है। अपनी पुस्तक "Man Geological Agent" में यह स्पष्ट किया। इसी प्रकार जैक एवं व्हाइट ने स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर हो रहे तीन मृदा अपरदन में मनुष्य की भूमिका को प्रमुख मानते हुए इसके नियन्त्रण पर बल दिया है।

6. विशेषीकृत अपरदन (Specialized Erosion)

विशेषीकृत अपरदन में तीन प्रकार क्रमशः पीठिका (Pedestal), चरम (Pinnacle) तथा एकाएक न्यूनता वाला (slumping) अपरदन समाहित है। पीठिका अपरदन छपछपाव (splash) द्वारा होता है। चरम अपरदन अवनलिकाओं में ऊर्ध्वाकार रूप में होता है।

मृदा अपरदन को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Soil Erosion).

मृदा अपरदन प्रकृति में विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कारकों द्वारा होता है। राष्ट्रीय सुदूर संवेदन संस्थान (IIRS) देहरादून के जल संसाधन प्रभाग के अनुसार प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं—

(1) जलवायुवीय कारक (Climatic Factors)—

इसमें वर्षा (Rainfall), तापमान (Temperature), पवन (Wind) तथा आर्द्रता (Humidity) प्रमुख हैं। जल वर्षा की मात्रा, तीव्रता, अवधि एवं वितरण अपरदन को प्रभावित करते हैं, इसी तरह तापमान एवं पवन भी मृदा अपरदन के स्वरूप एवं दर को प्रभावित करते हैं।

(2) स्थलाकृतिक कारक (Topographical Factors)

इसमें ढाल का क्रम (Degree of slope), ढाल की लम्बाई (Length of slope), तथा जलग्रहण की आकृति एवं आकार (Shape and size of watershed) प्रमुख हैं।

(3) वानस्पतिक कारक (Vegetative Factors)

इसमें वनस्पति का प्रकार (Kind of vegetation), घनत्व (Density), वृद्धि की अवस्था (Stage of growth) तथा जड़तन्त्र (Rooting system) प्रमुख हैं।

(4) मृदा कारक (Soil Factors)

इसमें मृदा संरचना (Soil structure), गठन (Texture जैविक पदार्थ (Organic matter), नमी तत्त्व (Moisture content) तथा मृदा की सुगठनता (Soil compactness) प्रमुख हैं।

(5) सामाजिक-आर्थिक कारक (Socio-Economic Factors)—

इसमें भूमि उपयोग परिवर्तन, निर्माण एवं खनन कार्य प्रमुख हैं। कृषि विस्तार एवं औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के लिए किया गया भूमि उपयोग परिवर्तन मृदा अपरदन को बढ़ाता है। कृषि कार्यों में उपकरणों का प्रयोग भी एक कारण है। कृषि क्षेत्र विस्तार के लिए वन एवं घास क्षेत्रों को साफ कर दिया जाता है जिससे वर्षाजल पूर्ण गतिज ऊर्जा के साथ निम्नवर्ती क्षेत्रों में बहता है तथा तीव्र मृदा अपरदन करता है। पहाड़ी क्षेत्रों में परिवहन मार्ग निकालने, नहर एवं नालों का विकास आदि से भी मृदा अपरदन होता है।

मृदा अपरदन के प्रभाव (Effects of Soil Erosion)

मृदा अपरदन द्वारा जब पर्यावरण का स्वरूप परिवर्तित होने लगता है तो अनेक विषमताएँ आने लगती

हैं, साधारण धरातल में बीहड़ उत्पन्न हो जाते हैं, मृदा की उत्पादकता क्षीण होकर बंजर प्रकृति बन जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित अपरदन के कारण पर्यावरण में निम्न प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगते हैं—

- (1) भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास हो जाता है।
- (2) धरातल पर नालियाँ (Rill), बीहड़ (Ravine) तथा अवनलिकाएँ (Gullie) विकसित हो जाती हैं जिससे उक्त भूमि अनुपयोगी हो जाती है।
- (3) नदियों एवं सरिताओं (Streams) की तली में अवसाद बढ़ने से उत्थान होने लगता है।
- (4) जल भण्डार गृहों (Reservoirs) में गाद (अवसाद) जमा होना।
- (5) वनस्पति आवरण में कमी।
- (6) वनस्पति आवरण ह्रास के कारण पारिस्थितिकीय तन्त्र विकृत हो जाता है।
- (7) पर्वतीय एवं मैदानी भागों में अपरदन से मृदा समाप्त हो जाती है।
- (8) मृदा की उत्पादकता में ह्रास होता है।
- (9) मृदा जमाव से चरागाह कृषि भूमि, सड़कों आदि को नुकसान होता है।
- (10) मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया त्वरित अवस्था में आ जाती है।
- (11) प्राकृतिक प्रकोपों (बाढ़, सूखा) में वृद्धि।
- (12) सुपोषीकरण, मत्स्यन में कमी तथा जल विद्युत शक्ति में कमी आदि पर्यावरणीय प्रभाव भी दृष्टिगोचर होते हैं।

जल अपरदन द्वारा मृदा हानि का प्राक्कलन (Quantification of Water Erosion)

केन्द्रीय भूमि एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान देहरादून के वैज्ञानिकों ने शोध कर स्पष्ट किया है कि जलग्रहण से मृदा हानि का अनुमान ज्ञात करने के लिए समीकरण विकसित करने के लिए विश्व के अनेक स्थानों में प्रयास किए गए हैं। जल क्षरण द्वारा मृदा हानि का प्राक्कलन आधुनिक एवं प्रचलित निम्नलिखित वैश्विक मृदा हानि समीकरण (Universal Soil Loss Equations) द्वारा किया जाता है जिसे अमेरिका की कृषि अनुसंधान विकसित किया है (Wischmeier, 1959)।

जहाँ, A = वार्षिक मृदा हानि (टन प्रति हैक्टेयर) (Average Annual Soil Loss)

R = वर्षा क्षरणशीलता सूचकांक (Rainfall Erosivity Index)

K = मृदा क्षरणीयता कारक (Soil Erodibility Factor)— एक संख्या जिसका मान दी गई मानक मृदा दशाओं में मृदा हानि की मात्रा प्रति इकाई क्षरणीयता पर निर्भर है।

L = ढाल लम्बाई कारक (Slope Length Factor) — एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा और एक मानक लम्बाई (22.6 मीटर या 72.5 फीट) वाले क्षेत्र से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

S = ढाल प्रवणता कारक (Slope Steepness Factor) — एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा और एक मानक ढाल (9%) वाले क्षेत्र से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

C = शस्य प्रबन्ध कारक (Cropping Management Factor) — एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा और एक मानक उपचार वाले क्षेत्र (वनस्पतिविहीन परती कृषि भूमि) से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

P = संरक्षण कार्य प्रणाली कारक (Conservation Practice Factor)—एक संख्या जो मृदा हानि की मात्रा जो संरक्षण कार्य से प्राप्त और एक ही संरक्षणविहीन क्षेत्र तीव्रतम ढाल की दिशा में जुताई से प्राप्त मृदा हानि की मात्रा का अनुपात बतलाती है।

उपर्युक्त समीकरण निर्दिष्ट ढाल (9 प्रतिशत) तथा क्षेत्र एवं लम्बाई (22.6 मीटर) में प्रयुक्त आंकिक आकड़ों के आधार पर कों विकसित किया गया है। इन इकाइयों के चुनने का कारण यह था कि अनुसंधानरत

अधिकतर केन्द्रों के प्रयोगात्मक क्षेत्रों पर ढाल और लम्बाई को यही मानक दशायें प्रयुक्त की गई थीं। अतः इसके द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय दशाओं के लिए भिन्न-भिन्न मानक दशाओं का चुनाव किया जा सकता है। समीकरण में प्रयुक्त R, K तथा S ऐसे कारक हैं जिन्हें सामान्यतः नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। जबकि L, C और P कारकों को भूमि प्रबन्ध, शस्य प्रबन्ध तथा संरक्षण विधियों के प्रयोग से किसी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार किसी दिए गए प्रवाह क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की कृषि एवं जल संरक्षण की प्रणालियों का समुचित चुनाव एवं हम सम्भावित मृदा हानि का पूर्वानुमान (Prediction) इस समीकरण की सहायता से किया जा सकता है। विभिन्न कारकों को ज्ञात करने के संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैं—

(1) वर्षा क्षरणशीलता सूचकांक (Rainfall Erosivity Index) :

वर्षा प्रचण्डता सूचकांक (REI) जो इस समीकरण में “R” कारक के रूप में प्रयुक्त है। इसको वार्षिक मृदा क्षरण ज्ञात करने के काम में लाया जाता है। “R” सूचकांक का मासिक मान शस्य प्रबन्ध कारक को ज्ञात करने में प्रयोग किया जाता है। रामबाबू एवं अन्य (1978) ने भारत के 45 विभिन्न स्थानों का मासिक एवं वार्षिक “R” सूचकांक का पता लगाया है तथा भारत का समान वर्षा अपरदनशीलता मानचित्र (Iso Eroder Map of India) विकसित किया है। इस मानचित्र से भारत के किसी स्थान का वर्षा क्षरण सूचकांक “R” ज्ञात किया जा सकता है।

R का मान निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—

$$R = 8.12 + 0.562 \times \text{वार्षिक वर्षा}$$

(2) मृदा क्षरणीयता कारक (Soil Erosivity Factor, K) :

मृदा क्षरणीयता कारक “K” विभिन्न मृदाओं के क्षरण की दर को दिखलाता है। समान ढाल, वर्षा, वनस्पति आवरण तथा शस्य प्रबन्ध होने के बावजूद विभिन्न मृदाओं का अपरदन भिन्न-भिन्न होता है। यह मृदा लक्षणों पर मुख्यतः निर्भर करता है। समीकरण में प्रयुक्त “K” 9 प्रतिशत मानक ढाल पर उसकी संख्या को प्रकट करता है। कुछ मुख्य मृदाओं के लिये “K” कारक दिया गया है (विशमायर एवं स्मिथ, 1978)। मृदा क्षरणीयता कारक “K” को नोमोग्राफ द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है।

10.13 मृदा संरक्षण (SOIL CONSERVATION)

मृदा संरक्षण वह विधि है जिसमें किसी कृषि प्रकार (शैली) द्वारा भूमि का दक्षतापूर्वक प्रयोग करके क्षरण से बचाया जाये। योजना आयोग के अनुसार “मृदा संरक्षण का अर्थ मृदा प्रबन्ध की सभी विधियों तथा अन्य उपायों से है जो मृदा व उसकी उर्वरता की सम्पूर्ण या आंशिक हानि से रक्षा कर सके, जो जल व वायु अपरदन से, जलमग्नता से उर्वरक तत्वों के अलगाव से अपक्षालन अथवा सघन खेती या चराई द्वारा हो सकता है।” प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी तत्वों में भूमि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसे मनुष्य प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपयोग करता आ रहा है लेकिन भूमि सुधार पर ध्यान नहीं दिया जिसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे मृदा का ह्रास होता रहा भारत में 1920 के दशक में पहाड़ी क्षेत्रों में मृदा अपरदन की भीषण समस्या तथा शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लगातार सूखे की गम्भीर समस्या पर सरकार ने ध्यान दिया तथा मृदा संरक्षण के उचित उपायों को अपनाने पर बल दिया। सर्वप्रथम मृदा संरक्षण पर शोधकार्य सन् 1923 में माझरी शहर (मुम्बई) में प्रारम्भ किया गया। मृदा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधन है, जिस पर प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था निर्भर रहती है जिसे प्रत्यक्ष रूप से यहाँ का पर्यावरण नियन्त्रित करता है। पर्यावरण को मृदा अपरदन असन्तुलित करता है अतः मृदा अपरदन पर नियंत्रण अत्यावश्यक हो गया है। मृदा अपरदन के उद्देश्यों में वर्षा, जल की बूंदों से भू-सतह की रक्षा, वर्षा जल के भूमि में अन्तःसंचरण की दर एवं मात्रा में वृद्धि करना, धरातलीय वाही जल के आयतन एवं वेग में कमी करना तथा मृदा की अपरदनशीलता में कमी लाना प्रमुख हैं। मृदा अपरदन पर प्रभावी नियंत्रण शस्य वैज्ञानिक विधियों (Agronomic methods) तथा यान्त्रिक विधियों (Mechanical Methods) द्वारा लगाया जा सकता है। सामान्यतया निम्नलिखित विधियों द्वारा मृदा का प्रभावी संरक्षण किया जा सकता है—

(1) वनस्पति आवरण तथा संरक्षी वनरोपण (Vegetative Cover and Protective Afforestation)

वनस्पति आवरण से भूमि में नमी बनी रहती है तथा वर्षा की बूंदों के कारण मिट्टी का क्षय नहीं हो पाता है।

वनस्पति आवरण से मृदा कण आपस में संगठित रहते हैं। वनस्पति आवरण से जल का प्रवाह भी धीमा होता है जो मृदा अपरदन को कम करता है।

(2) समोच्च कृषि (Contour Farming)

इसके अन्तर्गत ढालू भूमि पर समोच्च रेखाओं के अनुसार कृषि क्रियायें (जुताई, रोपण कर्षण, नालीदार जुताई) करते हैं जिससे ढाल की प्रवणता अवरुद्ध होकर जल के बहाव को नियन्त्रित करती है, परिणामस्वरूप मृदा अपरदन में कमी आती है। इसमें ढलुआ खेतों की ढाल को अनुप्रस्थ दिशा में जुताई की जानी चाहिए ताकि वर्षा जल आसानी से निचले ढालों की ओर प्रवाहित होकर मृदा कटाव न कर सके।

(3) वेदिकाकरण (Terracing)

इस विधि में पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाकर कृषि की जाती है जिससे जल रुक-रुक कर बहता है व मृदा को अपरदित नहीं कर पाता है, इसे समोच्च मेडबंद (Contour Bunding) भी कहते हैं। भारत में असम, मेघालय, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड में मुख्यतः वेदिकाकरण को अपनाया गया है। शिवालिक हिमालय में लघु स्तर पर भी ऐसा किया गया है।

(4) पलवार बनाना (Mulching)

यह विधि वायु व 'जल अपरदन'ों को कम करती है। इसमें शाक पौधों जैसे कि दालों के पौधों, सरसों के पौधों आदि के मूलतन्त्र सहित तने के आधार भाग को टूट के रूप में फसल काटते समय खेत में पंक्तियों में छोड़ देते हैं। ढूँढ पंक्तियाँ मृदा नमी के वाष्पन को रोकती हैं और मृदा को कार्बनिक पदार्थ देती हैं जिससे नमी व मृदा उर्वरता का अनुपात बढ़ जाता है।

(5) फसल चक्र (Crop Rotation)

एक ही फसल को लगातार बोने से उस खेत की उर्वरता में ह्रास होने लग जाता है। अतः जलवायुवीय दशाओं के अनुसार दो या तीन फसलों को एक के बाद एक क्रम में उगाते हैं, इसे फसल चक्र (Crop Rotation) कहते हैं। इस चक्र में कम से कम एक फसल फलीदार (Leguminous) होनी चाहिए जैसे चना, मेथी, मटर, ग्वार आदि की जड़ों में राइजोबियम (Rhizobium) जीवाणु ग्रन्थिया होती हैं जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके इसे नाइट्रेट में बदल कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

(6) फसल प्रबंधन (Crop Management)

इसमें वर्षा काल में खुले खेतों में फसलों की बुआई की जानी चाहिए तथा वर्षा के समय खेतों को खुला न छोड़कर ऐसी फसलों की खेती की जाये जो अधिकतम क्षेत्र को ढक सके तथा मृदा कणों को आपस में बाँध सके ताकि वर्षा जल भूसतह से सीधे प्रहार द्वारा मृदा को काटकर न बहा सके। अलग-अलग पंक्तियों में भिन्न-भिन्न फसलें उगाने (अन्तराल शस्य-Inter Cropping) तथा एक के साथ कई फसलों के सामूहिक रूप से उगाने (मिश्रित शस्य-Mixed Cropping) से भी मृदा अपरदन में कमी आती है।

(7) पट्टीदार कृषि (Strip Cropping)

इस प्रकार की कृषि में फसलों को चौड़ी पट्टीकाओं के प्रतिरूप में उगाते हैं। यह कृषि ढलान वाली भूमि के लिए उपयुक्त रहती है। पट्टिकाएँ ढलान से 90° के कोण पर बनायी जाती हैं या वायु की दिशा के 90° कोण पर बनायी जाती हैं।

(8) शुष्क कृषि (Dry Farming)

वर्षा पोषित क्षेत्रों के लिए शुष्क कृषि उपयुक्त रहती है इसमें मृदा अपरदन रोकने के लिए घास, चारा बोते हैं।

(9) स्थानान्तरित कृषि पर प्रतिबन्ध (Controlling on Shifting Cultivation)

विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली स्थानान्तरी कृषि को नियन्त्रित करना चाहिए।

(10) पशु चारण पर नियन्त्रण (Controlled Grazing)

अनियन्त्रित पशुचारण के कारण भूमि पर वनस्पति आवरण समाप्त होकर मृदा अपरदन को गति देता है अतः स्थायी चरागाह बनाकर इसे नियन्त्रित करना चाहिए।

(11) अवनलिका नियन्त्रण (Gully Control)–

अवनलिका अपरदन को रोक बांध (Check Dam) बनाकर एवं वनस्पति आवरण में वृद्धि करके नियन्त्रित किया जा सकता है। अवनलिका अपरदन का प्रकार वहाँ की जलीय स्थिति, तलछट की मात्रा, मृदाओं एवं लोगों की वनस्पति की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

(12) सहबद्ध मेड़ निर्माण (Tied & ridging)

इसमें पहाड़ी ढालों की जुताई की ढाल की दिशा में अनुप्रस्थ दिशा में आर-पार की जाती है जबकि मेड़ों का निर्माण ढाल की दिशा में तथा जुताई से बने कुंडे (Furrows) के आर-पार किया जाता है जिससे पहाड़ी ढालों में अनेक लघु बेसिन बन जाते हैं जिनमें वर्षाजल अवरुद्ध रहता है एवं मृदा अपरदन रुक जाता है।

(13) बाढ़ क्षेत्रों का संरक्षण (Conservation of Flood Areas)

बाढ़ के दौरान भी मृदा ह्रास होता है अतः बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का प्रबन्धन किया जाना चाहिए। मृदा संरक्षण का विवेकपूर्ण उपयोग (Rational use of soil Resource) करना चाहिए। **The world strategy for conservation of Nature (1980)** के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 3000 वर्ग किमी कृषि भूमि निर्माणात्मक कार्यों में प्रयोग कर ली जाती है। अतः मृदा संसाधन का संरक्षण पर्यावरण प्रबन्धन का महत्वपूर्ण पक्ष है

10.14 सारांश

मृदा प्राकृतिक वातावरण का एक महत्वपूर्ण आधार है जो अन्य संसाधनों को एक आधार प्रदान करती है। मृदा का निर्माण करने वाले कारकों में जलवायु जीवमण्डल, उच्चावच, मूल पदार्थ, समय की निरन्तर प्रक्रिया के परिणामस्वरूप मृदा का निर्माण होता हुआ है। प्राकृतिक एवं मानवीय कारकों में मृदा का अपरदन भी होता है। मृदा संरक्षण के लिए मृदा संरक्षण के सामान्य निगम का प्रयोग कर मृदा को अपरदन में बचाया जा सकता है। इस इकाई का अध्ययन मृदा संसाधन को समझने में सहायक होगा।

10.15 पारिभाषिक शब्दावली

वेदिकाकरण (Terracing):—इस समोच्च मेड़बंदी भी कहते हैं। इस विधि में पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाकर कृषि की जाती है। जिससे जल रूक-रुक कर बहता है।

10.16 बोध प्रश्न

10.16.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर :—

प्रश्न—1. मृदा संसाधन के वर्गीकरण के बारे में विस्तार से समझाइये।

प्रश्न—2. मृदा समाधान के वितरण के बारे में बताइये।

10.16.2 लघु उत्तरीय प्रश्न :—

प्रश्न—1. मिट्टी संरक्षण के कोई पाँच नियम बताइये।

प्रश्न—2. पेडोल्फर मृदा के बारे में बताइये?

10.16.3 बहु विकल्पीय प्रश्नोत्तर :—

प्रश्न—1. कौन सी मृदा कटिबन्धीय (Zonal) नहीं है ?

(अ) पेडोल्फर्स (ब) पेडोकल्स

(स) टुण्ड्रा (द) रेण्डसीना

प्रश्न-2. निम्नांकित में से कौन सी मृदा अपार्श्विक (Azonal) है?

(अ) पेडोकल (ब) पेडोल्फस

(स) जलोढ़ (द) रेगुर

प्रश्न-3. प्रेयरी मृदा का रंग काला होता है ?

(अ) मूल पदार्थ (ब) जलवायु (स) जीवांश से (द) उच्चावच से

प्रश्न-4. स्टेपी प्रदेश में कौन सी मृदा मिलती है?

(अ) पोडजोल (ब) चरनोजम

(स) लेटेराइट (द) चेस्टनर

प्रश्न-5. रेगुर मिट्टी कहते हैं?

(अ) लाल मिट्टी को (ब) काली मिट्टी को

(स) लेटेराइट मिट्टी को (द) दलदली मिट्टी को

10.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ बी. सी जाट "संसाधन भूगोल मलिक बुक कम्पनी संस्करण 2021
2. प्रो जगदीश सिंह "संसाधन भूगोल" ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
3. Dr. Alka Gautam: Resources Geography. Sharda Pushtak Bhawan Prayagraj

इकाई-11 : मिट्टी : उत्पादन क्षमता एवं उसमें हास, कटाव एवं मरुस्थलीकरण

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मिट्टी की उत्पादन क्षमता

11.4 मृदा का हास

11.5 मिट्टी का कटान

11.6 मिट्टी के कटान को रोकने के उपाय

11.7 मरुस्थलीकरण

11.8 परीक्षोपयोगी प्रश्न

11.9 सन्दर्भ

11.1 प्रस्तावना

मिट्टी आधारभूत संसाधन है। सभी जीवधारी किसी न किसी रूप में हरे पौधों पर भोजन के लिए निर्भर होते हैं। ये पौधे अपने भोजन के लिए अधिकांशतः मिट्टियों पर ही आश्रित रहते हैं। मनुष्य की तीन आधारभूत आवश्यकताएं (रोटी, कपड़ा व मकान) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मिट्टी पर निर्भर है।

बिलकाक्स (पसबवग) महोदय ने लिखा है “मानव सभ्यता का इतिहास मिट्टी का इतिहास है और प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा मिट्टी से ही प्रारम्भ होती है।” मिट्टी भूतल आवरण का ऐसा पदार्थ है जो हठीभूत नहीं हुआ है और उसमें जीवन के अनुपोषण की क्षमता होती है। मिट्टी की उर्वरता एवं उत्पादन क्षमता उसके मूल पदार्थ के रासायनिक, भौतिक एवं जैविक गुणों पर निर्भर करती है। जिसमें

1 मिट्टी की संरचना. मिट्टी की संरचना से तात्पर्य उस प्रकार से है जिस तरह मिट्टी के कण समुच्चय बनाते हैं मृदा संरचना मृदा कणों को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है जिसे समुच्चय कहा जाता है। कुछ मिट्टी एक बड़े, ठोस, बिना किसी विशेषता वाले द्रव्यमान की तरह दिखती है जिसे विशाल कहा जाता है और इसमें बहुत कम या कोई संरचना नहीं होती है। मृदा संरचना एक महत्वपूर्ण भौतिक गुण है जो पानी और पोषक तत्वों के प्रवाह, पौधों और सूक्ष्म जीवों के लिए वायु संचार और मृदा अपरदन तथा संघनन के प्रतिरोध को प्रभावित करती है, जिसके माध्यम से यह पौधों की वृद्धि को प्रभावित करती है। मृदा संरचना मृदा कणों और मृदा समुच्चयों की व्यवस्था का वर्णन करती है।

2.मिट्टी का रंग- मिट्टी का रंग उसमें उपस्थित खनिजों और ह्यूमस घटकों पर निर्भर करता है जैसे दृ काला और भूरा रंग मृदा में उपस्थित ह्यूमस की विभिन्न मात्रा और मूल चट्टान के रंग को दर्शाता है। लाल मिट्टी से पता चलता है कि यह लौह या Fe_2O_3 से समृद्ध है जबकि पीला रंग हाइड्रेटेड योगिकों की उपस्थिति का सुझाव देता है।

3.मिट्टी का गठन- मृदा में तीन प्रकार के कणों बालू, सिल्ट और मृत्तिका का विभिन्न मात्रा में आपसी जुड़ाव या सम्बन्ध मृदा गठन कहलाता है अथवा विभिन्न मृदा वर्ग में कणों के सापेक्षिक अनुपात को मृदा गठन कहते हैं।

4.मिट्टी का तापमान- मृदा तापमान तात्पर्य मिट्टी के तापमान से है जो पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न भूमिगत प्रक्रियाओं जैसे— जड़ वृद्धि, अपघटन और नाइट्रोजन, खनिजीकरण के लिए महत्वपूर्ण है इसका अनुमान हवा के तापमान के चल रहे औसत की गणना करके लगाया जा सकता है जिसमें मिट्टी की गहराई बढ़ने के साथ

एकीकरण भी बढ़ जाता है। जैविक गुण, जैव सक्रियता के लिए मिट्टी का औसत तापमान लगभग 50 से 75 डिग्री फारेनहाइट (10 से 24 डिग्री सेल्सियस) तक होता है।

5. मिट्टी की गहराई- मिट्टी की गहराई का अर्थ मिट्टी की सतह से लेकर अंतर्निहित आधारशिला मूल सामग्री या अन्य कठोर या सघन परतों तक की दूरी है कृषि में मिट्टी की गहराई एक महत्वपूर्ण कारक है जो पौधों की वृद्धि फसल की उपज और मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित कर सकती है। मिट्टी बहुत उथली लगभग 25 सेंटीमीटर से कम, उथली लगभग 25 से 50 सेंटीमीटर, मध्यम गहरी लगभग 50 से 90 सेंटीमीटर, गहरी लगभग 90 से 150 सेंटीमीटर और बहुत गहरी 150 सेंटीमीटर से अधिक हो सकती है।

6. मिट्टी की प्रवेश्यता- रेत की प्रवेश्यता न केवल कण के आकार और क्षिद्रता से सम्बंधित है बल्कि अन्य कारकों पर भी निर्भर करती है मिट्टी और गाद का अनुपात तथा रेत की पानी की मात्रा इसकी प्रवेश्यता और कटाव के प्रतिरोध को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पानी से संतृप्त रेत में प्रवेश की सुविधा भी इस बात पर निर्भर करती है कि प्रवेश बल किस तरह से लगाया जाता है अचानक दबाव से फैलाव और प्रतिरोध में वृद्धि होती है। मृदा प्रवेश्यता इस बात की माप है कि हवा और पानी मिट्टी के माध्यम से कितनी आसानी से आगे बढ़ते हैं।

7. मिट्टी की रासायनिक क्षमता- मृदा के रासायनिक गुण मृदा विलयन (मृदा जल और पोषक तत्व) तथा विनिमय स्थलों (मिट्टी के कण, कार्बनिक पदार्थ) पौधों के स्वास्थ्य, पौधों की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा मृदा प्रदूषकों के स्तर और पौधों द्वारा अवशोषण हेतु उनकी मौजूदगी के बीच प्रभाव को दर्शाते हैं मिट्टी का पीएच अनिवार्य रूप से सभी मिट्टी के रसायन विज्ञान और पोषक प्रतिक्रिया का आधार है मिट्टी का पीएच मिट्टी की अम्लीयता या क्षारीयता को दर्शाता है पीएच स्केल की कुल माप 0 से 14 तक होती है मिट्टी का पीएच 7 होने पर मिट्टी तटस्थ होती है और पीएच मान 7 से कम होने पर अम्लीय और 7 से अधिक होने पर क्षारीय होती है।

8. मिट्टी की आर्द्रता- मिट्टी की आर्द्रता मिट्टी में मौजूद पानी की मात्रा है। इसे आयतन और भार के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। आर्द्रता मिट्टी को प्रभावित करती है जब परिस्थितियां बहुत अधिक नम होती हैं तो यह फफूंद और बैक्टीरिया के विकास को बढ़ावा दे सकती है जिससे पौधे मर जाते हैं और फसलें खराब हो जाती हैं। नम परिस्थितियां कीटों की उपस्थिति को भी आमंत्रित करती हैं जैसे कि फंगस एवं अन्य बैक्टीरिया जिनके लार्वा पौधों की जड़ों पर स्थित होते हैं और नम मिट्टी में पनपते हैं। जिससे फसलों का विकास रुक जाता है।

9. मिट्टी की आयु- मिट्टी की आयु एक सटीक माप नहीं है इसकी आयु मिट्टी पर हुए अपक्षय की मात्रा से निर्धारित होती है यानि मिट्टी किस हद तक उपजाऊ है।

मिट्टी की आयु तीन मानदंडों पर आधारित है—

1. अधिक क्षितिज मिट्टी जितनी पुरानी होगी, मिट्टी उतनी ही पुरानी होगी।
2. आसन्न क्षितिजों के बीच जितना अंतर होगा मिट्टी उतनी ही पुरानी होगी।
3. क्षितिज जितना मोटा होगा मिट्टी उतनी ही पुरानी होगी।

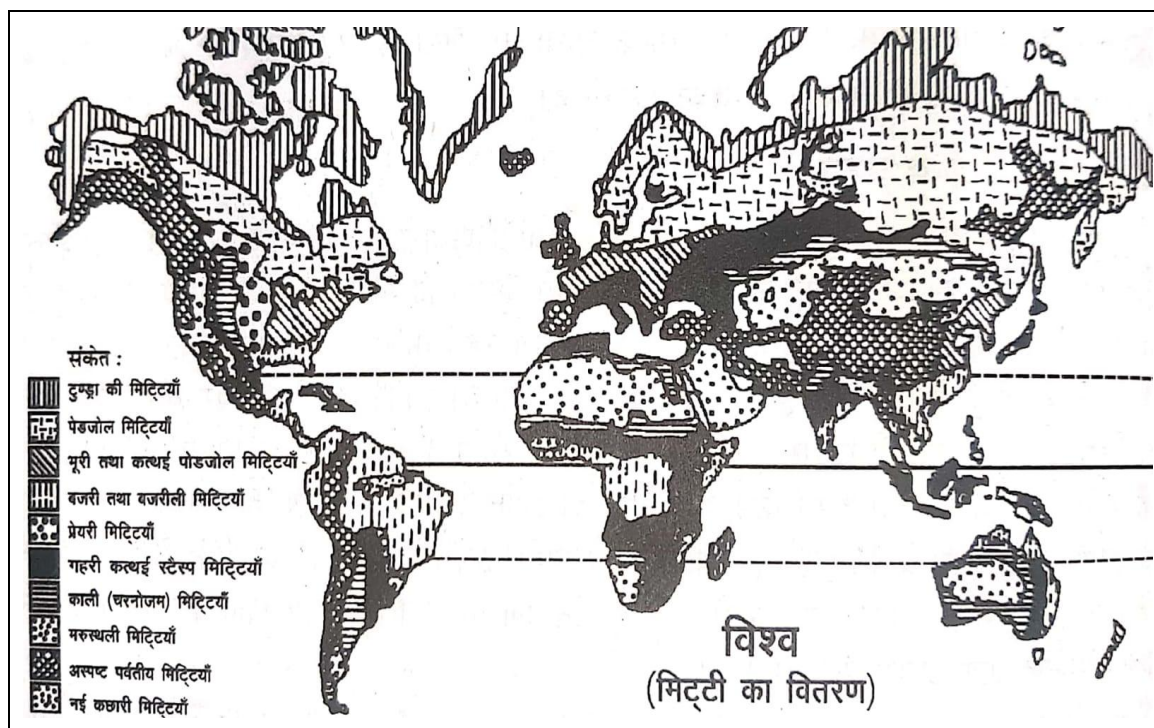
एक पुरानी मिट्टी मोटे क्षितिज को दिखाती है जो एक दुसरे से बहुत अलग होते हैं। मिट्टी में निश्चित संगठित गुणात्मक व मात्रात्मक विशेषतायें होती हैं जिनसे मिट्टी का निर्माण हुआ था जो मिट्टी के आयु को निर्धारित करती है। वह जिसके द्वारा मिट्टी चट्टानें और खनिज भौतिक और रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा अन्य मिट्टी घटकों में परिवर्तित हो जाते हैं। पृथ्वी की सतह की सबसे ऊपरी परत जिसमें चार मुख्य घटक होते हैं—

1. हवा
2. पानी

3. कार्बनिक पदार्थ

4. खनिज पदार्थ

जो मिट्टी की आयु के निर्धारण में सहायक होते हैं।



चित्र11-1 विभिन्नप्रकारकीमिट्टियोंकाविश्ववितरण

11.2 उद्देश्य

मृदा के अध्ययन के बाद मृदा के उद्देश्य को निम्नलिखित रूपों में जाना जा सकता है।

1. मृदा के संगठन की जानकारी प्राप्त करना
2. मृदा के प्रकार एवं वितरण का अध्ययन करना
3. मृदा को प्रभावित करने वाले तत्वों का अध्ययन
4. मृदा एवं उसमें उत्पन्न होने वाली वनस्पति का अध्ययन
5. मृदा का ह्रास , अपरदन , मरुस्थलीकरण का अध्ययन

11.3 मिट्टी की उत्पादन क्षमता

मृदा उत्पादकता का तात्पर्य फसल को बनाये रखना और उत्पादन करने की मिट्टी की क्षमता से है मृदा उर्वरता का तात्पर्य फसलों की इष्टतम वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति करने की मिट्टी की शक्ति या क्षमता से है कम उत्पादकता का मतलब खराब फसल या कम उपज है और उच्च उत्पादकता का मतलब अच्छी फसल या उच्च उपज है।

पृथ्वी के ऊपरी सतह पर मोटे, मध्यम और बारीक कार्बनिक तथा अकार्बनिक मिश्रित कणों को “मृदा” अथवा मिट्टी कहते हैं। मृदा की ऊपरी सतह पर से मिट्टी हटाने पर प्रायः जो परत प्राप्त होती है उसे चट्टान (शैल) कहते हैं। पृथ्वी की ऊपरी सतह के कणों को ही (छोटे या बड़े) मिट्टी कहा जाता है। इस मिट्टी के साथ जल मिलने से उसके गुरुत्व, दबाव और खिंचाव पर प्रभाव पड़ता है, मिट्टी में अन्य पदार्थों के

साथ सट जाने से उसकी शक्ति बढ़ जाती है और ऊँगली से कुरेदने पर सुघट्यता का अनुभव होता है। कार्बानिक पदार्थों की उपस्थिति से भी मिट्टी में सुघट्यता बढ़ती है। मिट्टी में सुघट्यता की अवस्था जल की मात्रा पर निर्भर करती है। साथ ही मिट्टी के विभिन्न कणों पर एक-दूसरे से विद्युत शक्ति द्वारा खिंचाव उत्पन्न होता है, जिसे संसजन कहते हैं। संसजन और सुघट्यता का परस्पर सम्बन्ध है एक के अधिक होने से दूसरा भी अधिक हो जाता है। मिट्टी की उत्पादन क्षमता मिट्टी के कणांतरित छिद्र पर भी निर्भर करती है। मिट्टी के कणों के बीच कुछ जगह छूटी रहती है। इन जगहों को कणांतरिक छिद्र कहते हैं। यह कणों के विन्यास पर निर्भर करता है।

प्रतिशत कणांतरिक छिद्र—

1 - आभासी आपेक्षिक गुरुत्व

2 - आभासी निरपेक्ष गुरुत्व

इससे कणांतरिक प्रतिशत छिद्रों के आयतन का पता लगाया जा सकता है। जिस मिट्टी में कणांतरिक छिद्र छोटे होंगे वह मिट्टी जल अधिक सोखती है जैसे — मटियार मिट्टी। जिस मिट्टी में कणांतरिक छिद्र बड़े होते हैं वह जल कम सोखती है जैसे— बलुई मिट्टी। कणांतरिक छिद्र के कारण मिट्टी में जलावशोषण क्षमता आती है। मिट्टी की संरचना कणों की संरचना पर निर्भर करती है। कण आपस में बँधकर समूह बनाते हैं। समूहों में बँध जाने से बंधन और मजबूत हो जाता है। समूहों के बँधने में लौह और कार्बानिक पदार्थों का विशेष हाथ रहता है। छोटे-छोटे कणों के मिलने से मृदुकण विन्यास (Crumb Structure) प्राप्त होता है। इससे पानी का ठहराव अधिक होता है और जुताई भी अधिक सुगमता से होती है मिट्टी के कणांतरिक छिद्रों में जब जल नहीं रहता तब वायु प्रवेश करती है। यह वायु मिट्टी में स्थित जल में भी विलयन की अवस्था में पाई जाती है। इस वायु में ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के साथ कार्बन डाई आक्साइड भी रहता है ऑक्सीजन पौधों की जड़ों के लिए आवश्यक एवं लाभदायक है और कार्बनडाई आक्साइड पौधों से वृद्धि होती है।

लीबिंग (Liebing) ने 1840 में सबसे पहले यह सिद्धान्त स्थापित किया कि मिट्टी में पौधों को उपजाने के लिए अकार्बानिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। इसके बाद यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मिट्टी में अधिक मात्रा में रहने वाले तत्वों में — नाइट्रोजन, पोटैशियम, फास्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम, कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन का होना आवश्यक है जिससे मिट्टी की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त मिट्टी में न्यून मात्रा में लौह, गंधक, सिलिका, क्लोरिन, मैंगनीज, जस्ता, निकिल, कोबाल्ट, ताम्र आदि तत्वों की उपस्थिति भी पाई जाती है। इन तत्वों की उपस्थिति से पौधों का विकास, पत्तियों का हरा होना, फल-फूल आना आदि क्रियाओं का विकास होता है।

मिट्टी में अनेक जीवाणु, कीटाणु और जीव-जन्तु पाए जाते हैं, जो अनेक रासायनिक अभिक्रियाएँ सम्पन्न कर मिट्टी के गुण में परिवर्तन करते हैं इसमें सूक्ष्म जन्तु समूह, सूक्ष्म वनस्पति समूह, जीवाणु, कीटों का समूह आदि आते हैं। मिट्टी में जीवाणुओं का स्थान बड़े महत्व का है। इनसे मिट्टी के भौतिक गुण बदलते हैं और उसकी उर्वरता और उत्पादकता बढ़ती है। यद्यपि पौधे मिट्टियों से पोषक तत्व खींचते हैं, किन्तु प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र मिट्टियों की क्षतिपूर्ति करते रहते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है। कि मिट्टी की उत्पादन क्षमता मिट्टी की जैविक, रासायनिक, भौतिक गुणों, मिट्टी में पाये जाने वाले कणान्तरिक छिद्रों, संघटक आदि पर निर्भर है इसलिए इन समस्त तत्वों का सन्तुलन अतिआवश्यक है। उत्पादन केवल मिट्टी की उर्वरता पर ही निर्भर नहीं करता, अपितु जलवायु तकनीक आदि कई अन्य उपकरणों पर निर्भर है। जलवायु की जो दशाएँ उर्वरता बढ़ाती है वे उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि करें ऐसा आवश्यक नहीं है। उपाद्र एवं अर्द्ध शुष्क जलवायु में मिट्टी अधिक उर्वरक होती है। किन्तु वर्षा की कमी अनिश्चित होने के कारण उत्पादन में कमी पाई जाती है। जलोढ़ मिट्टी में उर्वरता की वृद्धि जलवायु द्वारा नहीं होती किन्तु उत्पादन क्षमता में जलवायु का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। मुख्यतः उत्पादन क्षमता पर सर्वाधिक प्रभाव तकनीक का रहता है। जिसके द्वारा कम उर्वरक मिट्टी में अधिक उत्पादन सम्भव होता है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'उर्वरक मिट्टी', 'अनुकूल जलवायु', 'उन्नत तकनीक', तीनों के सम्मिलन से ही उत्पादन क्षमता का उच्चतम स्वरूप निर्धारित होता है। अच्छी जुताई, अच्छे खादों के प्रयोग, सिंचाई आदि के द्वारा मिट्टी को अधिक उत्पादन-क्षमता प्रदान की जा सकती है। उत्पादन क्षमता के आधार पर श्रेष्ठ मिट्टियों को तीन भागों में बाट सकते हैं—

(i) जलोढ़ मिट्टी

(ii) पौडजोलिक मिट्टी

(iii) प्रेयरी मिट्टी

परन्तु इन मिट्टियों में भी उन्नत तकनीकों के बिना एक सीमा के बाद उत्पादन क्षमता घटने लगती है। उत्पादन क्षमता के आधार पर मध्यम क्षमता की मिट्टियों को निम्न भागों में बाँट सकते हैं।

(i) पौडजालिक, लेटोजलिक मिट्टी

(ii) चरनोजम मिट्टी

(iii) भूरी मरुस्थलीय मिट्टी

उत्पादन क्षमता के आधार निम्न क्षमता की मिट्टियाँ निम्न मानी जाती हैं—

(i) लैटेराइट मिट्टी

(ii) पौडजोल मिट्टी

(iii) टुण्ड्रा तथा मरुस्थलीय मिट्टी

11.4 मृदा का ह्रास

मिट्टी प्रकृति प्रदत्त एक बहुमूल्य संसाधन है जो पृथ्वी की ऊपरी सतह पर एक परत के रूप में पायी जाती है। मिट्टी महीन रूप से विभाजित चट्टानों का चूर्ण होता है जिसमें विभिन्न प्रकार के घुलनशील तत्व पाये जाते हैं जिससे पेड़-पौधों का विकास होता है जिस मिट्टी में उर्वरक और पोषक तत्वों की प्रचुरता होती है कृषि उत्पादन अधिक होता है तथा जनसंख्या सघनता पायी जाती है लेकिन जहाँ की मिट्टी में उर्वरा शक्ति का अभाव पाया जाता है वहाँ जनसंख्या बहुत विरल पायी जाती है तथा वहाँ निवास करने वाले लोगों का जीवन स्तर बहुत विरल पाया जाता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति में कमी मिट्टी के द्वारा अथवा मृदा अवनयन का परिणाम होती है।

आज विश्व के समक्ष मिट्टी के उर्वरा शक्ति के द्वारा एक प्रमुख समस्या है। विश्व के अनेक राष्ट्र मिट्टी के उर्वरा शक्ति के ह्रास को रोकने का प्रयास कर रहे हैं। यह ह्रास मिट्टी का उपयोग भूमि की क्षमता से अधिक फसलों को पैदा करना, अधिक पशुचारण, वनों की कटाई, वनों में आग लगना आदि कारणों से होता है। मिट्टी के मूल तत्वों का ह्रास मृदा अपरदन तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति के समाप्त होने से होता है। इसका अभिप्राय यह है कि मिट्टी की गुणवत्ता तथा पोषण क्षमता में गिरावट या कमी होने से मृदा का अवनयन अथवा ह्रास होता है, जो परम्परागत कृषि, पोषक तत्वों तथा जैविक तत्वों का ह्रास, मृदा स्थानान्तरण, विषैले रासायनिक तत्वों लवणों, अम्लों तथा क्षारों के कारण होता है।

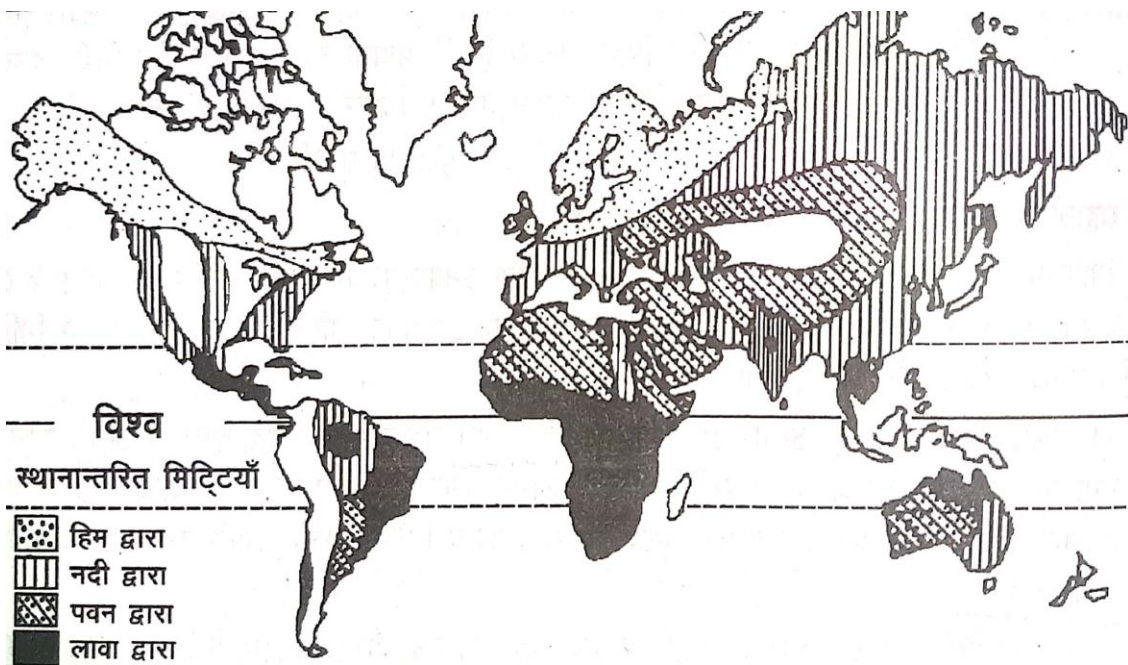
हवाइट तथा रेवर के अनुसार मानव के दुरुपयोग द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग पाँच करोड़ एकड़ भूमि पूर्ण रूप से बिल्कुल बर्बाद हो गयी है और लगभग पाँच करोड़ एकड़ भूमि अत्यधिक कट-फट रही है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यहाँ प्रति वर्ष के लगभग दो लाख एकड़ भूमि बर्बाद होती है। हवाइट तथा रेवर के अनुसार मिट्टी की उर्वरा शक्ति उन तत्वों से सम्बन्धित होती है जिन्हें पौधे मिट्टी से प्राप्त करते हैं। कम से कम तीन तत्व वनस्पति को वायुमण्डल से तथा लगभग दस तत्व वनस्पति को मिट्टी से प्राप्त होते हैं। मिट्टी की उर्वरा शक्ति यथावत बनी रहती है। उसमें न तो कोई वस्तु नष्ट होती है और न उसका दुरुपयोग होता है। प्रत्येक क्रिया सन्तुलित तथा स्वचालित विधि से होती है यदि मानवीय हस्ताक्षेप न हो तो।

यद्यपि पौधे मिट्टियों से पोषक तत्व खींचते हैं किन्तु प्राकृतिक परिस्थितिक तन्त्र कृषि क्रान्ति एवं कृषि तकनीकी मिट्टी के अधिकांश पादप पदार्थों को हटा देती है चूँकि मिट्टी की ऊपरी परत के पोषक तत्व वापस नहीं आ पाते हैं। जिससे कृषक बाध्य होकर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। चूँकि जैविक खादें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाती इसलिए रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिक मात्रा में होता है। भूमि जोतने एवं काटने की मशीनें भूमि को कठोर बना देती हैं जिससे मिट्टी की जल धारण क्षमता कम हो जाती है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति कम होती जाती है और मृदा ह्रास की समस्या पैदा हो जाती है।

11.5 मिट्टी का कटान

बहते हुए जल अथवा वायु के वेग द्वारा मिट्टी की ऊपरी परत का कुछ भाग बह जाता है। जिस प्रदेश की मिट्टियों में ह्यूमस की मात्रा कम पायी जाती है और वर्षा अधिक होती है वहाँ मिट्टी के कटाव की गति सबसे तीव्र होती है। समतल सतह की अपेक्षा ढालयुक्त भूमि पर मिट्टी का कटाव ज्यादा मात्रा में होता है। इस प्रक्रिया को अपरदन कहा जाता है। एक अनुमान के अनुसार लगभग 85 प्रतिशत मिट्टियों का अपरदन, कृषि भूमि से सम्बन्धित है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि प्राकृतिक कारकों की अपेक्षा मानवीय कारकों से मृदा का कटाव अधिक होता है। **ब्राउन एवं वुल्फ** के अनुसार "भारत में समस्त विश्व का 18.5 प्रतिशत मिट्टी का अपरदन होता है"। मिट्टी का कटाव अनेक प्रकार से होता है। वर्षा के जल से मिट्टी का परत अपरदन (sheet erosion) होता है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे होती है अतः दिखायी नहीं देती है।

नालीदार कटाव (gully erosion) जल की प्रवाह दिशा के साथ-साथ होता है। इसमें भूमि का कटाव तेजी से होता है एवं उसमें गड्ढे भी बन जाते हैं। इस कटान से भूमि उबड़-खाबड़ होती जाती है एवं कृषि कार्य के लिए अनुपयुक्त हो जाती है। अमेरिका में ऐसी भूमि को **बीहड़** कहते हैं।



चित्र 11-2 विश्व की अपरदित मिट्टियों का विवरण

बहुत सी प्रक्रियाएँ जो मिट्टियों का अवनयन करती हैं, मिट्टी का अपरदन भी करती हैं, जो भूमि की उर्वर परत हटा देती है। मृदा विशेषज्ञों के अनुमान से 1776 से 1976 के बीच 200 वर्षों की अवधि में संयुक्त राज्य अमेरिका की कृषि भूमि की एक तिहाई ऊपरी परत नष्ट हो गयी। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि शस्य भूमि की 6 इंच मोटी परत नष्ट हो जाती है तो उस भूमि की 40% उत्पादकता घट जाती है। वर्ल्ड वाच इंस्टिट्यूट (World Watch Institute) के अनुसार मिट्टी की ऊपरी परत का यदि एक इंच भी नष्ट होता है तो इससे गेहूँ तथा मक्का की उपज 6% तक कम हो जाती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष जल द्वारा होने वाले अपरदन से 6000 टन ऊपरी मृदा की परत बहा दी जाती है जिससे 10 करोड़ रुपये मूल्य के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं, इस अपरदन से विशाल बांधों के जलाशयों में गाद (silt) एकत्रित हो जाता है। यही नहीं यह सिल्ट ज्वारनदमुखों तथा पोताश्रयों (harbour) में भी एकत्रित हो जाता है। नदियों के किनारों तथा तली में अवसादों के जमा होने पर बाढ़ का खतरा बढ़ जाता है। 1970 से 1980 में मात्र 10 वर्ष की अवधि में भारत में बाढ़ग्रस्त क्षेत्र 20 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 40 मिलियन हेक्टेयर हो गया।

मिट्टी संरक्षण

मिट्टी से दीर्घकालीन अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए भूमि संरक्षण एक अनिवार्य उपक्रम है। मिट्टी संरक्षण का मुख्य उद्देश्य मिट्टी को अपने स्थान पर कायम रखना, मिट्टी की उर्वरता या तत्वों की अभिवृद्धि करना या कम से अपेक्षित मात्रा में बनाये रखना है। जिससे दीर्घकाल तक उत्पादन करते रहने के लिए इसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती रहे।

मिट्टी संरक्षण हेतु सर्वप्रथम भूमि नियोजन आवश्यक है। भूमि उपयोग नियोजन के अन्तर्गत भूमि उपयोग एवं भूमि उत्पादन शक्ति का सामंजस्य स्थापित किया जाता है अर्थात् भूमि के विविध उपयोगों का उचित आवंटन है। भूमि उपयोग नियोजन में सरकारी संस्थाओं के साथ ही भूस्वामियों, कृषकों का उपयोग भी अपेक्षित है क्योंकि किसानों की अभिरूचि, अथवा फसलों का चयन मिट्टी संरक्षण को प्रोत्साहित और हतोत्साहित करता है। इसके लिए कृषि पद्धति इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे मिट्टीयों में आवश्यक तत्वों की कमी नहीं अपितु वृद्धि हो। कम से कम जिस मात्रा में इस तत्वों का कृषि प्रक्रिया में मिट्टी से शोषण होता है उतनी मात्रा की पुनः आपूर्ति होना आवश्यक है। इसके लिए कृषि पद्धति में निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

- (i) फसलों के उत्पादन में हेर-फेर।
- (ii) आवरण फसलों का उपयोग।
- (iii) जैविक अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग।
- (iv) उर्वरकों एवं खादों का उपयोग।
- (v) जैव पदार्थों एवं जल का सम्यक सम्बन्ध।
- (vi) कैल्शियम कार्बोनेट तथा विरल तत्वों का उपयोग।

मिट्टी कटान का कारण

मिट्टी का कटान कई कारणों से होता है—

1. जिन मैदानी भागों में घासों अधिक पायी जाती है, वहाँ पशुचारण भी अधिक होता है। जो घासों मिट्टी की ऊपरी सतह को क्षय होने से रोकती है वह प्रक्रिया पशुचारण से समाप्त हो जाती है। जिससे वर्षा का जल आसानी से क्षयित मिट्टी को अपने साथ बहा ले जाता है।
2. अविवेकपूर्ण ढंग से वनों की कटाई के कारण भी मिट्टी के कटान गति को बढ़ावा मिला है। जो वृक्ष अपनी जड़ों से मिट्टी पर अपनी पकड़ बनाये रखते हैं, उनको काटने पर मिट्टी पर पकड़ खत्म हो जाती है। जिससे जल एवं हवा अपने साथ मिट्टी के ढीले कणों को बहा ले जाते हैं।
3. कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अविवेकपूर्ण कृषि तकनीकों से भी मिट्टी के अपरदन की समस्या बढ़ी है। जिसमें ढालयुक्त भूमि पर कृषि, वर्षा वनों को काट कर कृषि आदि प्रमुख है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि वनस्पति आवरण युक्त भूमि में कटान गति 1 टन/एकड़ होती है एवं वनस्पति रहित भूमि पर कटान 40 टन/एकड़ हो जाता है।

11.6 मिट्टी के कटान को रोकने के उपाय

निम्न उपायों से मिट्टी के अपरदन (कटान) की समस्या को कम किया जा सकता है।

1. **वृक्षारोपण करके वनों का विस्तार** — विश्व भर में वृक्षारोपण के लिए अनेक देशों की सरकारों द्वारा कार्यक्रम चलाये जाते हैं। किन्तु धरातल पर इन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रभावी नहीं हो पाता है। वृक्ष की जड़े मिट्टी को जकड़े रखती हैं तथा वृक्षों का जाल जल के वेग को कम करने का काम करता है जिससे मिट्टी का कटाव भी कम होता है। साथ ही साथ वृक्षों की पत्तियाँ झड़ने के बाद मिट्टी में मिलकर उसकी उर्वरा शक्ति भी बढ़ाती है।
2. **बॉध बनाना** — नदियों, नालों पर बॉध निर्माण से जल की प्रवाह गति को कम किया जा सकता है।

इस प्रकार कम गति से प्रवाहित जल के साथ बहकर आयी मिट्टी वही निक्षेपित होती जायेगी और पीछे से आने वाली मिट्टी की मात्रा में कमी होती जायेगी।

3. **खेत पर मेड़ निर्माण** — खेतों पर मेड़ बाँध देने से खेतों में से निर्बाध रूप से पानी निकल नहीं पाता एवं सिंचाई भी आसानी से हो जाती है। खेतों पर मेड़ ऊँची कर देने से पानी आसानी से बह नहीं पाता है। जिसके कारण खेतों की मिट्टी का कटान नहीं हो पाता।
4. **सीढ़ीनुमा खेती**— पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीनुमा खेत बनाये जाते हैं। इस प्रकार जल जब नीचे गिरता है तो सीधी ढाल न होने के कारण सीढ़ी के सहारे गिरता है। जिससे मिट्टी का कटाव नहीं होता है।
5. **नियन्त्रित पशुचारण** — चारागाहों में लम्बी एवं नरम घासें उगाये जाने से पशु घास चरते समय भूमि की सतह तक नहीं पहुँच सकेंगे। जिससे पशुचारण से होने वाले मिट्टी के कटाव को रोका जा सकता है।

11.7 मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण से अभिप्राय मानवीय एवं प्राकृतिक कारणों से उपजाऊ भूमि तथा अर्द्धमरु भूमि का मरुस्थल में परिवर्तन होना है। मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया से कृषि भूमि के क्षेत्रफल में कमी एवं उत्पादन क्षमता में गिरावट होती है। भूमि में नमी के अभाव के कारण इन क्षेत्रों में वनस्पति आवरण नहीं पाया जाता है। हवा द्वारा अपरदन क्रिया होने से भूमि की लवणता में वृद्धि होती है। मिट्टी में ह्यूमस की मात्रा कम होती है जिससे मिट्टी की जल धारण क्षमता प्रभावित होती है।

शुष्क क्षेत्रों में वायु द्वारा अपरदन अधिक व्यापक होता है तीव्र वायु अपरदन से मरुस्थलीकरण (desertification) में वृद्धि होती है। भारत में वायु द्वारा मिट्टी का अपरदन अनुमानतः 50 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र को प्रभावित करता है जिसका अधिकांशतः राजस्थान में है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 2 मिलियन हेक्टेयर भूमि मरुस्थलीकरण के संकट से ग्रस्त है।

वायु द्वारा अपरदन की क्रिया अति दोहन या अति चारण (over grazing) के कारण प्राकृतिक स्थिति का आवरण नष्ट होने से तीव्र होती है।

सहारा, कालाहारी, अरब, थार, गोबी, अटाकामा, आस्ट्रेलिया, सोमाली आदि प्रमुख मरुस्थल हैं जो विश्व के स्थल भाग के कुल क्षेत्रफल के लगभग 1/3 क्षेत्र पर विस्तृत हैं। मरुस्थलीकरण विश्व की प्रमुख पर्यावरणीय समस्या उभरती जा रही है, जिसके लिए निम्न कारण उत्तरदायी हैं—

1. **प्राकृतिक कारक**— न्यून वर्षा, भूमि की लवणता वृद्धि, जल का खारापन, जलवायु परिवर्तन।
2. **मानवीय कारण**— वनविनाश, अनियन्त्रित पशुचारण, खनन, औद्योगिक प्रदूषण, आणविक परीक्षण आदि।

प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों से विश्व के मरुस्थलों का विस्तार होते जा रहा है। मरुस्थलों के किनारे वनों की कटाई के कारण वायु अपने द्वारा रेत उड़ाकर अर्द्धमरु भूमि अथवा कृषि भूमि में लाकर लवणता बढ़ा रही है। जिससे मरुस्थलों का विस्तार तेजी से हो रहा है।

भारत में राजस्थान के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पर थार मरुस्थल का विस्तार वनों की कटाई, न्यून वर्षा, अत्यधिक गर्मी से हो रहा है। **संयुक्त राष्ट्र संघ** के अनुसार मानवीय कारणों से विश्व का 1 करोड़ 530 लाख वर्ग किमी० क्षेत्र मरुस्थल में परिवर्तन हो गया है।

11.8 परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. मिट्टियों की उत्पत्ति किससे हुई ?
A. चट्टान B. वनस्पति C. जल D. बालू
2. तीव्र ढालों पर मृदा कैसी होती है ?
A. सामान्य B. पतली C. मोटी D. गहरी

3. लैटेराइट मिट्टी में किसकी मात्रा अधिक होती है ?
A. लोहा, एल्युमिनियम B. फास्फोरस C. मैग्नीशियम D. तॉबा
4. भारत में सबसे अधिक उपजाऊ मृदा कौन-सी है ?
A. जल मृदा
B. काली मृदा
C. जलोढ़ मृदा
D. चूनेदार मृदा
5. निम्न में कौन-सी फसल मृदा को नाइट्रोजन से भरपूर कर देती है ?
A. आलू B. मटर C. सूर्यमुखी D. गेहूँ
6. धान की खेती के लिए सर्वाधिक आदर्श मृदा कौन-सी है ?
A. लैटेराइट मृदा
B. लवण मृदा
C. जलोढ़ मृदा
D. काली मृदा
7. दोमट मिट्टी में मिट्टी का कौन-सा कण मिलता है ?
A. बालू B. मृत्रिका C. गाद D. उपरोक्त सभी
8. पौधों को सबसे अधिक पानी किस मिट्टी से मिलता है ?
A. चिकनी मिट्टी B. लवण मिट्टी
C. बलुई मिट्टी D. कोई नहीं
9. लावा प्रवाह से किस मिट्टी का निर्माण होता है ?
A. लाल मिट्टी B. काली मिट्टी
C. जलोढ़ मिट्टी D. लैटेराइट मिट्टी
10. विश्व मृदा दिवस मनाया जाता है ?
A. 5 दिसम्बर B. 5 जनवरी
C. 5 नवम्बर D. 5 अक्टूबर

उत्तर – 1-A, 2-B, 3-A, 4-C, 5-B, 6-C, 7-D, 8-A, 9-B, 10-A

11.9 सन्दर्भ

1. आर्थिक भूगोल के मूल तत्व— अलका गौतम
2. संसाधन एवं पर्यावरण — डॉ० चतुर्भुज मामोरिया एवं बी०एल० शर्मा ।
3. आर्थिक भूगोल - डॉ० चतुर्भुज मामोरिया
4. आर्थिक भूगोल के मूल तत्व — प्रो जगदीश सिंह एवं प्रो काशीनाथ सिंह
5. आर्थिक एवं संसाधन भूगोल — डॉ बी सी जाट
6. इलेक्ट्रानिक स्रोत ।

इकाई—12 : जल प्रदूषण, संकल्पना, जल प्रदूषण की समस्याएं एवं उपाय गंगा शुद्धिकरण परियोजना

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 प्रस्तावना
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 जल प्रदूषण
- 12.3 विश्व स्वास्थ्य संगठन
- 12.4 जल प्रदूषण के स्रोत
- 12.5 जल प्रदूषकों के प्रकार
- 12.6 जल प्रदूषण के प्रकार
- 12.7 जल प्रदूषण के मूल्यांकन का आधार
- 12.8 जल प्रदूषण के प्रभाव
- 12.9 जल प्रदूषण का नियन्त्रण
- 12.10 गंगा प्रदूषण का नियन्त्रण
- 12.11 सारांश
- 12.12 शब्द सूची
- 12.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 12.14 अभ्यासार्थ प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)
- 12.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें

12.0 प्रस्तावना :

पर्यावरण प्रबंधन एवं संविकास के लिए लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO-113 की 12वीं इकाई है। इस इकाई में आप जलप्रदूषण का अध्ययन करेंगे। इसके अंतर्गत जलप्रदूषण के स्रोत व प्रकार, जलप्रदूषण के मुख्य प्रकार, नदी प्रदूषण के दो रूप प्वाइन्ट प्रदूषण तथा नॉन प्वाइन्ट प्रदूषण मुख्य हैं।

जल प्रदूषण एक गंभीर पर्यावरणीय संकट है जो न केवल मानव स्वास्थ्य पर, बल्कि समग्र पारिस्थितिकी तंत्र पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। जल हमारे जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक संसाधन है, जिसका उपयोग पीने, कृषि, औद्योगिक प्रक्रियाओं, और घरेलू जरूरतों के लिए किया जाता है। इस कारण, जल स्रोतों की स्वच्छता और गुणवत्ता सुनिश्चित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेकिन आज, जल प्रदूषण एक प्रमुख चुनौती बन गया है, जिसका समाधान विभिन्न उपायों और योजनाओं के माध्यम से खोजा जा रहा है। जल प्रदूषण की संकल्पना में वे सभी प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जिनके माध्यम से जल में हानिकारक पदार्थों का समावेश होता है। यह प्रदूषण मानव गतिविधियों जैसे औद्योगिकीकरण, कृषि, और शहरीकरण के परिणामस्वरूप होता है। जब अवांछित तत्व जैसे रसायन, कीटनाशक, प्लास्टिक, और जैविक अपशिष्ट जल में मिल जाते हैं, तो इससे जल की गुणवत्ता में गिरावट आती है और यह मानव उपयोग के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। जल प्रदूषण के मुख्य स्रोतों में औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि अपशिष्ट, घरेलू गंदगी, और समुद्री प्रदूषण शामिल हैं। जल प्रदूषण की समस्याओं की बात करें तो यह स्वास्थ्य, पर्यावरण, और आर्थिक दृष्टिकोण से कई गंभीर समस्याएँ उत्पन्न करता है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से, प्रदूषित जल का सेवन करने से गंभीर बीमारियाँ जैसे दस्त, हैजा, टाइफाइड, और हेपेटाइटिस जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। ये बीमारियाँ विशेष रूप से बच्चों और बुजुर्गों के लिए खतरनाक हो सकती हैं। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से, जल प्रदूषण से जल जीवों की मृत्यु दर में वृद्धि होती है, जैव विविधता में

कमी आती है, और पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित हो जाता है। इससे खाद्य श्रृंखला प्रभावित होती है और पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य हिस्से पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आर्थिक दृष्टिकोण से, जल प्रदूषण से कृषि और मत्स्य पालन उद्योग को भारी नुकसान होता है, जिससे वित्तीय संकट उत्पन्न हो सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रदूषित जल स्रोतों की सफाई पर भारी खर्च आता है, जो सरकार और समुदायों पर एक वित्तीय बोझ बनता है।

12.1 उद्देश्य :

भूगोल में आधार पाठ्यक्रम MAGO-113 पर्यावरण प्रबंधन एवं संविकास की बारहवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप—

- पर्यावरण भूगोल के अंतर्गत “जल प्रदूषण” व उसके स्रोतों का अध्ययन करेंगे।
- जल प्रदूषण के प्रदूषक व प्रकार तथा जल प्रदूषक के प्रकारों को जान सकेंगे।
- जल प्रदूषणों के अन्तर्गत होने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे।
- जल प्रदूषण के नियन्त्रण के कारकों का अध्ययन कर सकेंगे।
- गंगा एक्शन प्लान परियोजना के अन्तर्गत किन-किन बिन्दुओं पर क्रियान्वयन होना है, आदि का अध्ययन करेंगे।

12.2 जल प्रदूषण :—

जल पृथ्वी तल का एक अनिवार्य पदार्थ है, जिसके बिना पृथ्वी पर जीवन असम्भव है। हम जल को कभी गम्भीरता से नहीं लेते हैं, किन्तु यह पृथ्वी पर सीमित अवस्था में है। जब इसमें धूल, मिट्टी, गन्दापानी व अन्य पदार्थ धुल जाते हैं। तब जल दूषित हो जाता है।

जल की भौतिक, रासायनिक तथा जीवीय विशेषताओं में (मानव स्वास्थ्य तथा जलीय जीवों पर) हानिकारक प्रभाव करने वाले परिवर्तन को जलप्रदूषण कहते हैं।

12.3 विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO : World Health Organization - 1966) :—

“प्राकृतिक या अन्य स्रोतों से उत्पन्न अवांछित बाहरी पदार्थों के कारण जल दूषित हो जाता है तथा वह विषाक्त एवं सामान्य स्तर से कम ऑक्सीजन के कारण जीवों के लिये हानिकारक हो जाता है तथा संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक होता है।”

“अंतरिक्ष के घोर अंधियारे में हमारा द्रव समान ग्रह एक कोमल नीलम की तरह चमक रहा है। इसके जैसा सौरमंडल में कुछ और है भी नहीं। यह सब जल के कारण है **जॉन टॉड**”

समस्त पृथ्वी में 71 प्रतिशत भाग पर जल है इसमें 97 प्रतिशत भाग समुद्री जल उपलब्ध है, जो अत्यधिक खारा है। 3 प्रतिशत भाग पर स्वच्छ जल पाया जाता है। इसमें 2.997 प्रतिशत ध्रुवों की बर्फ व ग्लेशियर के रूप में है। इस तरह पृथ्वी के कुल जल का केवल 0.003 प्रतिशत जल नदी, भूमिगत जल, झीलों, वाष्पन मिट्टी की नमी के रूप में मिलता है। जल वर्तमान समय में सबसे कीमती संसाधनों में से एक है।

नदी, झीलों, तालाबों, झरनों तथा कृत्रिम जलाशयों में पाया जाने वाला जल को भूजल अथवा भूतल जल (Surface Water) कहते हैं। जब यह जल रिसकर भूमि तथा चट्टानों के अन्दर प्रवेश कर जाता है। तब इसे भूमिगत जल की संज्ञा दी जाती है। रेत व कंकड़ की छिद्रमय जलमय सतहों को जिनसे होकर भूमिगत जल नीचे चला जाता है उसे जल भर कहते हैं। जब वर्षा का जल स्वयं भूमि व चट्टानों के अन्दर प्रवेश कर जाता है तब उसे प्राकृतिक भरपाई कहते हैं।

यदि किसी स्थान पर जल भूमि में प्रवेश करने की तुलना में अधिक निकाला जाता है तब ऐसे स्थानों का जलस्तर कम हो जाता है। जमीन पर छोड़ा गया प्रदूषक जब जलभृत में प्रवेश कर जाता है तब भूमिगत जल दूषित हो जाता है।

12.4 जल प्रदूषण के स्रोत

जल की शुद्धता में क्षति पहुँचाने वाले तत्वों को जल प्रदूषक कहते हैं। जल प्रदूषकों का जनन स्रोत निम्न है :—

1. प्राकृतिक स्रोत 2. मानवीकृत स्रोत

1. **प्राकृतिक स्रोत** :— इसके अन्तर्गत धूल, मृदा अपरदन, ज्वालामुखी उद्गार, भूमिस्खलन पौधों व जन्तुओं के विघटन एवं वियोजन को सम्मिलित किया जाता है। मृदा अपरदन के कारण अवसाद नदियों, तालाबों आदि में मिल जाता है। जिससे जल (गंदलापन) दूषित हो जाता है। इसी प्रकार भूमिस्खलन क्रिया में भी चट्टानों व मृदा के अवसाद जल में मिलकर जलदूषित कर देते हैं।
2. **मानवीकृत स्रोत** :— इसके अन्तर्गत औद्योगिक, नगरीय, कृषि तथा सामाजिक स्रोत (सांस्कृतिक एवं धार्मिक सम्मेलन) सम्मिलित है। नगरीय क्षेत्रों में सीवेज, भारी मात्रा में कूड़ा करकट, कारखानों से निकलने वाला कचरा, गन्दा पानी, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, कृत्रिम रासायनिक तत्वों आदि से निकलने वाले प्रदूषक नदियों के जल में मिलकर दूषित कर देते हैं।

12.5 जल प्रदूषकों के प्रकार :

जल प्रदूषकों को को कई आधार पर विभाजित किया जा सकता है, जो निम्नलिखित है :—

1. औद्योगिक प्रदूषण :—

औद्योगिक अपशिष्ट जल, रासायनिक प्रदूषक जिनमें सल्फाइड कार्बोनेट, क्लोराइड, नाइट्राइट्स, नाइट्रेट्स आदि मुख्य हैं, औद्योगिक प्रतिष्ठानों से अपशिष्ट के रूप में निकलता है जिनसे नदियों, झीलों एवं सागर तटीय भागों में मिलने से जल दूषित हो जाता है।

2. कृषिजात प्रदूषण :—

इसके अन्तर्गत कृषि में प्रयोग होने वाले रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार, पौधों के अपशिष्ट पदार्थ, शाकनाषी आदि मुख्य हैं, जिसके सड़ने-गलने एवं जल में मिलने से जलदूषित हो जाता है।

3. प्राकृतिक प्रदूषण :—

प्राकृतिक प्रदूषण के अन्तर्गत अपक्षय व अपरदन से उत्पन्न होने वाले अवसाद मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त ज्वालामुखी राख व धूलकण, भूमिस्खलन आदि से निकलने वाले कीचड़ जब जल के सम्पर्क में आता है। जब शुद्ध जल अपने आप दूषित हो जाता है।

4. जल में विलेय अकार्बनिक रसायन प्रदूषण :—

अम्ल, लवण तथा पारा और शीशे जैसे विषैले यौगिक होते हैं, इन रसायनों के जल में मिलने के कारण मछलियों व अन्य जलीय जीवों के जीवन पर घोर संकट उत्पन्न होता है, फसलों की पैदावार कम हो जाती है तथा जल के सम्पर्क से उपकरणों की क्षति उत्पन्न हो जाती है।

निलंबित कणों के अवसाद :—

निलंबित कण मिट्टी और अन्य ठोस पदार्थों के अविलेय कण हैं, जो जल में निलंबित रहते हैं। इसका मुख्य कारण मिट्टी का कटाव है। मृदा कणों की अधिक मात्रा से सूर्य के प्रकाश के प्रवेश में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इससे जलीय पौधे तथा शैवाल के प्रकाश संश्लेषण कार्य में कमी आ जाती है और जलाशयों का पर्यावरण सन्तुलन भंग हो जाता है। नदी व नालों में अधिक मृदा के बैठ जाने से जल बहने की गति मन्द पड़ जाती है। जिससे मछलियों का प्रजनन स्थल नष्ट हो जाता है।

कार्बनिक रसायन :—

गैसोलीन, प्लास्टिक, कीटनाशक, सफाई के रसायन, डिटरजेंट तथा तेल आदि सम्मिलित हैं। ये जलीय जीवन तथा मानव स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। इन रसायनों का प्रयोग गलत ढंग से निकासी होने के

कारण जल प्रदूषण हो जाता है।

जल में विलेय रेडियो समस्थानिक :-

ये रेडियोधर्मी अपषिष्ट विलेय में रहते हैं। ये खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जालों से गुजरकर ये विभिन्न ऊतकों और अंगों में जमा हो जाते हैं। ऐसे समस्थानिकों से निकलने वाला खतरनाक आयनकारी विकिरण कैंसर व अन्य बंषीय बीमारियों का घातक है।

ऊर्जा संयन्त्रों तथा उद्योगों से निकलने वाला गर्म पानी :-

संयन्त्रों को ठण्डा करने के लिये अत्यधिक मात्रा में जल की आवश्यकता पड़ती है। बिजलीघरों तथा उद्योगों से निकलने वाला अशुद्ध व गर्म जल जलाशयों के तापक्रम को बढ़ा देते हैं, जिससे ताप प्रदूषण फैलता है गर्म जल के द्वारा जल में जलीय जीवों का संकट तथा ऑक्सीजन की कमी उत्पन्न हो जाती है।

12.6 जल प्रदूषण के प्रकार :-

जल स्रोतों व जल भण्डारों के आधार पर जल प्रदूषण को निम्न 4 वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. भूपृष्ठीय जल का प्रदूषण (नदी के जल का प्रदूषण)
2. भूमिगत जल का प्रदूषण
3. झील के जल का प्रदूषण
4. सागरीय जल का प्रदूषण

1. भूपृष्ठीय जल का प्रदूषण :-

विश्व में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण में अत्यधिक विकास के कारण प्रतिवर्ष जल प्रदूषण का निर्माण होता जा रहा है। इन प्रदूषकों में सीवेज व घरेलू अपषिष्टों के अतिरिक्त कारखानों से निकलने वाले विषैले पदार्थ जैसे—नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, मैग्नेशियम, गन्धक तथा कैल्शियम, रासायनिक तत्वों से युक्त रासायनिक उर्वरक, डिटर्जेंट, जन्तुओं व मनुष्यों के अपशिष्ट पदार्थ आदि सम्मिलित हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष 2000 रासायनों का प्राकृतिक पर्यावरण में निरन्तर प्रवेश हो है, जिससे जल का नालों एवं छोटी सरिताओं के द्वारा नदियों, झीलों व तालाबों में प्रवेश होता रहता है। जिस कारण उनका प्रदूषण सुरक्षा स्तर को पार करता जा रहा है। नदी प्रदूषण के मुख्य स्रोत औद्योगिक क्षेत्र तथा प्रतिष्ठान, नगरीय क्षेत्र, कृषि क्षेत्र, मनुष्य के क्रियाकलाप मुख्य हैं।

1. प्वाइंट प्रदूषण 2. नॉन प्वाइंट प्रदूषण

1. प्वाइंट प्रदूषण :-

बिन्दु प्रदूषण सदैव दृश्य होता है, इसे सरलतापूर्वक अभिनिर्धारण किया जा सकता है। जिसका अर्थ है "किसी निर्दिष्ट अवस्थिति से प्रदूषकों का निकलना यथा; सीवर नाले का किसी नदी या झील से निकास, औद्योगिक प्रतिष्ठानों से अपषिष्ट जल के नालों का जलाशयों, झीलों या नदियों या सागर में निकास कारखानों की चिमनियाँ आदि।

2. नॉन प्वाइंट प्रदूषण :-

जब अनिर्दिष्ट अवस्थिति या स्रोत से प्रदूषण होता है, तो उसे नॉन प्वाइंट प्रदूषण कहते हैं। उदाहरण:- खेतों में रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक जब वर्षा के जल के साथ बहकर, झीलों, तालाबों व नदियों में पहुँच जाता है, तो उनसे होने वाला प्रदूषण नॉन प्वाइंट प्रदूषण कहते हैं। नॉन प्वाइंट प्रदूषण को कभी दृश्य नहीं होता है। औद्योगिक नगर नदियों के किनारे स्थापित होने के कारण भारत में, अधिकांश बड़े नगरों से निकलने वाला समस्त अपषिष्ट नदियों में जाता है। जिससे जल प्रदूषण अत्यधिक तीव्रता से फैलता जा रहा है।

2. झील प्रदूषण :-

झीलों में जल का प्रदूषण प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों स्रोतों में होता है। पहाड़ी क्षेत्रों में वनों के विनाश के कारण मृदा अपरदन के द्वारा भारी मलवा का निक्षेप झीलों में होता है, जिससे झीलों का जल प्रदूषित हो रहा है। कुमायूँ क्षेत्र की कई झीले पूर्ण रूप से अदृश्य हो गयी है। इसके अतिरिक्त "सूखाताल व सड़ियाताल" आदि झीलों में अपसादन के कारण प्रदूषण फैल रहा है।

झीलों के पास स्थित नगरों में मलजल तथा कारखानों से निकलने वाला अपशिष्ट पदार्थों का झीलों व तालाबों में डम्पिंग के कारण इनका स्थिर जल नदियों की तुलना में अत्यधिक प्रदूषित हो जाता है। झील या तालाब में किसी तत्व के सान्द्रण आवश्यकता से अधिक होने पर वह तत्व "कातिल जल" बन जाता है। जो फोफड़े के कैंसर के लिए जिम्मेदार है। इस कातिल रोग को "असबेस्टोसिस" कहते हैं। कृषि में प्रयुक्त होने वाले अजैविक पोषक तत्वों की भरित मात्रा में विसर्जन होता है, इसके अलावा सीवेज शोधन संयन्त्र भारी मात्रा में फॉस्फेट, नाइट्रेट तथा जैविक पदार्थ झीलों में उड़ेलते रहते हैं। जिससे झीलों का जल दूषित होता रहता है। अम्लीय वर्षा के कारण झीलों के जैविक समुदाय नष्ट हो जाते हैं। जर्मनी, ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडन और फिनलैण्ड में अम्ल वर्षा हो जाने के कारण अधिकांश झीलों के जैविक समुदाय पूर्णतः समाप्त हो गये हैं। इस प्रकार की झीलों को "मृतझील" की संज्ञा दी जाती है। उत्तरी अमेरिका एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों में अम्ल वर्षा को "कातिल झील" कहते हैं। अम्लीय वर्षा के कारण कनाडा में 140 झीलों को "मृत झील" घोषित किया गया है।

3. भूमिगत जल प्रदूषण :-

भूमिगत जल का प्रदूषण का मुख्य स्रोत रासायनिक अपशिष्ट जैसे—नाइट्रेट, फास्फोरस, पोटैश विभिन्न प्रकार के उर्वरकों के निक्षालन तथा सतह के नीचे गमन से कचरों द्वारा, तालाबों व कच्चे सैप्टिक टैंक आदि हैं।

भूमिगत जल के प्रदूषण को रोकने में मिट्टी व उसके नीचे पायी जाने वाली शैलिकीय वर्षा के जल का जमीन में प्रवेश करने की दर पर निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों में भुरभुरी मिट्टी पायी जाती है, भूमिगत जलस्तर भूसतह से अत्यधिक गहराई पर होता है, वर्षा का स्तर उच्च होता है, वहाँ जल के दूषित होने की सम्भावना अधिक होती है। जिन नगरों के किनारे नदियाँ नहीं होती हैं, वहाँ अवशिष्टों व दूषित जल को खोदे हुए गड्ढों तथा नवनिर्मित या प्राकृतिक तालों में डम्प किया जाता है। इसमें रासायनिक प्रदूषकों के जमीन के अन्दर रिसाव के कारण भूमिगत जल में प्रदूषण प्रारम्भ हो जाता है। इसी तरह नगरों में नगर महापालिका में कचरा डम्प साइट से प्रदूषकों का निक्षालन द्वारा नीचे की ओर गमन हो जाता है। इस तरह 400 मी० तक गहराई में जल रिसकर नीचे चला जाता है। जलरिसाव से जो प्रदूषक नीचे जाते हैं, उन्हें "निक्षालक" कहते हैं। ये निक्षालित प्रदूषक कदापि स्थिर नहीं रहते हैं। वरन् भूमिगत जल के साथ जलभरों में उनका गमन होता है। भारत के आन्ध्र प्रदेश के मेडक जिले में हैदराबाद नगर से 30 किमी० दूर स्थित पाटनचेरु औद्योगिक क्षेत्र के रासायनिक कारखानों से निस्सृत विषाक्त अपशिष्ट जल के कारण आसपास के क्षेत्रों का भूमिगत जल दूषित हो गया। 1989 में वहाँ औद्योगिक इकाई व कारखानों द्वारा 14 और गाँवों का जल दूषित होने की सूचना मिली, जिसे पीने से लोगों को उल्टी व जी मिचलाने की समस्या उत्पन्न हो गयी। समुद्र तटीय भागों में अवस्थित नगरों में कुँओं के जल के अत्यधिक निष्कासन से सतह पर कोटर बन जाते हैं। इन कोटरों के रिसाव से भूमिगत जल दूषित हो जाता है। समुद्र के जल घुलने से उसमें लवणता बढ़ जाती है। इस तरह की घटना संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क प्रान्त के किंग्स काउण्टी के ब्रुकलिन नगर में देखी गयी है। जहाँ जल के निष्कासन के बाद समुद्र का जल कोटरों द्वारा प्रवेश कर गया। वहाँ स्थित कुँओं का जल आवश्यकता से अधिक खारा होकर पीने के अयोग्य हो गया।

4. सागरीय जल का प्रदूषण :-

सागरीय जल का प्रदूषण का मुख्य कारण तटीय भागों पर स्थित नगरों के अपशिष्ट पदार्थों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकलने वाला रसायन तथा अन्य जहरीला पदार्थ है। सागर तटीय जल में एक तत्व के सान्द्रण में वृद्धि के कारण पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसका मुख्य उदाहरण जापान तट पर स्थित मिनामाता नगर है। जहाँ अपशिष्ट पदार्थों में पारे की अधिकता के कारण "पारा

विषाणु" फैल गया, जिससे नगर में कई लोगों की मृत्यु हो गयी। इस बीमारी का इतना भीषण प्रकोप हुआ कि इसका नाम मिनामाता पड़ गया। इसी प्रकार भारत के अण्डमान निकोबार द्वीप समूह से निकले अपशिष्टों के कारण समुद्री कोरल का विनाश हो गया तथा सैकड़ों मछलियाँ मर गयीं।

तेल वाहक जलयानों से भारी भरकम खनिज तेल का लीकेज होने से सागरीय जीव-जन्तुओं के लिये संकट उत्पन्न हो जाता है। प्रतिवर्ष औसतन 284 मिलियन गैलन खनिज तेल का रिसाव होता है। सन् 1967 में इंग्लैण्ड के कार्नवाल तट के पास "टारी कैनियन विनाश" से 100000 मिट्रिक टन खनिज तेल का विनाश हुआ। सन् 1969 में अमेरिका के पश्चिमी तट पर "सान्ता बरबरा दुर्घटना" से हजारों मिट्रिक टन खनिज तेल समुद्र में विलीन हो गया।

भारत में भी मुम्बई तट के पास खनिज तेल कूपों में दुर्घटना होती रहती है। 30 जुलाई 1982 में बाम्बे हाई के पास दुर्घटना के कारण 90 करोड़ रुपये के मूल्य के बराबर उपकरणों तथा बेशकीमती तेल की हानि हुई। खाड़ी युद्ध में भी इराक में खनिज तेल की अपार हानि हुई जिसमें लाखों टन तेल का विनाश हुआ। ऑयल टैंकरों के रिसाव से लाखों बैरल तेल शीघ्रता से समुद्री सतह पर फैल जाता है। इस तरह जलीय सतह पर फैले तेल को "ऑयल स्लिक" कहते हैं। इसके द्वारा सागरीय जल विषैला हो जाता है जिससे मछलियाँ मर जाती हैं तथा सागरीय परिस्थितिकीय तन्त्र को अपार हानि पहुँचती है।

12.7 जल प्रदूषण के मूल्यांकन का आधार

जल की गुणवत्ता मानक वे दिशा-निर्देश हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि जल कितना सुरक्षित और उपयोगी है। ये मानक विभिन्न प्रदूषकों और जल के भौतिक, रासायनिक, और जैविक गुणों के स्तर को मापने के लिए स्थापित किए गए हैं। जल की गुणवत्ता मानकों का उद्देश्य जल के उपयोगकर्ताओं के स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। विभिन्न संगठनों और मानक संस्थाओं द्वारा निर्धारित किए गए मानक निम्नलिखित प्रमुख पहलुओं को ध्यान में रखते हैं।

1. रासायनिक गुण

रासायनिक गुण जल की गुणवत्ता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये मानक जल में विभिन्न रासायनिक तत्वों और यौगिकों की अनुमत सीमाओं को परिभाषित करते हैं:

भारी धातुएँ: जैसे कि लेड (Pb), मरकरी (Hg), क्रोमियम (Cr), और आर्सेनिक (As)। ये तत्व अत्यंत विषैले होते हैं और मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं। इनका उच्च स्तर कैंसर, तंत्रिका तंत्र के विकार, और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है। नाइट्रेट्स और नाइट्राइट्स: कृषि में उपयोग किए जाने वाले उर्वरकों से जल में नाइट्रेट्स और नाइट्राइट्स का स्तर बढ़ सकता है। इनका उच्च स्तर मेटहेमोग्लोबिनेमिया (ब्लू बेबी सिंड्रोम) जैसी समस्याओं का कारण बन सकता है।

फॉस्फेट्स: जल में फॉस्फेट्स की अधिकता से अल्गल ब्लूम (फूलने वाले शैवाल) उत्पन्न हो सकते हैं, जो जल की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं और ऑक्सीजन की कमी का कारण बनते हैं।

2. जैविक गुण

जैविक गुण जल की गुणवत्ता का महत्वपूर्ण पहलू हैं, जो जल में जीवाणुओं, वायरस, और परजीवियों की उपस्थिति और मात्रा को मापते हैं:

फेकल कॉलिफॉर्म्स: ये बैक्टीरिया मानव या जानवरों की मल के संपर्क में आने का संकेत देते हैं। उनका उच्च स्तर जल जनित बीमारियों के जोखिम को बढ़ाता है।

ई. कोलाई (Escherichia coli): यह एक विशेष प्रकार का फेकल कॉलिफॉर्म बैक्टीरिया है जो पाचन तंत्र के संक्रमण का संकेत देता है। जल में इसका उच्च स्तर स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो सकता है।

वायरस और परजीवी: जैसे कि गार्डिया और क्रिप्टोस्पोरिडियम, जो जल के माध्यम से संचारित हो सकते हैं और गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकते हैं।

3. भौतिक गुण

जल के भौतिक गुण जल की दृश्य और भौतिक स्थिति को दर्शाते हैं:

पीएच स्तर: जल की अम्लीयता या क्षारीयता को मापता है। सामान्य पीएच सीमा 6.5 से 8.5 के बीच होती है। पीएच स्तर में अत्यधिक परिवर्तन जल की गुणवत्ता और पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित कर सकता है।

तापमान: जल का तापमान महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह जैविक गतिविधियों और रसायनिक प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करता है। अत्यधिक उच्च या निम्न तापमान जल के पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचा सकता है।

धुंधलापन और रंग: जल की धुंधलापन (टर्बिडिटी) और रंग भी महत्वपूर्ण गुण हैं। उच्च धुंधलापन जल में प्रदूषक तत्वों की उपस्थिति का संकेत दे सकता है, और जल का रंग प्रदूषकों की उपस्थिति को दर्शा सकता है।

4. जैविक ऑक्सीजन मांग (BOD) और रासायनिक ऑक्सीजन मांग (COD)

BOD (Biochemical Oxygen Demand): यह मापता है कि जैविक प्रदूषकों को विघटित करने के लिए जल में कितनी ऑक्सीजन की आवश्यकता है। उच्च स्तर जल में जैविक प्रदूषण की उच्चता का संकेत देता है। COD (Chemical Oxygen Demand): यह मापता है कि रासायनिक प्रदूषकों को विघटित करने के लिए जल में कितनी ऑक्सीजन की आवश्यकता है। COD का उच्च स्तर जल में रासायनिक प्रदूषण की उच्चता को दर्शाता है।

12.8 जल प्रदूषण का प्रभाव :

जल प्रदूषण का प्रभाव व्यापक और गहरा होता है, जो न केवल पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ता है बल्कि मानव स्वास्थ्य और आर्थिक स्थिरता पर भी नकारात्मक असर डालता है। जल प्रदूषण के मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैं

स्वास्थ्य पर प्रभाव

जल प्रदूषण का स्वास्थ्य पर प्रभाव अत्यंत गंभीर और व्यापक होता है, जो वैश्विक स्वास्थ्य संकट का एक प्रमुख कारण बन चुका है। प्रदूषित जल में विभिन्न हानिकारक तत्व, जैसे कि बैक्टीरिया, वायरस, और रसायन, होते हैं जो मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालते हैं। जब लोग प्रदूषित जल का सेवन करते हैं या इसके संपर्क में आते हैं, तो वे जल जनित बीमारियों और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर सकते हैं। प्रदूषित जल का सेवन करने से जल जनित बीमारियाँ जैसे कि हैजा, टायफॉइड, डायरिया, और हेपेटाइटिस हो सकती हैं। ये बीमारियाँ मुख्य रूप से बैक्टीरिया, वायरस, और परजीवियों के कारण होती हैं जो दूषित जल में पनपते हैं। हैजा, टायफॉइड, और डायरिया जैसे रोग गंभीर दस्त और उल्टी का कारण बन सकते हैं, जो निर्जलीकरण, कमजोरी, और मृत्यु का कारण बन सकते हैं यदि समय पर उपचार न किया जाए। हेपेटाइटिस जैसे यकृत संक्रमण से लीवर की गंभीर बीमारियाँ हो सकती हैं, जो जीवन को संकट में डाल सकती हैं।

प्रदूषित जल में मौजूद रसायन, जैसे कि भारी धातुएँ (जैसे लेड और आर्सेनिक) और औद्योगिक अपशिष्ट, गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकते हैं। इन रसायनों का लंबी अवधि तक सेवन करने से कैंसर, गुर्दे की बीमारियाँ, और हृदय रोग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, आर्सेनिक युक्त जल का सेवन त्वचा, फेफड़े, और मूत्राशय के कैंसर के जोखिम को बढ़ा सकता है। लेड, एक और सामान्य प्रदूषक, विशेष रूप से बच्चों के लिए हानिकारक होता है, जिससे मानसिक विकास में रुकावट, शारीरिक विकास में असमर्थता, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं। प्रदूषित जल का सेवन करने से पोषण संबंधी समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। जब जल में भारी धातुएँ और अन्य विषैले तत्व होते हैं, तो ये मिट्टी और फसलों को भी प्रभावित कर सकते हैं, जिससे पोषण संबंधी कमी की समस्याएँ हो सकती हैं। इस प्रकार की कमी से बच्चों में कुपोषण, वृद्धि में बाधा, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं। जल प्रदूषण के स्वास्थ्य पर प्रभाव का एक और पहलू आर्थिक है। प्रदूषित जल से उत्पन्न बीमारियों के इलाज के लिए अस्पतालों और स्वास्थ्य सेवाओं पर अतिरिक्त खर्च आता है। यह विशेष रूप से विकासशील देशों में एक महत्वपूर्ण समस्या है, जहाँ स्वच्छ जल की उपलब्धता सीमित होती है और स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली पर दबाव बढ़ जाता है। प्रदूषित जल से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्याओं का मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है। बीमारियों और स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करने से लोगों में तनाव, चिंता, और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। जल प्रदूषण के स्वास्थ्य पर प्रभाव को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रदूषण के स्रोतों को नियंत्रित किया जाए, स्वच्छ जल की

उपलब्धता सुनिश्चित की जाए, और लोगों को जल जनित बीमारियों से बचाव के उपायों के बारे में जागरूक किया जाए। इसके अतिरिक्त, स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की पहुंच और गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए कदम उठाने चाहिए, ताकि प्रदूषित जल के स्वास्थ्य प्रभावों को प्रभावी ढंग से संबोधित किया जा सके।

पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव

जल प्रदूषण का पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव गहरा और व्यापक होता है, जो जलीय जीवन, पारिस्थितिक तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली, और समग्र पर्यावरणीय संतुलन को प्रभावित करता है। जब जल स्रोतों में प्रदूषक तत्व, जैसे कि रसायन, प्लास्टिक, और औद्योगिक अपशिष्ट, मिल जाते हैं, तो इससे जलीय पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होता है। जल प्रदूषण जलीय जीवन के लिए अत्यंत हानिकारक होता है। प्रदूषित जल में रसायनों और विषैले तत्वों के कारण मछलियों, मेंढकों, कछुओं, और अन्य जलीय जीवों की स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है। उदाहरण के लिए, भारी धातुएँ जैसे कि लेड और मरकरी, जब जल में मिल जाती हैं, तो ये मछलियों के शरीर में जमा हो सकती हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य में गिरावट आती है और उनके जीवनकाल को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रदूषित जल से उत्पन्न होने वाले अलगल ब्लूम (फूलने वाले शैवाल) ऑक्सीजन की मात्रा को कम करते हैं, जिससे जलीय जीवन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की कमी होती है और कई प्रजातियाँ मर सकती हैं। जल प्रदूषण पारिस्थितिक तंत्र की संरचना को भी प्रभावित करता है। प्रदूषित जल के कारण जलीय पौधों की वृद्धि में रुकावट उत्पन्न होती है, जिससे उनके द्वारा प्रदान किए गए आवास और भोजन की कमी होती है। इसके परिणामस्वरूप, जलीय जीवन की विविधता और पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता पर असर पड़ता है। पारिस्थितिक तंत्र की संरचना में असंतुलन का परिणाम खाद्य श्रृंखला में भी देखा जाता है, क्योंकि प्रदूषित जल से उत्पन्न बीमारियाँ और मौतें खाद्य श्रृंखला के अन्य जीवों को प्रभावित करती हैं।

जल प्रदूषण पारिस्थितिक तंत्र के स्वच्छता और संतुलन को बिगाड़ता है। जैसे-जैसे प्रदूषक तत्व जल में मिलते हैं, जल के स्वच्छता मानक घट जाते हैं और पारिस्थितिक तंत्र की सामान्य कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, प्लास्टिक कचरा जल स्रोतों में जमा होता है और जलीय जीवों के लिए हानिकारक होता है, साथ ही इससे जल की स्वच्छता और गुणवत्ता में भी कमी आती है। जल प्रदूषण का असर केवल जल पारिस्थितिक तंत्र तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि इसका भौगोलिक और जलवायु पर भी प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित जल के कारण कुछ क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया को भी तेज किया जा सकता है। जैसे-जैसे प्रदूषण बढ़ता है, जलवायु और मौसम में असंतुलन उत्पन्न होता है, जो पूरे पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करता है। जल प्रदूषण के पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ने वाले प्रभाव सामाजिक और आर्थिक पहलुओं को भी प्रभावित करते हैं। जब जल स्रोतों में प्रदूषण बढ़ता है, तो इसके परिणामस्वरूप मत्स्य पालन और पर्यटन जैसे जल आधारित उद्योग प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रदूषित जल से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना करने के लिए स्थानीय समुदायों को अतिरिक्त संसाधनों और समर्थन की आवश्यकता होती है, जो आर्थिक बोझ को बढ़ाता है। जल प्रदूषण के पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव को कम करने के लिए प्रभावी प्रबंधन और नियंत्रण उपायों की आवश्यकता होती है। इसमें जल स्रोतों की नियमित निगरानी, प्रदूषण नियंत्रण विधियों का कार्यान्वयन, और पारिस्थितिक तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली को संरक्षित करने के लिए कदम उठाना शामिल है। पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य को बनाए रखने और जल प्रदूषण के प्रभावों को कम करने के लिए, एक समग्र और सतत दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जो प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा और पर्यावरणीय संतुलन को सुनिश्चित करने में सहायक हो।

जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव

जल प्रदूषण का जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव गहरा और कई स्तरों पर फैला हुआ है, जो वायुमंडलीय परिस्थितियों, मौसमीय पैटर्न, और वैश्विक तापमान में महत्वपूर्ण परिवर्तन को जन्म देता है। जल प्रदूषण का सीधा और परोक्ष प्रभाव जलवायु प्रणाली को प्रभावित करता है, जो पर्यावरणीय असंतुलन और सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों को उत्पन्न करता है। जल प्रदूषण के परिणामस्वरूप जल स्रोतों में अपशिष्ट और अवशिष्टों के विघटन से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ सकता है। उदाहरण के लिए, जल में कार्बनिक पदार्थों के डीकम्पोज होने से मीथेन गैस उत्पन्न होती है, जो एक प्रमुख ग्रीनहाउस गैस है। मीथेन गैस वायुमंडल में जमा होकर वैश्विक तापमान को बढ़ा सकती है, जिससे जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया तेज होती

है। जल प्रदूषण के कारण वायुमंडल में प्रदूषक तत्व, जैसे कि सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड, मिल जाते हैं, जो अम्लीय वर्षा का कारण बनते हैं। अम्लीय वर्षा से जल स्रोतों की गुणवत्ता प्रभावित होती है, और इससे जल पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होता है। अम्लीय वर्षा के कारण मिट्टी की संरचना और पोषक तत्वों की उपलब्धता भी प्रभावित होती है, जो कृषि और वनस्पति के विकास को प्रभावित करता है। जल प्रदूषण के प्रभाव से जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया में गड़बड़ी होती है, जो मौसम पैटर्न को प्रभावित करता है। प्रदूषित जल स्रोतों से वाष्पित होने वाली गैसों जलवायु में परिवर्तन कर सकती हैं, जिससे असामान्य मौसमीय घटनाएँ, जैसे कि अत्यधिक बारिश, सूखा, और बर्फबारी, बढ़ सकती हैं। इन परिवर्तनों से प्राकृतिक आपदाएँ, जैसे कि बाढ़ और सूखा, अधिक बार और अधिक गंभीर रूप से उत्पन्न हो सकती हैं, जो कृषि, जल संसाधनों, और मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। पानी का स्तर और समुद्री स्तर में वृद्धिरूप जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप समुद्री स्तर में वृद्धि होती है, जो मुख्यतः ग्लेशियरों और आर्कटिक आइस की पिघलने के कारण होता है। प्रदूषित जल स्रोतों के कारण जलवायु परिवर्तन की प्रक्रिया तेज होती है, जिससे समुद्रों में पानी का स्तर बढ़ता है। समुद्री स्तर में वृद्धि से तटीय क्षेत्रों में बाढ़, तटीय क्षति, और समुद्री ज्वार-भाटा की स्थिति उत्पन्न होती है, जो स्थानीय निवासियों और पारिस्थितिक तंत्र के लिए खतरा बनता है। जलवायु परिवर्तन के साथ जल प्रदूषण का प्रभाव प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता और गुणवत्ता को प्रभावित करता है। प्रदूषित जल के कारण जल स्रोतों की कमी और जल की गुणवत्ता में गिरावट होती है, जो कृषि, ऊर्जा उत्पादन, और उद्योगों के लिए आवश्यक जल आपूर्ति को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन के कारण पानी के स्रोतों में बदलाव होते हैं, जो सूखा और बाढ़ जैसी समस्याओं को उत्पन्न कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाले असामान्य मौसमीय परिस्थितियों और प्राकृतिक आपदाओं से सामाजिक और आर्थिक स्थिति प्रभावित होती है। कृषि उत्पादकता में कमी, जल संसाधनों की कमी, और बाढ़ जैसी समस्याओं के कारण स्थानीय समुदायों को गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, जो विकासशील देशों और कमजोर समुदायों के लिए आर्थिक बोझ बढ़ाता है। जल प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसमें जल प्रदूषण के स्रोतों को नियंत्रित करना, जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाना, और स्थायी प्रबंधन उपायों को अपनाना शामिल है। जलवायु परिवर्तन और जल प्रदूषण के मिलेजुले प्रभावों को समझते हुए, हमें पर्यावरणीय नीति, जन जागरूकता, और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से एक सतत और स्वस्थ पर्यावरण की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता है।

आर्थिक प्रभाव

जल प्रदूषण के आर्थिक प्रभाव गहरे और विविध हैं, जो स्थानीय, राष्ट्रीय, और वैश्विक स्तर पर आर्थिक स्थिरता को प्रभावित करते हैं। जब जल स्रोतों में प्रदूषण बढ़ता है, तो इसका सीधा असर जल आधारित उद्योगों, सार्वजनिक स्वास्थ्य, और विकासशील क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। जल प्रदूषण का सबसे स्पष्ट प्रभाव जल आधारित उद्योगों पर पड़ता है, जैसे कि मत्स्य पालन, पर्यटन, और जल शक्ति उत्पादन। प्रदूषित जल में मछलियाँ और अन्य जलीय जीव स्वस्थ तरीके से विकसित नहीं हो पाते, जिससे मछलियों की संख्या में कमी आती है और मछुआरों की आय प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त, जल स्रोतों में प्रदूषण के कारण पर्यटन स्थल, जैसे कि तटीय और झीलों वाले क्षेत्र, का आकर्षण घटता है, जिससे पर्यटन उद्योग को आर्थिक नुकसान होता है। जल प्रदूषण के कारण जल शक्ति उत्पादन, जैसे कि जल विद्युत परियोजनाओं, की क्षमता भी प्रभावित हो सकती है, क्योंकि प्रदूषित जल पंपिंग और टर्बाइन सिस्टम को नुकसान पहुँचा सकता है। जल प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का आर्थिक बोझ भी काफी भारी होता है। प्रदूषित जल से उत्पन्न बीमारियों, जैसे कि हैजा, डायरिया, और यकृत संक्रमण, के इलाज के लिए स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं पर अतिरिक्त खर्च आता है। अस्पतालों और क्लीनिक्स पर बढ़ते दबाव के कारण चिकित्सा सेवाओं की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है, और स्वास्थ्य देखभाल की लागत में वृद्धि हो सकती है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए सरकारी और निजी संस्थानों को बड़े पैमाने पर संसाधनों का निवेश करना पड़ता है, जो आर्थिक रूप से चुनौतीपूर्ण हो सकता है। जल प्रदूषण का कृषि क्षेत्र पर भी महत्वपूर्ण असर पड़ता है। सिंचाई के लिए उपयोग किए जाने वाले जल में प्रदूषक तत्वों के कारण फसलों की गुणवत्ता और उत्पादकता में कमी आती है। जब जल में रसायन और भारी धातुएँ मिल जाती हैं, तो ये फसलों के विकास को प्रभावित करती हैं और खाद्य सुरक्षा पर संकट उत्पन्न करती हैं। इसके परिणामस्वरूप, किसानों की आय में कमी होती है और खाद्य कीमतों

में वृद्धि होती है, जो अंततः उपभोक्ताओं के लिए आर्थिक बोझ बढ़ाता है।

जल प्रदूषण के कारण वित्तीय और सामाजिक असमानताएँ भी बढ़ती हैं। गरीब और विकासशील क्षेत्रों में स्वच्छ जल की कमी और जल प्रदूषण से प्रभावित होने वाले समुदायों को स्वास्थ्य, शिक्षा, और अन्य बुनियादी सेवाओं पर अधिक खर्च करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप, आर्थिक विकास और सामाजिक समानता में बाधा उत्पन्न होती है। आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए अतिरिक्त वित्तीय सहायता और संसाधनों की आवश्यकता होती है, जो विकासशील देशों के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती होती है। विपत्ति प्रबंधन और पुनर्वास जल प्रदूषण के कारण उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक आपदाओं, जैसे कि बाढ़ और सूखा, के प्रबंधन और पुनर्वास में भी आर्थिक लागत शामिल होती है। आपदा प्रबंधन, राहत कार्य, और पुनर्निर्माण के लिए सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों को बड़ी मात्रा में संसाधन और धनराशि की आवश्यकता होती है। इन कार्यों का वित्तीय बोझ स्थानीय और राष्ट्रीय बजट पर पड़ता है, जो विकास और प्रगति को प्रभावित करता है। जल प्रदूषण के आर्थिक प्रभाव को कम करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें प्रदूषण नियंत्रण उपायों का कार्यान्वयन, स्वच्छ जल प्रबंधन, और सतत विकास नीतियाँ शामिल हैं। आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए, जल प्रदूषण के प्रभावों को संबोधित करने के लिए प्रभावी और समन्वित रणनीतियाँ अपनानी होंगी। इसके अलावा, सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच सहयोग और जन जागरूकता को बढ़ावा देना भी महत्वपूर्ण है, ताकि जल प्रदूषण के आर्थिक प्रभावों को प्रभावी ढंग से कम किया जा सके।

सामाजिक प्रभाव

जल प्रदूषण का सामाजिक प्रभाव गहरा और व्यापक होता है, जो समुदायों की जीवन गुणवत्ता, सामाजिक संरचना, और समग्र जीवनशैली पर महत्वपूर्ण असर डालता है। यह प्रभाव स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति, और सामाजिक असमानताओं के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है, जिससे पूरे समाज पर कई स्तरों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जल प्रदूषण सीधे तौर पर समुदायों की स्वास्थ्य स्थिति पर प्रभाव डालता है। प्रदूषित जल में हानिकारक बैक्टीरिया, वायरस, और रसायन होते हैं, जो जल जनित बीमारियों का कारण बन सकते हैं। हैजा, डायरिया, टायफॉइड, और हेपेटाइटिस जैसी बीमारियाँ आमतौर पर उन क्षेत्रों में होती हैं जहाँ स्वच्छ जल की उपलब्धता नहीं होती। इन बीमारियों के कारण लोगों की जीवन गुणवत्ता में गिरावट आती है, और जीवन की औसत अवधि कम हो सकती है। इसके अतिरिक्त, बच्चों और बुजुर्गों जैसी संवेदनशील जनसंख्या समूहों को अधिक प्रभावित किया जाता है, जिससे उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर असर पड़ता है। जल प्रदूषण के प्रभाव से सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बढ़ती हैं। गरीब और विकासशील क्षेत्रों में स्वच्छ जल की कमी और प्रदूषण के कारण इन समुदायों को अतिरिक्त स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो उनकी आर्थिक स्थिति को और भी खराब करता है। स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की कमी और उच्च चिकित्सा खर्च इन समुदायों को और अधिक आर्थिक रूप से कमजोर बना देता है। इसके अलावा, इन क्षेत्रों में शिक्षा और रोजगार के अवसर भी सीमित हो जाते हैं, जिससे सामाजिक असमानताएँ और बढ़ जाती हैं। जल प्रदूषण के कारण सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय मूल्य भी प्रभावित होते हैं। बहुत सी सांस्कृतिक गतिविधियाँ और परंपराएँ जल स्रोतों से जुड़ी होती हैं, जैसे कि पूजा, धार्मिक अनुष्ठान, और सामुदायिक गतिविधियाँ। प्रदूषित जल के कारण इन परंपराओं और सांस्कृतिक अभ्यासों में रुकावट आती है, जिससे समुदायों की सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक एकता पर असर पड़ता है। इसके अलावा, जल स्रोतों के प्रदूषण से पारिस्थितिकीय स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है, जो समुदायों के जीवन पर निर्भर करता है।

जल प्रदूषण के सामाजिक प्रभावों से निपटने के लिए समुदायों के बीच सहयोग और समर्थन की आवश्यकता होती है। जब जल स्रोत प्रदूषित होते हैं, तो स्थानीय समुदायों को प्रदूषण नियंत्रण और सफाई अभियानों में सक्रिय भागीदारी करनी होती है। हालांकि, आर्थिक संसाधनों और सुविधाओं की कमी के कारण कई समुदायों में इस प्रकार की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी की कमी हो सकती है, जिससे प्रदूषण की समस्या और बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप, सामुदायिक संरचना और सामाजिक समर्थन प्रणालियों पर भी प्रभाव पड़ता है। जल प्रदूषण के सामाजिक प्रभाव को संबोधित करने के लिए प्रभावी नीतियों और संविधानिक उपायों की आवश्यकता होती है। जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए सरकारी योजनाओं और कानूनों का उचित कार्यान्वयन आवश्यक है, ताकि प्रदूषण की समस्या को समाधान किया जा सके और सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित किया जा सके। इन नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन से समाज की स्वास्थ्य स्थिति में सुधार हो सकता

है और सामाजिक असमानताओं को कम किया जा सकता है। जल प्रदूषण का सामाजिक प्रभाव समाज की सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। इसके लिए आवश्यक है कि समाज, सरकार, और अन्य संबंधित पक्ष मिलकर काम करें, ताकि जल प्रदूषण की समस्या को प्रभावी ढंग से हल किया जा सके। इसमें समुदायों को जागरूक करना, स्वच्छ जल प्रबंधन की दिशा में ठोस कदम उठाना, और सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए सुसंगत नीतियों का कार्यान्वयन शामिल है। इस प्रकार, जल प्रदूषण के सामाजिक प्रभावों को कम करने और समाज की समग्र भलाई को बढ़ाने के लिए एक समग्र और समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

12.9 जल प्रदूषण का नियन्त्रण

जल प्रदूषण का नियंत्रण एक महत्वपूर्ण और जटिल कार्य है, जिसे सफलतापूर्वक लागू करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। जल प्रदूषण की समस्या विश्वभर में एक गंभीर चुनौती बन चुकी है, और इसे नियंत्रित करने के लिए विभिन्न उपायों और नीतियों की आवश्यकता है। जल प्रदूषण का नियंत्रण न केवल पर्यावरण और स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह आर्थिक विकास और सामाजिक स्थिरता के लिए भी आवश्यक है।

औद्योगिक अपशिष्ट नियंत्रण

औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन एक महत्वपूर्ण पहलू है जो जल प्रदूषण को नियंत्रित करने और पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। औद्योगिक अपशिष्ट वह कचरा और अपशिष्ट है जो औद्योगिक प्रक्रियाओं के दौरान उत्पन्न होता है, जिसमें रसायन, धातुएं, तरल अपशिष्ट, और ठोस कचरा शामिल हैं। इन अपशिष्टों का निपटान और प्रबंधन न केवल जल स्रोतों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए आवश्यक है, बल्कि यह स्वास्थ्य और सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन के अंतर्गत कई महत्वपूर्ण पहलू शामिल हैं, जैसे कि अपशिष्ट की उत्पत्ति, संग्रहण, उपचार, और निपटान। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन की पहली प्राथमिकता अपशिष्ट की उत्पत्ति और वर्गीकरण है। अपशिष्ट को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है, जैसे कि रासायनिक अपशिष्ट, भारी धातु युक्त अपशिष्ट, और जैविक अपशिष्ट। यह वर्गीकरण अपशिष्ट के उचित प्रबंधन के लिए आवश्यक है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के अपशिष्टों के लिए विभिन्न उपचार और निपटान विधियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए, रासायनिक अपशिष्टों को विशेष रासायनिक उपचार की आवश्यकता होती है, जबकि जैविक अपशिष्ट को जैविक उपचार के माध्यम से निपटाया जा सकता है। औद्योगिक अपशिष्ट के संग्रहण का उचित तरीका सुनिश्चित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपशिष्ट को उचित रूप से संग्रहित करने से इसके रिसाव और प्रदूषण के जोखिम को कम किया जा सकता है। अपशिष्ट संग्रहण के लिए विशेष कंटेनर और भंडारण सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जो अपशिष्ट की प्रकृति और मात्रा के आधार पर डिजाइन की जाती हैं। इन सुविधाओं को नियमित रूप से निरीक्षण और रखरखाव की आवश्यकता होती है ताकि किसी भी प्रकार की लीकहम या रिसाव को रोका जा सके। औद्योगिक अपशिष्ट के उपचार के लिए विभिन्न तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिनमें भौतिक, रासायनिक, और जैविक उपचार विधियाँ शामिल हैं। भौतिक उपचार में अपशिष्ट के ठोस और तरल भागों को अलग करना शामिल होता है, जबकि रासायनिक उपचार में अपशिष्ट के हानिकारक रसायनों को प्रतिक्रिया कर उन्हें निष्क्रिय किया जाता है। जैविक उपचार में सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके अपशिष्ट को तोड़ा जाता है। इन उपचार विधियों का चयन अपशिष्ट की प्रकृति और उसकी विशेषताओं पर निर्भर करता है। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन में पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग की महत्वपूर्ण भूमिका है। अपशिष्ट को पुनर्चक्रित करने से संसाधनों की बचत होती है और पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है। उदाहरण के लिए, धातु युक्त अपशिष्ट को पुनः उपयोग के लिए संसाधित किया जा सकता है, जिससे नए धातु संसाधनों की आवश्यकता कम होती है। इसके अलावा, कुछ औद्योगिक अपशिष्टों को पुनः उपयोग करके नई उत्पाद निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है, जो कुल अपशिष्ट को कम करता है और संसाधनों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित करता है। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन के लिए कानूनी और नियामक ढाँचा भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न देशों और क्षेत्रों में अपशिष्ट प्रबंधन के लिए सख्त नियम और विनियम होते हैं जो उद्योगों को अपशिष्ट को उचित तरीके से प्रबंधित करने के लिए बाध्य करते हैं। इन नियमों में अपशिष्ट के संग्रहण, उपचार, और निपटान के लिए मानक और दिशानिर्देश शामिल होते हैं। सरकार और पर्यावरणीय एजेंसियों द्वारा इन नियमों का पालन सुनिश्चित करने के लिए नियमित निरीक्षण और निगरानी की जाती है। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन के सफल कार्यान्वयन के लिए जन जागरूकता और प्रशिक्षण भी महत्वपूर्ण हैं। कर्मचारियों और

प्रबंधकों को अपशिष्ट प्रबंधन की विधियों और प्रोटोकॉल के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, ताकि वे अपशिष्ट को सही तरीके से प्रबंधित कर सकें। इसके अतिरिक्त, उद्योगों को अपशिष्ट प्रबंधन के सर्वोत्तम प्रथाओं और तकनीकों के बारे में जागरूक करने के लिए जन जागरूकता अभियान और कार्यशालाएँ आयोजित की जानी चाहिए। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिसमें अपशिष्ट की उत्पत्ति से लेकर उपचार और निपटान तक सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। यह दृष्टिकोण विभिन्न उपायों और तकनीकों के संयोजन से प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें अपशिष्ट की मात्रा को कम करना, उसका उचित संग्रहण और उपचार, पुनर्चक्रण और पुनरुपयोग, कानूनी और नियामक अनुपालन, और जन जागरूकता शामिल है। इन सभी उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करके ही औद्योगिक अपशिष्ट के प्रबंधन में सफलता प्राप्त की जा सकती है और जल प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है। औद्योगिक अपशिष्ट प्रबंधन का प्रभावी कार्यान्वयन न केवल पर्यावरण की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह स्वास्थ्य, सुरक्षा, और आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से भी लाभकारी है। सही प्रबंधन विधियों को अपनाकर, औद्योगिक अपशिष्ट को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे एक स्वच्छ और सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सके।

कृषि अपशिष्ट प्रबंधन

कृषि अपशिष्ट प्रबंधन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले अपशिष्टों को नियंत्रित करने और उनके पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए अपनाई जाती है। कृषि अपशिष्ट विभिन्न प्रकार के होते हैं, जिनमें फसल कटाई के बाद बचे हुए पौधे, पराली, कीटनाशक और उर्वरक से संबंधित अवशेष, और पशु संबंधित कचरा शामिल हैं। इन अपशिष्टों का उचित प्रबंधन न केवल जल और भूमि की गुणवत्ता को बनाए रखने में मदद करता है, बल्कि यह कृषि उत्पादन को भी स्थिर और टिकाऊ बनाने में योगदान करता है।

कृषि अपशिष्ट की उत्पत्ति मुख्यतः फसल की कटाई और पशुपालन से होती है। फसल कटाई के बाद बचे हुए पौधे, जैसे कि पराली और भूसा, आमतौर पर अपशिष्ट के रूप में उत्पन्न होते हैं। कीटनाशक और उर्वरक के उपयोग से भी अपशिष्ट उत्पन्न होता है, जैसे कि खाली बोतलें और पैकेजिंग सामग्री। पशुपालन से संबंधित अपशिष्ट में गोबर, मूत्र, और अन्य अवशेष शामिल होते हैं। इन अपशिष्टों को उनकी प्रकृति और उनके संभावित पर्यावरणीय प्रभाव के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है ताकि उन्हें उचित तरीके से प्रबंधित किया जा सके। कृषि अपशिष्ट के संग्रहण और परिवहन के लिए उपयुक्त ढंग से योजना बनाना आवश्यक है। पराली और अन्य ठोस अपशिष्टों को संग्रहित करने के लिए विशेष कंटेनर और भंडारण सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। अपशिष्ट को साफ-सुथरे और सुरक्षित ढंग से संग्रहित करने से इसके फैलने और पर्यावरण में घुलने से रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त, अपशिष्ट के परिवहन के लिए उपयुक्त वाहनों का उपयोग किया जाता है, जो अपशिष्ट को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुरक्षित रूप से ले जाने में मदद करते हैं। कृषि अपशिष्ट के उपचार और पुनर्चक्रण के विभिन्न उपाय होते हैं, जो पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में सहायक होते हैं। पराली और अन्य ठोस अपशिष्टों को कंपोस्टिंग प्रक्रिया के माध्यम से जैविक खाद में परिवर्तित किया जा सकता है, जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। गोबर और अन्य पशु अपशिष्ट को बायोगैस उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है, जिससे ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है और अपशिष्ट का निपटान किया जा सकता है। कीटनाशक और उर्वरक के अपशिष्ट को सुरक्षित तरीके से निपटाने के लिए उन्हें विशेष उपचार प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है ताकि पर्यावरणीय प्रदूषण को रोका जा सके। उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग कृषि में फसलों की वृद्धि और रोग नियंत्रण के लिए किया जाता है, लेकिन इनके अधिक उपयोग से पर्यावरणीय प्रदूषण हो सकता है। इसके नियंत्रण के लिए, किसानों को जैविक और प्राकृतिक उर्वरकों के उपयोग की सलाह दी जाती है, जो कम हानिकारक होते हैं। इसके अलावा, कीटनाशक और उर्वरकों के उपयोग के लिए सही मात्रा और समय का पालन करना महत्वपूर्ण है, ताकि इनके अत्यधिक उपयोग से होने वाले प्रभावों को कम किया जा सके। कृषि अपशिष्ट प्रबंधन के लिए कानूनी और नियामक ढाँचा भी आवश्यक है। विभिन्न देशों में कृषि अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए नियम और विनियम होते हैं, जो अपशिष्ट के संग्रहण, उपचार, और निपटान के लिए मानक और दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। इन नियमों का पालन सुनिश्चित करने के लिए निगरानी और निरीक्षण की प्रक्रिया अपनाई जाती है। सरकारों और पर्यावरणीय एजेंसियों द्वारा इन नियमों के पालन की निगरानी की जाती है ताकि अपशिष्ट प्रबंधन के सर्वोत्तम प्रथाओं को लागू किया जा सके। कृषि अपशिष्ट प्रबंधन के प्रभावी कार्यान्वयन

के लिए जन जागरूकता और शिक्षा भी आवश्यक हैं। किसानों को अपशिष्ट प्रबंधन की तकनीकों और सर्वोत्तम प्रथाओं के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, कृषि समुदायों में अपशिष्ट प्रबंधन के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए कार्यशालाएँ और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। यह सुनिश्चित करता है कि किसानों को अपशिष्ट प्रबंधन की आधुनिक विधियों के बारे में जानकारी हो और वे उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित हों। कृषि अपशिष्ट प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिसमें अपशिष्ट की उत्पत्ति से लेकर उपचार और निपटान तक सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। इसमें अपशिष्ट की मात्रा को कम करने के उपाय, उसका उचित संग्रहण और उपचार, पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग, कानूनी और नियामक अनुपालन, और जन जागरूकता शामिल है। इन सभी उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करके ही कृषि अपशिष्ट को सही तरीके से प्रबंधित किया जा सकता है और पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सकता है। कृषि अपशिष्ट प्रबंधन का प्रभावी कार्यान्वयन स्थायी कृषि प्रथाओं को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और एक स्वस्थ और सुरक्षित पर्यावरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन

घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो घरों में उत्पन्न होने वाले कचरे को नियंत्रित करने और उसके प्रभावी निपटान को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। घरेलू अपशिष्ट में सभी प्रकार के कचरे शामिल होते हैं, जिनमें खाद्य अपशिष्ट, पैकेजिंग सामग्री, प्लास्टिक, कागज, कपड़े, और विभिन्न प्रकार के घरेलू उत्पादों के अवशेष शामिल हैं। इन अपशिष्टों का सही ढंग से प्रबंधन न केवल पर्यावरणीय स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है, बल्कि यह संसाधनों की दक्षता और सामुदायिक स्वच्छता को भी सुनिश्चित करता है।

घरेलू अपशिष्ट की उत्पत्ति घरों से होती है और यह विभिन्न प्रकार के होते हैं। खाद्य अपशिष्ट, जैसे कि खाने के बचे हुए हिस्से और खराब हो चुके खाद्य पदार्थ, प्रमुख घरेलू अपशिष्ट हैं। इसके अलावा, पैकेजिंग सामग्री, जैसे कि प्लास्टिक की बोतलें, कागज की पैकेजिंग, और धातु के डिब्बे, भी सामान्य घरेलू कचरे में शामिल होते हैं। कपड़े और अन्य वस्त्र, जो समय के साथ पुराने हो जाते हैं या टूट जाते हैं, भी घरेलू अपशिष्ट में शामिल होते हैं। इन अपशिष्टों को उनके प्रकार और पुनः उपयोग की संभावनाओं के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है ताकि उनके प्रबंधन के लिए उचित उपाय अपनाए जा सकें।

घरेलू अपशिष्ट के उचित प्रबंधन के लिए प्रभावी संग्रहण और अलगाव महत्वपूर्ण है। प्रत्येक घर में अपशिष्ट संग्रहण के लिए विशेष बक्से और कंटेनर प्रदान किए जाते हैं, जिन्हें खाद्य अपशिष्ट, कागज, प्लास्टिक, और अन्य प्रकार के कचरे के लिए अलग-अलग किया जाता है। अपशिष्ट को अलग-अलग संग्रहित करने से पुनर्चक्रण और निपटान की प्रक्रिया को सरल और प्रभावी बनाया जा सकता है। इसके अलावा, घरों में अपशिष्ट के नियमित संग्रहण और निपटान के लिए नगरपालिका सेवाओं का उपयोग किया जाता है, जो अपशिष्ट को एकत्रित करके निर्धारित स्थानों पर ले जाती हैं।

घरेलू अपशिष्ट के उपचार और पुनर्चक्रण के लिए विभिन्न तकनीकों और उपायों का उपयोग किया जाता है। खाद्य अपशिष्ट को कम्पोस्टिंग के माध्यम से जैविक खाद में परिवर्तित किया जा सकता है, जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है और अपशिष्ट की मात्रा को कम करता है। कागज, प्लास्टिक, और धातु जैसे अन्य अपशिष्टों को पुनर्चक्रित किया जाता है, जिससे नए उत्पादों के निर्माण में इन सामग्रियों का उपयोग किया जा सकता है और प्राकृतिक संसाधनों की बचत होती है। अपशिष्ट पुनर्चक्रण के लिए स्थानीय पुनर्चक्रण केंद्रों और संग्रहण स्थलों का उपयोग किया जाता है, जहाँ कचरे को अलग किया जाता है और पुनः उपयोग के लिए संसाधित किया जाता है।

घरेलू अपशिष्ट के निपटान के लिए उपयुक्त विधियाँ अपनाई जाती हैं ताकि पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सके। अपशिष्ट को लैंडफिल में भेजने से पहले, उसके पुनर्चक्रण और उपचार की प्रक्रिया की जाती है। लैंडफिल साइट्स पर अपशिष्ट को सुरक्षित रूप से डंप किया जाता है और उसकी निगरानी की जाती है ताकि इससे होने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सके। इसके अलावा, अपशिष्ट निवारण के उपायों को अपनाने की आवश्यकता है, जैसे कि अपशिष्ट की मात्रा को कम करना, पुनः उपयोग की प्रथाओं को अपनाना, और अपशिष्ट उत्पन्न करने वाले स्रोतों की पहचान और नियंत्रण करना।

घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन के लिए कानूनी और नियामक ढाँचा भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न देशों और

नगरपालिकाओं में घरेलू अपशिष्ट के प्रबंधन के लिए नियम और विनियम होते हैं, जो अपशिष्ट संग्रहण, उपचार, और निपटान के मानक और दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। इन नियमों का पालन सुनिश्चित करने के लिए नियमित निरीक्षण और निगरानी की जाती है। इसके अलावा, स्थानीय सरकारें और पर्यावरणीय एजेंसियाँ अपशिष्ट प्रबंधन की सर्वोत्तम प्रथाओं को लागू करने और लोगों को उचित अपशिष्ट प्रबंधन के बारे में जागरूक करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम और अभियानों का संचालन करती हैं।

घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जन जागरूकता और शिक्षा भी आवश्यक हैं। लोगों को अपशिष्ट संग्रहण, अलगाव, और पुनर्चक्रण की सही विधियों के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। इसके लिए, स्कूलों, सामुदायिक केंद्रों, और मीडिया के माध्यम से अपशिष्ट प्रबंधन पर जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसके अलावा, घरों में अपशिष्ट प्रबंधन की प्रथाओं को लागू करने के लिए प्रेरित करने वाले अभियानों और कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिसमें अपशिष्ट की उत्पत्ति से लेकर संग्रहण, उपचार, और निपटान तक सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। इसमें अपशिष्ट की मात्रा को कम करने के उपाय, उसका उचित संग्रहण और अलगाव, पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग, कानूनी और नियामक अनुपालन, और जन जागरूकता शामिल है। इन सभी उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करके ही घरेलू अपशिष्ट को सही तरीके से प्रबंधित किया जा सकता है और पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सकता है। घरेलू अपशिष्ट प्रबंधन का प्रभावी कार्यान्वयन न केवल स्वच्छ और सुरक्षित जीवन सुनिश्चित करता है, बल्कि यह सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्लास्टिक प्रदूषण नियंत्रण

प्लास्टिक प्रदूषण नियंत्रण एक वैश्विक पर्यावरणीय चुनौती है जो जलवायु परिवर्तन, वनस्पति और वन्यजीवों की रक्षा, और मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करता है। प्लास्टिक प्रदूषण, जिसमें प्लास्टिक की थैलियाँ, बोतलें, पैकेजिंग सामग्री, और अन्य प्लास्टिक वस्तुएं शामिल हैं, समुद्रों, नदियों, झीलों और भूमि पर बड़े पैमाने पर फैल चुका है। प्लास्टिक का विघटन न केवल प्राकृतिक सौंदर्य को नुकसान पहुंचाता है, बल्कि यह पारिस्थितिक तंत्रों में भी हानिकारक प्रभाव डालता है, जैसे कि जलीय जीवन के लिए विषैले तत्वों का स्रोत बनना।

प्लास्टिक प्रदूषण के मुख्य स्रोतों में उपभोक्ता वस्त्रों, पैकेजिंग, और औद्योगिक अपशिष्ट शामिल हैं। एकल-उपयोग प्लास्टिक, जैसे कि थैलियाँ और बोतलें, मुख्य रूप से प्लास्टिक प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं, क्योंकि ये अक्सर लंबे समय तक विघटित नहीं होते और भूमि और जल स्रोतों में जमा हो जाते हैं। इन वस्तुओं का विघटन प्रक्रिया में हजारों साल लग सकते हैं, और इसके परिणामस्वरूप सूक्ष्म प्लास्टिक कण उत्पन्न होते हैं जो जल स्रोतों और खाद्य श्रृंखला में समा जाते हैं। यह न केवल जलीय जीवन के लिए हानिकारक है बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी खतरा उत्पन्न करता है, क्योंकि ये सूक्ष्म प्लास्टिक हमारे खाद्य पदार्थों और पानी में मिल सकते हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपाय प्लास्टिक के उपयोग को कम करना है। उपभोक्ताओं को एकल-उपयोग प्लास्टिक के विकल्प जैसे कि पुनः उपयोग योग्य बैग, कांच की बोतलें, और धातु के कंटेनर का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। विभिन्न देशों और नगरपालिकाओं में प्लास्टिक थैलियों और अन्य एकल-उपयोग प्लास्टिक वस्तुओं पर प्रतिबंध लगाने के कानून बनाए गए हैं, जो प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में सहायक होते हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने का एक और महत्वपूर्ण उपाय प्लास्टिक वस्तुओं का पुनर्चक्रण और पुनरुपयोग है। प्लास्टिक पुनर्चक्रण की प्रक्रिया में प्लास्टिक कचरे को एकत्रित किया जाता है, उसे धोया जाता है और फिर नए उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। पुनर्चक्रण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्चक्रण कार्यक्रम और सुविधाओं की स्थापना की जाती है। इसके अलावा, उपभोक्ताओं को पुनर्चक्रण के लाभ और सही पुनर्चक्रण विधियों के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए।

प्लास्टिक की जगह वैकल्पिक सामग्री का उपयोग भी प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकता है। बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक, जो प्राकृतिक तरीकों से विघटित हो जाता है, और अन्य पुनर्नवीनीकरण योग्य या

कम प्रदूषणकारी सामग्रियों का उपयोग करने की सलाह दी जाती है। इन वैकल्पिक सामग्रियों का उपयोग उपभोक्ता वस्त्रों और पैकेजिंग में किया जा सकता है, जिससे प्लास्टिक के उपयोग को कम किया जा सकता है और पर्यावरणीय प्रभाव को घटाया जा सकता है।

प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए स्वच्छता अभियानों और जन जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। इन अभियानों के माध्यम से लोगों को प्लास्टिक प्रदूषण के प्रभाव, पुनर्चक्रण के लाभ, और सही अपशिष्ट प्रबंधन के तरीकों के बारे में जानकारी दी जाती है। स्कूलों, सामुदायिक संगठनों, और मीडिया के माध्यम से इन अभियानों का आयोजन किया जाता है, जो प्लास्टिक के उपयोग को कम करने और प्रदूषण नियंत्रण के लिए समाज को प्रेरित करते हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण के नियंत्रण के लिए प्रभावी कानूनी और नियामक उपायों की आवश्यकता है। विभिन्न देशों और क्षेत्रों में प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कानून और विनियम लागू किए जाते हैं, जो प्लास्टिक के उपयोग, निर्माण, और निपटान को नियंत्रित करते हैं। इन नियमों का पालन सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षण और निगरानी की जाती है, और उल्लंघन के मामलों में दंडात्मक कार्रवाई की जाती है। इसके अतिरिक्त, सरकारें और पर्यावरणीय एजेंसियाँ प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने के लिए नीति और योजना तैयार करती हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अनुसंधान और नवाचार भी महत्वपूर्ण हैं। नई प्रौद्योगिकियों और विधियों का विकास, जैसे कि प्लास्टिक के पुनर्चक्रण के लिए उन्नत तकनीकें और बायोडिग्रेडेबल सामग्री का विकास, प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकता है। अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहित करने के लिए फंडिंग और सहयोग की आवश्यकता होती है ताकि नए और प्रभावी समाधान प्राप्त किए जा सकें।

प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें प्लास्टिक के उपयोग को कम करने, पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग को बढ़ावा देने, वैकल्पिक सामग्रियों का उपयोग, स्वच्छता अभियानों और जागरूकता, कानूनी और नियामक उपायों, और अनुसंधान और नवाचार को शामिल किया जाता है। इन सभी उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करके ही प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है और एक स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सकता है। प्लास्टिक प्रदूषण नियंत्रण में सामूहिक प्रयास और जन भागीदारी महत्वपूर्ण है, ताकि हम एक स्थायी और सुरक्षित भविष्य की दिशा में कदम बढ़ा सकें।

12.10 गंगा प्रदूषण का नियन्त्रण (गंगा एक्शन प्लान, GAP)

भारत की केन्द्रीय सरकार ने गंगा नदी को शुद्ध करने के लिये तथा प्रदूषण मुक्त बनाने के लिये जिम्मा उठाया है। इसके लिये केन्द्रीय सरकार ने “ऋषिकेश से लेकर कलकत्ता के बीच गंगा नदी की प्रदूषण मुक्त करने के लिये “केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड” ने 1984 में पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम बनाया है। इस कार्य के लिये जून 1985 में केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण (Central Ganga Authority) का गठन किया है तथा प्रदूषण को दूर करने के लिए “गंगा एक्शन प्लान” का शुभारम्भ किया गया।

इस परियोजना के निम्न उद्देश्य थे :-

विभिन्न स्थानों पर गंगा नदी में प्रदूषित जल प्रवाहित होने के बजाय जलशोधन संयंत्रों तक ले जाना। सीवर के गन्दे जल का सीवर संयंत्रों में शोधन करना तथा जल एवं उसके मलवे का विभिन्न ऊर्जा में परिवर्तन करना तथा उस शोधित सीवर जल का सिंचाई, कृषि व मत्स्य पालन करना आदि सम्मिलित है। अधिक प्रदूषण करने वाले प्रमुख नगरों में सीवर शोधन संयंत्रों (Sewer Treatment Plants) की स्थापना करना। इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में 26, बिहार में 15 तथा पश्चिमी बंगाल से 59 नगरों का सीवर शोधन संयंत्र लगाने की योजना बनायी गयी। उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिम बंगाल के 27 नगरों का सर्वाधिक प्रदूषित नगरों की सूची में सम्मिलित किया गया है।

इन नगरों के द्वारा विसर्जित होने वाले प्रदूषकों का 84 प्रतिशत शामिल है। इन 27 नगरों में से 10 नगरों के पास पहले से सीवर शोधन संयंत्रों की व्यवस्था है। कानपुर, प्रयागराज, वाराणसी, पटना, दक्षिणी दमदम, जादवपुर, भाटपारा आदि स्थानों पर सीवर शोधन संयंत्रों की स्थापना का कार्य में पर्याप्त प्रगति हो

चुकी है।

इस योजना के समापन तक गंगा के 75 प्रतिशत प्रदूषण में कमी देखी गयी है। इस परियोजना में बनाये गये लक्ष्यों की पूर्ति हेतु चार स्तर बनाये गये हैं।

1. प्रथम स्तर :—

नगरों एवं कस्बों के मलजल को नदियों के अतिरिक्त अन्य स्थान पर विसर्जित करना, सीवर शोधन यन्त्रों से मल जल को शुद्ध करना तथा सिंचाई कार्यों में प्रयोग करना।

2. द्वितीय स्तर :—

विद्युत शव गृहों का निर्माण करके दाह संस्कार से होने वाले प्रदूषण को कम करना। शहरी कचरे का समुचित निस्तारण, शौचालय आदि के जल को रोककर।

3. तृतीय स्तर :—

नदियों के किनारों पर लगे अवसाद प्रदूषण को रोक कर

4. चतुर्थ स्तर :—

सामाजिक आर्थिक संस्थाओं, स्वयंसेवी संगठन, सरकारी व गैर सरकारी माध्यम से आम जनता में प्रदूषण के दुष्प्रभाव व ताजे जल के महत्व के प्रति बोध तथा जागरूक पैदा करना।

गंगा एक्शन प्लान के प्रथम चरण की अवधि में अत्यधिक खर्च के बावजूद जैव रसायन, ऑक्सीजन माँग (BOD) तथा घुली ऑक्सीजन (DO) के स्तर को अनुमन्य स्तर (desirable level) तक लाने के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पायी।

गंगा एक्शन प्लान का द्वितीय चरण :— द्वितीय चरण का कार्यक्रम, 1995 में प्रारम्भ हुआ, जिसमें प्रथम चरण की समस्त अपूर्ण योजनाओं के अतिरिक्त अपशिष्ट पदार्थों का शोधन करना था। इसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के 10, बिहार के 11, तथा पश्चिमी बंगाल के 8 नगरों को सम्मिलित किया गया, जिसका लागत 416.33 करोड़ रु0 निर्धारित किया। इसके अतिरिक्त तीन प्रमुख नदियों (यमुना, गोमती तथा दामोदर) की स्वच्छता का भी कार्य सम्मिलित है। गंगा नदी को स्वच्छ रखने एवं प्रदूषण मुक्त करने के लिए करोड़ों रुपये खर्च हो चुके किन्तु निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई है।

नमामि गंगे परियोजना :—

भारत सरकार ने मई 2015, में "नमामि गंगे" परियोजना का शुभारम्भ किया, जिसका लक्ष्य गंगा नदी को स्वच्छ व निर्मल बनाना था। इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये 5 वर्षों में 20,000 करोड़ रुपये बजट निर्धारित किया गया।

12.11 सारांश

आपने इस बारहवीं इकाई में स्पष्ट रूप से जाना कि जल प्रदूषण क्या है, जल प्रदूषण के स्रोत, प्रकार आदि का ज्ञान प्राप्त होता है तथा जल प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय किस प्रकार किया जाना चाहिये, आदि का भी वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त गंगा एक्शन प्लान के विषय में भी स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है।

12.12 शब्द सूची

प्रदूषक — Pollutant

कणिकीय — Particulate

अवसादन — Sedimentation

मृत झील — Dead Lake

कातिल — Killer

शैलिकीय – Lithological

कोटर – Cavities

अपशिष्ट – Waste

शौचालय – Service bab Latrines

12.13 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. समस्त पृथ्वी पर जल का प्रतिशत कितना है?

(अ) 82 (ब) 90 (स) 71 (द) 53

2. जल प्रदूषण से कौन सी बीमारी होती है?

(अ) टीबी (ब) प्लेग (स) कैंसर (द) हैजा

3. जल प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम किस वर्ष लागू हुआ?

(अ) 1974 (ब) 1950 (स) 1981 (द) 2000

4. गंगा एक्शन प्लॉन किस वर्ष लागू किया गया?

(अ) 1948 (ब) 1984 (स) 1997 (द) 2004

5. नमामि गंगे परियोजना का शुभारम्भ किस वर्ष हुआ?

(अ) 1984 (ब) 2015 (स) 2003 (द) 2007

आदर्श उत्तर :-

1. (स) 2. (द) 3. (अ) 4. (ब) 5. (ब)

12.14 अभ्यासार्थ प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)

1. जलप्रदूषण किसे कहते हैं? तथा इसके नियन्त्रण हेतु उपाय बताइए।
 2. जल प्रदूषण के स्रोत तथा प्रदूषकों के प्रकारों का वर्णन कीजिये।
 3. गंगा एक्शन प्लॉन के विषय में वर्णन कीजिये।
 4. जलप्रदूषण के प्रकारों का वर्णन कीजिये।
 5. जल प्रदूषण को स्पष्ट करते हुए भूमिगत जल प्रदूषण का वर्णन कीजिये।
-

12.15 सन्दर्भ सूची/उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह सविन्द्र, पर्यावरण भूगोल, इलाहाबाद, 1991।
2. Singh, L.R. (Ed.) Environmental Management, Allahabad, 1983
3. Mishra, K.C., Ecological Sciences and Phyto-geography, Varanasi, 1971
4. Canter, L.W., 1996: Environmental Impact Assesment, Mc Graw-Hill Inc
5. Agarwal, S.K., 2005; Environmental Malagement, APH Publishing Corporation New Delhi, 397 PP.

इकाई-13: भूमिगत जल अवक्रमण, प्रदूषण के कारण, भारत में जल संकट

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 भूमिगत जल
- 13.4 भूमिगत जल अवक्रमण
- 13.5 भूमिगत जल प्रदूषण के कारण
 - 1. भूमिगत जल प्रदूषण के प्रभाव एवं परिणाम
- 13.6 भारत में जल संकट
 - भू-जल स्तर घटना के कारण
 - घटते भू-जल स्तर के दुष्परिणाम
 - 1. उद्योग व खेती में अपशिष्ट जल
 - 2. अपशिष्ट जल को उपयोग करने के कारण
 - 3. प्रदूषण जल की गुणवत्ता
 - 4. भू-जल का बढ़ता संक्रमण
- 13.7 भूजल संरक्षण के उपाय
- 13.8 सारांश
- 13.9 स्वयं मूल्यांकन एवं आदर्श उत्त
- 13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 13.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

13.1 प्रस्तावना

भूजल दुनिया में उपयोग करने योग्य, ताजे पानी का सबसे बड़ा स्रोत है। दुनिया के कई हिस्सों में, खासकर जहाँ सतही जल आपूर्ति उपलब्ध नहीं है, घरेलू, कृषि और औद्योगिक जल की ज़रूरतें केवल ज़मीन के नीचे के पानी का उपयोग करके ही पूरी की जा सकती हैं। अमेरिकी भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण जमीन में जमा पानी की तुलना बैंक खाते में रखे पैसे से करता है। अगर नया पैसा जमा होने की तुलना में पैसा तेजी से निकाला जाता है, तो अंततः खाते में आपूर्ति की समस्या होगी। लंबे समय तक पानी की भरपाई की तुलना में जमीन से पानी को तेजी से बाहर निकालने से भी ऐसी ही समस्याएं पैदा होती हैं। भूजल में कमी मुख्य रूप से निरंतर भूजल पंपिंग के कारण होती है। भूजल में कमी के कुछ नकारात्मक प्रभाव, जल स्तर में कमी अत्यधिक पंपिंग से भूजल स्तर में कमी आ सकती है, और कुओं से भूजल तक पहुँचना संभव नहीं रह जाता। बढ़ी हुई लागत। जैसे-जैसे जल स्तर कम होता है, पानी को सतह तक पहुँचाने के लिए अधिक ऊर्जा का उपयोग करते हुए अधिक दूर तक पंप करना पड़ता है। चरम मामलों में, ऐसे कुएँ का उपयोग करना लागत निषेधात्मक हो सकता है। सतही जल आपूर्ति में कमी। भूजल और सतही जल आपस में जुड़े हुए हैं। जब भूजल का अत्यधिक उपयोग किया जाता है, तो भूजल से जुड़ी झीलों, धाराओं और नदियों की आपूर्ति भी कम हो सकती है। भूमि धंसना – भूमि धंसना तब होता है जब जमीन के नीचे समर्थन खत्म हो जाता है। यह अक्सर मानवीय गतिविधियों के कारण होता है, मुख्य रूप से भूजल के अत्यधिक उपयोग से, जब मिट्टी ढह जाती है, सघन हो जाती है और गिर जाती है। जल गुणवत्ता संबंधी चिंताएँ। तटीय क्षेत्रों में अत्यधिक पंपिंग के कारण खारे पानी का अंतर्देशीय और ऊपर की ओर प्रवाह हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप जल आपूर्ति में खारे पानी का संदूषण हो सकता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन बाद शिक्षार्थी निम्न के बारे में जान सकेंगे।

1. शिक्षार्थी भूमिगत जल की व्याख्या कर सकेंगे।
2. भूमिगत जल अवक्रमण की व्याख्या कर सकेंगे।
3. शिक्षार्थी भूमिगत जल प्रदूषण के कारण की व्याख्या कर सकेंगे।
4. शिक्षार्थी भूमिगत जल प्रदूषण के प्रभाव एवं परिणाम की व्याख्या कर सकेंगे।
5. शिक्षार्थी भारत में जल संकट की व्याख्या कर सकेंगे।
6. शिक्षार्थी भू-जल स्तर घटना के कारण की व्याख्या कर सकेंगे।
7. शिक्षार्थी घटते भू-जल स्तर के दुष्परिणाम की व्याख्या कर सकेंगे।
8. शिक्षार्थी उद्योग व खेती में अपशिष्ट जल की व्याख्या कर सकेंगे।
9. शिक्षार्थी अपशिष्ट जल को उपयोग करने के कारण की व्याख्या कर सकेंगे।
10. शिक्षार्थी प्रदूषण जल की गुणवत्ता की व्याख्या कर सकेंगे।
11. शिक्षार्थी भू-जल का बढ़ता संक्रमण की व्याख्या कर सकेंगे।
12. शिक्षार्थी भूजल संरक्षण के उपाय की व्याख्या कर सकेंगे।

13.3 भूमिगत जल—

जब बारिश का पानी जमीन पर गिरता है तो इसका कुछ भाग सतह पर बहकर नालों, नदियों एवं झीलों में चला जाता है, कुछ पौधों द्वारा प्रयोग किया जाता है, कुछ वाष्पित होकर वातावरण में चला जाता है और कुछ जमीन में रिस जाता है। कल्पना कीजिए कि बालू के ढेर पर उड़ेला हुआ एक गिलास पानी कहाँ चला जाता है। यह पानी रेत के कणों के बीच रिक्त स्थानों में चला जाता है। ठीक इसी तरह कुछ जलराशि भूतल की ऊपरी परत से रिस-रिस कर जमीन के नीचे चली जाती है और यही जल भूमि जल बनता है। वह जलराशि जो भूसतह की ऊपरी परत से रिस-रिस कर अंतःस्त्रवण क्रिया द्वारा मृदा की परत में फिर उससे नीचे अवमृदा परत में तथा उसके नीचे अधस्थः शैल परत में जमा रहती है, भूमिगत जल कहलाती है। भूजल के नीचे इन चट्टानों को जिनमें भूमि जल पाया जाता है, जलभृत या जलभरा कहते हैं। बलुई क्षेत्रों में यह जलभृत आमतौर पर विभिन्न आकार-प्रकार के रेत एवं बजरी के मिश्रण से मिलकर बनता है। कठोर चट्टानों के क्षेत्र में उथले गहराई में अपक्षयित हिस्सों से एवं गहरी गहराई में विभंगों एवं संधियों में पाया जाता है। जलभृत पारगम्य होते हैं क्योंकि इनमें एक दूसरे से जुड़े हुए रिक्त स्थान होते हैं जिनमें पानी का बहाव होता है। इन मृदा एवं चट्टानों में जल बहाव इस बात पर निर्भर करता है कि इनमें पाये जाने वाले रिक्त स्थान किस आकार – प्रकार के हैं और कितनी अच्छी तरह एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

भूमिजल को प्रभावित करने वाले शैल गुण – भौम जल पारगम्य स्तर समूहों में मिलता है, जिन्हें जलभृत कहा जाता है। इनकी संरचना के कारण साधारण क्षेत्रीय स्थितियों में इनके भीतर पर्याप्त जल गतिशील रहता है। इन जलभृतों में भूजल की उपस्थिति एवं गति को प्रभावित करने वाले शैल गुण निम्न हैं। सरंध्रता – शैल के रिक्त स्थानों में भौम जल पाया जाता है जिन्हें रिक्ति अंतराल अथवा रंध्र कहा जाता है। शैल की सरंध्रता इन्ही अंतरालों का माप है। इसको शैल के कुल आयतन में उपस्थित रिक्तियों के आयतन के अनुपात या प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है। सरंध्रता मुख्यतः दो प्रकार की होती है। प्रारंभिक सरंध्रता – यह मृदा खण्ड, रेत और बजरी की परतों एवं बलुई चट्टानों के गठन के दौरान बनती है। जब बारिश का पानी जमीन पर गिरता है तो इसका कुछ भाग सतह पर बहकर नालों, नदियों एवं झीलों में चला जाता है, कुछ पौधों द्वारा प्रयोग किया जाता है, कुछ वाष्पित होकर वातावरण में चला जाता है और कुछ जमीन में रिस जाता है। कल्पना कीजिए कि बालू के ढेर पर उड़ेला हुआ एक गिलास पानी कहाँ चला जाता है। यह पानी रेत के कणों के बीच रिक्त स्थानों में चला जाता है। ठीक इसी तरह कुछ जलराशि भूतल की ऊपरी परत से रिस-रिस कर जमीन

के नीचे चली जाती है और यही जल भूमि जल बनता है। वह जलराशि जो भूसतह की ऊपरी परत से रिस-रिस कर अंतःस्त्रवण क्रिया द्वारा मृदा की परत में फिर उससे नीचे अवमृदा परत में तथा उसके नीचे अधस्थः शैल परत में जमा रहती है, भूमिगत जल कहलाती है। भूजल के नीचे इन चट्टानों को जिनमें भूमि जल पाया जाता है, जलभृत या जलभरा कहते हैं। बलुई क्षेत्रों में यह जलभृत आमतौर पर विभिन्न आकार-प्रकार के रेत एवं बजरी के मिश्रण से मिलकर बनता है। कठोर चट्टानों के क्षेत्र में उथले गहराई में अपक्षयित हिस्सों से एवं गहरी गहराई में विभंगों एवं संधियों में पाया जाता है। जलभृत पारगम्य होते हैं क्योंकि इनमें एक दूसरे से जुड़े हुए रिक्त स्थान होते हैं जिनमें पानी का बहाव होता है। इन मृदा एवं चट्टानों में जल बहाव इस बात पर निर्भर करता है कि इनमें पाये जाने वाले रिक्त स्थान किस आकार – प्रकार के हैं और कितनी अच्छी तरह एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

जब बारिश का पानी धरातल पर गिरता है तो इसका कुछ भाग नदी-नालों के द्वारा समुद्र में चला जाता है। कुछ रिस कर भूमि जल बनता है। समुद्री जल वाष्पीकृत होकर बादल बन जाता है जो संघनन के उपरांत वर्षा के रूप में पुनः धरातल पर आ जाता है। प्रकृति में यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है, जिसे हम जलचक्र कहते हैं। जलचक्र में निम्न क्रियाएं सम्मिलित हैं वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन संघनन या अवक्षेपण अवरोधन; बहाव, रिसाव एवं भंडारण भूमिजल को प्रभावित करने वाले शैल गुण – भौम जल पारगम्य स्तर समूहों में मिलता है, जिन्हें जलभृत कहा जाता है। इनकी संरचना के कारण साधारण क्षेत्रीय स्थितियों में इनके भीतर पर्याप्त जल गतिशील रहता है। इन जलभृतों में भूजल की उपस्थिति एवं गति को प्रभावित करने वाले शैल गुण निम्न हैं।

द्वितीयक सरंध्रता – यह शैल उत्पत्ति के पश्चात बनती है। यह शैल के अपक्षयित, संधियों, विभंगों तथा विलयन रंध्रों एवं वनस्पतियों द्वारा उत्पन्न रिक्तियों के कारण बनती है।

पारगम्यता – शैल का वह गुण या क्षमता जिससे कोई भी तरल पदार्थ या गैस उसमें से होकर प्रवाहित हो सकती है। शैल की पारगम्यता की मात्रा उनके रन्ध्रों के प्रमाण तथा आकार एवं आपसी जुड़ाव के प्रमाण और आकार तथा विस्तार पर निर्भर करती है। जल प्रवाह की वह गति जो इकाई समय में इकाई ढाल के तहत प्रवाह के समकोण पर मापित इकाई क्षेत्रफल से होकर गुजरती है, उसे पारगम्यता कहते हैं। आजकल पारगम्यता के स्थान पर जलीय चालकता का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। जिसकी इकाई मीटर प्रतिदिन है।

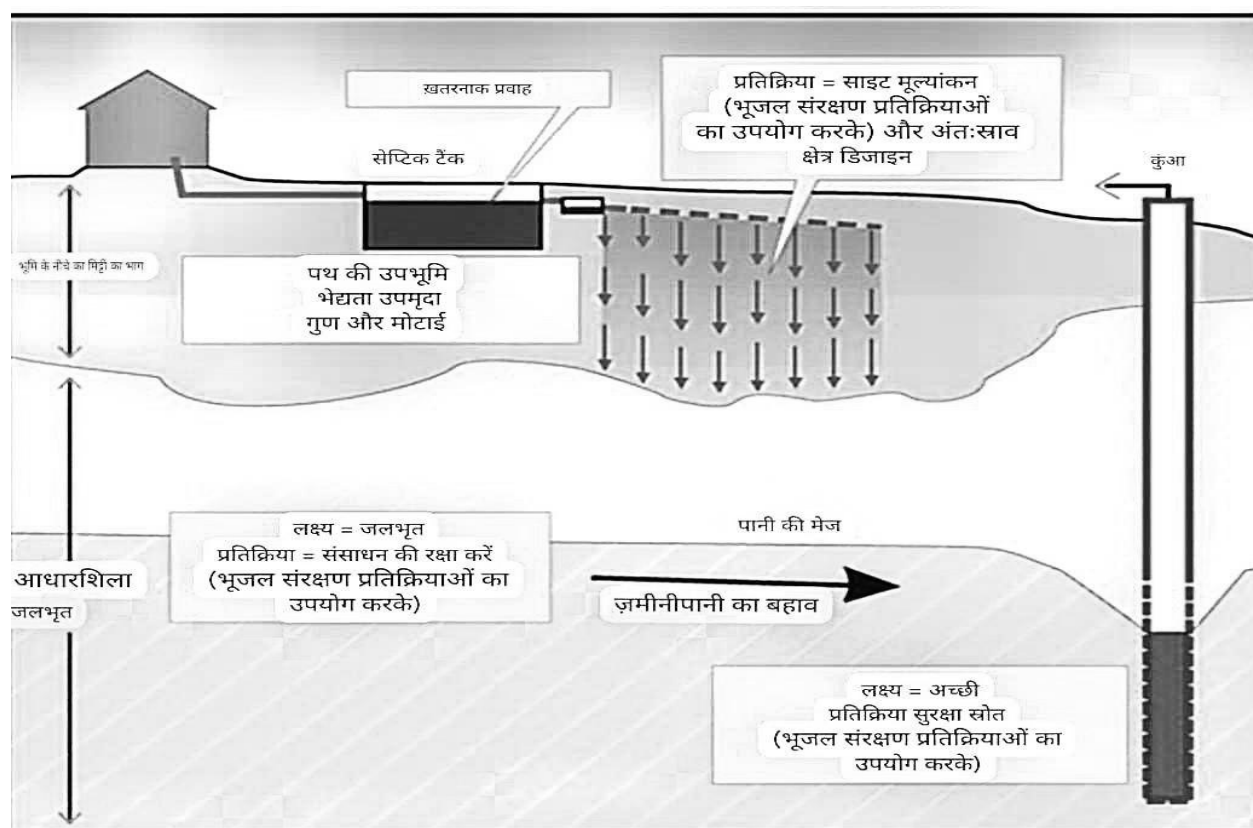
संचारणीयता या संचारणशीलता – यह जलभृत के जल संचार क्षमता का माप है। संतृप्त जलभृत के पूर्ण मोटाई व इकाई, चौड़ाई से इकाई जलीय प्रवणता पर प्राप्त जल प्रवाह की दर को जलभृत की संचारणीयता या संचारणशीलता कहा जाता है, जो वर्ग मीटर प्रति दिन में दर्शायी जाती है।

13.4 भूमिगत जल अवक्रमण

भूजल की वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिये भूजल का स्तर और न गिरे इस दिशा में काम किए जाने के अलावा उचित उपायों से भूजल संवर्धन की व्यवस्था हमें करनी होगी। इसके अलावा, भूजल पुनर्भरण तकनीकों को अपनाया जाना भी आवश्यक है। वर्षाजल संचयन (रेनवॉटर हार्वेस्टिंग) इस दिशा में एक कारगर उपाय हो सकता है। हाल के वर्षों में, सुदूर संवेदन उपग्रह-आधारित चित्रों के विश्लेषण तथा भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) द्वारा भूजल संसाधनों के प्रबन्धन में मदद मिली है। भूजल की मॉनिटरिंग एवं प्रबन्धन में भविष्य में ऐसी समुन्नत तकनीकों को और बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है।

जल हमारे ग्रह पृथ्वी पर एक आवश्यक संसाधन है। इसके बगैर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यही कारण है कि खगोलविद पृथ्वी-इतर किसी अन्य ग्रह पर जीवन की तलाश करते समय सबसे पहले इस बात की पड़ताल करते हैं कि उस ग्रह पर जल मौजूद है या नहीं। 'जल है तो कल है' तथा 'जल जो न होता तो जग खत्म हो जाता' जैसी उक्तियों के माध्यम से हम जल की महत्ता को ही स्वीकारते हैं। पृथ्वी का तीन चौथाई यानी 75 प्रतिशत भाग जल से आच्छादित है लेकिन इसमें से पीने योग्य स्वच्छ जल की मात्रा बहुत कम है। पृथ्वी का लगभग 97.2 प्रतिशत जल सागरों, महासागरों में समाया है। 2.15 प्रतिशत बर्फ के रूप में ग्लेशियरों में मौजूद है, 0.6 प्रतिशत भूमिगत या भौम जल के रूप में तथा 0.01 प्रतिशत नदियों और झीलों में एवं 0.001 प्रतिशत वायुमण्डल में मौजूद है। पृथ्वी पर जल 386*10 घन किलोमीटर जल भण्डार मौजूद है। यूनेस्को की सन 1994 की एक रिपोर्ट के अनुसार इसमें से ताजे, स्वच्छ जल की मात्रा केवल 35.03*106 घन

किलोमीटर है। यह पृथ्वी पर मौजूद कुल जल भंडार का मात्र 0.01 प्रतिशत है। जल का उपयोग बहते हुए जल, रुके हुए जल या भूजल के विभिन्न रूपों में होता है। नदी-नाले, झील आदि बहते हुए जल के उदाहरण हैं। नदी पर बाँध बनाकर हम इसका उपयोग विभिन्न तरीकों से कर सकते हैं। पाइप लाइनों द्वारा जल की आपूर्ति करना तथा तालाब से जल प्राप्त करना रुके हुए जल के उपयोग के उदाहरण हैं। भूजल, जिसे भूमिगत या भौमजल कहना ही उचित है, जमीन के अन्दर होता है। भूमिगत जलस्रोत का इस्तेमाल कुओं की खुदाई अथवा हैंडपम्पों और ट्यूबवेलों द्वारा भी किया जा सकता है। तालाबों और कुओं में एक विशेष अन्तर यह होता है कि जहाँ कुओं द्वारा केवल भूमिगत जलस्रोत का ही उपयोग होता है वहीं तालाबों में भूमिगत जल के अलावा बाहरी जल का जमाव भी हो जाता है। यह बाहरी जल वर्षा का जल हो सकता है और बाढ़ या नदी का बरसाती जल भी।



चित्र 1. भूजल प्रदूषण

जल का उपयोग पेयजल तथा सिंचाई, पशुपालन, परिवहन, उद्योग, जलविद्युत उत्पन्न करने तथा मत्स्य पालन आदि विभिन्न कार्यों में होता है। पेयजल, सिंचाई तथा उद्योगों में भूमिगत जल यानी ग्राउंड वॉटर का व्यापक तौर पर इस्तेमाल होता है। गाँवों में, जहाँ आज भी 80 प्रतिशत लोगों को नल का पानी उपलब्ध नहीं है, पेयजल के लिये भूमिगत जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसे कुओं, हैंडपम्पों तथा ट्यूबवेलों द्वारा प्राप्त किया जाता है। भारत में कृषि कार्य के लिये किसान भूमिगत जल पर ही निर्भर हैं। इस समय देश में 50 प्रतिशत से भी अधिक सिंचाई भूमिगत जल से होती है। उद्योगों में भी भूमिगत जल की बड़ी माँग है। खाद्य प्रसंस्करण (फूड प्रोसेसिंग) से लेकर वस्त्र उद्योगों तक में भूमिगत जल का व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है।

देश के अधिकांश हिस्सों में भूजल के अंधाधुंध दोहन एक प्रमुख पर्यावरणीय चुनौती है। भूजल के अंधाधुंध दोहन से भूमिगत जल स्तर में तेजी से हो रही गिरावट के साथ-साथ कार्बन उत्सर्जन में भी बढ़ोतरी हो रही है। भारतीय शोधकर्ताओं के एक ताजा अध्ययन से मिले परिणामों में यह चेतावनी दी गई है। बड़े पैमाने पर पानी के पंपों या ट्यूबवेल के जरिये हो रहा भूमिगत जल का दोहन दो रूपों में कार्बन उत्सर्जन को भी बढ़ावा दे रहा है। पानी निकालने के लिए पंपों के उपयोग से होने वाला उत्सर्जन और बायोकार्बोनेट के

निष्कर्षण से होने वाला कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन इसमें शामिल है। अधिकांश भूजल भंडारों में रेत, बजरी, मिट्टी और कैल्साइट होते हैं। हाइड्रॉन आयन कैल्साइट के साथ अभिक्रिया करके बाइकार्बोनेट और कैल्शियम बनाते हैं। भूजल जब वायुमंडल के संपर्क में आता है तो कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जित होती है और कैल्साइट गाद के रूप में जमा हो जाता है। भूजल स्तर में गिरावट के कारण जमीन की भीतरी परत जहां पानी इकट्ठा होता है, वह सिकुड़ रही हैं और जमीन बैठती जा रही है। इसलिए भूजल के अत्यधिक दोहन से जमीन के धंसने का खतरा बना रहता है। जमीन धंसने के कारण इमारतों में दरार आ सकती है, बाढ़ का खतरा बना रहता है और जमीन की भीतरी परत (एकुइफेर) की धारण क्षमता नष्ट हो जाती है। भूजल के बेतहाशा इस्तेमाल के कारण जल स्तर में गिरावट आ रही है। भूजल स्तर के इस गिरावट से आने वाली पीढ़ियों के लिए पानी की कमी होगी।

13.5 भूमिगत जल प्रदूषण के कारण

भूजल प्रदूषण तब होता है जब हानिकारक पदार्थ (प्रदूषक) भूजल में प्रवेश करते हैं। ये प्रदूषक व्यावहारिक रूप से असीमित हैं, लेकिन मोटर तेल से लेकर कृषि से रसायनों से लेकर अनुपचारित अपशिष्ट तक हो सकते हैं। सतही जल प्रदूषण के विपरीत, भूजल प्रदूषण का पता लगाना और नियंत्रित करना कठिन है, जिसके कारण समस्या लंबे समय तक बनी रह सकती है। जलभृतों और उनमें जल के प्रवाह का अध्ययन करके, जिसे हाइड्रोजियोलॉजी के रूप में जाना जाता है, हम औद्योगिक स्थलों को कहाँ स्थापित किया जाए, इस बारे में बेहतर निर्णय ले सकते हैं। यह समझने के लिए कि ये प्रदूषक भूमिगत रूप से लंबी दूरी तय कर सकते हैं, किसी क्षेत्र की अंतर्निहित संरचनाओं का अध्ययन करना भी महत्वपूर्ण है। कार्स्ट क्षेत्रों में भूजल सतह पर आने से पहले चूना पत्थर में भूमिगत चैनलों में कई किलोमीटर की यात्रा कर सकता है।

अनुपचारित अपशिष्ट

सेप्टिक टैंक या सीवरेज सिस्टम से अनुपचारित अपशिष्ट आस-पास की मिट्टी में रिस सकता है और जलभृतों में प्रवेश कर सकता है, जहाँ वे स्थानीय कुओं की सेवा करने वाले भूजल के साथ मिल जाते हैं। यह अनुपचारित अपशिष्ट नाइट्रेट और कार्बनिक रसायनों के साथ बैक्टीरिया को भूजल में ले जाता है, जो पीने पर बहुत हानिकारक हो सकता है।

लैंडफिल

लैंडफिल में प्रदूषण के कई स्रोत होते हैं, भारी बारिश के बाद ये प्रदूषक उनके नीचे की मिट्टी में रिस जाते हैं। ये रिसने वाले प्रदूषक फिर जलभृतों में प्रवेश करते हैं और भूजल को हानिकारक रसायनों और सीसा और कैडमियम जैसी भारी धातुओं से दूषित करते हैं। ये मनुष्यों और जानवरों के लिए गंभीर स्वास्थ्य जोखिम पैदा करते हैं।

कृषि

कृषि भी भूजल की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। भूमि पर घोल, उर्वरक और पशु अपशिष्ट के फैलने से नाइट्रेट और बैक्टीरिया जैसे प्रदूषक भूमिगत जल स्रोतों में रिस सकते हैं। इन प्रदूषकों का पौधों, जानवरों और उन लोगों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है जो इन जल स्रोतों पर निर्भर हैं।

खनन एवं उत्खनन

खनन और उत्खनन से चट्टानों में पहले से फंसे प्रदूषक आस-पास के भूमिगत जल स्रोतों में जा सकते हैं। लोहा, एल्युमीनियम और सल्फेट जैसे रसायन भूजल में रिस सकते हैं और इसे पीने के लिए खतरनाक बना सकते हैं।

भूमिगत जल प्रदूषण के प्रभाव एवं परिणाम

भूमिगत जल का प्रदूषण कई स्रोतों से होता है यथा कृषि क्षेत्रों से कई प्रकार के प्रदूषकों (जैसे-नाइट्रेट, फासफोरस, पोटाश तथा विभिन्न प्रकार के कीटनाशी, रोगनाशी तथा शाकनाशी कृत्रिम रसायन) के निष्कालन तथा सतह के नीचे गमन से; ग्रामीण एवं नगरीय कचरों से, कच्चे सेप्टिक टैंकों से; प्रदूषित तालाबों, बावलियों एवं तड़ागों से आदि। भूमिगत जल के प्रदूषण के नियंत्रक कारकों में निम्न अधिक महत्वपूर्ण

हैं— मिट्टियों एवं उनके नीचे स्थित भूपदार्थों के गुण तथा शैलिकीय विशेषतायें, भूमिगत जल के जल की सतह से गहराई, जलभरे की प्रकृति, औसत वार्षिक वर्षा की मात्रा तथा प्रवृत्ति, जन समाज का सामान्य दृष्टिकोण, वर्षा के जल के जमीन में अन्तःस्पन्दन की दर तथा प्रवृत्ति, तालाब तथा पोखरों का स्थिर जल तथा प्रदूषकों की मात्रा तथा उनकी प्रकृति ।

जिन क्षेत्रों में भुरभुरी बलुई मिट्टियाँ पायी जाती हैं, भूमिगत जल का जलस्तर भूसतह से काफी गहराई पर होता है तथा सामान्य से उच्च वार्षिक वर्षा होती है वहाँ पर वर्षा के जल का भूमि में अधिक अन्तः स्पन्दन होता है जिस कारण प्रदूषकों का भी अधिक मात्रा में नीचे की ओर गमन होने के कारण भूमिगत जल का प्रदूषण अधिक होता है। जिन नगरों तथा औद्योगिक क्षेत्रों के पास नदियाँ नहीं होती हैं वहाँ पर नगरों एवं कारखानों से निस्सृत अपशिष्टों तथा दूषित जल को खोदे गये गड्ढों तथा नवनिर्मित या प्राकृतिक तालों में डम्प किया जाता है। इनमें से घुले रासायनिक प्रदूषकों का अन्तः स्पन्दन करते या रिसते जल के साथ नीचे की ओर गमन हो जाता है जिस कारण भूमिगत जल का प्रदूषण प्रारम्भ हो जाता है।

इसी तरह नगरों की महापालिका के कचरा डम्प साइट से प्रदूषकों का निक्षालन द्वारा नीचे की ओर गमन हो जाता है। कच्चे सेप्टिक टैंकों तथा क्षतिग्रस्त भूमिगत सीवर पाइपों से प्रदूषकों का निक्षालन द्वारा नीचे की ओर 400 मीटर की गहराई तक प्रवेश हो जाता है। रिसते जल के साथ सतह के नीचे गमन करने वाले प्रदूषकों को निक्षालक कहते हैं। ज्ञातव्य है कि निक्षालित प्रदूषक कभी भी स्थिर नहीं रहते हैं वरन् भूमिगत जल के साथ जलभरों में उनका गमन होता रहता है। कुँओं तथा हैण्ड पम्पों के जल के माध्यम से भूमिगत जल के प्रदूषण के उदाहरण विकसित एवं विकासशील देशों से मिले हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1832 में ही कुँ के जल के प्रदूषण की रपट मिली थी। उस समय न्यूयार्क शहर में कुँ के प्रदूषित जल का सेवन करने से 3,500 लोगों की हैजा के कारण मृत्यु हो गयी थी। संयुक्त राज्य अमेरिका के भौमिकीय सर्वेक्षण विभाग ने 1960-70 दशक के दौरान उत्तरी डैकोटा प्रान्त के क्रासबी नगर के कुँओं में सल्फेट, क्लोराइड एवं नाइट्रेट की अधिक मात्रा का पता लगाया था।

इन कुँओं का प्रदूषण अपशिष्ट सीवेज जल के भूमि में नीचे रिसने के कारण हुआ था। भारत के आन्ध्र प्रदेश के मेडक जिले में हैदराबाद नगर से 30 किलोमीटर दूर स्थित पाटनचेरू औद्योगिक क्षेत्र के रासायनिक कारखानों से निस्सृत विषाक्त अपशिष्ट जल के कारण समीपी क्षेत्रों के कुँओं के जल के प्रदूषण के रहस्य का 1989 में पर्दाफास हुआ था। 50 रासायनिक कारखानों सहित कुल 300 औद्योगिक इकाइयों द्वारा विसर्जित विषैले रसायनों से युक्त अपशिष्ट जल के जमीन में रिसने के कारण समीपी 14 गांवों के कुँओं का जल इस सीमा तक प्रदूषित हो गया (सन् 1989) कि जल का रंग हरा हो गया तथा इसको पीते ही लोगों में उल्टी होने लगती या जी मिचलाने लगा।

सागर तटीय भागों में अवस्थित नगरों में कुँओं से जल के अत्यधिक निष्कासन होने से सतह के नीचे कोटर बन जाती हैं तथा सागरीय जल का इन कोटरों में रिसाव होने से भूमिगत जल प्रदूषित हो जाता है क्योंकि सागरीय जल के प्रवेश के कारण भूमिगत जल का खारापन (लवणता) बढ़ जाता है। इस तरह की घटना संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क प्रान्त की किंग्स काउण्टी के सागर तट पर स्थित ब्लकलिन नगर में घट चुकी है। इस नगर के कुँओं से 75 मिलियन गैलन जल के प्रतिदिन विदोहन के कारण शहर की सतह के नीचे 5 मील चौड़ी तथा 35 फीट गहरी कोटर का निर्माण हो गया था। सागर का खारा जल इस कोटर में प्रविष्ट हो गया जिस कारण सभी कुँओं का जल आवश्यकता से अधिक खारा हो गया तथा पीने के लिए अनुपयुक्त हो गया। परिणामस्वरूप नगर के अधिकारियों को समस्त कुँओं से जल का विदोहन स्थगित करना पड़ा।

जब रसायन पृथ्वी में छोड़े जाते हैं और भूजल में पहुँच जाते हैं, तो इसे भूजल प्रदूषण के रूप में जाना जाता है। मिट्टी और चट्टानों से रिसकर सतह के नीचे जमा होने वाला पानी भूजल है। जलभृत वे चट्टानें हैं जिनमें भूजल जमा रहता है। बजरी, रेत, बलुआ पत्थर और चूना पत्थर जलभृतों के सामान्य घटक हैं। पानी इन चट्टानों के बीच से होकर गुजर सकता है क्योंकि उनमें बहुत बड़े अंतर होते हैं, जिससे वे पारगम्य हो जाते हैं। संतृप्त क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ पानी जलभृत को भरता है। जल स्तर सतह के नीचे की वह गहराई है जहाँ भूजल पाया जा सकता है। जल स्तर सतह से एक फुट जितना उथला या सौ मीटर जितना गहरा हो सकता है। भारी बारिश के कारण जल स्तर बढ़ सकता है, जबकि लगातार भूजल दोहन के कारण यह घट सकता है।

जब रसायन धरती में छोड़े जाते हैं और भूजल में मिल जाते हैं, तो इसे भूजल प्रदूषण के रूप में जाना जाता है। भूजल में किसी छोटे और अवांछित तत्व, संदूषक या अशुद्धता के कारण जल प्रदूषण का यह रूप स्वाभाविक रूप से भी हो सकता है। इसे प्रदूषण के बजाय संदूषण कहा जाता है। साइट पर सफाई व्यवस्था, अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रों से निकलने वाला मल, लैंडफिल लीचेट, पेट्रोल भरने वाले स्टेशन, लीक होने वाले सीवर, हाइड्रोलिक फ्रैक्चरिंग और कृषि में उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग सभी भूजल को प्रदूषित कर सकते हैं। आर्सेनिक और फ्लोराइड जैसे प्राकृतिक प्रदूषक भी पर्यावरण को प्रदूषित कर सकते हैं। दूषित भूजल का उपयोग आबादी के लिए स्वास्थ्य जोखिम पैदा करता है, क्योंकि इससे विषाक्तता या जलजनित बीमारी फैल सकती है।

प्रदूषक कभी-कभी जलभृत द्वारा दूषित प्लूम बनाते हैं। जलभृत के भीतर पानी की गति और फैलाव के कारण प्रदूषक एक बड़े क्षेत्र में फैल जाता है। इसकी विस्तारित सीमा, जिसे प्लूम एज के रूप में जाना जाता है, सतह के पानी और भूजल कुओं, जैसे कि झरनों और सीपों से टकरा सकती है, जिससे मानव और वन्यजीव जल आपूर्ति दूषित हो सकती है। प्लूम की गति की जांच करने के लिए एक हाइड्रोलॉजिकल ट्रांसपोर्ट मॉडल या भूजल मॉडल का उपयोग किया जा सकता है, जिसे प्लम फ्रंट के रूप में जाना जाता है। भूजल प्रदूषण के संदर्भ में प्रदूषकों की प्रकृति और मिट्टी के गुणों और साइट हाइड्रोलॉजी, हाइड्रोलॉजी और भूविज्ञान की जांच की जा सकती है। विभिन्न तंत्र, जैसे कि सोखना, प्रसार, वर्षा और गिरावट, भूजल में प्रदूषकों की गति को प्रभावित करते हैं।

भूजल प्रदूषण के कारण

प्रदूषण तब होता है जब प्राकृतिक रूप से मौजूद मिट्टी और चट्टानों के रसायन पानी में घुल जाते हैं। आयर्न, रेडियोन्यूक्लाइड, सल्फेट, मैंगनीज, फ्लोराइड, आर्सेनिक और क्लोराइड इन यौगिकों में से हैं। अन्य, जैसे कि गमले की मिट्टी के घटक, भूमिगत जल में रिस सकते हैं और कणों के रूप में आगे बढ़ सकते हैं। WHO के रिकॉर्ड के अनुसार, फ्लोराइड और आर्सेनिक सबसे आम संदूषक हैं। भूजल मूल्यांकन प्लेटफॉर्म का उपयोग प्रदूषण के प्राकृतिक कारणों की जांच करने के लिए किया जा सकता है, और GAP प्रदूषण के स्तर की गणना करने के लिए भूवैज्ञानिक, पर्यावरणीय और स्थलाकृतिक डेटा का उपयोग करता है।

फोटोग्राफिक रसायन, खाना पकाने का तेल, मोटर तेल, दवाइयाँ, पेंट थिनर, पेंट, गार्डन रसायन और स्विमिंग पूल रसायनों को सेप्टिक टैंक में या सीधे पारिस्थितिकी तंत्र में नहीं फेंकना चाहिए क्योंकि वे पर्यावरण को दूषित कर सकते हैं। इन यौगिकों के निपटान के लिए लाइसेंस प्राप्त खतरनाक अपशिष्ट संचालक से संपर्क किया जाना चाहिए।

फसल उत्पादन को बेहतर बनाने के लिए दुनिया भर में लाखों टन कृषि रसायनों जैसे उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इन रसायनों का उपयोग गोल्फ कोर्स जैसी अन्य जगहों पर भी किया जाता है। इन पदार्थों के अत्यधिक उपयोग से भूजल संदूषण हो सकता है। उदाहरण के लिए, कीटनाशकों के बारे में यह ज्ञात है कि वे वर्षों तक ज़मीन में रहते हैं और बारिश से पतले होने पर भूजल में और भी अधिक रिस जाते हैं।

परित्यक्त कुएं भी भूजल प्रदूषण का एक अन्य स्रोत हैं, क्योंकि वे विषाक्त पदार्थों को जलभृतों तक पहुँचाने के लिए एक नाली के रूप में कार्य कर सकते हैं। खराब तरीके से डिज़ाइन किए गए कुएं, जिनमें उपयुक्त आवरण और ढक्कन नहीं हो सकते हैं, अगर प्रदूषक उनमें प्रवेश कर जाते हैं तो भूजल संदूषण का कारण बन सकते हैं। खनन गतिविधियाँ संदूषण का एक अन्य स्रोत हैं क्योंकि घुलनशील खनिज वर्षा के माध्यम से साइटों से भूजल में रिस सकते हैं।

भूजल प्रदूषण के प्रभाव

भूजल प्रदूषकों के विभिन्न प्रभाव इस प्रकार हैं—

दूषित भूजल किसी के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। सेप्टिक टैंक सही तरीके से स्थापित न होने पर मानव मल जल स्रोतों को दूषित कर सकता है। मल में हेपेटाइटिस पैदा करने वाले कीटाणु मौजूद हो सकते हैं, जिससे लीवर को अपूरणीय क्षति हो सकती है। यह पेचिश को भी प्रेरित कर सकता है, जो गंभीर दस्त,

निर्जलीकरण और कुछ मामलों में मृत्यु का कारण बनता है। अत्यधिक कीटनाशकों और उर्वरकों के साथ-साथ प्राकृतिक रसायनों से विषाक्तता अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का कारण बन सकती है। रसायन जल स्रोतों में रिसकर उन्हें दूषित करते हैं, और ऐसे स्रोत से पानी पीने से आपके स्वास्थ्य को नुकसान हो सकता है।

भूजल आपूर्ति के दूषित होने से क्षेत्र पौधों, मनुष्यों और जानवरों के पनपने के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। क्षेत्र की आबादी कम हो जाती है, और भूमि का मूल्य कम हो जाता है। दूसरा प्रभाव यह है कि उत्पादन के लिए भूजल पर निर्भर रहने वाले उद्योगों में स्थिरता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, प्रभावित क्षेत्रों में उद्योग अन्य क्षेत्रों के पानी पर निर्भर हो सकते हैं, जो महंगा हो सकता है। इसके अलावा, उन्हें कम पानी की गुणवत्ता के कारण बंद होने के लिए मजबूर होना पड़ सकता है।

भूजल प्रदूषण पारिस्थितिकी तंत्र पर हानिकारक प्रभाव डाल सकता है। ऐसा ही एक परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र के आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक विशिष्ट पोषक तत्वों का नुकसान है। इसके अतिरिक्त, जब संदूषक जल निकायों के साथ संपर्क करते हैं, तो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में बदलाव आ सकता है। जल निकायों में बहुत अधिक विषाक्त पदार्थों के परिणामस्वरूप, मछली जैसी जलीय प्रजातियाँ जल्दी मर सकती हैं। दूषित पानी पीने वाले जानवरों और पौधों को भी नुकसान हो सकता है। समय के साथ जलभृतों में जहरीले यौगिक जमा हो जाते हैं, और एक बार जब संदूषण फैल जाता है, तो भूजल सीधे मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो सकता है। इसके परिणाम गंभीर हैं, खासकर उन लोगों के लिए जो सूखे के दौरान भूजल पर निर्भर हैं।

जब रसायन पृथ्वी में छोड़े जाते हैं और भूजल में पहुंच जाते हैं, तो इसे भूजल प्रदूषण के रूप में जाना जाता है। मिट्टी और चट्टानों से रिसकर सतह के नीचे जमा होने वाला पानी भूजल है। जलभृत वे चट्टानें हैं जिनमें भूजल जमा रहता है। बजरी, रेत, बलुआ पत्थर और चूना पत्थर जलभृतों के सामान्य घटक हैं। पानी इन चट्टानों के बीच से होकर गुजर सकता है क्योंकि उनमें बहुत बड़े अंतर होते हैं, जिससे वे पारगम्य हो जाते हैं। संतृप्त क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ पानी जलभृत को भरता है। जल स्तर सतह के नीचे की वह गहराई है जहाँ भूजल पाया जा सकता है। जल स्तर सतह से एक फुट जितना उथला या सौ मीटर जितना गहरा हो सकता है। भारी बारिश के कारण जल स्तर बढ़ सकता है, जबकि लगातार भूजल दोहन के कारण यह घट सकता है।

जब रसायन धरती में छोड़े जाते हैं और भूजल में मिल जाते हैं, तो इसे भूजल प्रदूषण के रूप में जाना जाता है। भूजल में किसी छोटे और अवांछित तत्व, संदूषक या अशुद्धता के कारण जल प्रदूषण का यह रूप स्वाभाविक रूप से भी हो सकता है। इसे प्रदूषण के बजाय संदूषण कहा जाता है। साइट पर सफाई व्यवस्था, अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रों से निकलने वाला मल, लैंडफिल लीचेट, पेट्रोल भरने वाले स्टेशन, लीक होने वाले सीवर, हाइड्रोलिक फ्रैक्चरिंग और कृषि में उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग सभी भूजल को प्रदूषित कर सकते हैं। आर्सेनिक और फ्लोराइड जैसे प्राकृतिक प्रदूषक भी पर्यावरण को प्रदूषित कर सकते हैं। दूषित भूजल का उपयोग आबादी के लिए स्वास्थ्य जोखिम पैदा करता है, क्योंकि इससे विषाक्तता या जलजनित बीमारी फैल सकती है।

प्रदूषक कभी-कभी जलभृत द्वारा दूषित प्लम बनाते हैं। जलभृत के भीतर पानी की गति और फैलाव के कारण प्रदूषक एक बड़े क्षेत्र में फैल जाता है। इसकी विस्तारित सीमा, जिसे प्लम एज के रूप में जाना जाता है, सतह के पानी और भूजल कुओं, जैसे कि झरनों और सीपों से टकरा सकती है, जिससे मानव और वन्यजीव जल आपूर्ति दूषित हो सकती है। प्लम की गति की जांच करने के लिए एक हाइड्रोलॉजिकल ट्रांसपोर्ट मॉडल या भूजल मॉडल का उपयोग किया जा सकता है, जिसे प्लम फ्रंट के रूप में जाना जाता है। भूजल प्रदूषण के संदर्भ में प्रदूषकों की प्रकृति और मिट्टी के गुणों और साइट हाइड्रोलॉजी, हाइड्रोलॉजी और भूविज्ञान की जांच की जा सकती है। विभिन्न तंत्र, जैसे कि सोखना, प्रसार, वर्षा और गिरावट, भूजल में प्रदूषकों की गति को प्रभावित करते हैं।

प्रदूषण तब होता है जब प्राकृतिक रूप से मौजूद मिट्टी और चट्टानों के रसायन पानी में घुल जाते हैं। आयरन, रेडियोन्यूक्लाइड, सल्फेट, मैंगनीज, फ्लोराइड, आर्सेनिक और क्लोराइड इन यौगिकों में से हैं। अन्य, जैसे कि गमले की मिट्टी के घटक, भूमिगत जल में रिस सकते हैं और कणों के रूप में आगे बढ़ सकते हैं।¹³ के रिकॉर्ड के अनुसार, फ्लोराइड और आर्सेनिक सबसे आम संदूषक हैं। भूजल मूल्यांकन प्लेटफॉर्म का उपयोग प्रदूषण के प्राकृतिक कारणों की जांच करने के लिए किया जा सकता है, और प्रदूषण के स्तर की गणना करने

के लिए भूवैज्ञानिक, पर्यावरणीय और स्थलाकृतिक डेटा का उपयोग करता है।

फोटोग्राफिक रसायन, खाना पकाने का तेल, मोटर तेल, दवाइयाँ, पेंट थिनर, पेंट, गार्डन रसायन और स्विमिंग पूल रसायनों को सेप्टिक टैंक में या सीधे पारिस्थितिकी तंत्र में नहीं फेंकना चाहिए क्योंकि वे पर्यावरण को दूषित कर सकते हैं। इन यौगिकों के निपटान के लिए लाइसेंस प्राप्त खतरनाक अपशिष्ट संचालक से संपर्क किया जाना चाहिए।

फसल उत्पादन को बेहतर बनाने के लिए दुनिया भर में लाखों टन कृषि रसायनों जैसे उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। इन रसायनों का उपयोग गोल्फ कोर्स जैसी अन्य जगहों पर भी किया जाता है। इन पदार्थों के अत्यधिक उपयोग से भूजल संदूषण हो सकता है। उदाहरण के लिए, कीटनाशकों के बारे में यह ज्ञात है कि वे वर्षों तक ज़मीन में रहते हैं और बारिश से पतले होने पर भूजल में और भी अधिक रिस जाते हैं।

परित्यक्त कुएं भी भूजल प्रदूषण का एक अन्य स्रोत हैं, क्योंकि वे विषाक्त पदार्थों को जलभृतों तक पहुँचाने के लिए एक नाली के रूप में कार्य कर सकते हैं। खराब तरीके से डिज़ाइन किए गए कुएँ, जिनमें उपयुक्त आवरण और ढक्कन नहीं हो सकते हैं, अगर प्रदूषक उनमें प्रवेश कर जाते हैं तो भूजल संदूषण का कारण बन सकते हैं। खनन गतिविधियाँ संदूषण का एक अन्य स्रोत हैं क्योंकि घुलनशील खनिज वर्षा के माध्यम से साइटों से भूजल में रिस सकते हैं।

भूजल प्रदूषण के प्रभाव –

भूजल प्रदूषकों के विभिन्न प्रभाव इस प्रकार हैं दूषित भूजल किसी के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। सेप्टिक टैंक सही तरीके से स्थापित न होने पर मानव मल जल स्रोतों को दूषित कर सकता है। मल में हेपेटाइटिस पैदा करने वाले कीटाणु मौजूद हो सकते हैं, जिससे लीवर को अपूरणीय क्षति हो सकती है। यह पेचिश को भी प्रेरित कर सकता है, जो गंभीर दस्त, निर्जलीकरण और कुछ मामलों में मृत्यु का कारण बनता है। अत्यधिक कीटनाशकों और उर्वरकों के साथ-साथ प्राकृतिक रसायनों से विषाक्तता अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का कारण बन सकती है। रसायन जल स्रोतों में रिसकर उन्हें दूषित करते हैं, और ऐसे स्रोत से पानी पीने से आपके स्वास्थ्य को नुकसान हो सकता है।

भूजल आपूर्ति के दूषित होने से क्षेत्र पौधों, मनुष्यों और जानवरों के पनपने के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। क्षेत्र की आबादी कम हो जाती है, और भूमि का मूल्य कम हो जाता है। दूसरा प्रभाव यह है कि उत्पादन के लिए भूजल पर निर्भर रहने वाले उद्योगों में स्थिरता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, प्रभावित क्षेत्रों में उद्योग अन्य क्षेत्रों के पानी पर निर्भर हो सकते हैं, जो महंगा हो सकता है। इसके अलावा, उन्हें कम पानी की गुणवत्ता के कारण बंद होने के लिए मजबूर होना पड़ सकता है।

भूजल प्रदूषण पारिस्थितिकी तंत्र पर हानिकारक प्रभाव डाल सकता है। ऐसा ही एक परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र के आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक विशिष्ट पोषक तत्वों का नुकसान है। इसके अतिरिक्त, जब संदूषक जल निकायों के साथ संपर्क करते हैं, तो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में बदलाव आ सकता है। जल निकायों में बहुत अधिक विषाक्त पदार्थों के परिणामस्वरूप, मछली जैसी जलीय प्रजातियाँ जल्दी मर सकती हैं। दूषित पानी पीने वाले जानवरों और पौधों को भी नुकसान हो सकता है। समय के साथ जलभृतों में जहरीले यौगिक जमा हो जाते हैं, और एक बार जब संदूषण फैल जाता है, तो भूजल सीधे मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो सकता है। इसके परिणाम गंभीर हैं, खासकर उन लोगों के लिए जो सूखे के दौरान भूजल पर निर्भर हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पेयजल में आर्सेनिक और फ्लोराइड को सबसे गंभीर अकार्बनिक प्रदूषक के रूप में मान्यता दी है, जबकि नाइट्रेट भूजल में पाया जाने वाला सबसे आम रसायन है।

भूमिगत जल प्रदूषण के परिणाम – दूषित भूजल किसी के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। सेप्टिक टैंक सही तरीके से स्थापित न होने पर मानव मल जल स्रोतों को दूषित कर सकता है। मल में हेपेटाइटिस पैदा करने वाले कीटाणु मौजूद हो सकते हैं, जिससे लीवर को अपूरणीय क्षति हो सकती है। यह पेचिश को भी प्रेरित कर सकता है, जो गंभीर दस्त, निर्जलीकरण और कुछ मामलों में मृत्यु का कारण बनता है। अत्यधिक कीटनाशकों और उर्वरकों के साथ-साथ प्राकृतिक रसायनों से विषाक्तता अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का कारण बन सकती है। रसायन जल स्रोतों में रिसकर उन्हें दूषित करते हैं, और ऐसे स्रोत से पानी पीने से आपके स्वास्थ्य

को नुकसान हो सकता है।

भूजल आपूर्ति के दूषित होने से क्षेत्र पौधों, मनुष्यों और जानवरों के पनपने के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। क्षेत्र की आबादी कम हो जाती है, और भूमि का मूल्य कम हो जाता है। दूसरा प्रभाव यह है कि उत्पादन के लिए भूजल पर निर्भर रहने वाले उद्योगों में स्थिरता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, प्रभावित क्षेत्रों में उद्योग अन्य क्षेत्रों के पानी पर निर्भर हो सकते हैं, जो महंगा हो सकता है। इसके अलावा, उन्हें कम पानी की गुणवत्ता के कारण बंद होने के लिए मजबूर होना पड़ सकता है।

भूजल प्रदूषण पारिस्थितिकी तंत्र पर हानिकारक प्रभाव डाल सकता है। ऐसा ही एक परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र के आत्मनिर्भरता के लिए आवश्यक विशिष्ट पोषक तत्वों का नुकसान है। इसके अतिरिक्त, जब संदूषक जल निकायों के साथ संपर्क करते हैं, तो समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में बदलाव आ सकता है। जल निकायों में बहुत अधिक विषाक्त पदार्थों के परिणामस्वरूप, मछली जैसी जलीय प्रजातियाँ जल्दी मर सकती हैं। दूषित पानी पीने वाले जानवरों और पौधों को भी नुकसान हो सकता है। समय के साथ जलभृतों में जहरीले यौगिक जमा हो जाते हैं, और एक बार जब संदूषण फैल जाता है, तो भूजल सीधे मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो सकता है। इसके परिणाम गंभीर हैं, खासकर उन लोगों के लिए जो सूखे के दौरान भूजल पर निर्भर हैं।

जल प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव— जल प्रदूषण के कारण पौधों एवं मानव सहित समस्त जन्तु समुदाय को अकथनीय तथा असाध्य क्षति का सामना करना पड़ता है। जल प्रदूषण के सबसे अधिक शिकार मनुष्य तथा सूक्ष्म जीव होते हैं। प्रदूषित जल के कारण संक्रामक रोगों तथा कई प्रकार के खतरनाक रोगों यथा — हैजा, तपेदिक, पीलिया, अतिसार, मियादी ज्वर, पैराटाइफाइड, पेचिस आदि का आविर्भाव होता है। ठोस प्रदूषकों से युक्त जल का सेवन करने से कई प्राणघातक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए असबेस्टस के रेशों से युक्त जल के सेवन से असबेस्टोसिस नामक जानलेवा रोग हो जाता है। इसके द्वारा फेफड़ों का कैंसर तथा पेट के रोग उत्पन्न होते हैं। पारायुक्त जल पीने से मिनामाता रोग हो जाता है। विषाक्त रसायनों से प्रदूषित जल के कारण जलीय पौधों तथा जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है। नदियों, झीलों तथा तालाबों के प्रदूषित जल द्वारा सिंचाई करने से फसलें नष्ट हो जाती हैं।

अत्यधिक प्रदूषित जल के कारण मिट्टियों का भी प्रदूषण हो जाता है, उनकी उर्वरता घट जाती है तथा उपयोगी मृदा-वासी सूक्ष्म जीव, यथा-बैक्टीरिया, मर जाते हैं। रेत के अत्यधिक भार से युक्त जल से फसलों की सिंचाई करने से मिट्टियों में रेत का अनुपात बढ़ जाता है जिस कारण मिट्टियों की उत्पादकता घट जाती है तथा उनकी जल की मांग बढ़ जाती है। अधिक लवणता वाले जल से सिंचाई करने पर मिट्टियों में क्षारीयता बढ़ जाती है। नदियों एवं झीलों तथा तालाबों के जल में अजैविक तथा जैविक पोषक तत्वों के सान्द्रण में वृद्धि होने से यूट्रोफिकेशन या सुपोषण हो जाता है जिस कारण जलीय भागों में पौधों तथा जन्तुओं की संख्या में नियंत्रण सीमा से भी अधिक भरमार हो जाती है। इसके विपरीत जल में विषाक्त रसायनों तथा भारी धात्विक पदार्थों के सान्द्रण में वृद्धि होने से पौधे एवं जन्तु विनष्ट हो जाते हैं। सागर के तटवर्ती जलीय भाग में खनिज तेल के रिसाव से उत्पन्न आयल स्लिक्स तथा कारखानों से विषाक्त अपशिष्टों के विसर्जन के कारण अधिकांश सागरीय जीव मर जाते हैं जिस कारण पारिस्थितिकीय विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जल प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभावों को संक्षेप में निम्न रूपों में व्यक्त किया जा सकता है।

1. प्रदूषित जल के सेवन से कई महामारी (कालरा) तथा कई जानलेवा रोग हो जाते हैं, यथा तपेदिक, टाइफाइड, जाण्डिस, पेचिस, पैराटायफाइड, डायरिया आदि।
2. सूक्ष्म मात्रिक तत्व के जल में आवश्यकता से अधिक सान्द्रण से प्रदूषित जल के सेवन से पहाड़ी क्षेत्रों में पेट के रोग तथा पेट का कैंसर, स्क्वेरोसिस आदि रोग हो जाते हैं।
3. अस्बेस्टस के रेशों से प्रदूषित जल द्वारा अस्बेस्टोसिस (फेफड़े के कैंसर का एक रूप) रोग, जल में अनुमन्य सीमा से अधिक सीसा के सान्द्रण से सीसा विषाण, तथा पारा से प्रदूषित जल द्वारा मिनामाता रोग हो जाता है।
4. जल में आर्सेनिक पदार्थों के अधिक सान्द्रण के कारण चर्म रोग हो जाते हैं। कोलकाता नगर तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में आर्सेनिक के कारण चर्म रोग अब महामारी का रूप धारण कर चुका है।

5.नदियों, झीलों, जलाशयों के जल तथा भूमिगत जल में जहरीले रसायनों के भारी सान्द्रण के कारण जलीय जीवों (पौधों तथा जन्तुओं) की मृत्यु हो जाती है।

6.सल्फ्यूरिक एसिड के भारी सान्द्रण से प्रदूषित जल से जलाशयों एवं झीलों में जीवों का विनाश हो जाता है। नार्वे, स्वीडन तथा फिनलैंड एवं कनाडा के ओण्टारियो प्रान्त की झीलों में अम्ल वर्षा के जल के पहुँचने से अधिकांश झीलों के पौधों एवं जलीय जन्तुओं एवं सूक्ष्म जीवों का विनाश हो गया है, जिस कारण कई झीलें मृतप्राय हो गयी हैं।

7.नदियों, झीलों एवं तालाबों में जैविक एवं अजैविक पोषक तत्वों के भारी सान्द्रण के कारण यूट्रोफिकेशन (सुपोषण) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है

8.अत्यधिक रेत के भार वाले नदी के जल द्वारा फसलों की सिंचाई करने से मिट्टियों की उर्वरता घट जाती है तथा मिट्टियों की जल की माँग में वृद्धि हो जाती है।

9.अत्यधिक लवणयुक्त जल से फसलों की सिंचाई करने से मिट्टियों की क्षारीयता बढ़ जाती है। आयल स्लिक से प्रदूषित सागरीय जल के कारण लिटोरल पारिस्थितिक तंत्र, वेलांचली पारिस्थितिक तंत्र में मछलियों सहित सागरीय जीव विनष्ट हो जाते हैं।

13.6 भारत में जल संकट

भारत का जल संकट एक जटिल मुद्दा है जो कई कारकों से उपजा है। तेजी से बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और असंवहनीय कृषि पद्धतियाँ पानी की बढ़ती मांग में योगदान करती हैं। जलवायु परिवर्तन स्थिति को और खराब कर देता है, जिससे अनियमित वर्षा पैटर्न होता है और जल स्रोत प्रभावित होते हैं। अकुशल जल प्रबंधन, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा और प्रदूषण भी एक भूमिका निभाते हैं, जिससे पानी की कमी एक गंभीर चिंता बन जाती है। जहाँ प्रदूषण, अति प्रयोग और खराब प्रबंधन जैसे कारकों के कारण विभिन्न आवश्यकताओं के लिए स्वच्छ और सुरक्षित जल की अपर्याप्त पहुंच होती है।

भारत में जल स्तर घटते के कारण उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में स्थित भारत को कभी भी इस तरह के गंभीर प्रणालीगत जल संकट का सामना नहीं करना पड़ा, क्योंकि बर्फ से ढका हिमालय इसकी उत्तरी सीमा बनाता है। भारत की जल समस्या के कई पहलू हैं। ग्लोबल वार्मिंग ने भारत में बारिश के पैटर्न को नाटकीय रूप से बदल दिया है। पहले, औसत मानसून की बारिश 45 दिनों तक होती थी। अब यह संख्या घटकर 22 दिन रह गई है, और हर मानसून में बारिश की तीव्रता कम होती जा रही है। बांधों, अन्य जलविद्युत परियोजनाओं तथा सिंचाई के लिए जल मोड़ने के कारण बड़े पैमाने पर नदी पारिस्थितिकी तंत्र को व्यवस्थित रूप से नष्ट किया जा रहा है।

भारत दुनिया के किसी भी अन्य देश की तुलना में अधिक भूजल का उपयोग करता है और भूजल दोहन के कारण जलभृतों का तेजी से सूखना शुरू हो गया है। सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला कुल भूजल 1980 के दशक के 30% से बढ़कर आज लगभग 60% हो गया है। सिंचाई के अतिरिक्त, भूजल का दोहन तीव्र शहरीकरण के साथ-साथ कोका-कोला जैसी शीतल पेय कम्पनियों द्वारा भूजल के अत्यधिक उपयोग के कारण भी हुआ है। नदी घाटियों, जलग्रहण क्षेत्रों और जलग्रहण क्षेत्रों का जल और मृदा संरक्षण के लिए समुचित उपयोग नहीं किया गया है, जिसके कारण नदी घाटियों का जल विज्ञान प्रभावित हो रहा है।

विविधतापूर्ण भूगोल और जलवायु वाला एक घनी आबादी वाला देश होने के बावजूद, भारत के पास कोई व्यापक जल नीति नहीं है। विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न राज्यों द्वारा सतही जल और भूजल के उपयोग के लिए कोई उचित दिशा-निर्देश उपलब्ध नहीं हैं भारत में भूजल के स्तर गिरने के कई कारण हैं—

1.खपत की उच्च दर — भूजल को अपनी पुनर्भरण की तुलना में तेजी से निष्कर्षित किया जा रहा है। जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है और अधिक जल की आवश्यकता बढ़ने वाली है।

2.समाप्त जलभृत — जलभृत विशाल स्पंज की तरह होते हैं जो जल को अवशोषित और धारित करते हैं तथा हमें ताजा जल उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालाँकि, वे केवल जल को धारण कर सकते हैं। जल की सीमित मात्रा और यदि जलभृत, पुनर्भरण की तुलना में तेजी से समाप्त हो रहे हैं, तो भारत को

भविष्य में जल की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

3. बड़ी आबादी और कृषि की जल-गहन प्रकृति — यह चिंता का विषय है कि भारत में अधिक भूजल शेष नहीं बचा है। पर्याप्त भूजल के बिना, विशेषकर सूखे के दौरान पीने, फसलों और पशुओं के लिए जल उपलब्ध कराना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। कम उपलब्ध जल का अर्थ है, कम भोजन और सीमित आपूर्ति के साथ उच्च माँग की पूर्ति करना एक संघर्षपूर्ण होता है।

4. प्राकृतिक कारक — जलवायु में परिवर्तन भी भूजल की कमी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इसके साथ ही मानवीय गतिविधियाँ भी भूजल की कमी के लिए प्राथमिक कारण हैं। जलवायु पैटर्न में बदलाव इस समस्या को और बढ़ा देते हैं और भूजल की कमी की प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं। इसलिए भारत में भूजल का अत्यधिक निष्कर्षण और कुप्रबंधन, प्राकृतिक कारकों के साथ मिलकर, भूजल निष्कर्षण का कारण बनता जा रहा

घटते भू-जल स्तर के दुष्परिणाम —

भूजल निष्कर्षण के कई महत्वपूर्ण प्रभाव हैं जिनमें शामिल हैं—बढ़ी हुई लागत (Increased Cost): कम गहराई में कम जल संसाधन उपलब्ध होने से गहरे भंडारित जल तक पहुँचने के लिए वैकल्पिक तरीकों को विकसित करने में अधिक संसाधनों का निवेश करना पड़ रहा है। भूजल की कमी के कारण झीलें, नदियाँ और समुद्र जैसे बड़े जल-निकाय उथले हो जाते हैं। जब भूजल की कमी होती है, तो जल का बहाव कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप समय के साथ जल स्तर कम हो जाता है। यह मछली और वन्य जीवन सहित पूरे पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है।

भूजल निष्कर्षण खारे पानी के प्रदूषण का कारण बन सकती है। चूँकि भूजल प्रायः बड़े जल निकायों से जुड़ा होता है। गहरा भूजल खारे पानी के साथ मिल जाता है, जिससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसे खारे जल का प्रदूषण कहा जाता है। बड़े जलभृतों की कमी का खाद्य आपूर्ति और समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कोलोराडो नदी जैसे उदाहरण दर्शाते हैं कि अर्थव्यवस्था और मानव-कल्याण के लिए महत्वपूर्ण होने के बावजूद, भूजल भंडार कितना कम हो रहा है।

भूजल की कमी जैव विविधता को सीमित करती है और खतरनाक सिंक होल्स के निर्माण में योगदान करती है। उदाहरण के लिए, मैक्सिको की खाड़ी और मैक्सिको सिटी के पास के क्षेत्र भारी मात्रा में जलभृतों पर निर्भर है। औद्योगिक कृषि सामग्री के अपवाह के कारण जल का प्रदूषण मैक्सिको की खाड़ी क्षेत्र में वन्य जीवन, समुद्री-जीवों और कृषि को प्रभावित करती है। भूजल निष्कर्षण के कुछ नकारात्मक प्रभावों में निम्न जल स्तर, अधिक गहराई से जल पंप करने की बढ़ी हुई लागत, सतही जल आपूर्ति में कमी, भूमि धंसाव और जल की गुणवत्ता के विषय में चिंताएँ, विशेष रूप से तटीय क्षेत्रों में खारे जल के घुसपैठ का खतरा आदि शामिल हैं।

1. उद्योग व खेती में अपशिष्ट जल— कई दशकों से उद्योगों खेती-बाड़ी विकास कार्य व अन्य उपयोगों में भूगर्भीय जल पर हमारी निर्भरता बढ़ती जा रही है। इस कारण भूमिगत जल के दोहन से भूजल स्तर निरन्तर तेजी से घटता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी वार्षिक वर्ल्ड वाटर डेवलपमेंट में कहा है कि पानी के उपायो के तरीकों और प्रबंधन में कमियों के कारण वर्ष 2030 तक दुनिया को जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। वर्तमान समय में बढ़ते शहरीकरण आधुनिकीकरण औद्योगिकीकरण कृषि मशीनीकरण से भूजल पर दबाव बढ़ता जा रहा है। दूसरी तरफ ग्लोबल वार्मिंग बढ़ने से मिट्टी सतह से वाष्पन व पौधों में वाष्पोत्सर्जन दर में वृद्धि होती है। भूमि में नमी की कमी होने से भूजल स्तर भी प्रभावित होता है। भूजल स्तर में कमी का एक प्रमुख कारण कम वर्षा और बर्फबारी में लगातार आ रही गिरावट है। वर्षा का अधिकांश भाग इधर-उधर बहकर नष्ट हो जाता है।

वर्तमान समय में भूजल बहुत ज्यादा प्रदूषित हो रहा है। इसके प्रमुख कारकों जैसे— घरेलू व्यर्थ पदार्थ औद्योगिक अपशिष्ट रेडियोधर्मी पदार्थ पेट्रोलियम तत्व हानिकारक होते हैं। सीवेज में मौजूद हानिकारक जीवाणु विषाणु फफूंद साथ ही भारी धातुओं जैसे क्रोमियम लेड और मरकरी का भूजल की गुणवत्ता पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ रहा है। प्रदूषित पानी को पीने के कारण उत्पन्न अनेक प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं। सिंचाई प्रणाली और खेती में बढ़ते कृषि रसायनों के प्रयोग से भूजल की गुणवत्ता मिट्टी की उर्वराशक्ति एवं फसलों की पैदावार में कमी जैसी समस्याएं सामने आ रही हैं।

2. अपशिष्ट जल का उपयोग करने के कारण – घरेलू अपशिष्ट जल उपचार, (नगरपालिका अपशिष्ट जल उपचार) अपशिष्ट जल उपचार का एक प्रकार है जिसका उद्देश्य सीवेज से प्रदूषकों को दूर करना है ताकि आसपास के वातावरण या एक इच्छित पुनः उपयोग के लिए उपयुक्त प्रवाह का उत्पादन किया जा सके, जिससे गन्दे पानी से जल प्रदूषण को रोका जा सके।

3. प्रदूषण जल की गुणवत्ता – अपशिष्ट जल बढ़ती मांग को पूरा करने में मदद कर सकता है। कई उपचार प्रक्रियाएं और परिचालन प्रणालियां हैं जो नगरपालिका गतिविधियों, टिकाऊ कृषि, ऊर्जा उत्पादन और औद्योगिक विकास में अपशिष्ट जल का उपयोग करती हैं। अपशिष्ट जल किसानों के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। अपशिष्ट जल फसलों के लिए पानी और पोषक तत्वों का एक मूल्यवान स्रोत है, जो जल और खाद्य सुरक्षा और आजीविका सुधार में योगदान देता है। बेहतर अपशिष्ट जल प्रबंधन रोगाणु जोखिम के जोखिम को कम करके कृषि श्रमिकों के स्वास्थ्य में सुधार कर सकता है

4. भू-जल का बढ़ता संक्रमण – भारत में पेय जल संकट 10 गुना अधिक बढ़ गया है। देश के दो तिहाई से अधिक भूजल भंडार खाली हो चुके हैं। आज भारत के दो तिहाई से अधिक भूजल भंडार खाली हो चुके हैं। जिनके कारण खेती-उद्योग और पेय जल का संकट आजादी के बाद से 10 गुना अधिक बढ़ गया है। दूसरी तरफ बाढ़ भी आ रही है। बाढ़ भी आठ गुना अधिक क्षेत्रों में आने लगी है। वहां भी जल प्रदूषित हो गया है। जलपेय योग्य नहीं है। बिहार, ओडिशा, बंगाल जैसे राज्यों में भी जो बाढ़ क्षेत्र थे, वहां भी भूजल का संकट कई गुना तेजी से बढ़ रहा है। लेकिन यह संकट क्यों बढ़ रहा है? यह जानना जरूरी है। भारत की आस्था प्रकृति की रक्षा थी। प्रकृति पर अतिक्रमण, प्रदूषण और षोषण करने वालों को अब बड़े सम्मानित व्यक्तियों की श्रेणी में माना जाता है। जबकि हमारे देश में लाभ से अधिक शुभ का महत्व था। लेकिन पिछले 150 साल में हम शुभ को भूलते चले गए और केवल व केवल लोभी, लालची बनकर लाभ कमाने के फेरे में लग गए। खेती को संस्कृति मानने वाला भारत खेती में बाजार मांग के अनुरूप अधिक जल खपत वाली फसलें पैदा करने लगा। परिणामस्वरूप धरती का पेट खाली हो गया। 90 प्रतिशत भूजल खेती में ही काम आ रहा है। भूजल को संपूर्ण रूप से उद्योग प्रदूषित कर रहे हैं। बाजारु खेती भी प्रदूषित कर रही है।

भारत का उत्तरी क्षेत्र का मैदानी इलाका बेहद उपजाऊ है। हालांकि इस उपजाऊ क्षेत्र में मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं। जमीन के नीचे का जल स्तर तेजी से खत्म होता जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका के नेशनल एरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार, पिछले दशक में उत्तरी भारत का भूजल 8.8 करोड़ एकड़-फिट कम हो चुका है।

13.7 भूजल संरक्षण के उपाय

कृषि विकास किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। सघन फसल उत्पादन में पानी एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण घटक है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। वस्तुतः यह कटु सत्य है कि सम्पूर्ण विश्व में जल ही ऐसा संसाधन है, दो निरंतर चिंता का विषय बना हुआ है। वर्तमान में जल संकट के कई कारण हैं, जैसे जनसंख्या वृद्धि, कम होती वर्षा का परिमाण, बढ़ता औद्योगिकीकरण, बढ़ता शहरीकरण, वृक्षों कि अंधाधुंध कटाई, विलासिता, आधुनिकतावादी एवं भोगवादी प्रवृत्ति, स्वार्थी प्रवृत्ति एवं जल के प्रति संवेदनहीनता, भूजल पर बढ़ती निर्भरता एवं इसका अत्यधिक दोहन, परम्परागत जल संग्रहण तकनीकों की उपेक्षा, समाज की सरकार पर बढ़ती निर्भरता, कृषि में बढ़ता जल का उपभोग आदि।

जल संचयन-वर्षा का ज्यादातर पानी सतह की सामान्य ढालों से होता हुआ नदियों में जाता है तथा उसके बाद सागर में मिल जाता है। वर्षा के इस बहुमूल्य शुद्ध जल का भूमिगत जल के रूप में संरक्षण अति आवश्यक है। भूमिगत जल कुएँ, नलकूप आदि साधनों द्वारा खेती और जनसामान्य के पीने हेतु काम आता है। भूमिगत जल, मृदा (धरती की उपरी सतह) की अनेक सतहों कि नीचे चट्टानों के छिद्रों या दरारों में पाया जाता है। उपयोगिता कि दृष्टि से भूमिगत जल, सतह पर पीने योग्य उपलब्ध जल संसाधनों के मुकाबले अधिक महत्वपूर्ण है। भारत के लगभग अस्सी प्रतिशत गाँव, कृषि एवं पेयजल के लिये भूमिगत जल पर ही निर्भर हैं और दुश्चिंता यह है कि विश्व में भूमिगत-जल अपना अस्तित्व तेजी से समेट रहा है। अन्य विकासशील देशों में तो यह स्थिति भयावह है ही, जहाँ जलस्तर लगभग तीन मीटर प्रति वर्ष की रफ़्तार से कम हो रहा है, पर भारत में भी स्थिति कुछ बेहतर नहीं।

वर्षाजल और सतही जल का आपसी संबंध भी जानना आवश्यक है। नदियों में बहने वाला जल केवल वर्षाजल अथवा ग्लेशियर से पिघल कर बहता हुआ पानी ही नहीं है। नदी अपने जल में भूमिगत जल से भी योगदान लेती है, साथ ही भूमिगत जल को योगदान देती भी है। ताल, झील और बाँधों के इर्द-गिर्द भूमिगत जल की सहज सुलभता का कारण यही है कि ये ठहरे हुए जलस्रोत आहिस्ता-आहिस्ता अपना पानी इन भूमिगत प्राकृतिक जल संग्रहालयों को प्रदान करते रहते हैं। इस प्रकार पृथ्वी के उपर पाए जाने वाले जलस्रोत और भूमिगत जलस्रोत एक दूसरे की सहायता पर निर्भर होते हैं। वर्षा का जल यदि संग्रहित कर चट्टानों तक पहुँचाया जाये तो भूमिगत जलाशयों को भरा जा सकता है। प्रकृति अपने सामान्य क्रम में यह कार्य करती रहती है। किंतु आज जब यह समस्या विकराल रूप ले चुकी है, तो मनुष्य के लिये अभियान बनाकर यह कार्य करना आवश्यक हो गया है। इस अभियान का प्रमुख उद्देश्य जल को जीवन मान कर बचाया जाना और सरल वैज्ञानिक विधियों द्वारा इसे भूमि के भीतर पहुँचाया जाना है, जिसमें हम सभी को जुटना होगा। भूमिगत जल के संचयन एवं संरक्षण हेतु प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्तर पर निम्न कार्य अवश्य ही करना चाहिए—

1. वर्षाकाल में मकानों की छत पर गिरे जल को जमीन में पहुँचाने की व्यवस्था बना दी जाए।
2. आंगन को कच्चा रखने की पुरानी परंपराओं का पालन किया जाए।
3. कम से कम एक वृक्ष लगाया जाए।
4. पानी की बर्बादी को रोका जाए, जैसे कि उपयोग के बाद नल को बंद कर दिया जाए।
5. सरकारी प्रयास और वैज्ञानिक शोधों से इस समस्या का आंशिक समाधान ही निकलेगा, किंतु यदि सामान्यजन इस बात को समझ लें, तो बूँद-बूँद से घड़ा भरते देर नहीं लगेगी।

बूँद-बूँद से घड़ा भरता है और बारिश के पानी से भूगर्भ जल का स्तर ऊँचा होता है। आकाशीय पानी को भूगर्भ स्रोत से जोड़ने के लिये जगह-जगह पर रिचार्ज-पिट की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि-अतिवृष्टि में भी पानी बह कर बर्बाद नहीं हो। वर्षा-जल संधारण जरूरी भी है और जिम्मेदारी भी है। कम पानी की सिंचाई पद्धतियाँ-वैज्ञानिकों ने निरंतर अनुसंधान द्वारा ऐसी सिंचाई विधियाँ विकसित की हैं, जिनसे पानी व उर्जा की न केवल बचत होती है, वरन्, कृषि उपज भी अधिक प्राप्त होती है। ये पद्धतियाँ हैं— फव्वारा एवं बूँद-बूँद सिंचाई प्रणाली। फव्वारा एवं बूँद-बूँद सिंचाई पद्धतियों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि पानी का झ्रस नहीं होता, क्योंकि पानी पाइप द्वारा प्रवाहित होता है तथा फव्वारा या बूँद-बूँद रूप में दिया जाता है। इन पद्धतियों से 75 से 95 प्रतिशत तक पानी खेत में फसल को मिलता है, जबकि प्रचालित सतही विधियों में 40 से 60 प्रतिशत ही फसल को मिल पाता है। इतना ही नहीं फव्वारा एवं बूँद-बूँद सिंचाई पद्धतियों की खरीद पर सरकार 50 से 75 प्रतिशत तक अनुदान भी देती है। फव्वारा पद्धति— इस पद्धति में पानी पाइप व फव्वारों द्वारा वर्षा के रूप में दिया जाता है। यह विधि असमतल भूमि के लिये अति उपयुक्त है। यह विधि 2 से 10 किग्रा./सेमी., दाब पर काम करती है। नोजल का व्यास 1.5 मिमी. से 40 मि.मी. तक होता है। इनसे 1.5 लीटर/सेकेंड से 50 लीटर/सेकेंड की दर से पानी फव्वारे के रूप में निकलता है। एक फव्वारे द्वारा 6 से 160 मीटर तक क्षेत्रफल सिंचित किया जा सकता है। हमारे देश में बहुधा 6 से 15 मीटर की दूरी तक पानी छिड़कने के सिंचाई फव्वारे उपलब्ध है। इन्हें चलाने के लिये 2.5 किग्रा. प्रति सेमी² दबाव की जरूरत होती है। यह विधि बाजरा, गेहूँ, सरसों व सब्जियों के लिये अति उपयुक्त पाई गई है। कम लवणीय जल होने पर भी यह विधि उपयोग में लाई जा सकती है, परंतु अधिक लवणीय जल होने पर यह अनुपयुक्त है। इस विधि द्वारा नाइट्रोजन उर्वरक, कीट एवं कवक-नाशक दवाइयों का भी छिड़काव किया जा सकता है।

बूँद-बूँद सिंचाई—इस विधि से पानी पाइप एवं ड्रिपर इत्यादि से दिया जाता है। सामान्यतः एक ड्रिपर 2 से 10 लीटर प्रति घंटा पानी देता है। इस विधि में मुख्य पाइप 50 मिमी., उप-मुख्य पाइप 35 मिमी., तथा सिंचाई पाइप 12 से 16 मिमी., व्यास के होते हैं। इस विधि में सिंचाई वाली पाइप भूमि सतह से 30 से 40 सेमी., गहरा रखकर भी सिंचाई की जा सकती है। ड्रिपर बंद होने की समस्या को एक प्रतिशत गंधक के तेजाब अथवा नमक के तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) का घोल बनाकर ड्रिपर को धोने से दूर की जा सकती है। इस विधि से मजदूरी, पानी, बिजली तथा रासायनिक उर्वरकों की बचत होती है यह विधि रेतीली मिट्टी के लिये बहुत ही उपयुक्त है। हमारी भावी पीढ़ी के लिए भी जल की उपलब्धता सुनिश्चित हो, इसके लिए हमें कई कदम उठाने होंगे; जैसे कि—

1. घरेलू स्तर पर जल का उचित व संयमित उपयोग एवं उद्योगों में पानी के चक्रीय उपयोग जल संरक्षण में सहायक हो सकते हैं इस्तेमाल किये हुए पानी का फिर से शौचालयों अथवा बगीचों में फिर से इस्तेमाल और रिसाइकिलिंग करके जल का सदुपयोग कैसे करना है, इस दिशा में जन-जागरूकता बढ़ायी जाए

2. वर्षा-जल का संग्रहण करके हम पानी को बचा सकते हैं विभिन्न जलाशयों का निर्माण करके उनमें जल संग्रह करना जल संसाधन का सबसे पुराना उपाय है, इसे आगे भी बढ़ाया जा सकता है भूमिगत जल संरक्षण के लिए भूमिगत जल का कृत्रिम रूप से पुनर्भरण किया जा सकता है

3. टपकन टैंक/ड्रिप/स्प्रिंकल सिंचाई के उपयोग से सिंचाई जल के संरक्षण को बढ़ावा दिया जा सकता है के जलग्रहण क्षेत्रों का संरक्षण करके जल के साथ-साथ मृदा का भी संरक्षण किया जा सकता है। यह विधि सामान्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में प्रयोग में लायी जाती है फसल उगाने के तरीकों का प्रबंधन करके; जैसे कि कम जल क्षेत्रों में ऐसे पौधों का चयन करके जिनकी पैदावार के लिए कम पानी की जरूरत हो नहरों की तली व नालियों को पक्का करके नहरों-नालियों से बहने वाले अतिरिक्त जल को बचाया जा सकता है

भारत की जल जरूरत की बात करें तो इसके लगभग 1,100 बिलियन क्यूबिक मीटर प्रति वर्ष होने का अनुमान है। इस उच्च आवश्यकता को पूरा करने के लिए, भारत सरकार भी विभिन्न साधनों और उपायों के जरिए जल निकायों की स्थिति और बेहतर उपचार प्रणालियों में सुधार करने की कोशिश कर रही है। इनमें से कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं, जिन्हें अपनाया गया है और आगे बढ़ाया गया है— जल की उपलब्धता, संरक्षण और गुणवत्ता में सुधार के उद्देश्य से 2019 में जल शक्ति अभियान शुरू किया गया।

जल शक्ति मंत्रालय द्वारा राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों को मॉडल बिल का वितरण ताकि वे इसके नियमन और विकास के लिए एक उपयुक्त भूजल कानून इनेक्ट कर सकें। इस कानून को अब तक 19 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों द्वारा अपनाया जा चुका है। भूजल विकास और प्रबंधन के विनियमन और नियंत्रण के लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के तहत केंद्रीय भूजल प्राधिकरण का गठन किया गया। भूजल के कृत्रिम पुनर्भरण के लिए सेंट्रल ग्राउण्ड वॉटर बोर्ड द्वारा मास्टर प्लान— 2020 तैयार किया गया है, जिसमें मानसूनी वर्षा के 185 बिलियन क्यूबिक मीटर का उपयोग करने के लिए देश में लगभग 1.42 करोड़ वर्षा जल संचयन और कृत्रिम पुनर्भरण संरचनाओं के निर्माण की परिकल्पना की गई है।

जल संरक्षण की दिशा में प्रशिक्षण, सेमिनार, कार्यशालाएँ, प्रदर्शनियाँ, और चित्रकला प्रतियोगिता आदि जैसे जन-जागरूकता कार्यक्रमों का नियमित आयोजन किया गया। केंद्र सरकार द्वारा प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना – वाटरशेड डेवलपमेंट कंपोनेंट के जरिए जल संचयन और संरक्षण कार्यों के निर्माण में सहायता प्रदान की जाती है। अटल भूजल योजना –भूजल प्रबंधन पर इस बड़ी योजना का शुभारंभ प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा 25 दिसंबर 2019 को किया गया। 6000 करोड़ रुपये की इस योजना में 50 फीसदी फंड विश्व बैंक का और 50 फीसदी भारत सरकार लगाएगी। इस योजना का मकसद देश के 7 चुनिंदा राज्यों के भूजल की कमी से जूझने वाले क्षेत्रों में बेहतर भूजल प्रबंधन करना है। इन राज्यों में गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश शामिल हैं।

गंगा बेसिन की नदियों के संरक्षण के लिए जल शक्ति मंत्रालय की नमामी गंगे पहल और अन्य नदियों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना सरकार के जल समृद्ध भारत के दृष्टिकोण को प्राप्त करने के लिए राज्यों, जिलों, व्यक्तियों, संस्थानों, संगठनों आदि द्वारा किए गए प्रयासों को पहचानने और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए जल शक्ति मंत्रालय द्वारा 2018 में राष्ट्रीय जल पुरस्कारों की शुरुआत जल संरक्षण के लिए लोगों के सहयोग से जन जागरूकता अभियान चलाने के लिए 2021 में कैच द रैन अभियान की शुरुआत ग्रामीण क्षेत्रों में जल संकट को दूर करने के लिये भारत के प्रत्येक जिले में कम-से-कम 75 अमृत सरोवरों के निर्माण के लिए 24 अप्रैल, 2022 को अमृत सरोवर मिशन का शुभारंभ; 15 अगस्त, 2023 तक इस मिशन का लक्ष्य 50,000 अमृत सरोवरों का निर्माण करना है निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'जल संरक्षण' आज समूची दुनिया के लिए अहम चिंता का विषय है। प्रकृति हमें निरंतर वायु, जल, प्रकाश आदि शाश्वत गति से दे रही है लेकिन हम प्रकृति के इस नैसर्गिक संतुलन को बिगाड़ने से बाज नहीं आ रहे हैं। पानी को बचाने की दिशा में हमें पहले से चेत जाने की जरूरत है।

13.8 सारांश

भारत में जल संकट एक गंभीर मुद्दा बन चुका है, जिसका प्रमुख कारण भूमिगत जल का अवक्रमण और प्रदूषण है। भारत में जल की कमी न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में बल्कि शहरी क्षेत्रों में भी महसूस की जा रही है। इस संकट का मुख्य कारण जल संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग, अनियंत्रित शहरीकरण, कृषि में अधिक जल की खपत, और उद्योगों द्वारा जल का दुरुपयोग है। भूमिगत जल, जो कि पीने, कृषि और उद्योगों के लिए प्रमुख जल स्रोत है, तेजी से कम हो रहा है। भारतीय कृषि की प्रमुख सिंचाई प्रणाली परंपरागत रूप से नलकूपों और बोरवेल्स पर निर्भर है। इनका अंधाधुंध उपयोग भूमिगत जल स्तर को तेजी से गिरा रहा है। उदाहरण के तौर पर, पंजाब और हरियाणा जैसे कृषि प्रधान राज्यों में भूमिगत जल स्तर खतरनाक रूप से नीचे चला गया है। इसके अतिरिक्त, शहरी क्षेत्रों में भी जल की भारी मांग ने भूमिगत जल स्रोतों पर भारी दबाव डाला है।

जल प्रदूषण भारत में जल संकट का एक और महत्वपूर्ण कारण है। नदियों, झीलों और अन्य जल निकायों में औद्योगिक कचरे, घरेलू सीवेज और कृषि रसायनों का अनियंत्रित प्रवाह जल को दूषित कर रहा है। गंगा, यमुना, और गोदावरी जैसी प्रमुख नदियाँ प्रदूषण के उच्च स्तर से प्रभावित हैं। जल प्रदूषण से न केवल पीने योग्य जल की मात्रा कम हो रही है बल्कि यह मानव स्वास्थ्य के लिए भी गंभीर खतरा बन गया है।

13.9 स्वयं मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1. भूमिगत जल प्रदूषण का मुख्य कारण कौन सा है?

- (अ) हवा का प्रदूषण (ब) कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग
(स) ध्वनि प्रदूषण (द) वनों की कटाई

उत्तर (ब) कृषि रसायनों का अत्यधिक उपयोग

प्रश्न 2. भूमिगत जल प्रदूषण से कौन सी बीमारी फैल सकती है?

- (अ) मलेरिया (ब) डेंगू (स) हैजा (द) चिकनगुनिया

उत्तर (स) हैजा

प्रश्न 3. भूमिगत जल प्रदूषण को मापने के लिए कौन सी विधि उपयोग की जाती है?

- (अ) तापमान माप (ब) वायु गुणवत्ता सूचकांक
(स) जल नमूना विश्लेषण (द) ध्वनि स्तर मापन

उत्तर (स) जल नमूना विश्लेषण

प्रश्न 4. निम्नलिखित में से कौन सा एक जैविक प्रदूषक है?

- (अ) कीटनाशक (ब) नाइट्रेट
(स) बैक्टीरिया (द) सीसा

उत्तर (स) बैक्टीरिया

प्रश्न 5. भूमिगत जल प्रदूषण को रोकने के लिए सबसे उपयुक्त उपाय कौन सा है?

- (अ) अधिक वनस्पति लगाना (ब) शुद्ध पेयजल का वितरण
(स) जैविक कृषि का समर्थन (द) उद्योगों का विस्तार

उत्तर (स) जैविक कृषि का समर्थन

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) Urbanization and Environmental Problems, (2 Vols.), Chugh Publications, Allahabad, 1989.

(2) Population and Housing Problems in India, (2 Vols.), Chugh Publications, Allahabad, 1989.

3 .मौर्य यस0 डी0, मानव भूगोल शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद

4 -जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

5 संसाधन भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद

6- सिंह जगदीश संसाधन भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर

7. Singh, L. R. et. al. (eds.) Environmental Management, Allahabad Geographical Society, Allahabad, 1983.

8. सिंह, सविन्द्र पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2004.

5- flag, सविन्द्र भौतिक भूगोल, बसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2000.

13.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1.भूमिगत जल अवक्रमण और जल संकट के कारणों का विवेचन करें ?

प्रश्न 2 — शहरीकरण और औद्योगीकरण किस प्रकार भूमिगत जल को प्रभावित करते हैं?

प्रश्न 4— औद्योगिक कचरे और घरेलू अपशिष्ट का भूमिगत जल पर क्या प्रभाव होता है?

प्रश्न 5— जल संकट के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में होने वाली सामाजिक समस्याओं का उल्लेख करें ?

प्रश्न 6 — भारत सरकार द्वारा जल संकट के समाधान हेतु उठाए गए प्रमुख कदमों की समीक्षा करें ?

प्रश्न 7— क्या संभावित नीतियाँ और उपाय हो सकते हैं जो जल संकट को स्थायी रूप से समाधान करने में सहायक हैं?

प्रश्न 8— भारत में जल संकट के आर्थिक और सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करें ?

इकाई-14 : वायु प्रदूषण की संकल्पना, वायु प्रदूषण के कारक, ध्वनि प्रदूषण

इकाई की रूपरेखा

- 14.0 प्रस्तावना
- 14.1 उद्देश्य
- 14.2 वायु प्रदूषण
- 14.3 वायु प्रदूषण का इतिहास
- 14.4 वायु मण्डल की संरचना
- 14.5 वायु प्रदूषण के स्रोत
- 14.6 वायु प्रदूषक के प्रकार
- 14.7 वायु प्रदूषण के प्रकार
- 14.8 वायु प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव
- 14.9 वायु प्रदूषण के नियन्त्रण के उपाय
- 14.10 ध्वनि प्रदूषण
- 14.11 ध्वनि तथा शोर
- 14.12 ध्वनि स्तर का मापन
- 14.13 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव
- 14.14 ध्वनि प्रदूषण पर नियन्त्रण
- 14.15 सारांश
- 14.16 शब्द सूची
- 14.17 स्वमूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर
- 14.18 अभ्यासार्थ प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)
- 14.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची/उपयोगी पुस्तकें

14.0 प्रस्तावना

पर्यावरण प्रबंधन एवं संविकास के लिए लेखन की यह इकाई भूगोल के आधार पाठ्यक्रम MAGO-113 की 14वीं इकाई है। इस इकाई में आप वायु प्रदूषण के विषय में अध्ययन करेंगे। इसके अंतर्गत वायुमंडल के संघटक स्रोत, प्रकार तथा मनुष्यों के ऊपर पड़ने वाला प्रभाव का अध्ययन करेंगे। वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए रोकथाम के उपायों की भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई के अंतर्गत ध्वनि प्रदूषण, मापन ध्वनि प्रदूषण का वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा इसकी रोकथाम के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं, आदि का अध्ययन करेंगे।

14.1 उद्देश्य

भूगोल में आधार पाठ्यक्रम MAGO-113 पर्यावरण प्रबंधन एवं संविकास की चौदहवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप—

- पर्यावरण भूगोल के अंतर्गत वायु प्रदूषण व ध्वनि प्रदूषण को पूर्णतयः समझ सकेंगे।

- वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों व प्रकारों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के अंतर्गत होने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे।
- वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के रोकथाम के उपायों जैसे महत्वपूर्ण बिंदुओं का अध्ययन कर सकेंगे।

14.2 वायु प्रदूषण

वायु जीवनदायी तत्व है शुद्ध वायु जीवन का आधार है। एक व्यक्ति प्रतिदिन 22 हजार बार सांस लेता है। जिसमें वह प्रतिदिन 35 गैलन या 16 किग्रा वायु को ग्रहण करता है। नौसर्गिक रचना में विविध प्रकार की गैसों, जलवाष्प तथा धूलकण आदि सम्मिलित हैं। संतुलित अनुपातयुक्त वायु को शुद्ध वायु कहा जाता है। इस अनुपात को बनाए रखने के लिए प्रकृति स्वनियंत्रण और स्वशुद्धिकरण (Self Purification) का प्रयास करती है, किंतु जब इसमें अवांछनीय तत्व अधिक मात्रा में मिल जाते हैं, तो वायु गुणवत्ताहीन हो जाती है। जिसे अशुद्ध वायु (Polluted Air) कहा जाता है। अशुद्ध वायु जीवों के लिए अत्यधिक हानिकारक है।

उल्लेखनीय है कि मूलतः वायु कभी भी शुद्ध नहीं होती है, क्योंकि विभिन्न प्रकार की गैसों (सल्फर डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड कार्बन मोनोऑक्साइड आदि) ज्वालामुखी वह दलदलों की निस्सृत गैसों, धूलिकण, साल्फ्रेट्स, पौधों के पराग आदि वायु में निरंतर घुलाते रहते हैं, जिस कारण वायु प्रदूषण हो जाता है।

वायु प्रदूषण की कतिपय परिभाषाएं निम्न प्रकार की हैं। “वहिरंग वायुमंडल (Outdoor atmosphere) में एक या एक से अधिक प्रदूषण यथा : धूल, धूम्र, गैस, कुहासा रंग, कालिख या वाष्प, की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि वायु मनुष्य पौधों या जंतुओं के जीवन के लिए हानिकारक हो जाती है या जिससे मानव जीवन के आनंद एवं उसकी संपत्ति में व्यवधान होने लगता है तो उसे वायु प्रदूषण कहते हैं।”

यच० पार्किन्स, 1974

“हम हिमरोई (Elm) के पेड़ों पर दवा छिड़कते हैं और फिर अगली बहार में पेड़ों पर रॉबिन के गीत नहीं गुँजते। इसलिये नहीं कि हमने रॉबिन चिड़ियों पर दवा छिड़की, बल्कि इसलिये कि जहर जरा-जरा करके हिमरोई-केचुआ-रॉबिन के सुपरिचित चक्र में व्याप्त हो गया।”

राचेल कार्सन

“सामान्य अर्थों में प्राकृतिक तथा मानव जनित स्रोतों से उत्पन्न बाहरी तत्वों के वायु में मिश्रण के कारण वायु की असंतुलित दशा को वायु प्रदूषण कहते हैं। इस तरह असंतुलित वायु की गुणवत्ता में ह्रास हो जाता है तथा वह जीवीय समुदाय के लिए सामान्य रूप में तथा मानव समुदाय के लिए विशेष रूप से हानिकारक हो जाती है।”

सविन्द्र सिंह, 1991

14.3 वायु प्रदूषण का इतिहास

पृथ्वी पर वायु प्रदूषण का आरंभ तभी से माना जाता है जब मनुष्य ने भोजन पकाने और गर्मी पाने के लिए लकड़ी जलाना आरंभ किया। हाइपोक्रिटस ने 400 ई० पू० में वायु प्रदूषण का उल्लेख किया था। कोयले की खोज के कारण इसमें और गति आयी है। 700 वर्ष पूर्व लंदन में धुएँ की समस्या के कारण किंग एडवर्ड प्रथम ने 1273 में पहला प्रदूषण विरोधी कानून बनाकर लोगों को घरों को गर्म रखने के लिए कोयले के प्रयोग से रोका था। वर्ष 1300 ई० में कोयले के प्रयोग को प्रतिबंधित करने के लिए एक कानून पारित किया गया, जिसके उल्लंघन के फलस्वरूप मृत्युदंड का प्रावधान था। इसके बावजूद औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप कोयले के प्रदूषण की समस्या अत्यंत गंभीर हो गयी। सबसे पहले दर्ज प्रमुख आपदा “लंदन धूम कुहरा” (London Smog) 1952 में घटित हुई। इसके परिणाम स्वरूप प्रदूषण के कारण 4000 से अधिक लोगों की जाने चली गयी।

यूरोप में 19वीं सदी के अंत के आसपास औद्योगिक क्षेत्रों में काले रंग का पेपरमाथ (Paper Moth) कीड़ा दिखाई देने लगा।

14.4 वायु मण्डल की संरचना

प्रदूषण के प्रभाव को जानने के लिए वायुमंडल की संरचना को समझना अत्यधिक आवश्यक है।

सामान्यतः वायुमंडल में 79 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन और 0.03 कार्बन डाइऑक्साइड, जलवाष्प और नियॉन, हीलियम, मथेन, क्रिप्टन, हाइड्रोजन और जेनान गैसों का मिश्रण होता है। वायुमंडल की सामान्य संरचना की अनेक विशेषताएं हैं, जो पर्यावरण की कई समस्याओं के लिए जिम्मेदार है। वायुमंडल की संरचना को कई सतहों में विभाजित किया जा सकता है, (चित्र संख्या:- 1)

सबसे नीचे की सतह को क्षोभमंडल (Troposphere) कहते हैं जो विषुवत रेखा पर 17 किमी⁰ तथा ध्रुव पर 8 किमी⁰ ऊंचाई पर पाई जाती है। पृथ्वी के वायुमंडल की अधिकांश क्रियाएं इसी परत पर संपन्न होती हैं। क्षोभ मंडल पर ऊंचाई बढ़ने के साथ-साथ तापमान गिरने लगता है। क्षोभ मंडल की ऊपरी सीमा में तापमान अचानक से बढ़ने लगता है। इस सीमा रेखा को "क्षोभ सीमा" (Tropopause) कहते हैं। क्षोभ सीमा के अंत में समताप मंडल (Stratosphere) का आरंभ होता है, इस सीमा की ऊंचाई 17 से 48 किमी⁰ तक है इस सतह पर दो बड़े अंतर देखने को मिलते हैं। यहां जलवाष्प का आयतन 1000 गुना कम पाया जाता है। जबकि ओजोन का आयतन 1000 गुना अधिक पाया जाता है। ओजोन की उपस्थिति में सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी करने पृथ्वी पर प्रवेश नहीं करने पाती तथा यह मनुष्यों को कैंसर से सुरक्षित रखती हैं। इस सतह पर बादलों का निर्माण नहीं होता है। इसलिए वायुयानों की उड़ान के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। समताप मंडल में ऊंचाई के साथ तापक्रम बढ़ता जाता है, जब तक की एक और उल्टाव (Reversal) नहीं आ जाता है। इस बिंदु को "समताप सीमा" (Stratopause) कहते हैं या समताप सीमा का अंत है। अगली सतह को मध्यमंडल (Mesosphere) कहते हैं, जिसमें ऊंचाई के साथ तापमान में गिरावट आती जाती है। इसके शीर्ष पर 110° सेंटीग्रेड रह जाता है। गैसों के आयनों का बनना इसके प्रमुख विशेषता है, जिससे तापमान में वृद्धि आती है इस सतह को बाहरी वायुमंडल (Thermosphere) कहते हैं। मौसम संबंधी क्रियाओं के लिए तथा वायुप्रदूषण के लिये क्षोभमण्डल महत्वपूर्ण है।

14.5 वायु प्रदूषकों के स्रोत

वायु प्रदूषण के स्रोत को दो भागों में बांटा जा सकता है :-

3. प्राकृतिक स्रोत :- ज्वालामुखी उदगार, रेत एवं धूल का उड़ाव, वन अग्नि, पराग, साल्ट स्प्रे आदि।
4. मानव जनित स्रोत :- उद्योग एवं कारखाने, नगरी केंद्र, स्वचालित वाहन, वायुयान, कृषि, ताप शक्तिग्रह आदि।

14.6 वायु प्रदूषकों के प्रकार

वायु प्रदूषण को उनकी उत्पत्ति के स्रोतों के आधार पर दो प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है :-

5. प्राकृतिक प्रदूषण :-

- कास्मिक घटनाएं जिसमें धूमकेतु, क्षुद्रग्रह व उल्काओं के टकराने के कारण धूल से उत्पन्न प्रदूषण मुख्य है।
- ज्वालामुखी क्रिया के अंतर्गत धूल, राख, धुँआ, कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य विषैली गैसें सम्मिलित हैं।
- फूलों के परागकण पौधों की श्वसन (Respiration) क्रिया द्वारा निर्मुक्त कार्बन डाइऑक्साइड, वनों में लगने वाली आग तथा पौधों की पत्तियों के वाष्पीकरण (Evaporanspiration) द्वारा निस्तृत वाष्प मुख्य है।
- कवक के द्वारा उत्पन्न प्रदूषण मुख्य है।
- धरातलीय सतह में उड़ायी गयी धूल तथा मिट्टी के कण, सागरों के लवण फुहार (Salt Spray) आदि।

6. मानव जनित वायु प्रदूषण :-

- रसोई घर से निकलने वाला प्रदूषण मुख्य है। इसके अतिरिक्त घरों से निकलने वाले कचरो को

जलाने में उत्पन्न प्रदूषण।

- मोटर-गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ से उत्पन्न प्रदूषण मुख्य है।
- नाभिकीय (परमाणु) संयन्त्रों, परमाणु ईंधनों परमाणु विस्फोट से निकले रेडियोएक्टिव तत्व आदि।

वायु के प्रदूषकों की प्रकृति के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है :-

1. गैसीय प्रदूषण

2. कणिकीय प्रदूषक।

2. गैसीय प्रदूषण :-

- जीवाश्म ईंधनों (पेट्रोलियम पदार्थ व कोयला) के द्वारा निकलने वाला प्रदूषण, यातायात के साधनों व औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा प्रक्रिया से निकलने वाले कचरों के सड़ने से कार्बन डाइऑक्साइड, मोनो क्लासाइड वह अन्य जहरीली गैसें मुख्य हैं।
- वाष्पशील कार्बनिक यौगिक (मुख्यतः हाइड्रोकार्बन) तथा निलंबित कण पदार्थ।
- गंध युक्त जीवाश्म इंधनों के जलाने से निस्सृत सल्फरडाईऑक्साइड (SO_2) तथा सल्फ्यूरिक एसिड (H_2SO_4), सल्फरट्राइ ऑक्साइड (SO_3) हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) मुख्य हैं।
- ऊँचाई पर उड़ने वाले सुपरसोनिक जेट विमानों से निकलने वाले धुएँ व रासायनिक उर्वरकों से निस्सृत नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा नाइट्रोजन के अन्य यौगिक नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) तथा नाइट्रोजन ट्राइऑक्साइड (NO_3) मुख्य हैं।
- सूती वस्त्रों के ब्लीचिंग तथा अन्य रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा निस्सृत क्लोरीन।
- वसा, तेल या ग्लिसरीन की ऊष्मा द्वारा वियोजन से उत्पन्न अल्डेहाइड।
- रेफ्रिजरेशन एवं एयरोसॉल प्रणाली से निकलने वाला फ्लूरोकार्बन आदि।

2. कणिकीय वायु प्रदूषण :-

- एरोसॉल : एक माइक्रोन से 10 माइक्रोन वाले सूक्ष्म कणों को एयरोसॉल कहते हैं। कण पदार्थ ठोस वस्तुओं के नन्हे-नन्हे कण होते हैं (जिसमें धूलकण, उद्योग से निकलने वाले कण व आज से निकलने वाला धुआँ मुख्य है।) इसके अतिरिक्त धुन्ध, धूल, धुआँ, धूम, कलगी, कुहरा व धूम कुहरा आदि कणिकीय वायु प्रदूषण मुख्य हैं, जिससे हमारे वातावरण में प्रदूषण प्रतिदिन फैलता जा रहा है।

14.7 वायु प्रदूषक के प्रकार

वायु प्रदूषण में एक से अधिक प्रदूषकों का हाथ है वायु प्रदूषण को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:-

1. कार्बन मोनोऑक्साइड तथा वायु प्रदूषण :-

कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) वायु प्रदूषण के लिए महत्वपूर्ण कारक हैं। इसका मुख्य स्रोत जीवाश्म ईंधन (कोयला व खनिज तेल) कोयले को अपूर्ण जलाने तथा पेट्रोलियम डीजल से चलने वाली गाड़ियाँ हैं। नगरी क्षेत्र इसके प्रधान स्रोत हैं, जहाँ कारखाने तथा मोटर गाड़ियों से निकलने वाले धुएँ की प्रधानता रहती है।

2. कार्बन डाइऑक्साइड तथा वायु प्रदूषण :-

कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) गैस वायु प्रदूषकों में से एक है। पेड़-पौधों CO_2 के माध्यम से अपना भोजन तैयार करते हैं। अतः या एक महत्वपूर्ण संसाधन है। CO_2 का वायुमंडल में सान्द्रण बढ़ जाता है, तो अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

IPCC की 2001 की रिपोर्ट के अनुसार यदि विश्व भर में कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन को 1992 के स्तर पर स्थिर करने के लिए प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड का सान्द्रण 2025 ई0 तक 405–460 PPM, 2050 ई0 तक 465– 640 PPM तथा 21वीं सदी के अंत तक 540–970 PPM हो जाएगा।

3. क्लोरोफ्लोरोकार्बन तथा ओजोन की अल्पता :-

क्लोरोफ्लोरोकार्बन को सामान्य भाषा में CFC के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत क्लोरीन फ्लुओरीन तथा कार्बन तत्वों के साधारण यौगिक सम्मिलित रहते हैं। यह स्थिर यौगिक होते हैं। रेफ्रिजरेटर, अग्निशमन, एयरकंडीशनर, फोम प्लास्टिक, स्प्रे कैंन्स प्रसाधन की सामग्रियां आदि क्लोरोफ्लोरो कार्बन के लिए मुख्य हैं। CFC के द्वारा समताप मंडली ओजोन का क्षय होने से पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर आ जाएगी, जिससे वातावरण में गर्मी व चर्म रोग तथा कैंसर जैसी भयावह बीमारियां होने की संभावना है।

मीथेन (CH₄) :-

मीथेन गैस भी वायुमंडल की हरित गृह प्रभाव में वृद्धि करती है। इसके उत्पादन का मुख्य स्रोत जीवीय प्रक्रियाएं (Biological Processes) है। समताप मण्डल में मीथेन के सान्द्रण में वृद्धि होने से जल वाष्प में वृद्धि होती है। जिस कारण अन्य कारकों के प्रबल होने पर वायुमंडल में हरित ग्रह प्रभाव में वृद्धि होती है। जिस कारण तापमान में वृद्धि होती है। विश्व में प्रतिवर्ष 400×10^{12} से 765×10^{12} ग्राम मीथेन गैस वायुमंडल में पहुंच रही है।

सल्फर डाइऑक्साइड (SO₂) तथा वायु प्रदूषण :-

CO₂ के बाद सल्फर डाइऑक्साइड वायु प्रदूषण का द्वितीय सर्वाधिक स्रोत है। वायुमंडल में उपस्थित प्रदूषकों में 20 प्रतिशत भाग SO₂ का है। स्वल्प मात्रा में गंधक पौधों और जंतुओं के लिए आवश्यक तत्व है, किंतु इसकी सान्द्रणता अधिक हो जाने से हानिकारक पदार्थ में परिवर्तित हो जाती है। गंधक की अधिकता से जल का pH मान काम हो जाता है। जिससे जल की अम्लता में काफी वृद्धि हो जाती है। सल्फर डाइऑक्साइड रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा सल्फ्यूरिक एसिड (H₂SO₄) का निर्माण करती है। इसका अत्यधिक संरक्षक मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जब सल्फ्यूरिक एसिड जलवर्षा के साथ धरातल पर बैठी है, तो अम्ल वर्षा (Acid Rain) होती है। अम्ल वर्षा में संबंधित जल की pH 5 से 2.5 के बीच रहता है। (pH का तटस्थ मान 7.0 होता है इस अधिक मान क्षारीयता तथा कम मान अम्लता का प्रतीक है) अम्लीय वर्षा अत्यधिक हानिकारक है। इससे पर्यावरण का हास होता है। साथ ही मानव संस्कृति के लिए अत्यधिक घातक है। सल्फर डाइऑक्साइड के द्वारा धूम्रकोहरा (Smogs) का निर्माण होता है। जिससे कई तरह के कोहरे का निर्माण होता है। जिससे मानव शरीर में कई तरह के रोग लग जाते हैं।

नाइट्रोजन ऑक्साइड:-

नाइट्रोजन ऑक्साइड का प्राकृतिक व मानव जनित दोनों ही प्रकार का स्रोत है। कोयले तथा खनिज तेल के द्वारा उत्पन्न नाइट्रोजन ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। जिससे वातावरण प्रदूषित होता है। मनुष्य के शरीर में नाइट्रिक ऑक्साइड के सान्द्रण के कारण कई तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जिसमें रक्तस्राव ऑक्सीजन की न्यूनता निमोनिया, फेफड़े का कैंसर आदि मुख्य है।

घरेलू वायुमंडल :-

घरेलू वायु प्रदूषणों के अंतर्गत नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में घरों व कार्यालय तथा सामाजिक प्रतिष्ठानों से उत्सर्जित प्रदूषकों द्वारा होने वाला वायु प्रदूषण सम्मिलित है। इसमें घरेलू ईंधन, सिगरेट, बीड़ी, केरोसिन तेल, पेट्रोलियम गैस उत्पन्न धुआं आदि सम्मिलित है। सर्दी के दिनों में ग्रामीण क्षेत्रों में लोग धान की भूसी (बोरसी) जलाते हैं। जिससे कार्बन मोनोऑक्साइड का उत्सर्जन होता है।

14.8 वायु प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव

एयर कंडीशनर, रेफ्रिजरेटर, फोम प्लास्टिक, हेयर ड्रायर, स्प्रे कैन, डिस्पेन्सर, अग्निशामक तथा कई तरह की प्रसाधन सामग्रियों से उत्पन्न CFC तथा सुपरसोनिक विमानों से निर्युक्त धुआं के द्वारा समताप मंडली

सतह प्रभावित हो जाती हो रही है। जिसके फलस्वरूप वायुमंडल तथा धरातलीय सतह पर ताप वृद्धि के कारण पार्थिव एवं वायुमंडलीय विकिरण तथा ऊष्मा संतुलन में असंतुलन उत्पन्न होने की संभावना है। तापक्रम की वृद्धि के कारण विश्व की अधिकांश पर्वत चोटियों पर जमी बर्फ व ग्लेशियर के पिघलने की संभावना है। इससे समुद्र के जल स्तर के बढ़ने के कारण अधिकांश निकले देश के जलमग्न होने का संकट भी है।

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के सान्द्रण में वृद्धि होने से वायुमंडल में हरित ग्रह प्रभाव (Green House effect) से तापमान में वृद्धि हो जाएगी, जिस कारण महाद्वीपीय तथा हिमनद तथा हिम टोपिया से टोपिया के पिघलने की संभावना है।

धूम्र कोहरा वर्तमान समय में एक विशेष प्रकार का प्रदूषण है, जो नगरों एवं औद्योगिक क्षेत्र के ऊपर धुएं के रूप में पाया जाता है। इसे समान्यतः धूम्र कुहरा या नगरी कुहरा कहते हैं। यह साधारण कुहरे के साथ धुएं का मिश्रण होता है। जिससे धूम्र कुहरे का निर्माण होता है। इसमें सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा ओजोन का मिश्रण के कारण विषाक्त व प्राणघातक हो जाने के कारण मानव जाति के लिए खतरनाक हो जाता है।

जल वर्षा के साथ अम्ल के अवपात को अम्ल वर्षा कहते हैं। वर्षा का जल भी पूर्णतयः शुद्ध नहीं होता है, क्योंकि वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड का वर्षा के जल में विलयन हो जाता है। जिस कारण जल अम्लीय हो जाता है। वर्षा के जल का pH मान 5 होता है तथा तटस्थ जल का pH मान 7 होता है। जब pH मान 4 से कम होता है, तब जल अम्लीय हो जाता है, जो जैविक समुदाय के लिए हानिकारक हो जाता है। मानवजनित स्रोतों से निस्सृत सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) वायुमंडल में पहुंचकर जल में मिश्रित होने सल्फेट तथा सल्फ्यूरिक एसिड (H_2SO_4) का निर्माण करती है, जिससे एसिड वर्षा के रूप में गिर पड़ता है, जिसे अम्ल वर्षा (Acid Rain) कहते हैं। पश्चिमी यूरोपीय देशों व अमेरिका आदि देशों में इस वर्षा को कभी-कभी झील कातिल (Lake Killer) कहते हैं। यह मानव सभ्यता के लिए हानिकारक है।

1. वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव :-

मनुष्य की श्वसन प्रणाली में कई ऐसी व्यवस्थाएं हैं, जो ईश्वरीय आशीर्वाद के रूप में हैं, जिससे हमारे शरीर की रक्षा होती है। हमारी नाक के अंदर के बालों के द्वारा बाहरीकणों की रक्षा होती है तथा नासिका में निकलने वाला चिपचिपा पदार्थ म्यूकस (श्लेष्मा) छोटे व बारीक कणों को नाक के अंदर जाने नहीं देता है। ऊपरी श्वासनली में जब प्रदूषकों के कारण जख्म होता है तब खांसी वह छींक द्वारा म्यूकस बाहर आ जाता है धूम्रपान की पुरानी आदत या प्रदूषकों से लंबे संपर्क के कारण प्राकृतिक रक्षा प्रणाली बाधित हो जाती है। धूम्रपान के धुएं से बुजुर्ग, गर्भवती स्त्रियां, हृदय रोगी, दमा जैसे रोगी अत्यधिक प्रभावित होते हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड मनुष्य के रक्त में हीमोग्लोबिन अणुओं से ऑक्सीजन की तुलना में 200 गुना तेजी से संयुक्त हो जाती है। जिस कारण वायु में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाने से श्वसन क्रिया बाधित हो जाती है।

ओजोन की कमी के कारण लोगों में श्वेत चर्म के कैंसर होने की संभावना अधिक रहती है। इसी तरह सल्फर डाइऑक्साइड द्वारा उत्पन्न धूम्र कुहरे से भी श्वसन प्रणाली विभाजित हो जाती है। जिससे लोगों की मृत्यु हो जाती है। डोनोराघाटी (U.S.A. 1984) म्यूज घाटी (बेल्जियम 1930) तथा लंदन (1952) में धूम्र कुहरे की घटना एक उदाहरण है। सल्फर डाइऑक्साइड के प्रदूषण से फेफड़ों के रोग, आंख का एवं गले की बीमारी हो जाती है।

अम्ल वर्षा के कारण जल भंडारों के दूषित होने की संभावना बढ़ जाती है, जिससे मानव के उपयोग करने वाला जल दूषित हो जाता है, जो लोग इस दूषित जल का प्रयोग करते हैं, उनके स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। वायु में नाइट्रिक ऑक्साइड के सान्द्रण में अधिकता के कारण मनुष्य के शरीर में साँस द्वारा ऑक्सीजन की तुलना में 1000 गुना तेजी से हीमोग्लोबिन संयुक्त हो जाते हैं, जिस कारण श्वाँस लेने में कठिनाई उत्पन्न होती है। इससे शरीर के अंदर रक्त स्राव व मसूड़े में सूजन आ जाती है। इसके अतिरिक्त निमोनिया व फेफड़ों के कैंसर हो जाते हैं।

कारखानों व वाहनों के द्वारा उत्पन्न प्रदूषण से श्वसन संबंधी कष्टकारी रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार रसायनों व जहरीले गैस के संयन्त्रों से रिसाव से उत्पन्न विषाक्त गैसों से वायु प्रदूषण अत्यधिक उत्पन्न हो जाता है। जिससे मनुष्य को पलक झपकते सैकड़ों लोगों की मौत हो जाती है। भोपाल गैस त्रासदी को कभी

नहीं भुलाया जा सकता है।

भोपाल गैस त्रासदी :-

2 दिसंबर 1984 की रात को अकस्मात् यूनियन कार्बाइड के कीटनाशक उत्पादन सन्तंत्र से अत्यधिक जहरीली "मिथाइल आइसोसाइनाइड" गैस रिस कर हवा में फेल जाने से लाखों लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा। आज भी इस हादसे के कारण दुष्प्रभाव को देखा जा सकता है। इस त्रासदी का विवाद आज भी छिड़ा हुआ है। इस दुर्घटना से 5000 से अधिक लोगों के मरने की संभावना बताई गई, जबकि अधिकांश अधिक रिपोर्ट के अंतर्गत 2500 लोग कुछ पल में ही कालकवलित हो गए।

वायु प्रदूषण का वनस्पतियों पर प्रभाव :-

ओजोन की अल्पता के कारण धरातलीय सतह पर पराबैंगनी किरणें धरातल पर प्रवेश कर जाती हैं। जिससे तापमान में वृद्धि हो जाने के कारण वनस्पतियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। प्रकाश संश्लेषण (Photo Synthesis) पौधों के जलधारण करने की क्षमता कम हो जाती है। मिट्टी के शुष्क होने के कारण फसलें सूख जायेगी व कृषि उत्पादन में अत्यधिक कमी आ जाएगी।

सागरीय पारिस्थितिक तंत्रों में फाइटोप्लैकटन द्वारा प्रकाश संश्लेषण में अत्यधिक कमी आ जाएगी, जिससे उनके फाइटोप्लैकटन मर जाएंगे, जिससे उन पर निर्भर जूप्लैकटन आहार के अभाव में मर जाएंगे। इससे सागरीय पारिस्थितिक तंत्रों में "आहार श्रृंखला" नष्ट हो जाएगी। ओजोन की अल्पता से तथा हरित ग्रह प्रभाव की वृद्धि से वायुमंडल व धरातल के तापमान में वृद्धि हो जाएगी। जिससे वनस्पतियों के घनत्व, प्रकार तथा उत्पादन में प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। सल्फर डाइऑक्साइड के अधिक मात्रा से लाइकेन मर जाती है। इसके प्रदूषण के दुष्प्रभाव से वनों का भी विनाश हो जाता है।

भारत में ईंट के भट्टों से निकलने वाले धुँओं से आम की फसल को पर बुरा प्रभाव पड़ा है। वायु में हाइड्रोजन फ्लूओराइड से अधिक सान्द्रण के कारण पौधे में सड़न-गलन का रोग लग जाने के कारण पत्तियाँ पीली हो जाती हैं। इसके अत्यधिक अम्लीय वर्षा से भी वनस्पतियों के विनाश की संभावना बढ़ जाती है।

14.9 वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

वर्तमान समय में वायुमंडल एक बड़ी समस्या है। जिसे समय रहते यदि रोका न गया तो स्थिति अत्यधिक भयावह हो जाएगी। समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगो, सरकारी संस्थानों, राजनीतिज्ञों, कर्मचारियों एवं अधिकारियों, उद्योगपतियों आदि में वायु प्रदूषण को लेकर जागरूकता का प्रसार करना चाहिए।

वर्तमान वायु प्रदूषणों के स्तरों की जांच के व्यापक प्रबंध किया जाना चाहिए। साथ ही समय-समय पर उनकी मॉनिटरिंग की जानी चाहिए। इस तरह सूचनाओं के आधार पर वायु प्रदूषण के स्तर व कुप्रभावों की रोकथाम की जा सके। वायु प्रदूषण के द्वारा होने वाली घातक बीमारियों के प्रति जनता को जागरूक बनाना चाहिए। यातायात के साधनों के लिए CNG का प्रयोग किया जाना चाहिए। नगरों में मेट्रो की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। ओजोन क्षय करने वाले क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC फ्रियॉन 11 तथा क्रियॉन 12) के उत्पादन एवं उपभोग में भारी कटौती की जानी चाहिए।

गैसी एवं कणिकीय पदार्थ द्वारा होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए निम्न यांत्रिक उपाय का प्रयोग किया जा सकता है :-

1. कारखाने की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ तथा कालिख के साथ मिश्रित कणिकीय पदार्थों को अलग करने के लिए "बैंग फिल्टर" का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसमें धुआँ एक सिलेंडर से होकर गुजरता है, जिससे गैसें बैंग से होकर बाहर चली जाती है।
2. 50 माइक्रोमीटर से बड़े आकार वाले कणिकीय पदार्थों को फिल्टर करने के लिए साइक्लोन सेपरेटर या साइक्लोन कलेक्टर तथा "वेट स्क्रबर" नामक उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए। "वेट स्क्रबर" के द्वारा गैसों को जल से स्वच्छ किया जाता है।
3. एक माइक्रोमीटर से छोटे आकार वाले कणिकीय पदार्थों को एलेक्ट्रोस्टैट प्रेसीपिटेटर, हाई इनर्जी

स्क्रबर तथा फ़ैब्रिक फ़िल्टर द्वारा धुँआ मुक्त किया जाता है।

14.10 ध्वनि प्रदूषण

किसी भी वस्तु से उत्पन्न होने वाली आवाज को ध्वनि (Sound) कहते हैं। जब ध्वनि की तीव्रता अधिक हो जाते हैं तो कानों को बिल्कुल प्रिय नहीं लगती है, तब वह शोर लगती है। इसी प्रकार बहुत अधिक तीव्रता वाली आवाज अवांछित शोर के कारण मानव में बेचैनी तथा अशांति उत्पन्न कर देती है। जिसे ध्वनि प्रदूषण कहा जाता है।

आवाज का जनन निम्न स्रोतों से हो सकता है:-

प्राकृतिक ध्वनि प्रदूषण :-

इसके अंतर्गत उच्च वेज की वायु, बादलों की गरज, उच्च तीव्रता वाली जलवर्षा, जलप्रपात तथा उपलवृष्टि सम्मिलित की जा सकती है। प्राकृतिक स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि, छिटपुट या विरल हो सकती है।

कृत्रिम ध्वनि प्रदूषण :-

मानव कार्य द्वारा जनित आवाजों के द्वारा तीव्रता वाली ध्वनि उत्पन्न होती है। नगरी तथा औद्योगिक क्षेत्र में यह ध्वनि निरंतर बढ़ती जाती है। अत्यधिक तीव्रगामी ध्वनी को ही ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव मनुष्य तथा जानवरों पर तत्काल ही पड़ता है। अन्य प्रदूषण के समान ध्वनि/शोर का प्रदूषण अन्य स्थानों पर वहन नहीं किया जा सकता है।

14.11 ध्वनि तथा शोर

ध्वनि एक विशेष प्रकार की दाब तरंग (Pressure Wave) है। जिसका लगातार संचरण वायु में होता रहता है। प्रति क्षेत्र इकाई से होकर प्रति समय इकाई (प्रायः एक सेकेण्ड) में ऊर्जा का प्रवाह को ध्वनि तरंग की तीव्रता कहते हैं। ध्वनी तीव्रता को प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में वाट् इकाई में मापा जाता है (w/m^2)।

ध्वनि तरंग की गति संचरण करने वाले माध्यमों में गैस (हवा) तरल तथा ठोस के घनत्व एवं लोचकता (Elasticity) पर निर्भर करती है। ध्वनि तरंगों की उत्पत्ति केंद्र के चारों ओर दिशाओं में हवा से होकर चारों दिशाओं में गोलीय रूप में संचरण करती है। दूरी के साथ ध्वनि तरंगों की गति कम हो जाती है।

14.12 ध्वनि स्तर का मापन

ध्वनि विज्ञान को श्रवण विज्ञान कहते हैं ध्वनि की सामान्य मापन इकाई को डेसिबल (Decibel या dB) कहते हैं। वास्तव में डेसिबल ध्वनि की तीव्रता की इकाई है। ध्वनी दाब (Sound Pressure) की अन्य मापन इकाई वेटेड साउण्ड प्रेशर (Weighied Sound Pressure, SPL) या भारित ध्वनि दाब है। डेसीबल (dB) मापन शून्य से प्रारंभ होता है, जो सामान्य (Normal) मनुष्य के कान द्वारा सुनी जा सकने वाली सर्वाधिक धीमी आवाज को प्रदर्शित करता है।

डेसिबल मापन पर साउंड इंटेनसिटी फैक्टर (SIF ध्वनि तीव्रता कारक) का 1 मान सर्वाधिक मन्द-क्षीणतम सब ध्वनि की प्रदर्शित करता है। 0dB सुनने की देहली (Threshold) होती है। इस प्रकार की ध्वनि को सुना नहीं जा सकता है। 10 dB सामान्य मनुष्य की सांस लेने की ध्वनि प्रदर्शित होती है। 30 dB मनुष्य के फुसफुसाहट (Whispering) को प्रदर्शित करता है। 50-55 dB वाली ध्वनि के कारण नींद में खलल उत्पन्न हो जाती है। सामान्य बात-चीत की तीव्रता 60 dB होती है। 90-95 dB वाली ध्वनि से मनुष्य की नाड़ी प्रणाली में पुनः ठीक न किए जाने वाले परिवर्तन होने लगते हैं। 150-160 dB तीव्रता वाली ध्वनि प्राण घातक होती है।

14.13 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण, जिसे आवाज प्रदूषण भी कहा जाता है, एक पर्यावरणीय समस्या है जो मानव स्वास्थ्य, पारिस्थितिक तंत्र, और सामाजिक जीवन पर गंभीर प्रभाव डालती है। यह अत्यधिक या असंगत ध्वनि स्तरों से

उत्पन्न होता है जो सामान्य जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों को विभिन्न दृष्टिकोण से समझा जा सकता है

शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण का सबसे प्रत्यक्ष असर शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। लंबे समय तक उच्च ध्वनि स्तरों के संपर्क में रहने से सुनने की क्षमता में कमी आ सकती है। लगातार शोर के कारण श्रवण अंग पर दबाव पड़ता है, जिससे सुनने में कठिनाई, और अंततः स्थायी श्रवण हानि हो सकती है। यह स्थिति विशेष रूप से उन व्यक्तियों के लिए गंभीर होती है जो औद्योगिक क्षेत्रों या शोरगुल वाले शहरी वातावरण में काम करते हैं। इसके अतिरिक्त, ध्वनि प्रदूषण हृदय और संचार तंत्र को भी प्रभावित कर सकता है। उच्च ध्वनि स्तरों के संपर्क में आने से रक्तचाप में वृद्धि हो सकती है, जो हृदय रोगों का खतरा बढ़ा देती है। शोर की वजह से तनाव हार्मोन, जैसे कि कोर्टिसोल, का स्तर बढ़ जाता है, जो दीर्घकालिक हृदय समस्याओं का कारण बन सकता है। इसके अलावा, उच्च ध्वनि स्तरों के कारण हृदय की धड़कनों में अनियमितता और कोरोनरी आर्टरी डिजीज का जोखिम भी बढ़ सकता है। ध्वनि प्रदूषण मानसिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। अत्यधिक शोर के कारण लोगों में तनाव और चिंता की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। ध्वनि प्रदूषण के संपर्क में आने से शरीर में तनाव हार्मोन का स्तर बढ़ जाता है, जो मानसिक असंतुलन का कारण बन सकता है। यह तनाव नींद की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, जिससे अनिद्रा, नींद में विघ्न, और रात में बार-बार जागने जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। ध्वनि प्रदूषण के कारण उत्पन्न होने वाली नींद की कमी, मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालती है। नींद की कमी से अवसाद, चिंता, और मानसिक थकावट जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। अवसाद और चिंता का बढ़ता स्तर व्यक्ति की जीवन की गुणवत्ता को कम कर सकता है और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। ध्वनि प्रदूषण का सामाजिक जीवन और व्यवहार पर भी प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक शोर की वजह से सामाजिक बातचीत और संवाद में बाधा उत्पन्न होती है। लोग शोर के कारण एक-दूसरे को ठीक से सुन नहीं पाते, जिससे संचार में कठिनाई होती है और सामाजिक संबंधों में तनाव उत्पन्न हो सकता है। ध्वनि प्रदूषण कार्यस्थलों और शिक्षा संस्थानों में भी ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को प्रभावित करता है। शोरगुल की वजह से ध्यान भटक सकता है, जिससे कार्य की गुणवत्ता और शैक्षिक प्रदर्शन पर असर पड़ता है। उच्च ध्वनि स्तरों से उत्पन्न होने वाले मानसिक थकावट और तनाव कार्य और अध्ययन के दौरान उत्पादकता को कम कर सकते हैं।

ध्वनि प्रदूषण के अन्य स्वास्थ्य प्रभावों में सुनने में कठिनाई, तंत्रिका तंतु की समस्याएँ, और मनोवैज्ञानिक विकार शामिल हैं। लंबे समय तक उच्च ध्वनि स्तरों के संपर्क में आने से व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति दोनों पर गंभीर असर पड़ता है।

ध्वनि प्रदूषण का स्वास्थ्य पर प्रभाव व्यापक और गंभीर होता है। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है बल्कि मानसिक और सामाजिक जीवन की गुणवत्ता को भी कम करता है। इसके प्रभावों को कम करने के लिए प्रभावी ध्वनि नियंत्रण उपायों की आवश्यकता होती है, जिसमें शहरी योजनाओं में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण की रणनीतियाँ, ध्वनि अवशोषक सामग्री का उपयोग, और जन जागरूकता अभियानों का समावेश शामिल होता है। इस प्रकार, ध्वनि प्रदूषण से उत्पन्न स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने और जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण का पारिस्थितिक तंत्र पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ता है, जो प्राकृतिक वातावरण और जीवों की जीवनशैली को प्रभावित करता है। जब ध्वनि प्रदूषण अत्यधिक होता है, तो यह पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न तत्वों को प्रभावित कर सकता है, जिसमें वनस्पति, जानवर, और समग्र पारिस्थितिक तंत्र की संरचना शामिल है। ध्वनि प्रदूषण का प्रत्यक्ष असर वनस्पतियों पर नहीं होता, लेकिन इसका प्रभाव उनके आवासों पर पड़ता है। शोरगुल वाले क्षेत्रों में जानवरों की कमी और पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन की वजह से वनस्पतियों का विकास प्रभावित हो सकता है। वनस्पतियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि शोर की वजह से जैव विविधता में कमी आती है और पारिस्थितिक तंत्र की समग्र स्थिरता प्रभावित होती है। ध्वनि प्रदूषण का सबसे बड़ा प्रभाव जानवरों पर पड़ता है। कई जानवर अपनी संचार विधियों के लिए ध्वनि का उपयोग करते हैं, जैसे कि शिकार की पहचान, प्रजनन, और क्षेत्रीय सीमाओं की पहचान। शहरी क्षेत्रों और औद्योगिक स्थानों में बढ़ते

शोरगुल से इन जानवरों की संचार विधियाँ बाधित हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, पक्षी अपनी चहचहाहट और गाने के माध्यम से संचार करते हैं, और उच्च ध्वनि स्तरों से उनकी संचार विधि में बाधा उत्पन्न होती है, जिससे उनके प्रजनन और सामाजिक संरचना पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव जलीय पारिस्थितिक तंत्र पर भी देखा जाता है। समुद्री जानवर, जैसे कि व्हेल और डॉल्फिन, अपनी संचार विधियों में उच्च ध्वनि स्तरों से प्रभावित होते हैं। वे सोनार या अलेक्सेस्री प्रेक्षण के लिए ध्वनि का उपयोग करते हैं, और शोरगुल से उनकी नेविगेशन और शिकार करने की क्षमता बाधित हो सकती है। इससे समुद्री जीवन के प्रवासी पैटर्न, प्रजनन, और सामाजिक संरचनाओं पर असर पड़ सकता है। ध्वनि प्रदूषण पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को प्रभावित कर सकता है, विशेषकर उन पारिस्थितिक तंत्रों में जहाँ जैव विविधता अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। अत्यधिक शोर से जानवरों की प्रजातियों के बीच प्रतिस्पर्धा और शिकारी-शिकार की प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन उत्पन्न हो सकता है। जब कुछ प्रजातियाँ शोर के कारण अपना आवास छोड़ देती हैं या उनकी प्रजनन दर कम हो जाती है, तो इससे पारिस्थितिक तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। ध्वनि प्रदूषण का पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव भी मानव गतिविधियों से जुड़ा होता है। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, और परिवहन के बढ़ते शोरगुल से प्राकृतिक आवासों का नुकसान होता है और वनस्पति और जानवरों की विविधता में कमी आती है। इससे पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न हिस्सों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे समग्र पारिस्थितिक संतुलन में कमी आ सकती है। ध्वनि प्रदूषण का पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव गहरा और कई स्तरों पर होता है। यह वनस्पतियों, जानवरों, और पारिस्थितिक तंत्र की समग्र स्थिरता को प्रभावित करता है, जिससे जैव विविधता में कमी आती है और पारिस्थितिक तंत्र की कार्यप्रणाली में असंतुलन उत्पन्न होता है। इसके प्रभावों को समझने और नियंत्रित करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें ध्वनि नियंत्रण नीतियों, पारिस्थितिक तंत्र संरक्षण योजनाओं, और जागरूकता अभियानों का समावेश होता है। इस प्रकार, ध्वनि प्रदूषण से पारिस्थितिक तंत्र को होने वाले नुकसान को कम करने और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

आर्थिक प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण का आर्थिक प्रभाव व्यापक और विविध होता है, जो व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सामाजिक जीवन, और व्यावसायिक गतिविधियों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से असर डालता है। यह प्रभाव विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, जैसे स्वास्थ्य देखभाल लागत, उत्पादकता में कमी, और संपत्ति के मूल्य में परिवर्तन। ध्वनि प्रदूषण के कारण उत्पन्न स्वास्थ्य समस्याएँ, जैसे कि सुनने की क्षमता में कमी, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, और मानसिक स्वास्थ्य विकार, के इलाज के लिए स्वास्थ्य देखभाल खर्च बढ़ जाते हैं। यह लागत व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों पर भारी बोझ डालती है। उदाहरण के लिए, श्रवण हानि के इलाज के लिए कान के उपकरण और सुनने के अन्य उपकरणों की आवश्यकता होती है, जो महंगे हो सकते हैं। इसके अलावा, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों के उपचार के लिए दवाइयाँ, चिकित्सा परामर्श, और अस्पताल में भर्ती की लागत भी शामिल होती है। मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं, जैसे अवसाद और चिंता, के इलाज के लिए भी चिकित्सा और काउंसलिंग की सेवाएँ महंगी होती हैं। ध्वनि प्रदूषण कार्यस्थलों और शिक्षा संस्थानों में उत्पादकता को प्रभावित कर सकता है। शोरगुल की वजह से ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई होती है, जिससे कार्य और अध्ययन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। शोर के कारण कर्मचारी और छात्र कम फोकस और कम दक्षता के साथ काम करते हैं, जो व्यवसायों और शिक्षा संस्थानों की समग्र उत्पादकता को कम कर देता है। यह स्थिति काम की गुणवत्ता और समय पर कार्य पूरा करने की क्षमता पर असर डालती है, जिससे व्यावसायिक और शैक्षिक प्रदर्शन में कमी होती है। ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रों में संपत्ति के मूल्य में कमी हो सकती है। शोरगुल वाले क्षेत्रों में रहना असहज होता है, जिससे आवासीय और व्यावसायिक संपत्तियों की मांग कम हो जाती है। इससे संपत्ति के मूल्य में गिरावट आती है और निवेशकों और मालिकों को वित्तीय नुकसान होता है। शोर के कारण आवासीय क्षेत्रों की लोकप्रियता कम हो सकती है, जिससे संपत्ति की बिक्री और किराया की दरों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण पर्यटन और मनोरंजन उद्योग पर भी प्रभाव डालता है। शोरगुल वाले स्थान पर्यटकों और यात्रियों को आकर्षित नहीं कर पाते, जिससे पर्यटन उद्योग को हानि होती है। पर्यटकों की कमी से होटल, रेस्तराँ, और अन्य व्यवसायों की आय पर असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, शोर के कारण लोगों की बाहरी गतिविधियों और मनोरंजन की आदतों पर भी प्रभाव पड़ता है, जिससे मनोरंजन उद्योग की बिक्री और सेवाएँ प्रभावित हो सकती हैं। ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए निर्माण और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं

में अतिरिक्त लागतें शामिल होती हैं। ध्वनि अवशोषक सामग्री, विशेष निर्माण विधियाँ, और शोर नियंत्रण उपाय लागू करने के लिए अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। ये लागतें परियोजना की कुल लागत को बढ़ा सकती हैं और निर्माण लागत को प्रभावित कर सकती हैं। ध्वनि प्रदूषण के कारण जीवन की गुणवत्ता में कमी होती है, जो सामाजिक असंतोष और तनाव का कारण बनती है। उच्च शोर स्तर की वजह से लोग सामाजिक और पारिवारिक गतिविधियों में भाग लेने में असहजता महसूस करते हैं। यह सामाजिक जीवन और सामुदायिक संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है, जिससे समाज की सामंजस्यपूर्ण गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं। ध्वनि प्रदूषण का आर्थिक प्रभाव व्यापक और जटिल होता है। यह स्वास्थ्य देखभाल लागत, उत्पादकता में कमी, संपत्ति के मूल्य में परिवर्तन, पर्यटन और मनोरंजन उद्योग पर असर, और निर्माण और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं की लागत को प्रभावित करता है। इसके प्रभावों को कम करने और नियंत्रित करने के लिए प्रभावी ध्वनि नियंत्रण नीतियों, तकनीकी उपायों, और सामाजिक जागरूकता अभियानों की आवश्यकता होती है। ध्वनि प्रदूषण के आर्थिक प्रभावों को समझकर और उनके समाधान के लिए ठोस कदम उठाकर, एक स्वस्थ और संतुलित समाज और आर्थिक वातावरण की दिशा में प्रगति की जा सकती है।

सामाजिक प्रभाव

ध्वनि प्रदूषण का सामाजिक प्रभाव गहरा और व्यापक होता है, जो लोगों की जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक संबंध, और सामुदायिक जीवन पर कई तरह से असर डालता है। उच्च ध्वनि स्तर केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर ही नहीं, बल्कि समाज के सामाजिक ताने-बाने और सामाजिक गतिविधियों पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण लोगों की जीवन की गुणवत्ता में कमी आती है। शोरगुल वाले वातावरण में रहना असहज और तनावपूर्ण होता है, जिससे लोगों की दिनचर्या प्रभावित होती है। उच्च ध्वनि स्तर नींद की गुणवत्ता को खराब कर सकता है, जिससे अनिद्रा, नींद में विघ्न, और मानसिक थकावट उत्पन्न होती है। यह स्थिति व्यक्ति की समग्र स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है, और सामाजिक जीवन में असंतोष और असहजता का कारण बनती है। ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव सामाजिक संबंधों पर भी पड़ता है। शोरगुल वाले क्षेत्रों में लोगों के लिए बातचीत करना और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेना कठिन हो जाता है। पारिवारिक और सामाजिक आयोजनों में शोर की वजह से लोगों को एक-दूसरे से ठीक से संवाद करने में कठिनाई होती है, जो सामाजिक संबंधों को प्रभावित कर सकता है। शोर के कारण बातचीत की गुणवत्ता कम हो जाती है, जिससे सामाजिक संपर्क और सामुदायिक संबंधों में तनाव और असंतोष उत्पन्न हो सकता है। ध्वनि प्रदूषण सामुदायिक जीवन और सामाजिक स्थिरता को प्रभावित करता है। शोरगुल वाले क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग अक्सर सामाजिक गतिविधियों और सामुदायिक आयोजनों से दूर हो जाते हैं, जिससे सामुदायिक जीवन की गतिशीलता और सहयोग की भावना में कमी आती है। जब लोग शोर के कारण अपने समुदाय के साथ जुड़ने में असहज महसूस करते हैं, तो यह सामुदायिक एकता और सामाजिक स्नेह को कमजोर कर देता है। ध्वनि प्रदूषण मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, जो सामाजिक जीवन पर भी असर डालता है। निरंतर शोर के संपर्क में रहने से तनाव, चिंता, और अवसाद जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यह मानसिक थकावट और अस्वस्थता का कारण बनती है, जो लोगों की सामाजिक सहभागिता और पारिवारिक संबंधों को प्रभावित करती है। मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के कारण व्यक्ति की सामाजिक गतिविधियों में भागीदारी कम हो जाती है, जो सामाजिक एकता और सामुदायिक सहयोग पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। ध्वनि प्रदूषण विशेष रूप से बच्चों और वृद्धों के लिए हानिकारक हो सकता है। बच्चों को उच्च ध्वनि स्तरों का सामना करने से ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई हो सकती है, जिससे उनकी शिक्षा और विकास पर असर पड़ सकता है। वृद्धों को भी शोरगुल के कारण स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है, जो उनकी जीवन की गुणवत्ता और सामाजिक सहभागिता को प्रभावित करता है। ध्वनि प्रदूषण सांस्कृतिक और सामाजिक आयोजनों पर भी प्रभाव डालता है। शोरगुल की वजह से सांस्कृतिक समारोहों और सामाजिक कार्यक्रमों की सफलता और गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। आयोजनों में शांति और आनंद की कमी होने के कारण लोग इन कार्यक्रमों से कम जुड़ाव महसूस करते हैं, जिससे सांस्कृतिक धरोहर और सामुदायिक गतिविधियों पर नकारात्मक असर पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण का सामाजिक प्रभाव जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक संबंध, सामुदायिक जीवन, और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर डालता है। यह सामाजिक स्थिरता और सामुदायिक सहयोग को कमजोर करता है, और लोगों के लिए एक स्वस्थ और संतुलित सामाजिक वातावरण को बनाए रखना चुनौतीपूर्ण बना देता है। ध्वनि प्रदूषण के सामाजिक प्रभावों को समझने और नियंत्रित करने के लिए प्रभावी

नीतियों, शहरी योजनाओं, और जन जागरूकता अभियानों की आवश्यकता है, ताकि एक स्वस्थ और सामंजस्यपूर्ण समाज की दिशा में प्रगति की जा सके।

14.14 ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण

ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय चुनौती है, जो स्वास्थ्य, जीवन की गुणवत्ता, और सामाजिक स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न उपाय और रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं, जिनका उद्देश्य शोर स्तरों को कम करना और लोगों के जीवन को बेहतर बनाना होता है। इन उपायों को मुख्य रूप से सरकारी नीतियों, तकनीकी समाधानों, और जन जागरूकता के माध्यम से लागू किया जाता है।

तकनीकी समाधान और डिजाइन परिवर्तन

ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए तकनीकी समाधान और डिजाइन परिवर्तन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये उपाय ध्वनि के स्तर को कम करने, उसकी प्रभावशीलता को घटाने, और शोरगुल को सीमित करने में सहायक होते हैं। यहां इन तकनीकी समाधानों और डिजाइन परिवर्तनों के प्रमुख पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

1. ध्वनि अवशोषक सामग्री

ध्वनि अवशोषक पैनल: इमारतों और औद्योगिक क्षेत्रों में ध्वनि अवशोषक पैनल का उपयोग किया जाता है, जो शोर को अवशोषित करने और उसकी तीव्रता को कम करने में मदद करता है। ये पैनल विभिन्न सामग्रियों से बने होते हैं, जैसे कि फोम, रॉक वूल, और ध्वनि अवशोषक फाइबर, जो ध्वनि तरंगों को अवशोषित कर लेते हैं।

ध्वनि अवशोषक फर्श और दीवारें: विशेष प्रकार की फर्श और दीवार सामग्री का उपयोग किया जाता है, जो ध्वनि को अवशोषित करती है और ध्वनि की परावृत्ति को कम करती है। ये सामग्री मुख्यतः शोर को कम करने के लिए ऑफिसों, अस्पतालों, स्कूलों, और होटलों में उपयोग की जाती है।

2. साउंड बैरियर्स

सड़क और रेलवे ट्रैक के पास शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में ध्वनि नियंत्रण के लिए साउंड बैरियर्स लगाए जाते हैं। ये बैरियर्स ध्वनि तरंगों को अवशोषित या परावर्तित करते हैं, जिससे शोरगुल की तीव्रता को कम किया जा सकता है। ये बैरियर्स विभिन्न सामग्रियों से बने होते हैं, जैसे कि कंक्रीट, धातु, और विशेष ध्वनि अवशोषक सामग्री। ऊँचाई और डिजाइन साउंड बैरियर्स की ऊँचाई और डिजाइन का चुनाव स्थानिक ध्वनि स्रोतों और वायु प्रवाह के अनुसार किया जाता है। सही डिजाइन और ऊँचाई के बैरियर्स शोर को अधिक प्रभावी ढंग से कम कर सकते हैं।

3. ध्वनि कम करने वाले वाहन

शोरगुल कम करने वाले टायर वाहन उद्योग में ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए शोरगुल कम करने वाले टायर विकसित किए गए हैं। ये टायर विशेष प्रकार की रबर सामग्री और डिजाइन से बने होते हैं, जो सड़क पर चलने के दौरान उत्पन्न होने वाले शोर को कम करते हैं।

ध्वनि कम करने वाले इंजिन और एक्जॉस्ट सिस्टम आधुनिक वाहनों में ध्वनि कम करने वाले इंजिन और एक्जॉस्ट सिस्टम्स का उपयोग किया जाता है। ये सिस्टम इंजन के शोर को नियंत्रित करने और एक्जॉस्ट गैसों की आवाज को कम करने में सहायक होते हैं, जिससे समग्र ध्वनि स्तर को कम किया जा सकता है।

4. ध्वनि इन्सुलेशन

विंडो और दरवाजे: ध्वनि इन्सुलेटिंग विंडो और दरवाजे उपयोग किए जाते हैं, जो बाहरी शोर को अंदर के वातावरण में प्रवेश करने से रोकते हैं। ये विंडो और दरवाजे विशेष रूप से ध्वनि अवशोषक सामग्री और सीलिंग तकनीकों से बने होते हैं।

ध्वनि इन्सुलेटिंग सामग्री: भवनों और औद्योगिक इकाइयों में ध्वनि इन्सुलेटिंग सामग्री का उपयोग किया जाता है, जो ध्वनि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से रोकता है। इसमें ध्वनि अवशोषक पैनल, इन्सुलेटिंग

पेस्ट, और ध्वनि अवशोषक बैग शामिल होते हैं।

सॉफ्टवेयर और सेंसर तकनीक: आधुनिक तकनीकों में ध्वनि प्रदूषण को मापने और नियंत्रित करने के लिए सॉफ्टवेयर और सेंसर का उपयोग किया जाता है। ये तकनीकें वास्तविक समय में ध्वनि स्तरों की निगरानी करती हैं और शोर के स्रोतों की पहचान में मदद करती हैं, जिससे प्रभावी नियंत्रण उपायों को लागू किया जा सकता है।

ध्वनि रद्दीकरण तकनीक:

ध्वनि रद्दीकरण तकनीकें, जैसे कि एक्टिव नोइज कैंसलेशन (ANC), ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उपयोग की जाती हैं। ये तकनीकें शोर की तरंगों को उलटकर और उनके प्रभाव को कम करके ध्वनि को नियंत्रित करती हैं। हरी भरी जगहें और पार्क शहरी क्षेत्रों में हरी भरी जगहें और पार्क ध्वनि प्रदूषण को कम करने में मदद करते हैं। पेड़ और वनस्पतियाँ ध्वनि को अवशोषित करती हैं और शोरगुल को कम करती हैं, जिससे शहरी वातावरण में शांति बनी रहती है।

सड़क और निर्माण डिजाइन: शहरी योजना और सड़क डिजाइन में ध्वनि नियंत्रण को ध्यान में रखते हुए निर्माण और डिजाइन बदलाव किए जाते हैं। इसमें ध्वनि अवशोषक सामग्री, उपयुक्त सड़क सतहें, और शोरगुल कम करने वाली संरचनाएँ शामिल होती हैं। ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए तकनीकी समाधान और डिजाइन परिवर्तन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये उपाय शोरगुल की तीव्रता को कम करने, ध्वनि के प्रभाव को घटाने, और एक शांत और स्वस्थ जीवन शैली को बढ़ावा देने में सहायक होते हैं। इन तकनीकों और डिजाइन परिवर्तनों को प्रभावी ढंग से लागू करने से शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है।

शहरी योजना और विकास

शहरी योजना और विकास में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण एक महत्वपूर्ण और आवश्यक पहलू है, जो शहरी जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखने और सुधारने में सहायक होता है। ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए शहरी योजना में कई रणनीतियाँ और उपाय शामिल होते हैं, जो शहरी क्षेत्रों के समग्र विकास और निवासियों की जीवन शैली को संतुलित करने में मदद करते हैं। शहरी योजना में उचित जोनिंग और भूमि उपयोग योजना की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। आवासीय, व्यावसायिक, और औद्योगिक क्षेत्रों को अलग-अलग क्षेत्रों में विभाजित करने से ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है। आवासीय क्षेत्रों को औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्रों से दूर रखना आवश्यक होता है, ताकि शोरगुल की वजह से निवासियों की जीवन की गुणवत्ता प्रभावित न हो। इस योजना के तहत, औद्योगिक गतिविधियों और ट्रांसपोर्ट नेटवर्क को आवासीय क्षेत्रों से दूर रखा जाता है, जिससे ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सके। सड़क और परिवहन योजनाओं में ध्वनि नियंत्रण के उपाय शामिल किए जाते हैं, जैसे कि साउंड बैरियर्स और ध्वनि अवशोषक सतहें। सड़क पर ध्वनि को नियंत्रित करने के लिए विशेष प्रकार की सड़क सतहों का उपयोग किया जाता है, जो शोर को अवशोषित करती हैं और कम करती हैं। इसके अलावा, प्रमुख सड़कों और रेलवे ट्रैक के पास साउंड बैरियर्स लगाए जाते हैं, जो शोर को सीमित करते हैं और आवासीय क्षेत्रों को शोरगुल से बचाते हैं। हरित क्षेत्रों और सार्वजनिक पार्कों का निर्माण शहरी योजना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। पेड़ और हरी-भरी जगहें ध्वनि अवशोषक के रूप में कार्य करती हैं और शहरी शोर को कम करने में मदद करती हैं। पार्क और हरित क्षेत्र न केवल ध्वनि प्रदूषण को कम करते हैं बल्कि निवासियों को आराम और सामाजिक गतिविधियों के लिए स्थान भी प्रदान करते हैं। इन क्षेत्रों का विकास शहरी वातावरण को शांत और सौंदर्यपूर्ण बनाता है। शहरी योजना में भवन डिजाइन और निर्माण पर भी ध्यान दिया जाता है। ध्वनि इन्सुलेशन सामग्री का उपयोग भवनों की दीवारों, फर्शों और छतों में किया जाता है, जो शोर को अवशोषित करने और बाहरी ध्वनि को अंदर के वातावरण में प्रवेश करने से रोकने में मदद करता है। इसके अलावा, शोर कम करने वाले निर्माण विधियाँ अपनाई जाती हैं, जैसे कि ध्वनि अवशोषक पैनल और विशेष निर्माण सामग्री, जो ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करती हैं। ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए पर्यावरणीय और शहरी नियोजन की रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं। इसमें शहरी क्षेत्रों के विस्तार को नियंत्रित करना, अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली को सुधारना, और प्रभावी शहरी योजना तैयार करना शामिल है। शहरी नियोजन में ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों का आकलन किया जाता है और योजनाओं में सुधार के लिए सुझाव दिए जाते हैं, ताकि एक सुसंगठित और शांत शहरी वातावरण सुनिश्चित किया जा सके। शहरी विकास की योजना में

जनसंख्या वृद्धि और शहरी विस्तार को नियंत्रित करना भी महत्वपूर्ण होता है। अत्यधिक जनसंख्या घनत्व और शहरी विस्तार ध्वनि प्रदूषण को बढ़ा सकते हैं। इसके लिए, नियोजित और संतुलित शहरी विकास की रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं, जो ध्वनि प्रदूषण को कम करने और संसाधनों का उचित प्रबंधन सुनिश्चित करने में मदद करती हैं। सार्वजनिक परिवहन प्रणाली का विकास भी ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण में योगदान करता है। अत्यधिक यातायात और निजी वाहनों की संख्या को कम करने के लिए प्रभावी सार्वजनिक परिवहन सुविधाओं का विकास किया जाता है। इससे सड़क पर वाहनों की संख्या कम होती है, जो शोरगुल को नियंत्रित करने में मदद करता है और एक स्थिर शहरी वातावरण प्रदान करता है। शहरी योजना और विकास में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिसमें जोनिंग, सड़क योजना, हरित क्षेत्र, निर्माण डिजाइन, और जनसंख्या नियंत्रण शामिल होते हैं। इन रणनीतियों को एक साथ लागू करके, शहरी वातावरण में ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है और निवासियों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करता है कि शहरी क्षेत्रों में एक शांत, स्वस्थ और स्थिर वातावरण बनाए रखा जा सके, जो लोगों की भलाई और समाज की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है।

सार्वजनिक नीतियाँ और कानूनी उपाय

सार्वजनिक नीतियाँ और कानूनी उपाय ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के प्रमुख स्तंभ होते हैं, जो ध्वनि प्रदूषण की समस्या को व्यवस्थित और प्रभावी ढंग से संबोधित करने में सहायक होते हैं। इन नीतियों और उपायों का उद्देश्य ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों की पहचान करना, उन्हें नियंत्रित करना, और शहरी तथा ग्रामीण वातावरण में एक स्वस्थ और शांतिपूर्ण जीवन सुनिश्चित करना होता है। सार्वजनिक नीतियों के अंतर्गत, विभिन्न ध्वनि सीमा मानक और विनियम निर्धारित किए जाते हैं जो विभिन्न समयों और स्थानों के लिए शोर के स्तर को नियंत्रित करते हैं। ये मानक दिन और रात के लिए अलग-अलग शोर सीमा निर्धारित करते हैं, ताकि दिन में व्यस्त समय के दौरान उच्च शोर स्तर की अनुमति हो और रात के समय शांति बनाए रखी जा सके। यह सुनिश्चित करता है कि शोरगुल लोगों की नींद और शांति को प्रभावित न करे। सार्वजनिक नीतियों में शोरगुल प्रबंधन के लिए विशेष उपाय और निर्देश शामिल होते हैं। इसमें ध्वनि प्रदूषण की निगरानी, शोर स्रोतों की पहचान, और नियंत्रित करने के उपाय शामिल होते हैं। शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में शोरगुल प्रबंधन के लिए नियम और विनियम लागू किए जाते हैं, जो निर्माण गतिविधियों, ट्रांसपोर्ट, और व्यावसायिक गतिविधियों पर नियंत्रण रखते हैं। कानूनी उपायों के अंतर्गत, ध्वनि प्रदूषण नियमों और विनियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों और संगठनों के खिलाफ कानूनी प्रवर्तन किया जाता है। इसमें जुर्माना, चेतावनी, और अस्थायी या स्थायी प्रतिबंध शामिल होते हैं। प्रवर्तन अधिकारियों द्वारा नियमित निरीक्षण और निगरानी की जाती है ताकि ध्वनि सीमा मानकों का पालन सुनिश्चित किया जा सके और प्रदूषण को कम किया जा सके। सार्वजनिक नीतियों और कानूनी उपायों में जन जागरूकता और शिक्षा की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोगों को ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों और नियंत्रण उपायों के बारे में जागरूक करने के लिए अभियान चलाए जाते हैं। स्कूलों, मीडिया, और सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को शोरगुल को नियंत्रित करने के महत्व के बारे में जानकारी दी जाती है, ताकि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से ध्वनि प्रदूषण को कम करने में योगदान दे सकें। कई देशों और राज्यों में शोरगुल को नियंत्रित करने के लिए नियम और लाइसेंसिंग प्रणाली लागू की जाती है। इसके तहत, निर्माण गतिविधियों, सार्वजनिक आयोजनों, और औद्योगिक प्रक्रियाओं के लिए लाइसेंस आवश्यक होते हैं। ये लाइसेंस शोरगुल नियंत्रण मानकों का पालन सुनिश्चित करने के लिए जारी किए जाते हैं, और नियमों के उल्लंघन पर दंडात्मक कार्रवाई की जाती है। स्थानीय प्रशासन और नगर निगम ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संगठन शहरी योजनाओं और विकास परियोजनाओं में ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपायों को शामिल करते हैं। स्थानीय नियमों और विनियमों के अनुसार, इन संगठनों द्वारा ध्वनि प्रदूषण के मुद्दों की निगरानी की जाती है और प्रभावी समाधान प्रदान किए जाते हैं। ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण में सहयोग और अंतर्राष्ट्रीय मानक भी महत्वपूर्ण होते हैं। विभिन्न देशों और क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए समान मानक और नीतियाँ लागू की जाती हैं, जो वैश्विक स्तर पर ध्वनि प्रदूषण को कम करने में मदद करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा स्थापित मानक और दिशानिर्देश स्थानीय नीतियों और उपायों को आकार देने में सहायक होते हैं। सार्वजनिक नीतियाँ और कानूनी उपाय ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को अपनाती हैं, जिसमें ध्वनि सीमा मानक, शोरगुल प्रबंधन नीतियाँ, कानूनी प्रवर्तन, सार्वजनिक जागरूकता, और नियम और लाइसेंसिंग शामिल होते हैं। इन उपायों को प्रभावी ढंग से लागू करके, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण

को कम किया जा सकता है और लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करता है कि एक शांत, स्वस्थ, और संतुलित वातावरण प्रदान किया जा सके, जो समाज के समग्र कल्याण के लिए आवश्यक है।

जन जागरूकता और शिक्षा

जन जागरूकता और शिक्षा ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि ये उपाय लोगों को शोरगुल के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर प्रभावों के बारे में सूचित करने और उनके व्यवहार में सुधार लाने में सहायक होते हैं। जन जागरूकता और शिक्षा के माध्यम से, समुदायों को ध्वनि प्रदूषण की समस्याओं और उनके समाधान के बारे में जानकारी प्रदान की जाती है, जिससे प्रभावी नियंत्रण उपायों को अपनाया जा सकता है और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है। जन जागरूकता अभियानों का उद्देश्य लोगों को ध्वनि प्रदूषण के स्वास्थ्य और पर्यावरणीय प्रभावों के बारे में शिक्षित करना है। इनमें शामिल होते हैं मानसिक तनाव, नींद की समस्याएँ, सुनने की क्षमता में कमी, और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ जो अत्यधिक शोर के कारण उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अलावा, ध्वनि प्रदूषण का पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव भी स्पष्ट किया जाता है, जैसे कि वन्य जीवों की व्यवहारिक समस्याएँ और प्राकृतिक संतुलन में हस्तक्षेप। शिक्षा और जन जागरूकता के माध्यम से लोगों के व्यवहार में बदलाव लाने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिए, लोगों को उनके निजी वाहनों के शोर को कम करने, शोरगुल वाले उपकरणों का कम उपयोग करने, और सार्वजनिक स्थानों पर ध्वनि नियंत्रण के नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में शोरगुल को नियंत्रित करने के उपायों के बारे में जानकारी देना, जैसे कि निर्माण कार्य के समय और ध्वनि नियंत्रण सामग्री का उपयोग, लोगों को अधिक जिम्मेदार बनाता है। ध्वनि प्रदूषण पर जन जागरूकता बढ़ाने के लिए स्कूलों और सामुदायिक कार्यक्रमों में विशेष पाठ्यक्रम और कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। स्कूलों में बच्चों को ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव और उसके नियंत्रण के तरीकों के बारे में सिखाया जाता है, जिससे वे भविष्य में एक जिम्मेदार नागरिक बन सकें। सामुदायिक कार्यक्रमों में लोगों को ध्वनि प्रदूषण के मुद्दों पर चर्चा करने, समाधान खोजने, और सामूहिक प्रयास करने के लिए प्रेरित किया जाता है। मीडिया और जनसंचार का महत्वपूर्ण योगदान होता है जन जागरूकता बढ़ाने में। समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, और डिजिटल मीडिया का उपयोग करके ध्वनि प्रदूषण पर जागरूकता अभियानों को प्रसारित किया जाता है। मीडिया के माध्यम से, लोगों को ध्वनि प्रदूषण के खतरे और नियंत्रण उपायों के बारे में व्यापक जानकारी प्राप्त होती है, जो उन्हें अपने व्यवहार को बदलने और स्थानीय नीतियों के साथ जुड़ने के लिए प्रेरित करती है। सार्वजनिक अभियानों और कार्यशालाओं का आयोजन ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए किया जाता है, जहां लोगों को प्रभावी शोर नियंत्रण उपायों के बारे में जानकारी दी जाती है। इन कार्यक्रमों में विशेषज्ञों द्वारा सेमिनार, प्रदर्शनी, और व्याख्यान आयोजित किए जाते हैं, जो ध्वनि प्रदूषण की समस्या और इसके समाधान के तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। ये कार्यक्रम जनता को सीधे जोड़ते हैं और उन्हें शोरगुल कम करने के उपायों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। स्थानीय संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) की भूमिका भी जन जागरूकता और शिक्षा में महत्वपूर्ण होती है। ये संगठन ध्वनि प्रदूषण से संबंधित परियोजनाओं और अभियानों का संचालन करते हैं, लोगों को शिक्षा प्रदान करते हैं, और ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए सामुदायिक प्रयासों को प्रोत्साहित करते हैं। इनके द्वारा किए गए कार्यक्रम और गतिविधियाँ स्थानीय स्तर पर प्रभावी बदलाव लाने में सहायक होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा ध्वनि प्रदूषण पर जागरूकता बढ़ाने के लिए मानक और दिशानिर्देश प्रदान किए जाते हैं। ये मानक विभिन्न देशों के बीच ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के उपायों को समन्वयित करने में मदद करते हैं और वैश्विक स्तर पर जन जागरूकता बढ़ाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से, विभिन्न देशों और क्षेत्रों के बीच ज्ञान और अनुभव साझा किए जाते हैं, जिससे ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अधिक प्रभावी समाधान खोजे जा सकते हैं। जन जागरूकता और शिक्षा ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की पेशकश करते हैं, जिसमें लोगों को ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों, उसके नियंत्रण के उपायों, और जिम्मेदार व्यवहार के बारे में जानकारी दी जाती है। इन उपायों के माध्यम से, लोगों को शिक्षित किया जाता है और उनके व्यवहार में सकारात्मक बदलाव लाया जाता है, जिससे ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है और एक शांतिपूर्ण और स्वस्थ वातावरण सुनिश्चित किया जा सकता है। जन जागरूकता और शिक्षा न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बदलाव लाती हैं, बल्कि सामूहिक प्रयासों को भी प्रोत्साहित करती हैं, जो समाज के समग्र कल्याण के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

14.15 सारांश

वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण आज के समय में हमारे जीवन और पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव डाल रहे हैं। वायु प्रदूषण तब होता है जब वायु में अवांछनीय तत्व या प्रदूषक पदार्थ मिल जाते हैं, जो स्वास्थ्य और पर्यावरण को हानि पहुँचाते हैं। ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों में यातायात, औद्योगिक गतिविधियाँ, निर्माण कार्य, और सार्वजनिक घटनाएँ शामिल हैं। शोरगुल का स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, जैसे उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, नींद की समस्याएँ, और मानसिक तनाव। लंबे समय तक शोर के संपर्क में रहने से व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमताओं पर भी असर पड़ सकता है। इस प्रकार, वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण के प्रभावों को समझना और इनके नियंत्रण के लिए उपयुक्त उपायों को लागू करना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करता है कि हमारे पर्यावरण और स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सके और एक शांतिपूर्ण और स्वस्थ जीवन जीने की संभावना बनी रहे। समन्वित प्रयासों और प्रभावी नीतियों के माध्यम से इन प्रदूषण समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, जिससे समाज की जीवन गुणवत्ता में सुधार हो सकता है।

14.16 शब्द सूची

अम्ल वर्षा — Acid Rain

वायु प्रदूषण — Air Pollution

वायु संघटक — Air Composition

उपलवृष्टि — Hail Storms

विपुल — Frequent

बैग फिल्टर — Bag Filter

डेसिबल — Decibel

पर्यावरण प्रदूषण — Environment Pollution

धुम कुहरा — Smog

ध्वनि प्रदूषण — Sound Pollution

ध्वनि शामक — Silencer

14.17 स्वयं मूल्यांकन प्रश्न एवं आदर्श उत्तर

1. वायु में नाइट्रोजन का प्रतिशत कितना है?

(अ) 78 प्रतिशत

(ब) 50 प्रतिशत

(स) 25 प्रतिशत

(द) 80 प्रतिशत

2. धुम कुहरा किस प्रदूषण के कारण उत्पन्न होता है?

(अ) मृदा प्रदूषण

(ब) वायु प्रदूषण

(स) ध्वनि प्रदूषण

(द) जल प्रदूषण

3. ध्वनि का मापन की इकाई क्या है?

(अ) वॉट

(ब) कैलोरी

(स) डेसिबिल

(द) जूल

4. ओजोन परत के क्षय के लिये कौन सी गैस जिम्मेदार है?

(अ) कार्बन डाई ऑक्साइड

(ब) सल्फर डाई आक्साइड

(स) ऑक्सीजन

(द) क्लोरोफ्लोरो कार्बन

5. ओजोन परत के द्वारा किस की सुरक्षा होती है ?

(अ) पराबैंगनी

(ब) उल्का पिण्ड

(स) धूमकेतू

(द) लघु तरंग

आदर्श उत्तर :-

1. (अ)

2. (ब)

3. (स)

4. (द)

5. (अ)

14.18 अभ्यास प्रश्न (सत्रान्त परीक्षा की तैयारी हेतु)

1. वायु प्रदूषण किस कहते हैं? इसके प्रमुख स्रोत तथा प्रकारों का वर्णन कीजिये।

2. वायु प्रदूषण का हमारे वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

3. वायु प्रदूषण के नियन्त्रण के उपाय बताइये।

4. ध्वनि प्रदूषण के अर्थ को समझाते हुए, इसके प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

5. ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम कैसे की जा सकती है?

नोट:- इकाई का अध्ययन के आधार प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखिए।

14.19 सन्दर्भ सूची/उपयोगी पुस्तकें

1-Bharucha, Erach (2003): Biodiversity of India, The Mapin Publishing.

2-Aloka Devi (2003): Environmental Science and Engineering, University Press Pvt. Ltd.

3-Agarwal, S.K., 2005: Environmental Management, APH Publishing Corporation New Delhi, 397 PP.

4-Canter, L.W., 1996: Environmental Impact Assessment, MC Graw-Hill, Inc.

इकाई-15 : विश्व एवं भारत में ऊर्जा संकट एवं वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत

इकाई की रूपरेखा

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 विश्व में ऊर्जा संकट
- 15.4 भारत में ऊर्जा संकट
- 15.5 सारांश
- 15.6 पारिभाषिक शब्दावली
- 15.7 बोध प्रश्न
- 15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.1 प्रस्तावना

प्रकृति के पारिस्थितिकीय सन्तुलन में ऊर्जा की मुख्य भूमिका रहती है जो प्राकृतिक परिवेश के जैविक तथा अजैविक घटकों के मध्य अन्तः क्रिया बनाये रखती है पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग द्वारा पोषण स्तर एक स्वपोषी पादप विकसित होकर भविष्य में ऊर्जा के विभिन्न रूपों में परिवर्तित होते हैं। वर्तमान में पृथ्वी पर हमें ऊर्जा विभिन्न रूपों में मिलती है। कहीं खनिज संसाधनों (कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस) से तो कहीं भौतिक क्रियाओं ज्वार भाटा, पवन, सौर ऊर्जा आदि से मिलती है। इसे मनुष्य अपने प्रौद्योगिकी ज्ञान द्वारा विभिन्न रूपों में विकसित कर उत्पादित करता है। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या एवं संसाधनों के उपयोग से विश्व ऊर्जा संकट का सामना कर रहा है। संसाधनों के बढ़ते संकट को देखते हुए वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाये।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन में विश्व के ऊर्जा संकट एवं वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- (अ) विश्व के वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन की विषय वस्तु को स्पष्ट करना।
- (ब) शिक्षार्थी विश्व के वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के विश्व वितरण के विषय में व्याख्या कर सकेंगे,
- (स) विश्व के ऊर्जा संकट के बारे में विद्यार्थियों को अवगत करना।

15.3 विश्व में ऊर्जा संकट

विश्व में ऊर्जा संकट एक गंभीर वैश्विक समस्या है जो हमारे आधुनिक जीवन और विकास के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती पेश करती है। ऊर्जा संकट की यह समस्या ऊर्जा संसाधनों की सीमितता, मांग में वृद्धि, और पर्यावरणीय प्रभावों के संयोजन का परिणाम है। विभिन्न आंकड़े और तथ्य इस संकट की गहराई को स्पष्ट करते हैं और इसके समाधान के लिए आवश्यक कदमों को रेखांकित करते हैं।

विश्व में ऊर्जा संकट का मुख्य कारण ऊर्जा संसाधनों की सीमितता और उनकी असमर्थता है। ऊर्जा के प्रमुख स्रोतों में जीवाश्म ईंधन, जैसे कोयला, तेल, और गैस, शामिल हैं, जो एक महत्वपूर्ण हिस्से की ऊर्जा की मांग को पूरा करते हैं। हालांकि, इन संसाधनों का पुनरुत्पादन नहीं होता, और इनका अधिक उपयोग वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की वृद्धि को प्रेरित करता है।

तेल संकट तेल संकट, या पेट्रोलियम संकट, वह स्थिति है जब तेल की आपूर्ति में कमी आ जाती है या तेल की कीमतें अचानक और अत्यधिक बढ़ जाती हैं, जो वैश्विक अर्थव्यवस्था और राजनीति को प्रभावित

करती है। यह संकट आमतौर पर तेल के उत्पादन, आपूर्ति, या वितरण में व्यवधान के कारण उत्पन्न होता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, तेल संकट की स्थिति ने आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1. 1970 का तेल संकट

1970 का तेल संकट, जिसे ओपेक (OPEC) संकट भी कहा जाता है, तेल संकट का पहला प्रमुख उदाहरण था। इस संकट की शुरुआत 1973 में हुई, जब अरब-इजराइल युद्ध के दौरान, ओपेक देशों ने इजराइल के समर्थन में पश्चिमी देशों के खिलाफ एक तेल निर्यात प्रतिबंध लागू किया। इस प्रतिबंध ने पश्चिमी देशों को तेल की कमी और उच्च कीमतों का सामना करना पड़ा। अमेरिका और यूरोपीय देशों में तेल की कीमतें तिगुनी हो गईं, और तेल की आपूर्ति में भारी कमी आई। इस संकट ने वैश्विक तेल बाजार को हिला दिया और ऊर्जा संरक्षण, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज, और ऊर्जा स्वतंत्रता की दिशा में कई नीतिगत परिवर्तनों को प्रेरित किया।

2. 1979 का तेल संकट

1979 का तेल संकट, जिसे ईरानी क्रांति संकट भी कहा जाता है, ईरान में हुई क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ। ईरान की शाह की सरकार के पतन और होमेनि के नेतृत्व में इस्लामी गणराज्य की स्थापना के बाद, ईरान ने तेल उत्पादन को बाधित कर दिया। इस संकट ने तेल की कीमतों को दोगुना कर दिया और पश्चिमी देशों के लिए एक गंभीर आर्थिक चुनौती पेश की। इसके परिणामस्वरूप, वैश्विक तेल आपूर्ति श्रृंखला में बड़े बदलाव हुए और कई देशों ने ऊर्जा सुरक्षा की दिशा में कदम उठाए।

3. 1990 का तेल संकट

1990 का तेल संकट इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण के कारण हुआ। इराक का आक्रमण और कुवैत के तेल क्षेत्रों की क्षति के कारण, वैश्विक तेल आपूर्ति में कमी आई। इस संकट ने तेल की कीमतों को काफी बढ़ा दिया और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अस्थिरता का माहौल उत्पन्न किया। इसके बाद, संयुक्त राष्ट्र ने इराक पर प्रतिबंध लगाए, और तेल की आपूर्ति में स्थिरता को पुनः स्थापित करने के प्रयास किए गए।

4. 2008 का तेल संकट

2008 का तेल संकट, जिसे वैश्विक वित्तीय संकट के साथ जोड़ा गया, वैश्विक आर्थिक मंदी का एक परिणाम था। तेल की कीमतें 2008 में 147 डॉलर प्रति बैरल के उच्च स्तर पर पहुँच गईं, जो मुख्य रूप से उच्च मांग, सीमित आपूर्ति, और जियोपॉलिटिकल अस्थिरता के कारण हुआ। इस संकट ने दुनिया भर में ऊर्जा खर्च को बढ़ा दिया और आर्थिक विकास को प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप, ऊर्जा सुरक्षा, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज, और तेल की कीमतों पर नियंत्रण के लिए कई वैश्विक प्रयास किए गए।

वर्तमान समय में, तेल संकट केवल ऊर्जा की कमी या मूल्य वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जटिल वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला और राजनीतिक अस्थिरता के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला और राजनीतिक परिदृश्य का तेल बाजार पर गहरा प्रभाव पड़ता है, और इसके परिणामस्वरूप तेल संकट की जटिलता और व्यापकता बढ़ जाती है। वैश्विक तेल आपूर्ति श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण हिस्सा तेल उत्पादन और निर्यात है। तेल उत्पादन मुख्य रूप से ओपेक (OPEC) और गैर-ओपेक देशों द्वारा किया जाता है। ओपेक देशों, जैसे सऊदी अरब, इराक, और संयुक्त अरब अमीरात, वैश्विक तेल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा नियंत्रित करते हैं। इसके साथ ही, अमेरिका, रूस, और कनाडा जैसे गैर-ओपेक देश भी प्रमुख तेल उत्पादक हैं। वैश्विक तेल आपूर्ति श्रृंखला की स्थिरता इन देशों के उत्पादन नीतियों, तकनीकी क्षमताओं, और निवेश पर निर्भर करती है। तेल की आपूर्ति श्रृंखला कई चरणों में बंटी होती है, जिसमें तेल की खोज, उत्पादन, परिवहन, और परिष्करण शामिल हैं। प्रत्येक चरण पर विभिन्न देशों और कंपनियों का नियंत्रण होता है, जिससे आपूर्ति श्रृंखला जटिल हो जाती है। जैसे-जैसे तेल के निर्यात और आयात की जटिलताएँ बढ़ती हैं, आपूर्ति श्रृंखला में व्यवधान की संभावना भी बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, सऊदी अरब में तेल संयंत्रों पर हमले, जैसे कि 2019 का आक्रमण, ने वैश्विक तेल आपूर्ति को गंभीर रूप से प्रभावित किया और तेल की कीमतों में

अस्थिरता पैदा की। आपूर्ति श्रृंखला में रुकावटें तेल संकट को गंभीर बना सकती हैं। भू-राजनीतिक अस्थिरता, युद्ध, प्राकृतिक आपदाएँ, और पारगमन मार्गों में रुकावटें, जैसे कि हॉर्न ऑफ अफ्रीका या मलक्का जलडमरूमध्य में समुद्री परिवहन में रुकावटें, तेल की आपूर्ति को बाधित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, 2021 में सूडान में सड़कों की बाधाएँ और यमन में संघर्ष ने तेल आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला, जिससे तेल की कीमतें बढ़ गईं। जियोपॉलिटिकल संघर्ष तेल संकट का एक प्रमुख कारण होता है। तेल समृद्ध क्षेत्र, विशेषकर मध्य पूर्व, में राजनीतिक अस्थिरता और संघर्ष, जैसे कि ईरान और इराक में तनाव, तेल की आपूर्ति और कीमतों पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। ये संघर्ष केवल स्थानीय स्तर पर ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर भी ऊर्जा बाजार को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, 2010 के दशक के मध्य में सीरिया और इराक में पैं द्वारा तेल क्षेत्रों पर कब्जा और उनकी आर्थिक तंगी ने वैश्विक तेल आपूर्ति को अस्थिर कर दिया था। व्यापार नीतियाँ और प्रतिबंध भी वैश्विक तेल संकट को प्रभावित कर सकते हैं। अमेरिका और ईरान के बीच तनावपूर्ण संबंधों ने ईरान पर तेल निर्यात प्रतिबंध लगाए, जिससे वैश्विक तेल आपूर्ति में कमी आई। इसके अलावा, अमेरिका का शेल तेल उत्पादन और वैश्विक तेल बाजार में योगदान भी व्यापार और राजनीतिक नीतियों के प्रभाव को दर्शाता है।

तेल संकट का प्रबंधन करने के लिए देशों ने ऊर्जा सुरक्षा को प्राथमिकता दी है। इसके अंतर्गत देशों ने रणनीतिक तेल भंडारण, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता, और ऊर्जा सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय गठबंधनों को विकसित किया है। उदाहरण के लिए, अमेरिका ने Strategic Petroleum Reserve (SPR) की स्थापना की है, जो तेल संकट के समय में आपातकालीन भंडारण के रूप में कार्य करता है। तेल संकट के प्रबंधन के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और सहयोग की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, ओपेक और ओपेक देशों के बीच समझौते, जैसे कि उत्पादन कटौती और कीमत स्थिरता की पहल, तेल बाजार को स्थिर करने में मदद करती हैं। इसी प्रकार, पेरिस जलवायु समझौते जैसे वैश्विक जलवायु समझौतों ने ऊर्जा नीति में बदलाव और दीर्घकालिक ऊर्जा समाधान को प्रोत्साहित किया है।

वर्तमान समय में, तेल संकट केवल एक आर्थिक मुद्दा नहीं है, बल्कि यह वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला और राजनीति के जटिल ताने-बाने का परिणाम है। तेल उत्पादन, आपूर्ति श्रृंखला में रुकावटें, जियोपॉलिटिकल संघर्ष, और व्यापार नीतियाँ, सभी इस संकट को प्रभावित करती हैं। वैश्विक ऊर्जा सुरक्षा, राजनीतिक स्थिरता, और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से तेल संकट का प्रभावी ढंग से प्रबंधन करना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि भविष्य में तेल संकट से बचा जा सके, समन्वित वैश्विक प्रयास और दीर्घकालिक रणनीतियाँ महत्वपूर्ण होंगी।

गैस संकट:

गैस संकट, जिसे प्राकृतिक गैस संकट भी कहा जाता है, तब उत्पन्न होता है जब प्राकृतिक गैस की आपूर्ति में कमी आ जाती है या इसकी कीमतें अत्यधिक बढ़ जाती हैं, जिससे ऊर्जा बाजार और आर्थिक स्थिरता पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक गैस, जो कि एक महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत है, वाणिज्यिक और घरेलू उपयोग दोनों के लिए आवश्यक है। गैस संकट का प्रभाव आमतौर पर वैश्विक और स्थानीय दोनों स्तरों पर महसूस किया जाता है और इसके कई कारण हो सकते हैं, जिनमें उत्पादन में कमी, भू-राजनीतिक अस्थिरता, और आपूर्ति श्रृंखला की विफलता शामिल हैं।

प्रमुख कारण

1. भू-राजनीतिक अस्थिरता: गैस संकट के प्रमुख कारणों में भू-राजनीतिक अस्थिरता शामिल है, विशेषकर गैस-समृद्ध क्षेत्रों में। उदाहरण के लिए, रूस और यूक्रेन के बीच तनाव और संघर्ष ने यूरोप को प्राकृतिक गैस की आपूर्ति में बाधा डाली। रूस, जो कि विश्व का एक प्रमुख गैस निर्यातक है, ने अपने गैस भंडार का उपयोग राजनीतिक औजार के रूप में किया, जिससे कई यूरोपीय देशों ने गैस आपूर्ति संकट का सामना किया। इसी तरह, मध्य पूर्व के देशों में चल रहे संघर्ष और अस्थिरता भी वैश्विक गैस आपूर्ति पर प्रभाव डालती है।

2. उत्पादन में कमी: प्राकृतिक गैस के उत्पादन में कमी भी गैस संकट का एक महत्वपूर्ण कारण है। जैसे-जैसे पारंपरिक गैस क्षेत्रों में उत्पादन घटता है, नए गैस क्षेत्रों की खोज और विकास की आवश्यकता बढ़ जाती है। हालांकि, नए क्षेत्रों में उत्पादन शुरू करने में समय और निवेश की आवश्यकता होती है, जो आपूर्ति संकट को बढ़ावा देती है। उदाहरण के लिए, 2021 में, यूरोप ने गैस की कमी का सामना किया क्योंकि नॉर्वे के

गैस उत्पादन में कमी आई और रूस ने अपनी गैस आपूर्ति को सीमित कर दिया।

3. आपूर्ति श्रृंखला की विफलता: गैस आपूर्ति श्रृंखला में विफलताएँ भी गैस संकट को जन्म देती हैं। गैस पाइपलाइनों और परिवहन नेटवर्क की विफलता, जैसे कि पाइपलाइन की मरम्मत या प्राकृतिक आपदाओं के कारण ढहना, आपूर्ति में व्यवधान पैदा कर सकता है। 2021 में, यूरोप ने गैस की कमी का सामना किया जब प्रमुख गैस पाइपलाइन नेटवर्क में समस्याएँ आई और गैस का निर्यात सीमित हो गया।

4. मांग में वृद्धि: वैश्विक मांग में तेजी से वृद्धि भी गैस संकट को बढ़ा सकती है। विकासशील देशों में औद्योगिक और ऊर्जा की मांग में वृद्धि के साथ-साथ ठंड के मौसम के दौरान घरेलू गैस की मांग बढ़ जाती है, जिससे गैस की आपूर्ति पर दबाव पड़ता है। 2021 के शीतकालीन मौसम में, जब दुनिया भर में ठंड का सामना करना पड़ा, गैस की मांग में अचानक वृद्धि ने संकट को और बढ़ा दिया। गैस संकट के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव व्यापक और गंभीर हो सकते हैं। उच्च गैस कीमतें उपभोक्ताओं के लिए ऊर्जा लागत को बढ़ा देती हैं, जिससे घरेलू बजट पर दबाव पड़ता है। उद्योगों के लिए भी गैस की उच्च लागत, उत्पादन लागत को बढ़ा देती है, जिससे महंगाई और आर्थिक मंदी की संभावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, गैस संकट से संबंधित आपूर्ति श्रृंखला की विफलता और राजनीतिक संघर्ष सामाजिक असंतोष और अस्थिरता का कारण बन सकते हैं। गैस संकट को संबोधित करने के लिए विभिन्न उपायों की आवश्यकता होती है। इसके अंतर्गत, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज और विकास, जैसे कि सौर, पवन, और परमाणु ऊर्जा, गैस की निर्भरता को कम करने में मदद कर सकते हैं। इसके अलावा, गैस भंडारण क्षमताओं में वृद्धि, आपूर्ति श्रृंखला की सुदृढ़ता, और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग जैसे उपाय भी गैस संकट के प्रभावों को कम कर सकते हैं। दीर्घकालिक समाधान के लिए ऊर्जा सुरक्षा, ऊर्जा दक्षता, और स्थिर आपूर्ति श्रृंखलाओं की दिशा में लगातार प्रयास आवश्यक हैं। गैस संकट एक जटिल और बहुपरकारी समस्या है, जो भू-राजनीतिक अस्थिरता, उत्पादन में कमी, आपूर्ति श्रृंखला की विफलता, और मांग में वृद्धि के संयोजन का परिणाम है। इसके प्रभावों को समझना और प्रभावी उपायों को लागू करना, जैसे कि वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज और आपूर्ति श्रृंखला में सुधार, गैस संकट को नियंत्रित करने और भविष्य में इसके प्रभावों को कम करने के लिए आवश्यक हैं। वैश्विक और स्थानीय स्तर पर सामंजस्यपूर्ण प्रयासों के माध्यम से इस संकट का समाधान संभव है, जिससे एक स्थिर और सुरक्षित ऊर्जा भविष्य की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है।

जैविक ऊर्जा संकट :-

विकासशील देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो व्यापारिक ऊर्जा की अपेक्षा जैविक ऊर्जा विशेषकर लकड़ी को ही ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। बढ़ती जनसंख्या एवं अन्य कारणों से लकड़ी की मांग वृद्धि के कारण विकासशील देशों में बड़े पैमाने पर वनों का कटाव हुआ है। विकासशील देशों में इस जैविक ऊर्जा संकट का द्वितीय ऊर्जा संकट कहा जा सकता है। वनों के विनाश से पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ता है एवं लकड़ी को ईंधन के रूप में काम में लेने से उससे निकलने वाली धुँआँ पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती है एवं जलवायु परिवर्तन हो रहा है।

कार्बन उत्सर्जन संकट:- मानव अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए संसाधनों का उपयोग ऊर्जा की प्राप्ति हेतु कर रहा है मानव का यह उपयोग पर्यावरण के अनुकूल नहीं है जिससे विश्व भर में हरितगृह गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक दल (IPCC) के चतुर्थ प्रतिवेदन ने विश्वस्तार पर हो रही हरितगृह प्रभाव – कार्बन डाई आक्साइड: मिथेन, नाइट्रोजन का उत्सर्जन को कम करने की चिन्ता प्रकट की। मनुष्य के द्वारा परिवहन में प्रयोग पेट्रोल, जीवाश्म ईंधन को जलाने से निकलने वाली धुँआँ एवं उद्योगों से निकलने वाली जहरीले पदार्थ वायुमण्डल में निरंतर फैल रहे हैं जिससे विश्व में ग्लोबल वार्मिंग एक समस्या बन रहा है। ऊर्जा संकट से बचने के लिए ऊर्जा संरक्षण करना एक अनिवार्य विषय बन गया है। ऊर्जा संरक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है कि अनव्यकरणीय संसाधनों के स्थान पर नव्यकरणीय संसाधनों का प्रयोग किया जाए। पेट्रोल एवं कोयले तथा आणविक ऊर्जा की अपेक्षा अधिकाधिक वैकल्पिक नव्यकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करना। ऊर्जा की खेती के द्वारा भी ऊर्जा संकट को कम किया जा सकता है जैसे जेट्रोफा पौधा द्वारा डीजल प्राप्त करके। जोजोबा नामक पौधे में वायुयान ईंधन प्राप्त इसी तरह जिन देशों में पर्याप्त पशुधन उपलब्ध है उनसे अपशिष्ट कृषिगत पदार्थ गोबर, कूड़ाकरट आदि में मिथेन गैस प्राप्त करना भारत जैसे देश में ऊर्जा विकल्प की असीम सम्भावनाएँ हैं।

15.4 भारत में ऊर्जा संकट

भारत में ऊर्जा संकट एक जटिल और बहुआयामी समस्या है, जो कई कारकों से प्रभावित होती है। इसमें बिजली की मांग और आपूर्ति के बीच असंतुलन, कोयले की कमी, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अपर्याप्त विकास, और वितरण प्रणालियों की अक्षमता शामिल है। यहाँ कुछ तथ्य और आंकड़े दिए गए हैं जो इस संकट को समझने में मदद कर सकते हैं

1. कोयले की कमी

भारत में कोयले की कमी एक गंभीर समस्या बन गई है, जिससे ऊर्जा संकट और बिजली की कटौती का खतरा बढ़ रहा है। कोयला भारत की ऊर्जा आपूर्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, और देश की लगभग 70% बिजली उत्पादन कोयला आधारित बिजली संयंत्रों से होती है। हालांकि, कोयले की आपूर्ति में बाधाएं उत्पन्न हो रही हैं, जो कई कारणों से हैं। भारत में कोयला खनन उद्योग में उत्पादन संबंधी समस्याएं और बुनियादी ढांचे की कमी प्रमुख बाधाएं हैं। 2021-22 में, भारत का कोयला उत्पादन लगभग 777 मिलियन टन था, जबकि मांग 1,020 मिलियन टन से अधिक थी। यह अंतर 243 मिलियन टन का था, जिसे आयात के माध्यम से पूरा करना पड़ा। लेकिन, कोयला खदानों में अपर्याप्त निवेश और आधुनिक तकनीकों की कमी के कारण उत्पादन में वृद्धि की दर धीमी रही है। मानसून के मौसम में भारी बारिश के कारण खदानों में बाढ़ आ जाती है, जिससे खनन कार्य बाधित होता है। उदाहरण के लिए, 2021 के मानसून के दौरान, कोल इंडिया लिमिटेड (CIL) की कई खदानें बाढ़ से प्रभावित हुईं, जिससे उत्पादन में 10-15% की कमी आई। इस तरह की स्थिति से बिजली संयंत्रों को कोयले की आपूर्ति में बड़ी समस्याएं होती हैं। कोयले की बढ़ती अंतर्राष्ट्रीय कीमतें और आयात पर निर्भरता भी समस्या को बढ़ा रही हैं। 2021-22 में, भारत ने लगभग 215 मिलियन टन कोयला आयात किया, जिसमें से 30% इंडोनेशिया, 22% ऑस्ट्रेलिया, और 16% दक्षिण अफ्रीका से आया। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कोयले की कीमतों में 2021 के दौरान 100% से अधिक की वृद्धि हुई, जिससे आयातित कोयले की उच्च कीमतें भारत के लिए एक वित्तीय बोझ बन गईं। बिजली उत्पादन में अचानक बढ़ती मांग और कोयला भंडार में कमी के कारण बिजली संयंत्रों के पास कोयले का पर्याप्त स्टॉक नहीं रह पाता है। अक्टूबर 2021 में CEA की रिपोर्ट के अनुसार, 135 कोयला आधारित बिजली संयंत्रों में से 108 के पास सिर्फ 8 दिनों का स्टॉक बचा था, जबकि 16 संयंत्रों में एक दिन का भी कोयला नहीं बचा था।

कोयला वितरण में लॉजिस्टिक समस्याएं भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा हैं। भारतीय रेलवे के माध्यम से कोयले की परिवहन में देरी होती है, जो समय पर आपूर्ति में बाधा डालती है। 2021-22 में, रेलवे द्वारा कोयला परिवहन में लगभग 12% की कमी आई, जिससे संयंत्रों में कोयले की कमी हो गई।

पर्यावरणीय नीतियों और स्थिरता लक्ष्यों के तहत कोयला खनन और उपयोग पर बढ़ते प्रतिबंध भी कोयला आपूर्ति में बाधा डाल रहे हैं। भारत सरकार ने 2030 तक कार्बन उत्सर्जन को 33-35% तक कम करने का लक्ष्य रखा है, जिसके तहत कोयला आधारित बिजली उत्पादन में कटौती की जा रही है। इसके अलावा, नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए 2022 तक 175 गीगावाट और 2030 तक 450 गीगावाट का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इन सभी कारकों के मिलाजुला प्रभाव से भारत में कोयले की कमी एक जटिल और गंभीर समस्या बनी हुई है, जिसका समाधान करने के लिए एक समग्र और दीर्घकालिक रणनीति की आवश्यकता है। समाधान में उत्पादन क्षमता में वृद्धि, वितरण प्रणाली में सुधार, आयात विविधीकरण, और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का विस्तार शामिल होना चाहिए।

बिजली की मांग और आपूर्ति

भारत में बिजली की मांग और आपूर्ति के बीच असंतुलन एक गंभीर चुनौती बन गया है, जो देश की तेजी से बढ़ती आबादी, औद्योगिकीकरण, और शहरीकरण से प्रेरित है। 2022 में, भारत की कुल बिजली की मांग लगभग 1,250 बिलियन यूनिट्स (BU) थी, और यह अनुमान है कि 2030 तक यह आंकड़ा 2,000 BU से अधिक हो जाएगा। बिजली की मांग बढ़ने के कई कारण हैं। भारत में प्रति व्यक्ति बिजली की खपत में तेजी से वृद्धि हो रही है, जो 2021 में लगभग 1,200 किलोवाट-घंटे (kWh) थी, जबकि वैश्विक औसत लगभग 3,200 kWh है। आर्थिक विकास, औद्योगिकीकरण, और ग्रामीण विद्युतीकरण ने बिजली की मांग को तेजी से बढ़ाया है। 2014 में शुरू की गई सौभाग्य योजना के तहत, 2019 तक लगभग 26.3 मिलियन घरों को बिजली कनेक्शन

प्रदान किया गया, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की खपत में भारी वृद्धि हुई। दूसरी ओर, बिजली की आपूर्ति को बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बना हुआ है। भारत की स्थापित बिजली उत्पादन क्षमता 2022 में लगभग 404 गीगावॉट (GW) थी, जिसमें से 236 GW थर्मल पावर, 111 GW नवीकरणीय ऊर्जा, 46 GW हाइड्रो पावर, और 7 GW परमाणु ऊर्जा शामिल है। हालांकि, उत्पादन क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो पाता है, मुख्यतः कोयले की कमी, वितरण प्रणाली की अक्षमता, और बुनियादी ढांचे की कमी के कारण। 2021-22 में, कुल स्थापित क्षमता का केवल 75-80% उपयोग हो पाया, जिससे मांग और आपूर्ति के बीच अंतर बढ़ता गया। बिजली वितरण प्रणाली में तकनीकी और वाणिज्यिक नुकसान (AT&C) भी एक प्रमुख समस्या है। 2020-21 में, AT&C नुकसान लगभग 21% था, जो वैश्विक औसत से काफी अधिक है। वितरण कंपनियों (DISCOM) की वित्तीय स्थिति अक्सर खराब रहती है, जिससे वे समय पर बिजली खरीदने और उपभोक्ताओं को आपूर्ति करने में असमर्थ रहती हैं। इसके अलावा, बिजली की चोरी और अवैध कनेक्शनों के कारण भी वितरण प्रणाली पर दबाव बढ़ता है।

नवीकरणीय ऊर्जा की भूमिका

भारत सरकार ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं और नीतियां लागू की हैं। 2022 तक, भारत ने 100 GW से अधिक नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता स्थापित की थी, लेकिन फिर भी यह लक्ष्य से पीछे है। 2030 तक 450 GW नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य है, जिसमें 280 GW सोलर पावर शामिल है। बिजली की मांग और आपूर्ति के बीच असंतुलन को दूर करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें पारंपरिक और नवीकरणीय दोनों ऊर्जा स्रोतों का उचित विकास, वितरण प्रणाली में सुधार, और ऊर्जा उपयोग की दक्षता बढ़ाना शामिल है। समाधान में नीतिगत सुधार, बुनियादी ढांचे में निवेश, और तकनीकी नवाचार शामिल हैं, ताकि भविष्य में बिजली की स्थिर और निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके। भारत में नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का विकास तेजी से हो रहा है, जो देश की ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है। सरकार ने 2022 तक 175 गीगावॉट (GW) और 2030 तक 450 GW नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता का महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई योजनाएं और नीतियां लागू की गई हैं। सौर ऊर्जा के क्षेत्र में, भारत ने 2022 तक लगभग 60 GW क्षमता स्थापित की थी। सरकार ने राष्ट्रीय सौर मिशन (NSM) के तहत 100 GW सौर ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य रखा है, जिसमें ग्रिड कनेक्टेड सोलर पावर और रूफटॉप सोलर पैनल शामिल हैं। 2021-22 में, देश के विभिन्न हिस्सों में सोलर पार्क और सोलर पावर प्लांट स्थापित किए गए, जिनमें राजस्थान का भदला सोलर पार्क (2.25 GW) और कर्नाटक का पवगड़ा सोलर पार्क (2 GW) प्रमुख हैं। पवन ऊर्जा के क्षेत्र में, भारत ने 2022 तक लगभग 40 GW क्षमता स्थापित की थी। राष्ट्रीय पवन ऊर्जा मिशन के तहत, 2030 तक 60 GW पवन ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। तमिलनाडु और गुजरात जैसे राज्यों में पवन ऊर्जा परियोजनाओं का विस्तार किया गया है, जिसमें तमिलनाडु का मुंद्रा पवन ऊर्जा फार्म (1.5 GW) प्रमुख है। जैव ऊर्जा और छोटी जलविद्युत परियोजनाओं का विकास भी तेजी से हो रहा है। 2022 तक, भारत ने 10 GW जैव ऊर्जा और 5 GW छोटी जलविद्युत क्षमता स्थापित की थी। जैव ऊर्जा परियोजनाओं में कृषि अवशेषों, औद्योगिक कचरे और अन्य जैविक सामग्री का उपयोग करके बिजली उत्पादन किया जाता है। छोटी जलविद्युत परियोजनाएं (SHPPs) मुख्य रूप से पहाड़ी राज्यों में स्थापित की जा रही हैं, जैसे हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड। भारत सरकार ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के विकास के लिए कई नीतिगत समर्थन और निवेश योजनाएं लागू की हैं। इनमें सब्सिडी, टैक्स इंसेंटिव, और सस्ती वित्तीय योजनाएं शामिल हैं। 2021-22 में, भारत में नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में लगभग +10 बिलियन का निवेश हुआ था। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और निजी क्षेत्र की भागीदारी से भी नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाओं का विकास हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन और मौसम की अनिश्चितता

भारत में जलवायु परिवर्तन और मौसम की अनिश्चितता ऊर्जा संकट को और जटिल बना रही हैं। वैश्विक तापमान में वृद्धि और बदलते मौसम के पैटर्न ने पारंपरिक और नवीकरणीय दोनों ऊर्जा स्रोतों पर गहरा प्रभाव डाला है। 2021 में, भारत का औसत तापमान 0.63 डिग्री सेल्सियस ऊपर था, जो 1901-2000 के औसत से अधिक है। यह तापमान वृद्धि हीटवेव और असामान्य मौसम घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता को बढ़ा रही है, जिससे ऊर्जा मांग में अचानक वृद्धि हो जाती है। हीटवेव्स के दौरान बिजली की मांग में भारी वृद्धि होती है।

उदाहरण के लिए, जुलाई 2022 में उत्तर भारत में हीटवेव के दौरान, बिजली की मांग 200 गीगावॉट से अधिक हो गई थी, जो सामान्य दिनों की तुलना में लगभग 15–20% अधिक थी। इस अत्यधिक मांग को पूरा करने के लिए बिजली ग्रिड पर भारी दबाव पड़ता है, जिससे कई बार बिजली कटौती की स्थिति उत्पन्न होती है। मानसून के मौसम में अत्यधिक बारिश के कारण कोयला खदानें बाढ़ की चपेट में आ जाती हैं, जिससे कोयला उत्पादन में कमी होती है। 2021 के मानसून के दौरान, झारखंड और ओडिशा में कई प्रमुख कोयला खदानें बाढ़ से प्रभावित हुईं, जिससे कोल इंडिया लिमिटेड (CIL) के उत्पादन में लगभग 15% की कमी आई। इस तरह की घटनाओं से बिजली संयंत्रों में कोयले की आपूर्ति में रुकावट आती है, जिससे बिजली उत्पादन प्रभावित होता है।

जलवायु परिवर्तन नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन को भी प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, विंड टर्बाइन की दक्षता हवा की गति और दिशा पर निर्भर करती है। 2022 में, गुजरात और तमिलनाडु में हवाओं की गति में 10–15% की कमी आई, जिससे पवन ऊर्जा उत्पादन में गिरावट आई। सौर ऊर्जा उत्पादन भी बादल छाए रहने और मौसम की अनिश्चितता के कारण प्रभावित होता है। जलवायु परिवर्तन के कारण जल संसाधनों की उपलब्धता में भी कमी आ रही है, जो जलविद्युत परियोजनाओं के लिए एक बड़ी चुनौती है। 2021 में, हिमालयी क्षेत्रों में ग्लेशियर पिघलने की दर बढ़ गई, जिससे जलविद्युत उत्पादन में कमी आई। उदाहरण के लिए, उत्तराखंड में टिहरी जलविद्युत परियोजना का उत्पादन 20% तक गिर गया।

15.5 गैर-परम्परागत ऊर्जा के स्रोत

गैर-परम्परागत शक्ति के स्रोत ही मानव के प्रथम विकास में सहायक रहे हैं। इनमें सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, महासागरीय ऊर्जा, आणविक ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा बायोमास एवं जैव ईंधन प्रमुख हैं। वर्तमान में इनका महत्व बढ़ता जा रहा है क्योंकि अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का लम्बी अवधि तक उपयोग संभव है। इनका विवरण निम्नलिखित है—

(i) भू-तापीय ऊर्जा (GeoThermal Energy) – भू-तापीय ऊर्जा, पृथ्वी की आंतरिक गर्मी से प्राप्त ऊर्जा है, जो एक स्थिर और दीर्घकालिक समाधान के रूप में उभर रही है। यह ऊर्जा स्रोत ज्वालामुखी, गर्म स्प्रिंग्स, और भूगर्भीय सक्रिय क्षेत्रों से उत्पन्न होती है और इसका उपयोग बिजली उत्पादन, हीटिंग, और औद्योगिक प्रक्रियाओं में किया जाता है। भू-तापीय ऊर्जा की प्रक्रिया, इसके लाभ, चुनौतियाँ, और भविष्य की संभावनाओं को समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह ऊर्जा की आवश्यकता और पर्यावरणीय स्थिरता दोनों को संबोधित करने में सहायक होती है। भू-तापीय ऊर्जा की उत्पत्ति पृथ्वी की आंतरिक गर्मी से होती है। पृथ्वी की सतह के नीचे, मैन्टल और कोर में गर्मी जमा होती है, जो ज्वालामुखीय गतिविधियों, भूगर्भीय तनाव, और रेडियोधर्मी विघटन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। इस गर्मी को भू-तापीय ऊर्जा के रूप में उपयोग किया जाता है, जिसे सीधे गर्मी के रूप में या बिजली उत्पादन के लिए परिवर्तित किया जा सकता है। भू-तापीय ऊर्जा की उत्पादन प्रक्रिया में, गर्म भू-जल या भाप को भूमिगत रेजरवॉयर से खींचा जाता है और इसे टरबाइन में परिवर्तित किया जाता है, जो बिजली उत्पन्न करता है। विश्व में, 2022 तक, भू-तापीय ऊर्जा की कुल स्थापित क्षमता लगभग 15 गीगावाट (GW) थी। सबसे बड़े भू-तापीय ऊर्जा उत्पादनकर्ता देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, इंडोनेशिया, फिलीपीन्स, और आइसलैंड शामिल हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, जो विश्व का सबसे बड़ा भू-तापीय ऊर्जा उत्पादक है, ने 2022 में लगभग 3.7 गीगावाट (GW) की क्षमता के साथ इस क्षेत्र में प्रमुख स्थान बनाए रखा है। आइसलैंड, जिसकी लगभग 90% ऊर्जा आवश्यकता भू-तापीय और हाइड्रोपावर से पूरी होती है, एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहां भू-तापीय ऊर्जा का व्यापक और सफल उपयोग किया जा रहा है।

भू-तापीय ऊर्जा का सबसे बड़ा लाभ उसकी स्थिरता और विश्वसनीयता है। अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के विपरीत, जैसे कि सौर और पवन ऊर्जा, जो मौसम पर निर्भर करते हैं, भू-तापीय ऊर्जा का उत्पादन लगातार होता है। पृथ्वी के आंतरिक गर्मी का स्रोत निरंतर उपलब्ध रहता है, जो इसे एक स्थिर और विश्वसनीय ऊर्जा स्रोत बनाता है। इसके अतिरिक्त, भू-तापीय ऊर्जा का उपयोग पर्यावरणीय दृष्टि से लाभकारी है। यह नवीकरणीय है और इसका उत्पादन ग्रीनहाउस गैसों के कम उत्सर्जन के साथ होता है। भू-तापीय पावर प्लांट्स में प्रदूषण की मात्रा न्यूनतम होती है, और इनका जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव भी कम होता है। उदाहरण के लिए, भू-तापीय ऊर्जा के उपयोग से कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂) उत्सर्जन में 70% तक की कमी हो सकती है, जो पारंपरिक जीवाश्म ईंधनों की तुलना में बहुत कम है। भू-तापीय ऊर्जा स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को

बढ़ावा देती है। इसका उपयोग ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करने में सहायक होता है, विशेषकर उन देशों में जो ऊर्जा के बड़े आयातक होते हैं। इसके अलावा, भू-तापीय परियोजनाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन होता है और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। ये परियोजनाएँ स्थानीय समुदायों के लिए स्थिर और दीर्घकालिक आर्थिक लाभ प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, इटली में भू-तापीय ऊर्जा परियोजनाओं ने हजारों स्थानीय रोजगार सृजित किए हैं और स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया है।

हालांकि, भू-तापीय ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी होती हैं। इनमें सबसे प्रमुख चुनौती उच्च प्रारंभिक लागत है। भू-तापीय ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना की लागत पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की तुलना में अधिक हो सकती है। इसमें शामिल हैं ड्रिलिंग लागत, भू-तापीय रिसोर्स की खोज और मूल्यांकन की लागत, और प्लांट निर्माण की लागत। प्रारंभिक निवेश की उच्च लागत के कारण, कई देशों और कंपनियों को इन परियोजनाओं के लिए वित्तपोषण प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, एक भू-तापीय पावर प्लांट के लिए प्रारंभिक निवेश लागत कई मिलियन डॉलर हो सकती है, जो छोटे देशों या विकासशील देशों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकती है।

भू-तापीय संसाधनों की पहचान और प्रबंधन भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। भू-तापीय ऊर्जा के सफल उपयोग के लिए उचित संसाधन की पहचान और प्रबंधन आवश्यक है। भू-तापीय रिजर्वोइर्स की खोज और मूल्यांकन एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें समय और महंगे तकनीकी प्रयास की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, लंबे समय तक स्थिरता बनाए रखने के लिए भू-तापीय जलाशयों के सतत प्रबंधन की आवश्यकता होती है, ताकि भविष्य में ऊर्जा उत्पादन स्थिर और प्रभावी रहे। उदाहरण के लिए, कैलिफोर्निया के सिएरा नेवादा में स्थित कुछ भू-तापीय क्षेत्र, जैसे कि दी रेजरवॉयर, को स्थिर बनाए रखने के लिए नियमित निगरानी और प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

हालांकि भू-तापीय ऊर्जा के पर्यावरणीय लाभ होते हैं, इसके साथ कुछ पर्यावरणीय समस्याएँ भी जुड़ी होती हैं। भू-तापीय पावर प्लांट्स के संचालन से भूमि में विघटन और भूगर्भीय परिवर्तनों का प्रभाव हो सकता है। इसके अलावा, कुछ भू-तापीय प्लांट्स में अपशिष्ट जल और हानिकारक गैसों के उत्सर्जन की संभावना होती है, जिसे उचित तरीके से प्रबंधित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ भू-तापीय पावर प्लांट्स में सल्फर डाइऑक्साइड (SO₂) और अमोनिया जैसे हानिकारक गैसों का उत्सर्जन हो सकता है, जिन्हें वायु गुणवत्ता मानकों के अनुरूप नियंत्रित किया जाना चाहिए।

भू-तापीय ऊर्जा का वैश्विक उपयोग बढ़ रहा है, विशेषकर उन देशों में जहाँ भू-तापीय संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। आइसलैंड, न्यूजीलैंड, फिलीपीन्स, और इटली जैसे देशों ने भू-तापीय ऊर्जा के बड़े पैमाने पर उपयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। आइसलैंड, जिसकी लगभग 90% ऊर्जा आवश्यकता भू-तापीय और हाइड्रोपावर से पूरी होती है, एक उत्कृष्ट उदाहरण है जहाँ भू-तापीय ऊर्जा का व्यापक और सफल उपयोग किया जा रहा है। न्यूजीलैंड में भी भू-तापीय ऊर्जा का उपयोग 20% से अधिक बिजली उत्पादन के लिए किया जाता है, और फिलीपीन्स ने भू-तापीय ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जो विश्व में दूसरा सबसे बड़ा भू-तापीय ऊर्जा उत्पादक बन गया है।

भू-तापीय ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान और नवाचार जारी हैं, जो इसके उपयोग की क्षमताओं को बढ़ाने और लागत को घटाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नवीनतम तकनीकों में Enhanced Geothermal Systems (EGS) और उच्च तापमान वाले भू-तापीय प्लांट्स शामिल हैं, जो भू-तापीय संसाधनों के उपयोग को अधिक प्रभावी और लागत-कुशल बना सकते हैं। EGS तकनीक, जो गहरे और कम उत्पादक क्षेत्रों में भू-तापीय ऊर्जा प्राप्त करने की क्षमता को बढ़ाती है, भविष्य में भू-तापीय ऊर्जा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसके अतिरिक्त, भू-तापीय ऊर्जा के क्षेत्र में किए गए अनुसंधान और नवाचार, जैसे कि ड्रिलिंग तकनीकों में सुधार और रिसोर्स मैनेजमेंट, इसके उपयोग को और अधिक प्रभावी और सस्ती बना सकते हैं।

सरकारी नीतियों और समर्थन की भूमिका भू-तापीय ऊर्जा के विकास में महत्वपूर्ण है। कई देशों ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहित करने के लिए सब्सिडी, कर छूट, और अन्य प्रोत्साहन योजनाएँ लागू की हैं। इन नीतियों के माध्यम से भू-तापीय ऊर्जा के विकास को बढ़ावा देने और इसके लिए आवश्यक निवेश को आकर्षित करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में भू-तापीय ऊर्जा परियोजनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय प्रोत्साहन योजनाएँ और कर लाभ उपलब्ध हैं, जो इसके विकास को प्रोत्साहित करते

हैं।

भू-तापीय ऊर्जा की भूमिका वैश्विक ऊर्जा परिदृश्य में महत्वपूर्ण हो सकती है, जो हमें एक स्थिर और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में ले जाएगी। इसके स्थिरता, विश्वसनीयता, और कम पर्यावरणीय प्रभाव इसे एक आकर्षक विकल्प बनाते हैं। हालांकि, प्रारंभिक लागत, संसाधनों की पहचान, और पर्यावरणीय समस्याएँ इसके उपयोग में बाधा डाल सकती हैं। वैश्विक स्तर पर अनुसंधान, नवाचार, और नीतिगत समर्थन के माध्यम से इन चुनौतियों को संबोधित किया जा सकता है,

(ii) ज्वारीय ऊर्जा (Tidal Energy)— ज्वार ऊर्जा, समुद्र के ज्वार-भाटों के नियमित और भविष्यवाणी योग्य आंदोलनों से प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा है, जो नवीकरणीय ऊर्जा के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभर रही है। यह ऊर्जा स्रोत, पृथ्वी और चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बलों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले ज्वार-भाटों के कारण होता है। ज्वार ऊर्जा का उपयोग बिजली उत्पादन, हीटिंग, और अन्य औद्योगिक प्रक्रियाओं में किया जा सकता है। ज्वार ऊर्जा की प्रक्रिया, इसके लाभ, चुनौतियाँ, और भविष्य की संभावनाओं को समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह ऊर्जा की आवश्यकता और पर्यावरणीय स्थिरता दोनों को संबोधित करने में सहायक होती है।

ज्वार ऊर्जा की उत्पत्ति समुद्र के ज्वार-भाटों के कारण होती है। ज्वार-भाटे पृथ्वी, चंद्रमा और सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बलों के परिणामस्वरूप होते हैं, जो समुद्र के जल स्तर में बदलाव का कारण बनते हैं। इन ज्वार-भाटों की ऊर्जा को ज्वार ऊर्जा के रूप में उपयोग किया जा सकता है। ज्वार ऊर्जा को दो प्रमुख तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है: ज्वार बांध और ज्वार स्ट्रीम जनरेटर। ज्वार बांध, जो पारंपरिक जलविद्युत बांधों के समान होते हैं, समुद्र के जल को रोकते हैं और उच्च ज्वार के दौरान पानी को संग्रहित करते हैं। इसके बाद, इस संग्रहित जल को कम ज्वार के दौरान छोड़ा जाता है, जिससे टरबाइन को चलाकर बिजली उत्पन्न की जाती है। दूसरी ओर, ज्वार स्ट्रीम जनरेटर, समुद्र के नीचे स्थापित किए जाते हैं और ज्वार-भाटों की धारा की गति का उपयोग करके बिजली उत्पन्न करते हैं।

ज्वार ऊर्जा का सबसे बड़ा लाभ उसकी स्थिरता और भविष्यवाणी योग्य प्रकृति है। अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के विपरीत, जैसे कि सौर और पवन ऊर्जा, जो मौसम पर निर्भर करते हैं, ज्वार ऊर्जा का उत्पादन नियमित और पूर्वानुमेय होता है। समुद्र के ज्वार-भाटों की आवृत्ति और तीव्रता को पहले से ही बहुत सटीकता से मापा और पूर्वानुमानित किया जा सकता है, जो इसे एक विश्वसनीय ऊर्जा स्रोत बनाता है। इसके अतिरिक्त, ज्वार ऊर्जा का उपयोग पर्यावरणीय दृष्टि से लाभकारी है। यह नवीकरणीय है और इसका उत्पादन ग्रीनहाउस गैसों के कम उत्सर्जन के साथ होता है। ज्वार ऊर्जा के उपयोग से कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂) उत्सर्जन में कमी हो सकती है, जो पारंपरिक जीवाश्म ईंधनों की तुलना में बहुत कम है।

विश्व स्तर पर, ज्वार ऊर्जा की क्षमता बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में ज्वार ऊर्जा की क्षमता 15 गीगावाट (GW) से अधिक अनुमानित है, जो देश की कुल ऊर्जा आवश्यकता का लगभग 10% पूरा कर सकती है। इसी तरह, कनाडा में, विशेष रूप से नोवा स्कोटिया के बे ऑफ फंडी में, ज्वार ऊर्जा की क्षमता अत्यधिक है और इसे विश्व के सबसे अधिक ज्वार ऊर्जा संसाधनों में से एक माना जाता है। ज्वार ऊर्जा परियोजनाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन होता है और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। ये परियोजनाएँ स्थानीय समुदायों के लिए स्थिर और दीर्घकालिक आर्थिक लाभ प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, फ्रांस में रेंस ज्वार पावर स्टेशन, जिसे 1966 में चालू किया गया था, विश्व का सबसे पुराना और सबसे बड़ा ज्वार पावर स्टेशन है और इसने स्थानीय रोजगार सृजन और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हालांकि, ज्वार ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी होती हैं। इनमें सबसे प्रमुख चुनौती उच्च प्रारंभिक लागत है। ज्वार ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना की लागत पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की तुलना में अधिक हो सकती है। इसमें शामिल हैं: निर्माण लागत, उपकरण की लागत, और रखरखाव की लागत। प्रारंभिक निवेश की उच्च लागत के कारण, कई देशों और कंपनियों को इन परियोजनाओं के लिए वित्तपोषण प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, एक ज्वार पावर प्लांट के लिए प्रारंभिक निवेश लागत कई मिलियन डॉलर हो सकती है, जो छोटे देशों या विकासशील देशों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकती है।

ज्वार ऊर्जा संसाधनों की पहचान और प्रबंधन भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। ज्वार ऊर्जा के सफल उपयोग के

लिए उचित संसाधन की पहचान और प्रबंधन आवश्यक है। ज्वार ऊर्जा संसाधनों की खोज और मूल्यांकन एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें समय और महंगे तकनीकी प्रयास की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, लंबे समय तक स्थिरता बनाए रखने के लिए ज्वार ऊर्जा संसाधनों के सतत प्रबंधन की आवश्यकता होती है, ताकि भविष्य में ऊर्जा उत्पादन स्थिर और प्रभावी रहे। इसके अतिरिक्त, ज्वार ऊर्जा परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव भी महत्वपूर्ण हैं। ज्वार बांध और ज्वार स्ट्रीम जनरेटर के संचालन से समुद्री जीवन और पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव हो सकता है। समुद्र के जल के प्रवाह में बदलाव और निर्माण गतिविधियों से समुद्री जीवों की आवास और प्रजनन पर नकारात्मक प्रभाव हो सकता है।

ज्वार ऊर्जा का वैश्विक उपयोग बढ़ रहा है, विशेषकर उन देशों में जहाँ ज्वार ऊर्जा संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, और दक्षिण कोरिया जैसे देशों ने ज्वार ऊर्जा के बड़े पैमाने पर उपयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। फ्रांस के रेंस ज्वार पावर स्टेशन के अलावा, दक्षिण कोरिया ने भी सिंहावा लेक ज्वार पावर स्टेशन के माध्यम से ज्वार ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जो 2011 में चालू किया गया और वर्तमान में विश्व का सबसे बड़ा ज्वार पावर स्टेशन है।

ज्वार ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान और नवाचार जारी हैं, जो इसके उपयोग की क्षमताओं को बढ़ाने और लागत को घटाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नवीनतम तकनीकों में उच्च दक्षता वाले टरबाइन, सामग्री विज्ञान में सुधार, और ज्वार ऊर्जा संसाधनों की निगरानी और प्रबंधन के लिए उन्नत सेंसर शामिल हैं। अनुसंधान और नवाचार के माध्यम से, ज्वार ऊर्जा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है और इसकी स्थापना और संचालन की लागत को घटाया जा सकता है।

सरकारी नीतियों और समर्थन की भूमिका ज्वार ऊर्जा के विकास में महत्वपूर्ण है। कई देशों ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहित करने के लिए सब्सिडी, कर छूट, और अन्य प्रोत्साहन योजनाएँ लागू की हैं। इन नीतियों के माध्यम से ज्वार ऊर्जा के विकास को बढ़ावा देने और इसके लिए आवश्यक निवेश को आकर्षित करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में ज्वार ऊर्जा परियोजनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय प्रोत्साहन योजनाएँ और कर लाभ उपलब्ध हैं, जो इसके विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

ज्वार ऊर्जा की भूमिका वैश्विक ऊर्जा परिदृश्य में महत्वपूर्ण हो सकती है, जो हमें एक स्थिर और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में ले जाएगी। इसके स्थिरता, भविष्यवाणी योग्य प्रकृति, और कम पर्यावरणीय प्रभाव इसे एक आकर्षक विकल्प बनाते हैं। हालांकि, प्रारंभिक लागत, संसाधनों की पहचान, और पर्यावरणीय समस्याएँ इसके उपयोग में बाधा डाल सकती हैं। वैश्विक स्तर पर अनुसंधान, नवाचार, और नीतिगत समर्थन के माध्यम से इन चुनौतियों को संबोधित किया जा सकता है, जिससे ज्वार ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम किया जा सके।

ज्वार ऊर्जा का विकास और इसके उपयोग में वृद्धि न केवल ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकती है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और जलवायु संकट के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। भविष्य में, ज्वार ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम करने के लिए निरंतर अनुसंधान और नवाचार की आवश्यकता होगी, साथ ही साथ प्रभावी नीतिगत समर्थन और वित्तीय प्रोत्साहन की भी आवश्यकता होगी। विश्व भर में ज्वार ऊर्जा परियोजनाओं के सफल कार्यान्वयन से न केवल ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि यह पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक होगा। इसलिए, ज्वार ऊर्जा के विकास और उपयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ताकि एक स्थिर, सुरक्षित, और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में प्रगति की जा सके।

(iii) पवन ऊर्जा (Wind Power) –

पवन ऊर्जा, वायु के गतिज ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करने की प्रक्रिया है, जो नवीकरणीय ऊर्जा के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। पवन ऊर्जा का उपयोग हजारों वर्षों से विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है, लेकिन आधुनिक युग में यह विद्युत उत्पादन के लिए एक प्रमुख विकल्प बन गया है। पवन ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में टेक्नोलॉजी, आर्थिक लाभ, पर्यावरणीय फायदे और चुनौतियों को समझना आवश्यक है, क्योंकि यह ऊर्जा की आवश्यकता और पर्यावरणीय स्थिरता दोनों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पवन ऊर्जा की उत्पत्ति वायु के गतिज ऊर्जा से होती है, जो सूर्य की गर्मी के कारण होती है। सूर्य की किरणें

पृथ्वी की सतह को अनियमित रूप से गर्म करती हैं, जिससे वायु का तापमान और दबाव बदलता है। इसके परिणामस्वरूप, वायु का गतिज ऊर्जा उत्पन्न होता है, जिसे पवन ऊर्जा के रूप में उपयोग किया जा सकता है। पवन ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए, पवन टरबाइन का उपयोग किया जाता है। ये टरबाइन ऊंचे टावरों पर स्थापित किए जाते हैं और हवा की गति से घूमते हैं। जब हवा टरबाइन की ब्लेड्स से टकराती है, तो वे घूमने लगती हैं और इस गतिज ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर देती हैं।

विश्व में पवन ऊर्जा की क्षमता और उपयोग में तेजी से वृद्धि हो रही है। 2022 तक, वैश्विक पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता 743 गीगावाट (GW) तक पहुंच गई थी। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, भारत और स्पेन जैसे देशों ने पवन ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है। चीन, जो विश्व का सबसे बड़ा पवन ऊर्जा उत्पादक है, ने 2022 में लगभग 282 गीगावाट (GW) की क्षमता स्थापित की थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में, पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता 135 गीगावाट (GW) तक पहुंच गई है, जबकि जर्मनी और भारत में क्रमशः 63 और 40 गीगावाट (GW) की क्षमता स्थापित की गई है।

पवन ऊर्जा का सबसे बड़ा लाभ उसकी स्थिरता और पर्यावरणीय लाभ है। यह नवीकरणीय है और इसका उत्पादन ग्रीनहाउस गैसों के कम उत्सर्जन के साथ होता है। पवन ऊर्जा का उपयोग करके कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂) और अन्य हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है, जो जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण के प्रभावों को कम करने में सहायक है। उदाहरण के लिए, एक 1.5 मेगावाट (MW) पवन टरबाइन, अपने जीवनकाल में 2,600 टन CO₂ उत्सर्जन को रोक सकता है, जो जीवाश्म ईंधनों की तुलना में बहुत कम है।

इसके अलावा, पवन ऊर्जा स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा देती है। इसका उपयोग ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करने में सहायक होता है, विशेषकर उन देशों में जो ऊर्जा के बड़े आयातक होते हैं। पवन ऊर्जा परियोजनाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन होता है और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिए, 2020 में, पवन ऊर्जा क्षेत्र में 1.2 मिलियन से अधिक लोगों को रोजगार मिला था, और यह संख्या निरंतर बढ़ रही है। हालांकि, पवन ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी होती हैं। इनमें सबसे प्रमुख चुनौती ऊंची प्रारंभिक लागत है। पवन टरबाइन की स्थापना की लागत पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की तुलना में अधिक हो सकती है। इसमें शामिल हैं टरबाइन की खरीद, स्थापना, रखरखाव, और ट्रांसमिशन की लागत। प्रारंभिक निवेश की ऊंची लागत के कारण, कई देशों और कंपनियों को इन परियोजनाओं के लिए वित्तपोषण प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

पवन संसाधनों की पहचान और प्रबंधन भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। पवन ऊर्जा के सफल उपयोग के लिए उचित संसाधन की पहचान और प्रबंधन आवश्यक है। पवन ऊर्जा संसाधनों की खोज और मूल्यांकन एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें समय और महंगे तकनीकी प्रयास की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, लंबे समय तक स्थिरता बनाए रखने के लिए पवन ऊर्जा संसाधनों के सतत प्रबंधन की आवश्यकता होती है, ताकि भविष्य में ऊर्जा उत्पादन स्थिर और प्रभावी रहे।

पर्यावरणीय और सामुदायिक प्रभाव भी पवन ऊर्जा परियोजनाओं की प्रमुख चिंताएँ हैं। पवन टरबाइन के निर्माण और संचालन से वन्यजीवों, विशेषकर पक्षियों और चमगादड़ों पर नकारात्मक प्रभाव हो सकता है। इसके अलावा, पवन टरबाइन के शोर और दृश्य प्रभाव स्थानीय समुदायों के लिए समस्याएं उत्पन्न कर सकते हैं। पवन टरबाइन से उत्पन्न होने वाले शोर को 'इंफ्रासाउंड' कहा जाता है, जो मानव स्वास्थ्य और वन्यजीवों पर प्रभाव डाल सकता है।

पवन ऊर्जा का वैश्विक उपयोग बढ़ रहा है, विशेषकर उन देशों में जहाँ पवन ऊर्जा संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, और भारत जैसे देशों ने पवन ऊर्जा के बड़े पैमाने पर उपयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में टेक्सास राज्य, पवन ऊर्जा उत्पादन में अग्रणी है, जहाँ 2022 में 33 गीगावाट (GW) से अधिक की क्षमता स्थापित की गई थी। इसी तरह, जर्मनी में उत्तरी सागर क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पवन ऊर्जा परियोजनाएँ स्थापित की गई हैं, जो देश की ऊर्जा आवश्यकता का एक बड़ा हिस्सा पूरा करती हैं।

पवन ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान और नवाचार जारी हैं, जो इसके उपयोग की क्षमताओं को बढ़ाने और लागत

को घटाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नवीनतम तकनीकों में उन्नत टरबाइन डिजाइन, सामग्री विज्ञान में सुधार, और पवन ऊर्जा संसाधनों की निगरानी और प्रबंधन के लिए उन्नत सेंसर शामिल हैं। उदाहरण के लिए, नई पीढ़ी के टरबाइन, जो 12 मेगावाट (MW) या उससे अधिक की क्षमता के हैं, पवन ऊर्जा उत्पादन की दक्षता को बढ़ा सकते हैं। अनुसंधान और नवाचार के माध्यम से, पवन ऊर्जा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है और इसकी स्थापना और संचालन की लागत को घटाया जा सकता है।

सरकारी नीतियों और समर्थन की भूमिका पवन ऊर्जा के विकास में महत्वपूर्ण है। कई देशों ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहित करने के लिए सब्सिडी, कर छूट, और अन्य प्रोत्साहन योजनाएँ लागू की हैं। इन नीतियों के माध्यम से पवन ऊर्जा के विकास को बढ़ावा देने और इसके लिए आवश्यक निवेश को आकर्षित करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, यूरोपियन यूनियन में, पवन ऊर्जा परियोजनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय प्रोत्साहन योजनाएँ और कर लाभ उपलब्ध हैं, जो इसके विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

पवन ऊर्जा की भूमिका वैश्विक ऊर्जा परिदृश्य में महत्वपूर्ण हो सकती है, जो हमें एक स्थिर और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में ले जाएगी। इसके स्थिरता, पर्यावरणीय लाभ, और स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ाने की क्षमता इसे एक आकर्षक विकल्प बनाती है। हालांकि, प्रारंभिक लागत, संसाधनों की पहचान, और पर्यावरणीय समस्याएँ इसके उपयोग में बाधा डाल सकती हैं। वैश्विक स्तर पर अनुसंधान, नवाचार, और नीतिगत समर्थन के माध्यम से इन चुनौतियों को संबोधित किया जा सकता है, जिससे पवन ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम किया जा सके। पवन ऊर्जा का विकास और इसके उपयोग में वृद्धि न केवल ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकती है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और जलवायु संकट के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। भविष्य में, पवन ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम करने के लिए निरंतर अनुसंधान और नवाचार की आवश्यकता होगी, साथ ही साथ प्रभावी नीतिगत समर्थन और वित्तीय प्रोत्साहन की भी आवश्यकता होगी। विश्व भर में पवन ऊर्जा परियोजनाओं के सफल कार्यान्वयन से न केवल ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि यह पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक होगा। इसलिए, पवन ऊर्जा के विकास और उपयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ताकि एक स्थिर, सुरक्षित, और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में प्रगति की जा सके।

(iv) सौर ऊर्जा (Solar Energy)— सौर ऊर्जा, सूर्य की किरणों से प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा है, जो नवीकरणीय ऊर्जा के सबसे महत्वपूर्ण और व्यापक रूप से उपलब्ध स्रोतों में से एक है। सौर ऊर्जा का उपयोग हजारों वर्षों से विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है, लेकिन आधुनिक युग में यह विद्युत उत्पादन, हीटिंग, और अन्य औद्योगिक प्रक्रियाओं के लिए एक प्रमुख विकल्प बन गई है। सौर ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में तकनीकी, आर्थिक लाभ, पर्यावरणीय फायदे और चुनौतियों को समझना आवश्यक है, क्योंकि यह ऊर्जा की आवश्यकता और पर्यावरणीय स्थिरता दोनों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सौर ऊर्जा की उत्पत्ति सूर्य की किरणों से होती है, जो पृथ्वी की सतह पर गिरती हैं। इन किरणों में विद्युत चुम्बकीय विकिरण होता है, जिसे सौर पैनल्स के माध्यम से विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। सौर पैनल्स, जो photovoltaic (PV) कोशिकाओं से बने होते हैं, इन किरणों को अवशोषित करते हैं और उनके इलेक्ट्रॉनों को मुक्त करते हैं, जिससे विद्युत धारा उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया को photovoltaic प्रभाव कहा जाता है, जिसे 1839 में एडमंड बेक्वेरेल ने खोजा था।

विश्व में सौर ऊर्जा की क्षमता और उपयोग में तेजी से वृद्धि हो रही है। 2022 तक, वैश्विक सौर ऊर्जा की स्थापित क्षमता 940 गीगावाट (GW) तक पहुंच गई थी। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, जापान और जर्मनी जैसे देशों ने सौर ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है। चीन, जो विश्व का सबसे बड़ा सौर ऊर्जा उत्पादक है, ने 2022 में लगभग 350 गीगावाट (GW) की क्षमता स्थापित की थी। भारत में सौर ऊर्जा की स्थापित क्षमता 50 गीगावाट (GW) तक पहुंच गई है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, और जर्मनी में क्रमशः 100, 70, और 60 गीगावाट (GW) की क्षमता स्थापित की गई है। सौर ऊर्जा का सबसे बड़ा लाभ उसकी स्थिरता और पर्यावरणीय लाभ है। यह नवीकरणीय है और इसका उत्पादन ग्रीनहाउस गैसों के कम उत्सर्जन के साथ होता है। सौर ऊर्जा का उपयोग करके कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂) और अन्य हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है, जो जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण के प्रभावों को कम करने में सहायक है। उदाहरण के लिए, 1 मेगावाट (MW) का सौर पावर प्लांट, अपने जीवनकाल में लगभग 1,500 टन CO₂ उत्सर्जन को

रोक सकता है, जो जीवाश्म ईंधनों की तुलना में बहुत कम है। इसके अलावा, सौर ऊर्जा स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा देती है। इसका उपयोग ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करने में सहायक होता है, विशेषकर उन देशों में जो ऊर्जा के बड़े आयातक होते हैं। सौर ऊर्जा परियोजनाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन होता है और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिए, 2020 में, सौर ऊर्जा क्षेत्र में 4 मिलियन से अधिक लोगों को रोजगार मिला था, और यह संख्या निरंतर बढ़ रही है। हालांकि, सौर ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी होती हैं। इनमें सबसे प्रमुख चुनौती उच्च प्रारंभिक लागत है। सौर पैनल्स की स्थापना की लागत पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की तुलना में अधिक हो सकती है। इसमें शामिल हैं पैनल्स की खरीद, स्थापना, रखरखाव, और ट्रांसमिशन की लागत। प्रारंभिक निवेश की उच्च लागत के कारण, कई देशों और कंपनियों को इन परियोजनाओं के लिए वित्तपोषण प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। सौर संसाधनों की पहचान और प्रबंधन भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। सौर ऊर्जा के सफल उपयोग के लिए उचित संसाधन की पहचान और प्रबंधन आवश्यक है। सौर ऊर्जा संसाधनों की खोज और मूल्यांकन एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें समय और महंगे तकनीकी प्रयास की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, लंबे समय तक स्थिरता बनाए रखने के लिए सौर ऊर्जा संसाधनों के सतत प्रबंधन की आवश्यकता होती है, ताकि भविष्य में ऊर्जा उत्पादन स्थिर और प्रभावी रहे। पर्यावरणीय और सामुदायिक प्रभाव भी सौर ऊर्जा परियोजनाओं की प्रमुख चिंताएँ हैं। सौर पैनल्स के निर्माण और संचालन से भूमि उपयोग, जल संसाधन, और पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव हो सकता है। इसके अलावा, सौर पैनल्स की अपशिष्ट प्रबंधन भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है, क्योंकि पैनल्स की जीवनकाल समाप्ति के बाद उनके पुनर्चक्रण और निपटान की आवश्यकता होती है।

सौर ऊर्जा का वैश्विक उपयोग बढ़ रहा है, विशेषकर उन देशों में जहाँ सौर ऊर्जा संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, जापान, और जर्मनी जैसे देशों ने सौर ऊर्जा के बड़े पैमाने पर उपयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए, भारत में राजस्थान राज्य, सौर ऊर्जा उत्पादन में अग्रणी है, जहाँ 2022 में 10 गीगावाट (GW) से अधिक की क्षमता स्थापित की गई थी। इसी तरह, संयुक्त राज्य अमेरिका में कैलिफोर्निया राज्य, सौर ऊर्जा उत्पादन में अग्रणी है, जहाँ 2022 में 30 गीगावाट (GW) से अधिक की क्षमता स्थापित की गई थी।

सौर ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान और नवाचार जारी हैं, जो इसके उपयोग की क्षमताओं को बढ़ाने और लागत को घटाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नवीनतम तकनीकों में उन्नत सौर पैनल डिजाइन, सामग्री विज्ञान में सुधार, और सौर ऊर्जा संसाधनों की निगरानी और प्रबंधन के लिए उन्नत सेंसर शामिल हैं। उदाहरण के लिए, नई पीढ़ी के सौर पैनल, जो 20% या उससे अधिक की दक्षता के हैं, सौर ऊर्जा उत्पादन की क्षमता को बढ़ा सकते हैं। अनुसंधान और नवाचार के माध्यम से, सौर ऊर्जा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है और इसकी स्थापना और संचालन की लागत को घटाया जा सकता है।

सरकारी नीतियों और समर्थन की भूमिका सौर ऊर्जा के विकास में महत्वपूर्ण है। कई देशों ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहित करने के लिए सब्सिडी, कर छूट, और अन्य प्रोत्साहन योजनाएँ लागू की हैं। इन नीतियों के माध्यम से सौर ऊर्जा के विकास को बढ़ावा देने और इसके लिए आवश्यक निवेश को आकर्षित करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, यूरोपियन यूनियन में, सौर ऊर्जा परियोजनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय प्रोत्साहन योजनाएँ और कर लाभ उपलब्ध हैं, जो इसके विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

सौर ऊर्जा की भूमिका वैश्विक ऊर्जा परिदृश्य में महत्वपूर्ण हो सकती है, जो हमें एक स्थिर और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में ले जाएगी। इसके स्थिरता, पर्यावरणीय लाभ, और स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ाने की क्षमता इसे एक आकर्षक विकल्प बनाती है। हालांकि, प्रारंभिक लागत, संसाधनों की पहचान, और पर्यावरणीय समस्याएँ इसके उपयोग में बाधा डाल सकती हैं। वैश्विक स्तर पर अनुसंधान, नवाचार, और नीतिगत समर्थन के माध्यम से इन चुनौतियों को संबोधित किया जा सकता है, जिससे सौर ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम किया जा सके।

सौर ऊर्जा का विकास और इसके उपयोग में वृद्धि न केवल ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकती है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और जलवायु संकट के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। भविष्य में, सौर ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम करने के लिए निरंतर अनुसंधान और नवाचार की आवश्यकता

होगी, साथ ही साथ प्रभावी नीतिगत समर्थन और वित्तीय प्रोत्साहन की भी आवश्यकता होगी। विश्व भर में सौर ऊर्जा परियोजनाओं के सफल कार्यान्वयन से न केवल ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि यह पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक होगा। इसलिए, सौर ऊर्जा के विकास और उपयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ताकि एक स्थिर, सुरक्षित, और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में प्रगति की जा सके।

(v) बायोमास ऊर्जा (Biomass Energy)— जैव ऊर्जा, जिसे बायोएनेर्जी भी कहा जाता है, पौधों, पशुओं और अन्य जैविक सामग्री से प्राप्त की जाने वाली ऊर्जा है। यह ऊर्जा स्रोत नवीकरणीय है और इसे विभिन्न तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है, जैसे कि जैव ईंधन, बायोगैस, और बायोमास से। जैव ऊर्जा का उपयोग विद्युत उत्पादन, हीटिंग, और ट्रांसपोर्टेशन के लिए किया जाता है, और यह पारंपरिक जीवाश्म ईंधनों के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प है।

जैव ऊर्जा का प्रमुख स्रोत बायोमास है, जिसमें लकड़ी, फसल अवशेष, और अन्य जैविक अपशिष्ट शामिल होते हैं। बायोमास को जलाकर या उसे गैसीफाई करके ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। उदाहरण के लिए, बायोमास पावर प्लांट्स में लकड़ी या फसल अवशेषों को जलाया जाता है, जिससे भाप उत्पन्न होती है जो टरबाइन को घुमाती है और बिजली उत्पन्न करती है। 2020 तक, वैश्विक बायोमास ऊर्जा की स्थापित क्षमता 120 गीगावाट (GW) तक पहुँच गई थी।

जैव ऊर्जा के अन्य महत्वपूर्ण स्रोतों में बायोफ्यूल शामिल हैं, जो जैविक पदार्थों से उत्पन्न होते हैं और तरल या गैसीय रूप में होते हैं। बायोफ्यूल के प्रमुख प्रकार बायोएथेनॉल और बायोडीजल हैं। बायोएथेनॉल मुख्यतः मक्का, गन्ना और अन्य स्टार्च युक्त फसलों से उत्पादित होता है। इसे पेट्रोल के साथ मिलाकर ट्रांसपोर्टेशन फ्यूल के रूप में उपयोग किया जाता है। 2022 में, वैश्विक बायोएथेनॉल उत्पादन 100 बिलियन लीटर तक पहुँच गया था, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्राजील प्रमुख उत्पादक देश हैं। बायोडीजल वनस्पति तेल, पशु वसा और रीसायकल किए गए खाना पकाने के तेल से उत्पादित होता है। इसे डीजल इंजनों में पारंपरिक डीजल के स्थान पर या उसके साथ मिलाकर उपयोग किया जा सकता है। 2022 में, वैश्विक बायोडीजल उत्पादन 45 बिलियन लीटर तक पहुँच गया था।

बायोगैस भी जैव ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जो एनारोबिक डाइजेशन प्रक्रिया के माध्यम से जैविक अपशिष्ट से उत्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में, जैविक अपशिष्ट को ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में बैक्टीरिया द्वारा तोड़ा जाता है, जिससे मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड गैसों से उत्पन्न होती है। बायोगैस को संग्रहित किया जा सकता है और इसे हीटिंग, बिजली उत्पादन और वाहन ईंधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जर्मनी में बायोगैस प्लांट्स की संख्या 9,500 से अधिक है, और ये प्लांट्स 2022 में लगभग 4 गीगावाट (GW) की बिजली उत्पादन क्षमता रखते थे।

जैव ऊर्जा का सबसे बड़ा लाभ उसकी नवीकरणीयता और पर्यावरणीय लाभ है। यह ऊर्जा स्रोत नवीकरणीय है और इसका उत्पादन ग्रीनहाउस गैसों के कम उत्सर्जन के साथ होता है। जैव ऊर्जा का उपयोग करके कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂) और अन्य हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है, जो जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण के प्रभावों को कम करने में सहायक है। उदाहरण के लिए, बायोएथेनॉल के उपयोग से जीवाश्म ईंधनों की तुलना में CO₂ उत्सर्जन में 50% से अधिक की कमी आ सकती है।

इसके अलावा, जैव ऊर्जा स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा देती है। इसका उपयोग ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करने में सहायक होता है, विशेषकर उन देशों में जो ऊर्जा के बड़े आयातक होते हैं। जैव ऊर्जा परियोजनाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन होता है और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिए, 2020 में, जैव ऊर्जा क्षेत्र में 3 मिलियन से अधिक लोगों को रोजगार मिला था, और यह संख्या निरंतर बढ़ रही है।

हालांकि, जैव ऊर्जा की स्थापना और उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी होती हैं। इनमें सबसे प्रमुख चुनौती प्रारंभिक लागत है। जैव ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना की लागत पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों की तुलना में अधिक हो सकती है। इसमें शामिल हैं रू संयंत्र की खरीद, स्थापना, रखरखाव, और ट्रांसमिशन की लागत। प्रारंभिक निवेश की ऊँची लागत के कारण, कई देशों और कंपनियों को इन परियोजनाओं के लिए वित्तपोषण प्राप्त करने में

कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

जैव संसाधनों की पहचान और प्रबंधन भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जैव ऊर्जा के सफल उपयोग के लिए उचित संसाधन की पहचान और प्रबंधन आवश्यक है। जैव संसाधनों की खोज और मूल्यांकन एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें समय और महंगे तकनीकी प्रयास की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, लंबे समय तक स्थिरता बनाए रखने के लिए जैव संसाधनों के सतत प्रबंधन की आवश्यकता होती है, ताकि भविष्य में ऊर्जा उत्पादन स्थिर और प्रभावी रहे।

पर्यावरणीय और सामुदायिक प्रभाव भी जैव ऊर्जा परियोजनाओं की प्रमुख चिंताएँ हैं। जैव ऊर्जा परियोजनाओं के लिए भूमि उपयोग, जल संसाधन, और पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव हो सकता है। इसके अलावा, जैव ऊर्जा परियोजनाओं के लिए आवश्यक जैविक सामग्री की खेती और संग्रहण से पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

जैव ऊर्जा का वैश्विक उपयोग बढ़ रहा है, विशेषकर उन देशों में जहाँ जैव संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, जर्मनी, और भारत जैसे देशों ने जैव ऊर्जा के बड़े पैमाने पर उपयोग की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए, ब्राजील में गन्ना से उत्पादित बायोएथेनॉल का उपयोग बड़े पैमाने पर होता है, जिससे देश की पेट्रोल पर निर्भरता कम हुई है। इसी तरह, जर्मनी में बायोगैस प्लांट्स का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है, जो स्थानीय ऊर्जा उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जैव ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान और नवाचार जारी हैं, जो इसके उपयोग की क्षमताओं को बढ़ाने और लागत को घटाने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। नवीनतम तकनीकों में उन्नत जैव ऊर्जा संयंत्र डिजाइन, सामग्री विज्ञान में सुधार, और जैव संसाधनों की निगरानी और प्रबंधन के लिए उन्नत सेंसर शामिल हैं। उदाहरण के लिए, नई पीढ़ी के जैव ऊर्जा संयंत्र, जो उच्च दक्षता के हैं, जैव ऊर्जा उत्पादन की क्षमता को बढ़ा सकते हैं। अनुसंधान और नवाचार के माध्यम से, जैव ऊर्जा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है और इसकी स्थापना और संचालन की लागत को घटाया जा सकता है।

सरकारी नीतियों और समर्थन की भूमिका जैव ऊर्जा के विकास में महत्वपूर्ण है। कई देशों ने नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहित करने के लिए सब्सिडी, कर छूट, और अन्य प्रोत्साहन योजनाएँ लागू की हैं। इन नीतियों के माध्यम से जैव ऊर्जा के विकास को बढ़ावा देने और इसके लिए आवश्यक निवेश को आकर्षित करने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, यूरोपियन यूनियन में, जैव ऊर्जा परियोजनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की वित्तीय प्रोत्साहन योजनाएँ और कर लाभ उपलब्ध हैं, जो इसके विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

जैव ऊर्जा की भूमिका वैश्विक ऊर्जा परिदृश्य में महत्वपूर्ण हो सकती है, जो हमें एक स्थिर और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में ले जाएगी। इसके स्थिरता, पर्यावरणीय लाभ, और स्थानीय ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ाने की क्षमता इसे एक आकर्षक विकल्प बनाती है। हालांकि, प्रारंभिक लागत, संसाधनों की पहचान, और पर्यावरणीय समस्याएँ इसके उपयोग में बाधा डाल सकती हैं। वैश्विक स्तर पर अनुसंधान, नवाचार, और नीतिगत समर्थन के माध्यम से इन चुनौतियों को संबोधित किया जा सकता है, जिससे जैव ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम किया जा सके।

जैव ऊर्जा का विकास और इसके उपयोग में वृद्धि न केवल ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सकती है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और जलवायु संकट के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। भविष्य में, जैव ऊर्जा की क्षमता को अधिकतम करने के लिए निरंतर अनुसंधान और नवाचार की आवश्यकता होगी, साथ ही साथ प्रभावी नीतिगत समर्थन और वित्तीय प्रोत्साहन की भी आवश्यकता होगी। विश्व भर में जैव ऊर्जा परियोजनाओं के सफल कार्यान्वयन से न केवल ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि यह पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी सहायक होगा। इसलिए, जैव ऊर्जा के विकास और उपयोग को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ताकि एक स्थिर, सुरक्षित, और टिकाऊ ऊर्जा भविष्य की दिशा में प्रगति की जा सके।

(vi) अणु शक्ति (Nuclear Power)— वर्तमान गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोतों में यह सबसे महत्वपूर्ण है। अब यह धीरे-धीरे परम्परागत ऊर्जा स्रोतों में सम्मिलित किया जाने लगा है। यह शक्ति घरेलू उपयोग और औद्योगिक उपयोग में लायी जा रही है। संसार में सबसे पहला अणु शक्ति ब्रिटेन के केलडर हाल (Calder hall) स्थान पर

1956 में स्थापित हुआ था अब वर्तमान में ब्रिटेन में लगभग 35 अणु शक्ति केन्द्र (Nuclear Power Station) हैं जो अपनी कुल क्षमता का 15 प्रतिशत उत्पादन प्रदान करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका भी अणु शक्ति का तीव्र गति से विकास कर रहा है। जहाँ 66 केन्द्र निर्माण क्षमता रखते हैं एवं

सारिणी –15.1 अणु शक्ति का उत्पादन 2014

देश	विश्व का प्रतिशत
1. संयुक्त राज्य अमेरिका	33.2
2. फ्रांस	17.1
3. रूस	7.0
4. दक्षिण कोरिया	5.6
5. चीन	4.5
6. कनाडा	4.2
7. जर्मनी	3.9
8. यूक्रेन	3.3
9. ब्रिटेन	2.9
10. स्वीडेन	2.7
शेष विश्व	15.7

लगभग 142 इकाइयाँ निर्माणाधीन हैं। देश की कुल शक्ति का लगभग 11 प्रतिशत इसी से प्राप्त होता है। अन्य देशों में जापान, जर्मनी, रूस, फ्रांस, स्वीडन, कनाडा एवं स्पेन प्रमुख हैं। अब इस प्रकार की शक्ति का अन्य विकासशील देशों में भी गैर-परम्परागत स्रोतों में प्रथम स्थान होने लगा है। मिस्र, ब्राजील, इराक, ईरान, द. कोरिया, ताइवान, भारत, पाकिस्तान, अर्जेंटीना आदि देशों में अणु शक्ति के केन्द्र स्थापित हैं। भारत अपनी कुल शक्ति का लगभग 2.23 प्रतिशत अणु शक्ति से ही प्राप्त करता है। यह विद्युत के विकास में नया चरण है।

15.6 सारांश

वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन मानव के प्रथम विकास में सहायक रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या एवं संसाधनों का अतिदोहन के कारण संसाधनों का अधिक मात्रा में ह्रास हुआ है। पर्यावरण संतुलन एवं सतत विकास को बनाये रखने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का उपयोग महत्वपूर्ण है। वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों में सौर ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सर्वत्र उपलब्ध संसाधन हैं जो अपमार्ग संसाधन हैं। नवीनीकरणीय योग्य संसाधन ऊर्जा संकट से बचने के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं जो पर्यावरण संतुलन को नष्ट किए बिना मानव को उसकी आवश्यकता की पूर्ति करेंगे। इस इकाई के अध्ययन में वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों की महत्ता का अध्ययन को समझ सकेंगे।

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

केलंडर हाल :- संसार के सबसे पहला अणुशक्ति ब्रिटेन के केलंडर हाल स्थान पर 1956 में स्थापित हुआ।

लावडेरेलो :- भूतापीय शक्ति का प्रमुख केन्द्र इटली में /

15.7.1 बोध प्रश्न :- दीर्घ उत्तरीय प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. ऊर्जा संकट के बारे में समझाइये।

प्रश्न 2. वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के बारे में बताइये ।

15.7.2 लघुउत्तरीय प्रश्न! –

प्रश्न:-सौर्यिक ऊर्जा संसाधन की प्राप्ति के स्थान बनाइये ?

प्रश्न:- भारत में पवन ऊर्जा की प्राप्ति के स्थान है।

15.7.3 बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर –

प्रश्न। श्वेत कोयला (white Coal) किसे कहते हैं ?

- | | |
|------------------|----------------|
| (अ) जलविद्युत | (ख) तापविद्युत |
| (स) परमाणु ऊर्जा | (द) सौर ऊर्जा |

प्रश्न. 2. कौनसा देश आणविक शक्ति के उत्पादन में प्रथम स्थान पर है ?

- | | |
|------------|-------------|
| (अ) फ्रांस | (ब) यू.एस.ए |
| (स) जर्मनी | (द) कनाडा |

प्रश्न-3 निम्नलिखित में से वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन नहीं है?

- | | |
|-------------------|-------------------|
| (अ) भूतापीय शक्ति | (ब) ज्वारीय शक्ति |
| (स) पवन शक्ति | (द) जल विद्युत |

प्रश्न 4:-निम्नलिखित में से वैकल्पिक ऊर्जा साधन है ?

- | | |
|-------------------|-------------------|
| (अ) कोयला | (ब) पेट्रोल |
| (स) प्राकृतिक गैस | (द) प्राकृतिक गैस |

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ बी.सी जाट "संसाधन भूगोल" मालिक बुक कम्पनी जयपुर,
2. प्रो जगदीश सिंह " संसाधन भूगोल" ज्ञानोदय प्रकाशन गोरखपुर
- 3 Dr- Alka Gautam ! Resources Geography

इकाई—16 : पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास : संकल्पना, सिद्धान्त, पर्यावरण प्रबन्धन के उपागम

इकाई की रूपरेखा

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना
- 16.4 पर्यावरण प्रबन्धन के उपागम
- 16.5 पर्यावरण प्रबन्धन के सिद्धान्त
- 16.6 संविकास की संकल्पना
- 16.7 संविकास के सिद्धान्त
- 16.8 भारत में संविकास
- 16.9 सारांश
- 16.10 शब्द सूची
- 16.11 परीक्षोपयोगी प्रश्न
- 16.12 महत्वपूर्ण पुस्तकें/संदर्भ
- 16.13 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पर्यावरण प्रबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमारे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और उनके सतत उपयोग को सुनिश्चित या प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और संरक्षण का संतुलन स्थापित किया जाता है ताकि पर्यावरण की गुणवत्ता बनी रहे और इसे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सके। इसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करना और भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखना एवं प्राकृतिक संसाधनों का सतत और स्थायी उपयोग सुनिश्चित करना है। पर्यावरण प्रबंधन के अंतर्गत वायु, जल, मृदा, वन, और वन्यजीव संरक्षण से जुड़े कई पहलुओं को शामिल किया जाता है। पर्यावरण प्रबंधन के तहत विभिन्न गतिविधियाँ शामिल होती हैं, जैसे प्रदूषण नियंत्रण, वनीकरण, जल संरक्षण, भूमि उपयोग की योजना, और वन्यजीव संरक्षण। इसके अलावा, यह प्रक्रिया उद्योगों, सरकारों और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य भी करती है ताकि एक स्वस्थ और संतुलित पर्यावरण बना रहे।

यह प्रक्रिया न केवल सरकारी नीतियों और कानूनों के माध्यम से संचालित होती है, बल्कि इसमें उद्योगों, संगठनों, और आम नागरिकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पर्यावरणीय प्रबंधन के अंतर्गत पुनर्चक्रण, ऊर्जा की बचत, प्रदूषण नियंत्रण, और स्थायी विकास के सिद्धांतों का पालन किया जाता है। आज के समय में, बढ़ती जनसंख्या और औद्योगिकीकरण के कारण पर्यावरण पर दबाव बढ़ गया है, जिससे पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करने की आवश्यकता और भी महत्वपूर्ण हो गई है। इस प्रकार, पर्यावरण प्रबंधन एक महत्वपूर्ण साधन है जो पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने और भविष्य के लिए एक स्वस्थ पर्यावरण की स्थापना में मदद करता है।

संविकास एक ऐसी अवधारणा है जो पर्यावरणीय संरक्षण और आर्थिक विकास के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे, बल्कि इसका संरक्षण और सुधार हो सके। यह अवधारणा इस बात पर आधारित है कि

पर्यावरण और विकास एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि वे एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं। इसका मतलब है कि आर्थिक विकास को इस तरह से संचालित किया जाना चाहिए कि प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग हो, पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा बनी रहे, और लोगों की जीवनशैली में सुधार हो। संविकास के तहत उन नीतियों और कार्यक्रमों को लागू किया जाता है जो पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ स्थानीय समुदायों के सामाजिक और आर्थिक विकास को भी बढ़ावा देते हैं। इसमें स्थानीय संसाधनों का उपयोग, पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण, और पर्यावरणीय शिक्षा को बढ़ावा देना शामिल है।

सारांश में, संविकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो विकास और पर्यावरण के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ और टिकाऊ पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सके।

16.2 उद्देश्य

पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास के इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप—

- पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास के सम्बन्ध को समझ सकेंगे
- स्थायी विकास एवं स्थायी विकास में वृद्धि की अवधारणा को समझ सकेंगे
- जन जगरूकता के विचार को समझ सकेंगे
- पर्यावरणीय संरक्षण और संविकास के बीच संतुलन को समझ सकेंगे
- पर्यावरण संरक्षण से संबंधित नीतियों और कानूनों का प्रभावी रूप से कार्यान्वयन करने के विभिन्न तरीकों को समझ सकेंगे
- पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने की अवधारणा को समझ सकेंगे
- प्राकृतिक संसाधनों, जैसे जल, वायु, भूमि और वनस्पतियों का संरक्षण और सतत उपयोग को समझ सकेंगे
- वायु, जल, मृदा और ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करना और उन्हें न्यूनतम स्तर पर बनाए रखना की अवधारणा को समझ सकेंगे
- पर्यावरणीय संकट, जैसे जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का नुकसान, और अपशिष्ट प्रबंधन की समस्याओं का समाधान करने की अवधारणा को समझ सकेंगे

16.3 पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना

पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए संसाधनों का अन्धाधुन्ध दोहन के कारण हुई है। प्रारम्भिक समय में पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन संतुलित मात्रा में होती थी परन्तु वर्तमान में पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन अन्धाधुन्ध होने से पर्यावरण प्रबन्धन की आवश्यकता महसूस हो रही है। आरम्भिक काल से संसाधनों का दोहन अनवरत रूप से होता चला आ रहा है जिससे पर्यावरणीय तत्वों का ह्रास होने लगा है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण के घटक अपने प्राकृतिक स्वरूप में न रहकर स्वतंत्र क्रिया में असमर्थता प्रकट करने लगे हैं। पर्यावरण का अत्यधिक अन्धाधुन्ध शोषण करने से वर्तमान समय में समूचा विश्व संकट में है जिसे पर्यावरण प्रबन्धन द्वारा पुनः उसी स्थिति में स्थापित किया जा सकता है। इस तरह विकास से सम्बन्धित कार्यों के लिए नवीकरणीय तथा अनवीकरणीय संसाधनों का विभिन्न रूपों में उपयोग दुर्लभ एवं अमूल्य पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण तथा स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए पर्यावरणीय गुणवत्ता परिरक्षण करना आवश्यक है। 18वीं सदी के बाद तेजी से जीवाश्मीय ईंधन एवं पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग किया गया है। तेजी से विकास की होड़ में पारिस्थितिक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान में पर्यावरण संवेदी विकास की आवश्यकता महसूस हो रही है। इसके लिए दीर्घ कालिक सन्दर्भ में प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण दोहन एवं अनुकूलतम उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे पर्यावरण

संतुलन एवं स्थिरता कायम रहे तथा समाज की समृद्धि बिना किसी समझौते के दीर्घकाल तक पर्यावरणीय संसाधनों का सतत आपूर्ति होती रहे।

पर्यावरण प्रबंधन का संक्षेप में आशय है कि प्राकृतिक संसाधनों का उचित तरीके से संरक्षण, उपयोग और देखरेख करना ताकि पर्यावरण की सुरक्षा और सतत विकास सुनिश्चित किया जा सके। इसमें पर्यावरण नियंत्रण वन, जल संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों का पुनः उपयोग शामिल होता है। इस प्रकार यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत नियोजन, पुनरावलोकन, मूल्यांकन एवं उपयुक्त निर्णय लेकर सीमित संसाधनों का उपयोग तथा प्राथमिकताओं में बदलाव आवश्यक है जिसके परिणामस्वरूप वे वास्तविक जीवन में उपयोगी तथा मानवीय समाज का अधिकतम कल्याण हो सके।

डी. थामसन (2002) के अनुसार “पर्यावरण प्रबंधन एक तंत्र होता है जो पर्यावरण एवं संसाधन के संरक्षण की समस्याओं का पूर्वानुमान करके उनसे बचाव करता या उनका समाधान करता है।”

एल० खोली (2001) के अनुसार पर्यावरण प्रबंधन एक प्रक्रम (प्रक्रिया) है जिसका सम्बन्ध मानव-पर्यावरण अन्तर्क्रियाओं से होता है जो यह निर्धारित करती है कि पर्यावरण की दृष्टि से क्या वांछनीय है इन्हें प्राप्त करने में कौन सी भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा प्रौद्योगिकीय बाधाएँ हैं तथा कौन से सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प हैं।

सी. जे बैरो (2005) के अनुसार “पर्यावरण प्रबंधन का सम्बन्ध प्रकृति को न्यूनतम क्षति पहुँचाने, पोषणीय आधार पर मनुष्य की आवश्यकताओं एवं मांगों को पूरा करने तथा उनमें सुधार से है।”

सविन्द्र सिंह (2007) के अनुसार “पर्यावरण प्रबंधन दीर्घ कालिक सम्बन्ध में पर्यावरण के प्रति मानवकेन्द्रित तथा पारिस्थितिकीकेन्द्रित दृष्टिकोणों में समन्वय स्थापित करते हुए प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण विदोहन एवं अनुकूलनतम उपयोग द्वारा पोषणीय विकास, पोषणीय पर्यावरण तथा पोषणीय समाज की प्राप्ति के माध्यम से पारिस्थितिकी विकास का लक्ष्य एवं प्रक्रिया है। पर्यावरण प्रबंध के अन्तर्गत यह सुनिश्चित किया जाता है कि संसाधनों की सतत सुलभता एवं आपूर्ति बनी रहे ताकि मानव कल्याण की अधिकतम तथा पर्यावरण की क्षति को न्यूनतम किया जा सके।

टी.एन खुशु के अनुसार पर्यावरण प्रबंधन का केन्द्रीय विषय प्राकृतिक एवं पारिस्थितिकी (जैविक) पर्यावरण पर मानव कार्यकलाप का दबाव घटना अथवा कम से कम करना है। यह पर्यावरण में निहित संसाधनों का अत्यधिक उपयोग, अवांक्षित उपयोग तथा दुरुपयोग न करने का प्रयास है।

उक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना प्रकृति से मानव के समुचित समायोजन की द्योतक है। यह विचार या संकल्पना पर्यावरण का इस कुशलता से उपयोग करने पर बल देता है जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकी तन्त्र की क्षति न के बराबर या कम से कम हो। इसका मूल दर्शन इस तथ्य पर आधारित है कि पर्यावरण एक वृहद तन्त्र है जिसके स्वयं के अन्तर्गत कई गौण तन्त्र शामिल रहते हैं जो जैव भू-रासायनिक चक्रों द्वारा परस्पर अन्तर्प्रक्रिया में आबद्ध होता है। ये तन्त्र ऊर्जा तथा पदार्थ के निवेश व निकास द्वारा एक गतिशील संतुलन में बने रहते हैं जसको साम्यवस्था कहते हैं। इस साम्यावस्था में अधिकांश मात्रा में जैवमास होता है तथा जैव स्वरूप की विविधता अधिकतम पायी जाती है पर्यावरण प्रबंधन एक ऐसा नियम कानून बनाने पर बल देता है जिससे पर्यावरण की साम्यावस्था अनवरत रूप में विद्यमान रहे।

पृथ्वी पर विद्यमान जीवनमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र स्वयं की प्राकृतिक संतुलन तथा स्थिरता को अपने यथार्थ स्वरूप में पुनः स्थापित करने का प्रयासरत रहता है परन्तु तकनीकी विकास, औद्योगिक, विकास परिवहन साधनों का तीव्र विकास, एवं संचार के साधनों में लगातार वृद्धि, प्राकृतिक साधनों का लोगो द्वारा अन्धाधुन्ध दोहन तथा इनसे सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलाप पर्यावरणीय संतुलन को अव्यवस्थित किया है। पर्यावरण प्रबंधन एक विराट संकल्पना है जिसका प्रबंधन एक जटिल प्रक्रिया है जो व्यक्ति, समुदाय, भौगोलिक प्रदेश तथा छोटी सी छोटी इकाई में विभिन्नता रखती है यानि एक व्यक्ति से दुसरे व्यक्ति में भिन्नता, एक समुदाय से दुसरे समुदाय में भिन्नता तथा एक भौगोलिक प्रदेश से दुसरे भौगोलिक प्रदेश में भिन्नता रखती है।

16.4 पर्यावरण प्रबंधन के उपागम

मानवीय जीवन की गुणवत्ता को बनाये रखने के उद्देश्य से पर्यावरण प्रबंधन के दो उपागम बनाये गये हैं **प्रथम**— संरक्षणात्मक तथा **दूसरा**— प्राविधिक उपागम है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है।

1. संरक्षणात्मक उपागम—

इस उपागम में पर्यावरण के विभिन्न प्रकार के घटकों व तत्वों को मानवीय क्रिया—कलाप से मुक्त रखने का तर्क दिया जाता है। स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जगत में पर्यावरण ह्रास के प्रति जागरूकता बढ़ी। इसके बाद पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक स्वैच्छिक व गैर सरकारी संस्थाएँ बनीं जो पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कार्य कर रही हैं। चिपको आन्दोलन भारत में पर्यावरण संरक्षण का एक प्रमुख उदाहरण है। उत्तराखण्ड के चमोली जनपद में जब प्रयागराज के खेल का सामान बनाने वाली कम्पनी के लोग मण्डल गांव में 10 वृक्ष काटने पहुँचे तो वहाँ के लोगो ने उन्हें वृक्ष काटने से मना कर दिया। परन्तु ठेकेदार के आदमियों के द्वारा जबरन पेड़ काटने पर जोर दिए जाने पर वहाँ की महिलाएँ पेड़ों से लिपट गईं जिसके परिणामस्वरूप ठेकेदार के आदमी वहाँ से 80 किमी. दूर रामपुर फाटा में पुनः पेड़ काटने का प्रयास क्या तो फिर वहाँ के लोगों के द्वारा प्रतिरोध किया गया, जिससे वे लोग वहाँ से भी भाग गये यह अभियान तब चरम रूप धारण कर लिए जब 1974 में जोशीमठ से 65 किमी. दूर रेनी गाँव में एक ठेकेदार नीलामी के लिए वन को काटने तब गया जब गांव के सभी पुरुष बाहर गये थे। उस गांव की सभी महिलाएँ एक साथ मिलकर धरना देकर जंगल में जाने वाले सभी रास्ते को रोक दिया जिससे जंगल कटने से बच गया इस तरह से चिपको आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण के अनुकूल के रूप में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात हो गया इसके बाद भारत में भारतीय पर्यावरण परिषद, विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र, तरुण विकास संघ आदि कई संस्थाएँ स्थापित हो गईं जो मृदा अपरदन, वन कटाव, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ऊर्जा संकट जलागम क्षेत्र प्रबन्धन, मानव स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करती हैं तथा विभिन्न संसाधनों का दुरुपयोग या अत्यधिक शोषण की समस्याओं को उजागर करती हैं। इसी तरह की अनेक संस्थाएँ विश्वभर में स्थापित हुई हैं। विश्व स्तर पर देखे चो UNEP एवं GEMS पर्यावरण ह्रास से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के लेखा जोखा के आंकड़ों को संकलन करती हैं। इन सबका मुख्य उपागम मानव द्वारा पर्यावरण के विभिन्न घटकों व तत्वों पर दबाव कम करने का रहा है। इस प्रकार की संस्थओं का ध्यान व नजर विभिन्न देशों में सरकारों द्वारा आर्थिक विकासपरक योजनाओं जैसे— हरित क्रान्ति से कृषि उत्पादन में वृद्धि, ताप एवं नाभिकीय विद्युत गृहों, औद्योगिकरण, बांध का निर्माण, तीव्रगामी परिवहन मार्गों का निर्माण आदि पर है जिससे पर्यावरण पर पड़ने वाले दबाव की समीक्षा एवं पर्यावरण ह्रास का मूल्यांकन करना है इस प्रकार के विभिन्न संस्थाओं का मुख्य कार्य वनों के व्यापारिक दृष्टि से व्यापक स्तर पर कटान, बड़ी सिंचाई योजनाओं के विस्तार, बड़े विद्युत गृहों का निर्माण तथा मृदा अपरदन क्षेत्र में कृषि विस्तार आदि विकास के योजनाओं को पर्यावरण के लिए हानिकारक मानती हैं तथा इस प्रकार की क्रियाकलापों को त्यागने के लिए सम्बन्धित सरकार तथा विश्व बैंक जैसी विकास कार्यो हेतु भारी ऋण देने वाली संस्थाओं पर इसका कार्यान्वयन न करने के लिए विवश करती हैं।

वास्तव में 1980 तक लगभग सभी प्रकार की विकासपरक योजनाओं एवं परियोजनाओं को पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली माना जाता परम्परा बन गयी थी। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि कुछ बड़ी योजनाएँ पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हुई हैं। संरक्षणात्मक उपागम के अनुयायियों का यह आग्रह की मनुष्य को प्रकृति की किसी भी तत्व व घटक को नाम मात्र भी छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। इस उपागम के अनुयायी पर्यावरण के विभिन्न तत्वों जैसे वायु वन तथा जल को सही भाँति उपयोग पर बल देते हैं। इस उपागम में पर्यावरण को पूर्ण या अक्षुण्ण रखने पर अधिक बल दिया जाता है। मानव के जीवन स्तर में उत्थान के लिए विकास से सम्बन्धित क्रिया—कलाप को गौड़ महत्व दिया जाता है। इस प्रकार यह उपागम योमन स्कूल द्वारा प्रतिपादित विकास की सीमा को आधार मानता है इस विचार के अनुसार हमारी पृथ्वी एक अन्तरिक्ष यान की भाँति सीमित क्षमता वाली है। इसकी जनसंख्या भार वाहन करने की एक निश्चित क्षमता एवं चरम सीमा है। यदि इस सीमित संसाधनों का अंधाधुन्ध शोषण किया जाये तो यह शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा जिसके परिणामस्वरूप समूचा मानव का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा।

2. प्राविधिक उपागम—

इस उपागम के समर्थक यह मानते हैं कि पृथ्वी पर संसाधन असीम हैं। इनका मानना यह भी है कि संसाधन होते नहीं वरन बनते हैं मानव ज्ञान व प्राविधिकीय विकास के द्वारा संसाधन का निर्माण करता है। मानव का ज्ञान ही सबसे बड़ा संसाधन है क्योंकि प्राकृतिक वातावरण के घटक व तत्व मानवीय ज्ञान एवं सामाजिक संगठन के परिणामस्वरूप ही बनते हैं। उसी भाँति पारिस्थितिकी असंतुलन से उत्पन्न समस्याएँ जैसे

जल प्रदूषण एवं वायु प्रदूषण भी तकनीकी के मदद से ही हल की जा सकता है। उदाहरण स्वरूप प्रदुषित जल को पुनर्चक्रण द्वारा अर्थात् एक ही जल के जैविक रासायनिक क्रिया-विधि से स्वच्छ करके मानव उपयोग के लिए जल की राशि बढ़ाई जा सकती है प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर कृत्रिम पदार्थों का निर्माण करके प्राकृतिक पदार्थों की कमी दूर किया जा सकता है गाँवों तथा शहरों से वाहित मल को उर्वरक में बदला जा सकता है। इसी भाँति उद्योगों से निष्कासित प्रदुषित धुआँ को छानकर प्रदुषण मुक्त किया जा सकता है। आणविक क्रिया-विधि द्वारा नाभिकिय ऊर्जा बनाया जा सकता है। अतः वास्तविक संकट संसाधनों की कमी नहीं वरन उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकसित करने तथा अपनाने की है। विभिन्न प्रकार के प्रौद्योगिकी का विकास करके पर्यावरण से अल्प मात्रा में संसाधनों का दोहन करके उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि दोनों उपागमों में अन्तर्द्वन्द्व है। जिसके कारण विश्वव्यापी विवाद उत्पन्न हुआ है।

राबर्ट ओवेन, विलियम मौरिस, प्रिंस क्रोपोटकीन, जान रस्कन आदि पाश्चात विद्वानों ने नई मशीनी औद्योगिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था जिसने प्रकृति के सानिध्य में कार्यरत परम्परागत कृषिगत सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को विनष्ट कर दिया था, के विरोध में आवाज उठायी थी। मौरिस ने औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व के पारिस्थितिकी व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने पर बल दिया था। प्रिंस क्रोपोटकीन ने कृषि व्यवस्था के साथ लघु उद्योग जुड़े हो तथा ऐसी शिक्षा व्यवस्था हो शारीरिक श्रम एवं सृजनात्मक बौद्धिक कार्य का समागम करे। इन्होंने नियतिवाद पर बल दिया। द्वितीय वर्ल्डवार के पश्चात अणुबमों के निर्माण एवं उपयोग के प्रति विरोध ने जोर पकड़ा जिसके परिणामस्वरूप नियतिवादियों की अवधारणा की पुष्टि हुई।

दूसरी तरफ तकनीकवादी जो सम्भववाद में विश्वास रखते हैं इस तथ्य पर बल देते रहे कि आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके हर प्रकार के पारिस्थितिकी विनाश का पुनरुद्धार किया जा सकता है। आधुनिक तकनीकी में हानिकारक प्रभावों से निपटने की पूरी क्षमता होती है इसके माध्यम से उत्पन्न भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं वायु प्रदुषण, आणुविक विस्फोट से मानवीय स्पीसीज को खतरा तथा वन, जन्तु जगत एवं प्राकृतिक भू दृश्य से उत्पन्न समस्या का समाधान ढूँढा जा सकता है।

संक्षेप रूप में एक तरफ नियतवादी लोगों ने जनमानस में पारिस्थितिकी तन्त्र के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने में सफल हुए, तो दूसरी तरफ तकनीकीवादी विचारक सफल प्रयोगों द्वारा सम्पूर्ण विश्व के उपभोगवादी संस्कृति के अनुयायियों को समस्या का तकनीकी समाधान खोज लेने के प्रति आश्वस्त करते रहे। शेखर सिंह ने नियतवादियों को मार्क्स, चरमपंथियों तथा पूजीवादी सम्प्रदायों में विभक्त किया है।

खुषु ने 3 मार्च 1990 में यह प्रस्तुत किया की भारत में भी विश्व देशों की भाँति तीन प्रकार के समाज का जन्म हुआ है। **प्रथम**— उच्च तकनीक पराऔद्योगिक, **दूसरा**— प्रकृति की ओर वापस जाओ तथा **तीसरा**— संधृत विकास परक समाज।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित UNEP एवं Common crisis, common security, common future आदि प्रतिवेदन के परिणामस्वरूप पर्यावरण प्रबन्धन के प्रति चेतना प्रखर हुई है। इस समय नियतवादी एवं तकनीकवादी सम्प्रदायों के विचारोत्तेजक तथ्यों के संश्लेषण से सतत विकास की नई विचारधारा प्रकट हुई है। इस अवधारणा में टिकाऊ विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है। 1992 में आयोजित रियो पृथ्वी (शिखर) सम्मेलन में एजेण्डा 21 पारित हुआ जिसके माध्यम से आर्थिक विकास प्रक्रिया में पर्यावरण की अक्षुण्णता बनाये रखने पर विशेष ध्यान देकर अनेक सिध्दान्तों का निर्माण किया गया।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन ने दो बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया **प्रथम**— पर्यावरण अवक्रमण तथा इसकी जीवन पोषण क्षमता में कमी। **दूसरा**— इस तथ्य के प्रति गहन जागरुकता कि दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संरक्षण परस्पर निर्भर है।

16.5 पर्यावरण प्रबन्धन के सिद्धान्त

पर्यावरण प्रबन्धन का उद्देश्य प्राकृतिक तत्वों का उपयोग करना है जिससे पर्यावरण पर दबाव कम से कम डालकर मानव जीवन के जीवन स्तर की गुणवत्ता के आवश्यक संसाधन प्राप्त हो तथा उनकी आपूर्ति अनवरत होती भी रहे। पर्यावरण प्रबन्धन सिध्दान्त प्राकृतिक संसाधन आधार तथा जनसंकुल एवं मानव जीवन स्तर के मध्य संतुलित, समायोजन एवं अनुकूलन का प्रतिपादन करता है। ज्ञातव्य है कि मानव सभ्यता का

विकास तथा हर एक मानव के लिए संतोषजनक जीवन स्तर पर्यावरण का अन्धाधुन्ध दोहन पर अधिक दिन तक नहीं टिक सकता है। प्राकृतिक संसाधन पूँजी के समान होता है ऐसा माना जाता है जिसका उपयोग सुनियोजित ढंग से समुचित लाभ के क्रिया-कलापों में किया जाना चाहिए। प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्य-कलाप ऐसे संसाधनों के लिए किया जाता है जिसका सतत उत्पादन के लिए विवेकपूर्ण उपयोग से है। इस तरह से पर्यावरण के निम्न निर्देशक सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है।

- मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो कुछ भी संसाधन उपलब्ध है जिनके बारे में लोगों को जानकारी उपलब्ध नहीं है उन संसाधनों तथा जो संसाधन कम उपयोगी हैं उनको विनष्ट नहीं करना चाहिए। जो संसाधन भूतकाल में अनुपयोगी थे वे भविष्य में तकनीक के विकास से उपयोगी संसाधन हो सकते हैं। जैसे लिग्नाइट कोयला का उपयोग पहले नहीं होता था लेकिन ज्ञान तथा तरनीक के विकास से लिग्नाइट कोयला से विद्युत उत्पादन किया जाने लगा है।
- पारिस्थितिकी तन्त्र को एक इकाई मानते हुए तत्वों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध को बनाये रखना ही पर्यावरण प्रबन्धन का प्रमुख कार्य या सिद्धान्त है। पर्यावरण के किसी एक तत्व का ह्रास होने या विनष्ट होने से सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र प्रभावित होता है। उदाहरणस्वरूप यदि किसी स्थान पर वन को काटकर साफ कर दिया जाए तो मृदा का अपरदन तीव्र हो जायेगा एवं जल का प्रभाव भी अनियमित हो जायेगा, जिसका प्रभाव कृषि की उत्पादकता पर पड़ेगा जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था प्रभावित होगा अतः किसी भी संसाधन का उपयोग करते समय सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र पर पड़ने का प्रभाव का भी ध्यान रखना चाहिए।
- जो संसाधन अनवीकरणीय हैं उनके स्थान पर यदि सम्भव हो तो नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। अनवीकरणीय संसाधन का उपयोग करने से वे हमेशा के लिए समाप्त हो सकते हैं जबकि नवीकरणीय एवं सतत संसाधन में ऐसी विशेषता नहीं पायी जाती है। कोयला, पेट्रोल जैसे स्रोतों के स्थान पर जल विद्युत तथा सौर ऊर्जा का उपयोग किया जाना चाहिए।
- ऐसे संसाधन जिनका परिवर्धन या समुन्नत किया जा सकता है उन संसाधनों को अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। उदाहरणस्वरूप— मृदा में उचित फसल चक्र अपनाकर तथा खाद-उर्वरक का आपूर्ति करके उससे सतत या अधिक समय तक अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।
- ऐसे संसाधन जिनकी आवश्यकता अधिक होती है परन्तु उनकी मात्रा सीमित होती है उनके लिए अन्य संसाधनों के विकल्प की तलाश की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए घरेलू ईंधन के लिए कम लकड़ी का उपयोग तथा बायोगैस का उपयोग करने के लिए उपयुक्त चूल्हे का निर्माण किया जाना चाहिए।
- किसी देश, राज्य तथा स्थान विशेष के संदर्भ में संसाधनों का पूर्ण लेखा-जोखा निरन्तर करते रहना चाहिए, इसी भाँति पर्यावरण में किन तत्वों की कमी हो रही है अथवा समाप्त हो रही है उनका सदैव निगरानी किया जाना चाहिए, ऐसा नहीं करने से पर्यावरण के किसी संसाधन का दोहन क्रान्तिक सीमा से अधिक हो सकता है अथवा पर्यावरण से किसी तत्व का सम्पूर्ण रूप से समाप्ति हो सकती है। समय सीमा के भीतर यदि ऐसे अति दोहन अथवा ह्रास को न रोका गया तो सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तन्त्र में अस्थिरता तथा असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है जैसे— किसी स्थान पर वन का अत्यधिक कटाव से तीव्र मृदा अपरदन तथा भूमिगत जल के अभाव की सम्भावना अधिक बढ़ सकती है।
- विभिन्न प्रकार के संसाधनों को संतुलित तथा उनका बहुउद्देशीय उपयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी क्षेत्र विशेष की भूमि का उपयोग संतुलित किया जाना चाहिए। जलवायु के आधार पर उस भूमि से विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाना चाहिए। संतुलित तथा बहुउद्देशीय उपयोग के तहत किसी एक व्यापारिक फसल पर ही ध्यान नहीं आकर्षित किया जाना चाहिए।
- पर्यावरण के विभिन्न प्रकार के संसाधन का अत्यधिक मात्रा में अन्धाधुन्ध दोहन से या ह्रास से बचाने के लिए विभिन्न प्रकार के पदार्थों का आधिकाधिक पुनर्चक्रण किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए जल का पुनर्चक्रण करके सिंचाई, पेयजल, कारखानों की मशीनों को ठण्डा करने आदि कार्यों में उपयोग

किया जा सकता है। लोहा, कागज, प्लास्टिक तथा टिन आदि का एक बार उपयोग किये जाने के बाद फेंकना नहीं चाहिए बल्कि उसका बार-बार उपयोग किया जाना चाहिए इससे प्राकृतिक संसाधनों कम से कम दोहन होता है।

- पर्यावरण प्रबन्धन से सम्बन्धित क्षेत्र के सभी लोगों की सहभागिता आवश्यक है पर्यावरण ह्रास सिर्फ बड़े-बड़े क्रियाकलापों से नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अज्ञानता, अविवेकपूर्णता, तथा स्वार्थकता से पर्यावरण को ह्रास करता है। जैसे- वनों का ह्रास बड़े-बड़े ठेकेदारों के द्वारा ही नहीं होता है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा ईंधन की लकड़ी जुटाने तथा पशुओं के चारा के रूप में इस्तेमाल से भी होता है। वनों के ह्रास से उत्पन्न पारिस्थितिकी समस्याओं से पादप तथा जन्तु जगत समान रूप से प्रभावित होते हैं। अतः पर्यावरण प्रबन्धन के प्रति जन-जन में जागरूकता उत्पन्न की जानी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण करते समय यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि पर्यावरण संरक्षण से उत्पन्न समस्या का भार किसी विशेष समुदाय पर ही न पड़े।
- पारिस्थितिकी तंत्र के जिन तत्वों का अन्धाधुन्ध दोहन हुआ है उनका पुनर्स्थापन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। किसी क्षेत्र में मृदा अपरदन तीव्रगति से हो रहा है तो इस अपरदन को रोकने पर तत्काल ध्यान देना तथा ठोस कदम उठाना चाहिए। ऐसा किया जाने से पर्यावरण की क्षति कम किया जा सकता है या कम से कम भरपाई की जा सकती है।

16.6 संविकास की संकल्पना

यह पर्यावरण के रख-रखाव एवं बचाव पर विशेष बल देता है न कि विकास पर बल देता है परन्तु बिना विकास के पर्यावरण का संरक्षण सम्भव भी नहीं है। पर्यावरण ह्रास केवल अत्यधिक आर्थिक विकास के कारण ही नहीं परन्तु अत्यधिक गरीबी के कारण भी होता है। पर्यावरणीय गुणवत्ता की ह्रास के रूप में विकास को इसकी कीमत चुकानी पड़ेगी अर्थात् यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बिना पर्यावरण को हानि पहुंचाये आर्थिक विकास सम्भव नहीं है लेकिन ऐसा नहीं लोगों द्वारा यह महसूस किया जाने लगा है कि ये दोनों तत्व परस्पर अन्योन्याश्रित होते हैं। पर्यावरण संरक्षण के साथ ही विकास हो सकता तथा विकास के साथ ही पर्यावरण संरक्षण हो सकता है। पर्यावरण का विनाश विकसित देश का प्रतीक है जबकि अल्पविकसित देश में पर्यावरण का ह्रास विपन्नता का प्रतीक है। पर्यावरणीय विनाश को रोकने की क्षमता विकसित देशों में पाया जाता है जबकि अल्पविकसित देश पर्यावरण सम्बन्धित समस्याओं को हल करने में असमर्थ होते हैं। अतएव विकास तथा पर्यावरण संरक्षण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो संविकास का मूलाधार हैं। संविकास का तात्पर्य बिना विनाश किये विकास करना। संविकास निम्न तत्वों से मिलकर बना है—

अनुकूल विकास—

संतुलित विकास से तात्पर्य ऐसे विकास से है जिससे समाज एवं समुदाय के सभी वर्गों को समुचित लाभ मिल सके। पर्यावरण ह्रास का यह भी एक प्रमुख कारण है कि विकास के लाभ का वितरण अत्यन्त असमान है। संसार के विभिन्न देशों में विकास का स्तर तथा भौतिक स्तर में बनी असमानता पायी जाती है। एक तरफ विकसित देश के लोग विविध भौतिक वस्तुओं को अनावश्यक उपयोग करते हैं तो दूसरी तरफ अल्पविकसित देशों के लोग जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं एवं सुविधाओं से परे हैं— गरीब व निर्धन लोगों का जैव संसाधनों से सीधा सम्बन्ध पाया जाता है। संसार के गरीब तथा कुपोषण से प्रभावित लोग लकड़ी, गोबर, फसल का अपशिष्ट पदार्थ के ईंधन पर निर्भर करते हैं। इनके लिए संरक्षण एवं विपन्नता के बीच चयन करना मुश्किल होता है। अतः जीवित रहने के लिए ये लोग जो भी संसाधन उपलब्ध है उसका भरपूरक दोहन करते हैं। उनके लिए पर्यावरण संरक्षण का अर्थ— मृत्यु से बचना ही है। ऐसे लोग अपने चारों ओर के पेड़-पौधों को ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। मृदा चाहे जैसी हो फसल उगाने की चेष्टा करते हैं जिसके परिणामस्वरूप इनके चारों ओर वनस्पति विहीन तथा अनुर्वरक मृदा की वृद्धि होती जाती है। ऐसे लोगों से उनके आवश्यक वस्तुओं व सेवाओं को त्याग करने तथा पर्यावरण संरक्षण की बात करना हास्यस्पद है। इस प्रकार गरीब व निर्धन लोग अपने जीवन का निर्वहन करने के लिए पर्यावरण का विनाश करते हैं जो धीरे-धीरे विश्वव्यापी समस्या का रूपधारण कर लेता है। इस प्रकार की समस्याओं को संविकास नामक अस्त्र से ही खत्म किया जा सकता है।

समन्वित विकास—

इसका तात्पर्य ऐसे विकास से है जो आर्थिक—सामाजिक—पारिस्थितिकी तंत्रों की समग्रता को ध्यान में बढ़ता है। सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण का संकट, विकास का संकट, ऊर्जा का संकट, सामाजिक विषमता, एवं सांस्कृतिक विविधता की समस्याएं एक—दूसरे से अलग नहीं होता है वरन् एक—दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं इस प्रकार सम्पूर्ण संसार का अर्थतंत्र एवं सम्पूर्ण संसार का पारिस्थितिकी की एक—दूसरे से सम्बन्धित होता है। मृदा का अनुर्वरक, नदियों में जल का परिवर्तन, वायुमण्डल में प्रदूषण एवं वनों का घटता क्षेत्र का प्रभाव आर्थिक विकास की असफलता में दिखाई देता है। किसी स्थानीय पर्यावरण ह्रास का प्रभाव केवल स्थानीय सौर तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि विश्वव्यापी होती है। पर्यावरण ह्रास का प्रभाव विकसित तथा अल्पविकसित दोनों देशों पर पड़ता है। यह पर्यावरण ह्रास चाहे विकसित देशों द्वारा चाहे फिर अल्पविकसित देशों द्वारा किया गया हो लेकिन इसका प्रभाव सम्पूर्ण देश पर पड़ता है। इस प्रकार संविकास की संकल्पना आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी में किसी को श्रेष्ठ या फिर प्रधान एवं किसी को गौड़ न मानकर दोनों को अन्योन्याश्रित मानते हुए समन्वित संश्लिष्ट विकास पर ध्यान केन्द्रित करता है।

संघृत विकास—

संघृत विकास का आशय यह है कि विकास ऐसा होना चाहिए कि जो न केवल मानवीय समाज के आवश्यकताओं का आपूर्ति तथा स्थायी भविष्य के लिए भी निर्बाध विकास का आधार प्रस्तुत करता है। शाश्वत विकास की व्याख्या सर्वप्रथम 1987 में ब्रुण्टलैण्ट प्रतिवेदन में प्रकट हुई जिसमें आर्थिक विकास भावी पीढ़ी के विकास के अवसर पर प्रभाव न आये। संघृत विकास का उद्देश्य—मानवीय समाज की उपस्थित मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति को बिना भावी—भविष्य की आने वाली पीढ़ी की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता को किसी भी प्रकार से नुकसान पहुंचाये सुनिश्चित करना। इस प्रकार संघृत विकास वातावरण के ऐसे संरक्षण पर बल देता है जो वर्तमान में जैवमण्डल का उपयोग करने के साथ—साथ भावी पीढ़ी के लिए जरूरतों एवं आकांक्षाओं के लिए उसकी संभाव्यता सुरक्षित रखे। संघृत विकास स्वीकार करता है कि पारिस्थितिकी तंत्र किसी के पूर्वजों से प्राप्त विरासत नहीं है वरन् सन्ततियों की धरोहर है। संघृत विकास, पारिस्थितिकी तंत्र के उपभोग की कोई सीमा स्वीकार नहीं करता है परन्तु तकनीक एवं सामाजिक संगठन को स्वीकार करता है।

सार रूप में संविकास एक ऐसा विकास है जो सामाजिक दृष्टि से वांछित आर्थिक दृष्टिकोण से संतुष्टप्रद एवं पर्यावरण दृष्टि से पुष्ट हो।

16.7 संविकास के सिद्धान्त

संविकास की संकल्पना दो विकास परक मूलदर्शन पर आधारित है प्रथम— एक ऐसे अर्थव्यवस्था का निर्माण करना जिसका मूलाधार जनसामान्य की मौलिक आवश्यकताओं पूर्ति करता है, न कि विशिष्ट वर्ग के लोगों के असीमित प्रलोभन को संतुष्ट करना। वर्तमान में विश्व की आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी असंतुलन सम्बन्धी अनेक समस्याओं की जड़ में उपभोगपरक प्रवृत्ति का वर्चस्व है। विश्व के कुछ विशिष्ट देश एवं वर्ग के लोग प्राकृतिक संसाधनों का अधिक मात्रा में उपयोग ऐसी वस्तुओं के निर्माण के लिए करते हैं जो सिर्फ विलासितापूर्ण जीवन एवं प्रदर्शन की भावना को संतुष्ट करती है। इन विशिष्ट देश एवं वर्ग के लोगों का मनुष्य के गुणात्मक जीवन की आवश्यकताओं से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। वही दूसरी तरफ, कुछ देशों एवं वर्ग के लोगों को जीवित रहने के लिए अनिवार्य वस्तुओं से वंचित रह जाना पड़ता है। वर्तमान अर्थव्यवस्था में संसाधन उत्पादन एवं वितरण की प्रणाली पर सिर्फ कुछ लोगों का ही वर्चस्व है जिसके परिणामस्वरूप, किसी देश में अधिक मात्रा में उत्पादन होते हुए भी अधिकांश लोगों को जीवन निर्वहन की आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार वर्तमान युग के अर्थतंत्र एवं सामाजिक व्यवस्था में असमानता विद्यमान है। यह त्रुटिपूर्ण आर्थिक प्रणाली एवं सामाजिक व्यवस्था स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान है। एक ओर यदि विकसित एवं अल्पविकसित देशों के बीच आर्थिक विकास के स्तर में चौड़ी खाया है, तो दूसरी ओर अल्पविकसित देश के भीतर भी एक राज्य में समाज के विभिन्न वर्गों में संसाधनों की सुलभता एवं प्रति व्यक्ति आय में अत्यधिक खाया मिलता है।

दूसरा— संविकास न तो पारिस्थितिकी तन्त्र में मानव द्वारा षोषण व दोहन का विरोधी है, और न ही विकास की कोई सीमा निश्चित करने का समर्थक है, लेकिन यह एक ऐसे आर्थिक तंत्र के निर्माण की कल्पना

करता है, जो प्रौद्योगिकी का दक्षतापूर्ण उपयोग करके पारिस्थितिकी अनुकूलित उत्पादन करे। इन दोनों मूल मान्यताओं के आधार पर संविकास निम्न सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, जो एक ओर मानव एवं प्रकृति, तो दूसरी ओर मानव-मानव के बीच सामन्जस्य एवं सहयोग स्थापित करने का मार्ग प्रदान करे। WCED द्वारा संविकास के ये सिद्धान्त निम्नवत हैं।

- एक ऐसा राजनीतिक-प्रशासनिक तन्त्र का निर्माण करना जो निर्णय प्रक्रिया में मनुष्य के प्रभावी भागीदारी को सुनिश्चित करे। बिना इस प्रकार की सार्वजनिक भागीदारी के पारिस्थितिकी तन्त्र में स्थायित्व तथा आर्थिक विकास में सफलता नहीं प्राप्त किया जा सकता है। अल्पविकसित देशों में पर्यावरण का अधिक ह्रास के कारणों में एक प्रमुख कारण यह भी है कि किसी भी ऐसे निर्णय में जो तथाकथित सार्वजनिक हित में किये गये हैं, जनसामान्य की भागीदारी नहीं होती। परिणामस्वरूप किसी भी ऐसे उपाय को जो पारिस्थितिकी तन्त्र की सुरक्षा की दृष्टि से किये जाते हैं अपना निःसंकोच समर्थन एवं सहयोग नहीं देते। प्रत्येक व्यक्ति जाने-अनजाने, प्रलोभन या मजबूरीवश, पारिस्थितिकी तन्त्र से छेड़छाड़ करता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने घरेलू ईंधन उपयोग के लिए एक वृक्ष काटता है, तो वह पारिस्थितिकी तन्त्र में दूरगामी असंतुलन उत्पन्न करता है।
- एक इस प्रकार के आर्थिक तन्त्र का निर्माण करना है जो आत्मनिर्भरता को प्रश्रय देता है तथा संघृत उत्पादन आधिक्य उत्पन्न करने का प्रयास करता है और इसके लिए तकनीकी व्यवस्था में बदलाव करता है।
- एक इस प्रकार के सामाजिक तन्त्र का निर्माण करना है जो असंतुलित विकास से उत्पन्न होने वाले तनावों को दूर करने में सहयोगी हो। जिस किसी समाज में उत्पादन से प्राप्त होने वाले लाभ का उचित वितरण नहीं होता, उस समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव व संघर्ष उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के संघर्ष कभी-कभी कहीं-कहीं भयंकर कलह एवं युद्ध में भी बदल जाते हैं। इस भयंकर कलह एवं युद्ध में न तो आर्थिक विकास हो सकता है और न ही पारिस्थितिकी तन्त्र का संरक्षण।
- एक इस प्रकार के उत्पादन व्यवस्था जो सिर्फ आर्थिक विकास पर ही ध्यान नहीं देता हो बल्कि विकास के पारिस्थितिकी आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए भी वचनबद्ध होता है।
- एक ऐसी तकनीकीय व्यवस्था जो सतत आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी समस्याओं के नये हल ढूँढने में सक्षम एवं तत्पर रहता है। जैसे एक ओर हरित क्रान्ति का जन्म हुआ है जिससे अल्पविकसित देशों में लगातार बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त खाद्यान्न उगाना मुमकीम हुआ है तो दूसरी ओर इसी प्रक्रिया में कई नई पारिस्थितिकी समस्याएं भी जन्म ली हैं। कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से जल प्रदूषण बढ़ा है तथा एक ही प्रजाति की फसलों के उगने से विभिन्न रोगों का प्रकोप बढ़ा है, परन्तु जैव प्रौद्योगिकी इन समस्याओं के नये हल ढूँढने को तत्पर है। अब कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के स्थान पर खेतों में ऐसे कीटों के प्रजनन पर बल दिया जा रहा है, जो हानिकार कीटों का भक्षण करें। उसी प्रकार रासायनिक उर्वरक अधिक मात्रा में न देकर शैवाल एवं अन्य मिट्टी में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाली फसलों में उर्वरक की कमी दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। जैसे धान खेती में नीलहरित शैवाल विकसित करना तथा सनई, मूँग, अरहर जैसी फसलों का फसल चक्र में समावेश करना जिनकी जड़ों में ऐसे बैक्टीरिया पलते हैं या नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं।
- एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था जो संघृत विकास को प्रश्रय देता हो। ध्यान देने की बात है कि, पारिस्थितिकी तन्त्र की स्थानीय स्तर पर प्रकट होने वाली अनेक समस्याएं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न होती हैं। वायुमण्डल में कल-कारखानों से निकलकर प्रवेश करने वाली अनेक हानिकारक गैसों कार्बन-डाई आक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड एवं क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन जो हरित गृह प्रभाव, तेजाबी वर्षा तथा ओजोन परत के क्षय के लिये जिम्मेदार हैं। ये सभी हानिकारक गैसों औद्योगिक देशों से निःसृत होती हैं, और जिसका कुप्रभाव समान रूप से हर देश पर पड़ता है। उसी भाँति अणु-विद्युत कारखानों तथा रासायनिक कारखानों में निःसृत जहरीले कचरे विकसित देशों द्वारा कुछ अल्प विकसित देशों में जमा किये जा रहे हैं, जिससे सम्बन्धित देशों में लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि अल्पविकसित देशों में पारिस्थितिकी तन्त्र के असंतुलन का स्रोत बहुत हद

तक विकसित देशों द्वारा असंतुलित व्यापार एवं अत्यधिक मुनाफे की दृष्टि से अल्प विकसित देशों के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की नीति है, परन्तु अल्पविकसित देशों में पारिस्थितिकी तन्त्र की अपूरणीय क्षति जैसे वनों का व्यापक पैमाने पर कटाव के कुपरिणाम से विकसित देश भी अछूते नहीं रह पाते। अतएव संविकास का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है, विश्व स्तर पर विचार एवं स्थानीय स्तर पर कार्य ऐसा तभी सम्भव है, जब एक नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्माण हो जो अखिल विश्व के संधृत विकास की दृष्टि कार्य करे।

16.8 भारत में संविकास

भारत एक अल्पविकसित देश है जहां के लोगों की औसत प्रति व्यक्ति आय निम्न पाया जाता है। स्वतंत्रता के बाद से पंचवर्षीय योजना के माध्यम से देश में नियोजित आर्थिक विकास के सतत प्रयास किये जाते रहे हैं जिसके फलस्वरूप आर्थिक विकास में भारत ने विशेष उल्लेखनीय प्रगति किया है। स्वतंत्रता के समय भारत में खाद्यान्न तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का अधिक मात्रा में अभाव था परन्तु वर्तमान समय में भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर है। इसके अलावा भारत वस्त्र, सीमेन्ट, कपास, इस्पात औद्योगिक में भी आत्म निर्भर है। इन सभी का भारत निर्यात भी करता है। वर्तमान समय में भारत पर्याप्त एवं संतुलित विकास का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सका है। वर्तमान में भी भारत का आर्थिक विकास कई प्रकार से संतुष्टजनक नहीं है—

- भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर है फिर भी भारत को खाद्य पदार्थ का आयात करना पड़ता है।
- भारत का आर्थिक विकास या देश के प्रगति के बावजूद भी यहां पर प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है।
- भारत रासायनिक उर्वरक, मशीनें, कागज, इलेक्ट्रानिक कल—पुर्जे, वायुयान, परिवहन उपकरण तथा वस्त्र का बड़े पैमाने पर आयात करता है।
- भारत में विकास का लाभ सभी इलाकों तथा सामाजिक वर्ग को एक समान नहीं मिला है। कृषि, सिंचाई ऊर्जा, जीवन की गुणवत्त तथा जीवन स्तर में विषमता पायी जाती है।
- भारत में तीव्रगति से बढ़ रही जनसंख्या पर्यावरण, आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास, खाद्यान्न विकास, राज्यों एवं क्षेत्रों में असंतुलन की खाई को बढ़ा रही है। साथ ही साथ विकास के प्रगति पर भी प्रभाव डाल रही है।
- देश में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों का प्रतिशत अधिक है। उड़ीसा, बिहार तथा असम में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या सर्वाधिक है।
- देश के विभिन्न क्षेत्रों में जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु—दर तथा साक्षरता एवं प्रौद्योगिकी विकास का स्तर विषम पाया जाता है।

उपरोक्त आर्थिक विकास की विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि भारत में आर्थिक विकास निम्न स्तर के साथ—साथ क्षेत्रीय तथा सामाजिक विषमता भी पायी जाती है। भारत में निर्धनता एवं असमानता को समाप्त करने के लिए बड़े पैमाने पर आर्थिक विकास करना होगा। लेकिन आर्थिक विकास तथा गरीबी दोनों ही के कारण जल प्रदूषण, निर्वनीकरण, वायु प्रदूषण, ऊर्जा संकट, मृदा अपरदन तथा मृदा उर्वर ह्रास की समस्या प्रकट होगी। आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी तन्त्र में गुणात्मक ह्रास के द्वन्द्व निम्न समस्याओं में समाहित हैं—

- भारत में औद्योगिक प्रदेशों व नगरीय क्षेत्रों के आस—पास वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण का स्तर काफी अधिक रहता है। भारत की अधिकांश नदियां बाहितमल तथा औद्योगिक बहिर्स्राव से प्रदूषित हैं। प्रदूषित जल के उपभोग से तरह—तरह की बीमारियां जन्म लेती हैं।
- देश में कूड़ा—करकट नगरी क्षेत्र से अधिक मात्रा में निकलता है जिसका संग्रहण एवं निपटान की व्यवस्था उचिन न होने के कारण प्रदूषण बढ़ रहा है। जिसके परिणामस्वरूप महामारियों का प्रकोप दिन—प्रति दिन बढ़ रही है।

- भारत में प्रति वर्ष 12 अरब टन मृदा का अपरदन हो रहा है जिससे मृदा का ऊपरी भाग कटकर बह जा रहा है।
- फसल में वृद्धि के लिए सिंचाई की बहुत जरूरत होती है। सिंचाई से जल सिक्तता तथा मृदा में लवणता की वृद्धि होने से कृषि के लिए यह मृदा अयोग्य हो जाता है।
- रासायनिक उर्वरकों का अधिक मात्रा में प्रयोग से मृदा की उर्वरता में तीव्र ह्रास हो रहा है। खाद्यान्न की अधिक मात्रा में उपरदन के लिए उर्वरकों का अधिक उपयोग किया जा रहा है जिससे प्रति वर्ष मृदा अनुर्वरक हो रही है।
- ऐसे राज्य जहां पर प्रति हेक्टेयर अपरदन अधिक किया जा रहा है वहां पर मृदा में पोषक तत्वों की कमी पायी जाती है। जैसे पंजाब का लुधियाना जिला।
- जल विद्युत एवं सिंचाई के वृद्धि के लिए बहुत से बांध का निर्माण किया गया तथा बहुत से बांध निर्माणाधीन भी हैं। बड़े बांधों के निर्माण से अनेक पारिस्थितिकी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं।
- देश में खाना पकाने के लिए लकड़ी, गोबर एवं फसलों के डण्डल का प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है जिससे बड़े-पैमाने पर बन की कटाई की जाती है जिसका परिणाम है कि वन का क्षेत्रफल सिकुड़ रहा है।
- कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए बड़ी मात्रा में रासायनिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है जिससे भारतीय लोगों के आहार में डी0डी0टी0 जैसी जहरीले पदार्थ का अंश बढ़ रहा है। दवा के छिड़काव से लोगों को तरह-तरह की बीमारियां जन्म ले रही हैं।
- देश में विद्युत की मांग अधिक है और आये दिन मांग में वृद्धि भी हो रही है जिसके कारण आपूर्ति नहीं हो पा रही है। विद्युत आपूर्ति को बढ़ाने के लिए प्रयास किया जा रहा है, तापीय विद्युत गृह, बड़े विद्युत उत्पादक बांध, नाभिकीय ऊर्जा, सागरीय ऊर्जा आदि का निर्माण किया जा रहा है जिसके कारण अनेक प्रकार की पारिस्थितिकीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत में संविकास, जिसके द्वारा पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ आर्थिक विकास की वृद्धि हो सके, इसकी अनिवार्य आवश्यकता हैं एम0एस0 स्वामी नाथन ने भारत की पर्यावरणीय समस्याएं निम्न कारणों से उत्पन्न माना है—

- औद्योगिक मालिकों का पर्यावरण सुरक्षा के प्रति रुझान कम होने के कारण पर्यावरण प्रदूषण अनावश्यक फैलता है।
- मानव तथा जानवरों का मांग के कारण विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जा रहा है।
- लोगों का पर्यावरण के प्रति जागरूकता का अभाव होने के कारण जैव विविधता के आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय महत्व का समुचित आकलन नहीं होता है।
- आर्थिक वृद्धि के साथ सामाजिक न्याय का ध्यान न दिया जाने के कारण निर्धनता, कुपोषण एवं शिशु मृत्यु-दर का व्यापक असर बना हुआ है।
- राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा तैयार किये गये योजनाओं में पर्यावरण प्रभाव का आकलन न किये जाने के कारण समस्या का निवारण नहीं हो पा रहा है।
- आर्थिक विकास के कारण औद्योगिक, कृषिगत तथा घरेलू कार्य में ऊर्जा की मांग बढ़ रही है जिसकी आपूर्ति कोयला एवं पेट्रोल पर निर्भर है।

इसी लिए जीवन पोषण हेतु अनिवार्य आवश्यक पारिस्थितिकी तंत्र की जरूरतों से बहुत अधिक है। विकसित देशों का कहना है कि आर्थिक विकास के बाद पर्यावरण संरक्षण की तरफ ध्यान देना बहुत मंहगा

पड़ता है 1972 में हुए स्टाकहोम सम्मेलन के बाद भारत सरकार पर्यावरण संरक्षण के प्रति अधिक सजग हुई तथा संविकास के लिए विभिन्न प्रकार के कानून एवं योजनाएं बनाई, सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी संस्थाएं बनाई।

16.9 सारांश

पर्यावरण प्रबंधन का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग और संरक्षण के माध्यम से पर्यावरणीय स्थिरता को सुनिश्चित करना है। यह प्रक्रिया पर्यावरणीय समस्याओं को पहचानने, उनका आकलन करने, और उन्हें नियंत्रित करने के लिए नीतियों और रणनीतियों को लागू करने पर केंद्रित है। इसमें प्रदूषण नियंत्रण, जैव विविधता संरक्षण, जलवायु परिवर्तन का मुकाबला, और प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की योजना शामिल है। पर्यावरण प्रबंधन न केवल पर्यावरण की रक्षा करता है, बल्कि आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण के लिए भी अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करता है, जिससे वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ और संतुलित पर्यावरण सुनिश्चित हो सके।

संविकास एक समग्र दृष्टिकोण है जो पर्यावरणीय संरक्षण और सतत विकास के बीच संतुलन स्थापित करने पर केंद्रित है। इसका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है, ताकि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना विकास की प्रक्रिया को जारी रखा जा सके। संविकास स्थानीय समुदायों की भागीदारी, पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण, और पर्यावरणीय शिक्षा के माध्यम से समग्र और सतत विकास को सुनिश्चित करता है। यह अवधारणा विकास और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है, जिससे वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित, स्वस्थ, और टिकाऊ पर्यावरण का निर्माण हो सके।

आप इस इकाई में पर्यावरण प्रबंधन एवं संविकास, पर्यावरण प्रबंधन के उपागम एवं सिद्धान्त, संविकास के उपागम एवं सिद्धान्त, जनसंख्या एवं पर्यावरण का सम्बन्ध, जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर दुष्प्रभाव, संविकास की संकल्पना तथा भारत में संविकास का अध्ययन किया गया है।

16.10 शब्द सूची—

Population-जनसंख्या,	Environment degradation-पर्यावरण ह्रास,
Malnutrition-कुपोषण,	Population growth-जनसंख्या वृद्धि,
Poverty- निर्धनता,	Population decline- जनसंख्या ह्रास,
Air Pollution- वायु प्रदूषण,	Balanced development- संतुलित विकास,
Polution-जल प्रदूषण	Environment-पर्यावरण,
Even development-संविकास,	Urbvanization-नगरीयकरण,
Environment Devopment-	पर्यावरण विकास,
Sustainble Development-	संधृत विकास।

16.11 परीक्षोपयोगी प्रश्न

- बढ़ती जनसंख्या की प्रमुख समस्या क्या है—
 - भूमि का अभाव
 - प्रदूषण की समस्या
 - बीमारियां
 - उपरोक्त में सभी
- आजोन क्षरण का प्रमुख कारण है—
 - जलवाष्प की वृद्धि
 - तापमान वृद्धि
 - जनसंख्या की वृद्धि
 - आर्थिक विकास

3. दूषित जल का सेवन से कौन-सी बीमारी जन्म नहीं लेती है—

- (क) गठिया (ख) टाइफाईड
(ग) दस्त (पेचिस) (घ) पीलिया

4. वायु प्रदूषण का प्रमुख तत्व कौन-सा है—

- (क) नाइट्रोजन (ख) सल्फरडाई आक्साईड
(ग) मेथेन (घ) परिवहन

5. संविकास के लिए कौन सा विकल्प सही है—

- (क) रुक-रुक कर विकास करना
(ख) सामाजिक विकास
(ग) सतत् विकास
(घ) सभी क्षेत्र का एक समान विकास

उत्तर— 1—घ, 2—ख, 3—क, 4—घ, 5—ग

16.12 महत्वपूर्ण पुस्तकें /संदर्भ

1. प्रो० जगदीश सिंह— पर्यावरण एवं संविकास, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
2. गणेश कुमार पाठक एवं अभिनव कुमार पाठक— पर्यावरणीय भूगोल, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. प्रो० सविन्द्र सिंह— पर्यावरणीय भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन प्रयागराज।

16.13 अभ्यास प्रश्न

1. पर्यावरण प्रबन्धन की संकल्पना की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
2. संविकास की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।
3. पर्यावरण प्रबन्धन एवं संविकास में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. पर्यावरण प्रबन्धन के उपागम का वर्णन कीजिए।
5. पर्यावरण प्रबन्धन के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
6. बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का वर्णन कीजिए।
7. संविकास के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।